ISSN 2349-137X
UGC CARE-Listed Peer Reviewed

अनहद लोक

(प्रतिध्वनि कला एवं संस्कृति की)

वर्ष-8, 2022, अंक-15
(जनवरी-जून)
(अर्धवार्षिक शोध पत्रिका)

सम्पादक
डॉ. मधु रानी शुक्ला

सम्पादक मण्डल
डॉ. राजश्री रामकृष्ण, डॉ. मनीष कुमार मिश्रा,
डॉ. धनंजय चोपड़ा, डॉ. ज्योति सिन्हा

सहायक सम्पादक
सुश्री शाम्भवी शुक्ला

व्यंजना

आर्ट एण्ड कल्चर सोसायटी
109 डी/4, अबुबकरपुर, प्रीतम नगर, सुलेम सराय
प्रयागराज - 211011

अनहद लोक

(प्रतिध्वनि कला एवं संस्कृति की)

सम्पादक : डॉ. मधु रानी शुक्ला

सम्पादक मण्डल : डॉ. राजश्री रामकृष्ण, डॉ. मनीष कुमार मिश्रा, डॉ. धनंजय चोपड़ा, डॉ. ज्योति सिन्हा

सहायक सम्पादक : सुश्री शाम्भवी शुक्ला

मल्टीमीडिया सम्पादक : श्रेयस शुक्ला

प्रकाशक एवं मुद्रक

व्यंजना

(आर्ट एण्ड कल्चर सोसायटी)

109 डी/4, अबुबकरपुर, प्रीतम नगर

सुलेम सराय, प्रयागराज-211 011

मो. : 9838963188, 8419085095

Email: anhadlok.vyanjana@gmail.com

वेबसाइट : vyanjanasociety.com/anhad_lok

वितरक : पाठक पब्लिकेशन, महाजनी टोला, इलाहाबाद-211 011

फोन नं. 0532-2402073

मूल्य : 200/- प्रति अंक, पोस्टल चार्जेज अलग से

सदस्यता शुल्क

वार्षिक : 500/-

तीन वर्ष : 1500/-

आजीवन : 10,000/-

संगीत नाटक अकादेमी के सहयोग से प्रकाशित

© सर्वाधिकार सुरक्षित

- रचनाकारो के विचार मौलिक हैं
- समस्त न्यायिक विवाद का क्षेत्र इलाहाबाद न्यायालय होगा

मार्गदर्शन बोर्ड :

डॉ. सोनल मानसिंह, पं. विश्वमोहन भट्ट, प्रो. कमलेश दत्त त्रिपाठी, प्रो. चित्तरंजन ज्योतिषी, प्रो. ऋत्विक् सान्याल, पं. रामकृष्ण दास 'नादरंग', प्रो. दीप्ति ओमचारी भल्ला, प्रो. के. शशि कुमार, पं. विजय शंकर मिश्र, पं. रोनू मजुमदार,

प्रो. (डॉ.) गुरप्रीत कौर, डॉ. राजेश मिश्रा, डॉ. आशा आस्थाना

सहयोगी मंडल :

प्रो. संगीता पंडित, प्रो. लावण्य कीर्ति सिंह 'काब्या', प्रो. निशा झा, प्रो. प्रभा भारद्वाज, प्रो. नीलम पॉल, प्रो. अर्चना अंभोरे, डॉ. राम शंकर, डॉ. इंदु शर्मा, डॉ. सुरेंद्र कुमार, प्रो. भावना ग्रोवर, डॉ. अंबिका कश्यप, डॉ. स्नेहाशीष दास, डॉ. सुजाता व्यास,

डॉ. शान्ति महेश, डॉ. कल्पना दुबे, डॉ. बिंदु के.

'संगीत' अभिव्यक्ति का सबल माध्यम

कला सहायक तत्वों के आधार पर सदा ही अभिव्यक्ति में समर्थ रही है जैसे तूलिका तथा रंगों के माध्यम से अपने भावों की अभिव्यक्ति चित्रकार ने की तो शब्द तथा व्यञ्जना से अपने मनोभावों को कवि ने प्रदर्शित किया ठीक उसी प्रकार अनुरणनमय ध्वनि की सहायता के साथ लय तथा आघात् को संयुक्त संयोजनकर संगीतकार ने अपने भावों की अभिव्यक्ति की। ध्वनि मात्र से ही रस प्रतीति सम्भव है। पं. ओंकारनाथ ठाकुर के अनुसार संगीत में शब्द के अर्थ का बोध हुए बिना ही भाव या रस प्रतीति हो जाती है प्रमाणित है कि शब्द की बाह्य शक्ति सहायता के बिना ही अर्थ भाव रस प्रतीति सम्भव है। काव्य शास्त्र में तो इसका स्पष्ट निर्देश है किन्तु संगीत शास्त्रों में इसका कोई सैद्धान्तिक विवेचना नहीं प्राप्त होता है। स्वर संगीत के प्राणतत्व रूप में प्रतीष्ठित है ऐसे संगीत के शब्दातीत होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता इसीलिए सांगीतिक भाषा विश्वव्यापी है।

आचार्य बृहस्पति के अनुसार भाषा भले ही भावों को अभिव्यक्त करने में समर्थ न हों, लेकिन हर्ष, शोक इत्यादि चित्तवृत्तियों को व्यक्त करने वाले नाद रूप सार्वभौम हैं। पं. रवि शंकर ने लिखा भी है - 'भारत में' प्रदर्शनगत कलायें संगीत, नृत्य, नाटक, काव्य नौ रस या नौ मनोभावों की अवधारणा पर आधारित है संगीत का प्रभाव बौद्धिक की अपेक्षा भावात्मक अधिक है। वर्तमान काल में राष्ट्रीयता के रंग में रंगे कितने ही सपूतों ने राष्ट्रीय भावना का दीप देशवासियों के हृदय में प्रज्जवलित संगीत के माध्यम से ही किया संगीत ने देशभक्ति का जज्बा जगाने में अपनी उत्कृष्टता का परिचय दिया है जिसमें स्वर, लय, ओज, प्रवाह में बँधकर कितनें ही जाँबाजों ने अपने प्राणों की आहुति दे दी। विश्व कवि रविन्द्रनाथ ठाकुर और बंकिम चन्द्र चटर्जी आदि ने राष्ट्रीय गीतों की रचना की जिसने लोगों के तन-मन को झकझोर दिया।

संगीत अध्यात्म का विषय भी रहा है अतः पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के राम नाम कीर्तन में मनुष्य मात्र को तल्लीन करने का सामर्थ्य था तो डी. वी. पलुस्कर के 'चलो मन गंगा जमुना तीर' तथा 'ठुमक चलत राम चन्द्र' आदि भजनों की मधुरता ने भारत वर्ष ही नहीं 'चीन' की जनता को भी मुग्ध कर दिया था।

संगीत मार्तण्ड पण्डित ओंकारनाथ ठाकुर के भजनों को सुनकर श्रोताओं के नेत्र से अश्रुधारा बहने लगती थी तो स्वर लहरियों से अपने इष्ट कृष्ण को रिझाते चैतन्य महाप्रभु के पीछे भक्तों की टोली का चलना स्वर शक्ति का ही प्रभाव था। मनुष्य तो जन्म से ही स्वर के प्रभाव से संचालित होता रहा है शैशवावस्था में जहाँ मधुर स्वर लहरियों ने सुलाया है वहीं श्रम के समय संगीत ने उसके कार्य को सहज बना दिया तो रणक्षेत्र के लिए उत्साह प्रदान किया। संगीत ने केवल सुखात्मक भावों का प्रदर्शन ही नहीं किया है अपितु दुःखात्मक भावों की भी अभिव्यक्ति में समर्थ तत्व है जन्म से मृत्यु तक यह जुड़ा है। भावनायें नादमयी

होकर मृत्यु की दर्दनाक वेदना को भी सहज बना देती है सार्थक समयानुकूल शब्द रचना के यथानुकूल गायन से वेदना सहज हो जाती है तथा अलौकिक शक्ति भविष्य के प्रति आशावान होने की उर्जा प्रदान करती है हर्ष, शोक, विराग, भक्ति, उमंग, उत्साह सभी भावों के संप्रेषण का सबल माध्यम स्वर-शक्ति ही है उसे सार्थक शब्द रचना का सानिध्य मिले या निरर्थक शब्द रचना का वह गात्र वीणा या शारीरी वीणा से निष्पादित हो या दारवी वीणा से स्वर शक्ति ने सदा ही भाव बोध, रस बोध को सहज बनाया है।

समाज में घटित घटनाओं को अपनी कल्पना एवं सृजनात्मक क्षमता के आधार पर पर्दे पर रूपांकित करने का नाम है भारतीय सिनेमा जिसकी शुरूआत 1913 में हुई जिसने अपने गौरवपूर्ण 100 वर्ष करने के बाद दूसरे दशक की ओर सफलम कदम बढ़ाया है। कला संस्कृति के इस पक्ष ने भी विश्व में अपनी एक पहचान बनाई है भावप्रवणता, एकता, भाईचारा, त्याग, स्नेह, गीत संगीत की उत्कृष्टता मधुरता ने भारतीय फिल्मों को अन्य भाषा भाषी देशों में भी लोकप्रिय बनाया है। यहाँ के अभिनेता, अभिनेत्रियों के साथ ही यहाँ के फिल्मी गानों के दीवाने सम्पूर्ण विश्व में पाये जाते हैं। राज कपूर, अमिताभ बच्चन, शाहरूख खाँन, ऐश्वर्या रॉय पर फिल्माये अनेक गीत विदेशों में भी लोकप्रियता के चरम पर है।

हमारे संगीत के मूल आधार नाद, काल, वाक् समस्त विश्व में एक है भाव, विभाव, अनुभाव संचारी भाव जो हमारे संगीत में निहित है वह समस्त विश्व में वो साधारणी करण की प्रक्रिया समस्त विश्व की है अगर मेरा जूता है जापानी सुनकर - रशियन्स राज कपूर और मुकेश के ही फैन नहीं पूरे भारतीय संगीत के प्रशंसक बन सकते हैं ए0 आर0 रहमान की धुनें, मुकेश लता आशा सभी के रसिक पूरे विश्व में हैं।

उसके स्पन्दन को तो विश्व एक तरह से महसूस करता है हमारे यहाँ रस भेद भाव भेद है वो अनुभूति का तरीका देश काल के अनुरूप हो सकता है पर सांगीतिक भाषा सार्वभौम है।

-डॉ. मधु रानी शुक्ला

अनुक्रम

गान

1. बोलती फिल्मों का उदयकाल और हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत -*प्रो. लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या'* 13
2. तराना - सदाबहार गायन शैली -*प्रो. डॉ.साधना व. मोहोड* 19
3. ग्वालियर घराने की गायन शैलीः एक विवेचनात्मक अध्ययन - *मेघना कुमार* 25
4. The Sufi Music in India -*Dr. Santosh Kumar* *29*
5. ग्वालियर घरानाः परंपरा एवं बदलाव -*डॉ. किरण प्रकाश सावंत* 35
6. संगीत सौन्दर्य में बन्दिशों का महत्व -*डॉ. प्रिया पाण्डेय* 39
   -*डॉ. रूचि मिश्रा*

आतोद्य

7. पूर्वांचल के लोक संगीत में वाद्यों की भूमिका -*डॉ॰ सुरेन्द्र कुमार* 47
8. लोक वाद्य नगाड़ा -*डॉ0 चित्रा चौरसिया* 52
9. सितार वादन में बन्दिशों के विभिन्न प्रकार -*डॉ. गौरव शुक्ला* 57
10. फर्रूखाबाद घरानाः वंशावली, शिष्य परम्परा एंव वादन
    शैलीगत विशेषताएं संस्कृति -*डॉ. प्रियंका अरोड़ा* 59

संस्कृति

11. गुप्तकालीन मूर्तिकला में धार्मिक एवं आध्यात्मिक चिन्तन बोध -*प्रो. महावीर सिंह* 67
12. कुमाऊँ की सर्वश्रेष्ठ लोकगाथा राजुला मालूशाही- नीमा कलौनी - *डॉ संध्यारानी* 72
13. सिख धार्मिक वस्त्रों का परिचय, पंजाब स्थित गुरुद्वारों में प्राचीन
    वस्त्रों का संरक्षण एवं वर्तमान स्थिति -*डॉ. प्रज्ञा पाठक* 80
14. Architecture of Kerala Temple theatre-Kutthambalam -*Dr. Jyoti singh* 86
15. जनप्रिय असमिया लोक कथाओं में चित्रित स्त्री - *बेबी विश्वकर्मा* 91
16. Cultural Heritage of Khasi Folktales; A Study
    of India's Northeast and its Tradition -*Dr. Abhisarika Prajapati* 96

थाती

17. महाराष्ट्रीयन संस्कृति के त्यौहार से संगीत का पारस्पारीक अनुबंध -*प्रो. वंदना म.देशमुख* 105
18. काँगड़ा के संस्कार व लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन -*डॉ मंजु पुरी* 109
19. ब्रज के लोक जीवन में राम -*डॉ0 शेफाली चतुर्वेदी* 114
20. लोक खेलः विरासत की अद्भुत परम्परा -*डॉ. लक्ष्मीकान्त चंदेला* 121
21 होली गायनः एक रंगारंग परम्परा -*डॉ. मधुमिता भट्टाचार्य* 126
22 मण्डी जनपद विशेष की पारम्परिक नृत्य संगीत परम्परा : बुढड़ा नृत्य -*डॉ0 हेमराज चन्देल* 130
23. भारतीय लोक कला में बुन्देली लोक चित्रकला का स्वरुप - *डॉ0 सचिव गौतम* 134
24. वाचिक लोक कथाओं की भारतीय परम्परा' -*डॉ. अमित कुमार पाण्डेय* 140
25. फाल्गुन मास में गाये जाने वाले उप शास्त्रीय व लोक गीत प्रकार -*डॉ0 श्वेता केशरी* 145

सौन्दर्य

26. Colour Therapy: Therapeutic benefits of Colours -*Dr. Shalini Tiwari* *153*
27. Perceiving Beauty and Truth: A Study of Mizo Idioms and Expressions -*Dr. R. Zothanliana* -*Prof. H. Malsawmi* *158*
28. Contribution of Ustad Sharafat Hussain Khan to Indian Classical Music *Dr. Alok Acharjee* 165
29. विद्याधरी बाईः तुम्हारी आवाज़ में तुम्हारी जड़े हैं -*डॉ. मनीष कुमार मिश्रा* - *डॉ. उषा आलोक दुबे* 169
30. दिनेश कुमार शुक्ल की कविताओं में चित्रित ग्राम्य-बोध -*डॉ. चन्द्रकान्त सिंह* 175

साहित्यिकी

31. दो पाटन के बीच -*प्रो0 (डॉ0) छाया सिन्हा* 183
32. नन्द चतुर्वेदी की रचनाओं में सामाजिक संदर्भ -*डॉ. विदुषी आमेटा* -*संगीता भारद्वाज* 194
33. Poetry in the Time of Terror: the Uneasy Homeland in Contemporary Anglophone Poetry of Assam -*Dr. Dharmendra Baruah* 199
34. 'धरती धन न अपना' उपन्यास में दलित चेतना -*डॉ. जी. वसंती* 205
35. महिला कथाकारों की कहानियों में स्त्री-विर्मश का स्वरूप -*डॉ0 अजय सिंह यादव* 211
36. प्रो. सोमा बंधोपाध्याय की कहानी 'इति कवि कथा' की समीक्षा-*डॉ. अभिषेक मिश्र* 218
37. A Jungian Approach to Ben Okri's Starbook -*Anusha A* 222

प्रकीर्णक

38. भारतीय संगीत की सार्वभौमिकता -डॉ. यक्षिता भट्ट 231

39. Corporate Communication for Corporate Reputation Management -Dr. Divya Kumari KP 235

40. Influence Of Evolving Technology And Media On Carnatic Music -Dr. H. G. Amrutha Varshini 243

41. संगीत सीखने में वातावरण (परिवेश) एवं वंशानुक्रम (आनुवांशिकता) का प्रभाव -डॉ. ऐश्वर्य भट्ट 250

42. Bharatanatyam and its multifaceted approach: Cultural Creative Thoughts through Bharatanatyam in Diaspora -Dr. Uppari Himabindu 253

43. Relevance Of Guru-Shishya Parampara In Recognising Creative Cities Of Music Within India -Ms. Anupama Sharma - Mr. Abhishek Sarta 260

44. संगीत में अभ्यास का महत्व -डॉ. राय बहादुर सिंह 266

45. Effect of Music and Physical Education in Developing Motor Skills -Dr. Manjusha J. Deshmukh 270

46. सांस्कृतिक चेतना के संबर्द्धन में संगीत की भूमिका -डॉ भगत सिंह 275

47. An Alternate Narrative Of Ismat Chugtai's Lihaaf - Dr. Vivek 282

48. आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य में गुरू-शिष्य परंपरा एवं विश्वविद्यालयीन संगीत शिक्षा -डॉ. अश्विनी कुमार सिंह 292

49. New Innovations and Technology in Music -Dr. Snehal Sembarker 295

50. Importance of Fairs and Festivals as a Tourism Product: A Qualitative Study -Ritu Rani -Dr Amit Kumar Singh 300

51. Investigating the Impact of Code Switching Youngsters in Bengaluru City in Kannada Language Songs Among -Dr. C. Chamundeshwari & Ms Spoorthi A 309

52. The essence of Raga Purbi in the Tagore song -Dr. Krishnendu Dutta 317

53. पुरातात्विक अवशेषों में संगीत कला का अनुशीलन -नीमा कलौनी -डॉ0 संध्यारानी 320

54. भारतीय लोक जीवन और संस्कृति में लोकविश्वासों का महत्वः एक आकलन - डॉ. गजेन्द्र भारद्वाज 330

गान

बोलती फिल्मों का उदय-काल और हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीतज्ञ (1931-1941)

प्रो. लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या'

संकायाध्यक्ष, ललित कला संकाय
ल.ना.मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सारांश

भारतीय फिल्मों के आरंभ एवं उसके विकास की बहुत रोचक एवं वैज्ञानिक इतिहास-कथा है। आरंभ में मूक फिल्मों का दौर था। निरन्तर प्रयत्न एवं आविष्कार के बाद बोलती फिल्मों का स्वर्णिम उदय हुआ। चल-चित्रों में संलग्न कथा के साथ संगीत के सुन्दर संयोग ने फिल्मों को सफलता की सीढ़ियाँ उपलब्ध करा दिया और इस सफलता में देश-भर के विद्वान् शास्त्रीय संगीतज्ञों का अभूतभूर्व योगदान है, जो विस्मरणीय है।

मुख्य शब्द

फिल्म, संगीत, शास्त्रीय, लोक, सुगम, गायन, संगीत-निर्देशन,संगीतज्ञ।

भारतीय संगीत की संवादिता, उत्कृष्टता, सार्वभौमिकता आज विश्वभर में मान्य है। उसकी विभिन्न धाराओं में हम शास्त्रीय, उपशास्त्रीय, सुगम, लोकसंगीत आदि को गिन सकते हैं। विगत दशकों में भारतीय संगीत में एक नई धारा जुड़ गई है- चलचित्र संगीत की। बहुत कम समय में ही यह आम जनता में लोकप्रियता के शिखर तक पहुँच गई, जो सर्वविदित है। यह संगीत तीन-चार मिनटों में ही श्रोता के हृदय पर आधिपत्य जमा लेता है और अन्तर्मन को तृप्त कर देता है। ऐसा प्रतीत होता है मानों प्रत्येक मानव की कहानी इस छोटी-सी रचना में भर दी गई हो। यह अपनी सहजता, सरलता, मधुरता के कारण ही तो हमारे हृदय तक आसानी से पहुँचने का सर्वोत्तम उपादान साबित होता है।

चलचित्र संगीत ने संगीत के सभी पहलुओं को समेटा है, चाहे वह शास्त्रीय, उपशास्त्रीय, सुगम, लोक अथवा अन्य कोई भी विधा हो। रागों की जटिलता को अत्यन्त आसान बना देता है यह। रागाधारित गीतों में स्वरों का समन्वय रस-भाव-सौन्दर्य का प्रतिरूप है। शास्त्रीयता उतनी ही, जिसमें चित्तानुरंजकता बाधित न हो। दृश्यानुकूल अनुभूतियों की स्थापना के लिए अनुकूल रागों का प्रयोग हुआ है, यहाँ संगीत को दुरूह शास्त्र से न बाँधते हुए रंजकता को ही प्रधान माना गया है।

लोक-शैली का सुन्दर प्रयोग लोक-रूचि को आधार मानकर किया गया है। सुगम-शैली के गीतों में शब्द और स्वर का ऐसा अलौकिक समन्वय है मानों शिथिल भावों को स्फूर्तता दी गई हो।

संगीत तो 'खास' तक सीमित था यह आम तो अब हुआ। आध्यात्मिक पृष्ठभूमि की मानी जानी वाली इस कला 'संगीत' को विभिन्न प्रयासों ने वैज्ञानिक रूप में भी स्थापित कर दिया। 1931 से 1941 तक चलचित्र में शास्त्रीय संगीत का ही वर्चस्व रहा। यह बोलती फिल्मों का उदय काल था। इस दौरान सिने संगीत का स्वरूप शास्त्रीय था। लोक और सुगम शैली उपशास्त्रीय बन्दिशों में प्रस्तुत किए जाते थे। संगीत के पुनरूत्थान का प्रभाव फिल्म संगीत में भी दृष्टिगोचर हुआ। गीत-संगीत आम जनता की रूचि के अनुरूप रचे जाते थे, परन्तु चूँकि सिनेमाघर शहरी इलाकों में होते थे इसलिए गीत-संगीत भी भद्र एवं सुसंस्कृत कला-पारखियों के हिसाब से ही बनाए जाते थे। जब ग्रामोफोन आम जनता की पहुँच में आई तब इस नजरिए में बदलाव आया और ठेठ ग्रामीण इलाकों में भी ख्याल और ठुमरियाँ गूँजने लगीं।

पार्श्वगायन की लम्बी ऐतिहासिक परम्परा है। बेगमआरा, पी.हीरालक्ष्मी अथवा सरस्वती देवी के लिए पार्श्वगायन एक अपमानजनक बात थी। नायक-नायिका के लिए उधार के स्वर लेना अस्वीकार्य था। परन्तु धीरे-धीरे यह आसान हो पाया। नाटकों से उपजी फिल्म कला और संगीत का परचम लहरा रहा था। रंगमंच से जुड़े कलाकार, यथा-जहाँआरा कज्जन उर्फ कज्जन बाई, फिदा हुसैन, मास्टर मोहन, अशरफ खान, पी.एम. लोधी, ए. आर. काबुली आदि फिल्मों में अभिनय के साथ-साथ गायन भी करते थे और उस्ताद झण्डे खान, मास्टर नागरदास नायक, उस्ताद बन्ने खान, मास्टर मुहम्मद, मास्टर कृष्णा राव, लल्लू भाई नायक, पं0 बृजलाल वर्मा, मास्टर छैला आदि थिएटर से आमंत्रित संगीतकार थे परन्तु शास्त्रीय संगीत की जिन महान् विभूतियों का बहुत योगदान था, उनमें प्रमुख हैं-अब्दुल करीम खाँ, शंकर राव व्यास, नारायण राव व्यास, फिरोज दस्तूर, डॉ. वी.आर. देवधर, विनायक राव पटवर्द्धन, राम मराठे आदि। फिल्म 'झनक-झनक पायल बाजे' का शीर्षक गीत उस्ताद अमीर खाँ द्वारा गाया हुआ सुप्रसिद्ध गीत है। फिल्म 'माधुरी' के कुछ गीत प्रोफेसर विनायक राव पटवर्द्धन की आवाज में है। बड़े गुलाम अली खाँ, पं0 डी.वी. पलुस्कर जैसे महान गायकों से शास्त्रीय स्वरूप वाले गीत गवाए गए। 'इन्दर सभा' के अधिकांश गीत जहाँ आरा कज्जन और विलायत हुसैन के स्वर में थे। आगे, पं0 भीमसेन जोशी, बेगम परवीन सुलताना, पं0 राजन-साजन मिश्र, विदुषी आरती अंकलिकर आदि के गायन से फिल्म संगीत जीवन्त हो पाया है। शास्त्रीय वादकों में पं0 अल्लारक्खा, पं0 रविशंकर, उस्ताद विलायत खान, पं0 पन्नालाल घोष, पं0 रामनारायण, पं0 हरि प्रसाद चौरसिया, पं0 शिवकुमार शर्मा, पं0 सामता प्रसाद, उस्ताद जाकिर हुसैन तो शास्त्रीय नर्तकियों में सितारा देवी, पं0 बिरजू महाराज आदि के नाम अग्रगण्य है।

शास्त्रीय संगीत फिल्मों में खूब प्रयुक्त हुआ। सामान्यतया लोकप्रिय राग ही फिल्मों के लिए चुने गए परन्तु यदा-कदा विशुद्ध शास्त्रीय और दुरुह राग-ताल भी बहुत खुबसूरती से प्रयोग किए गए। ऐसे सुन्दर प्रयोग के लिए आरंभ के कुछ शास्त्रीय संगीतज्ञों पर एक दृष्टि प्रस्तुत है-

जद्दन बाई

जद्दन बाई अभिनेत्री नरगिस की माता, कुशल शास्त्रीय गायिका, प्रथम महिला संगीतकार (फिल्म 'तलाश-ए-हक'-1935) थीं। इसके अतिरिक्त हृदय मंथन (1936), मैडम फैशन (1936) मोती का हार (1935) फिल्मों में भी संगीत दिया।

पं0 शंकर राव व्यास

पं0 विष्णु दिगम्बर पलुष्कर के शिष्य और सितार, मेंडोलिन, सरोद आदि वाद्यों के वादक पं0 शंकर राव व्यास ने 'हिज हाइनेस' (1937) एवं 'लेडीज ओनली' (1939), भक्त विलवानंद' में संगीत दिया। इसके अतिरिक्त मि0 एक्स, पूर्णिमा,

बिजली, घूंघट, रामराज्य, भक्तध्रुव, रामविवाह, गंगामैया, लेदरफेस, एक ही भूल, नरसी भक्त, भरत मिलाप, कविता, रामबाण आदि लगभग 32 हिन्दी फिल्मों में, 5 मराठी और 3 गुजराती फिल्मों के 400 से अधिक गीतों को संगीत से सजाया।

पं0 गोविन्द राव टेम्बे

पं0 गोविन्द राव टेम्बे को हारमोनियम बजाने में महारथ हासिल थी। उन्होंने हारमोनियम को भारतीय शास्त्रीय संगीत का उपयुक्त वाद्य बनाने की क्रान्तिकारी भूमिका निभाई थी। भास्कर बुआ बखले और खान साहब अल्लादिया खान को अपने ज्ञान का श्रेय दिया। बाल गंधर्व की मंडली के वे संगीतकार थे। मराठी फिल्म 'अयोध्येया राजा' में दुर्गा खोटे के स्वर में एक हिट गीत गवाया। फिल्म 'सीता' में अभिनय किया और गाया भी। इसके अतिरिक्त कई और फिल्मों में संगीत दिया।

मालती पांडे

मालती पांडे संगीत विदुषी हीरा बाई बड़ोदेकर की शिष्या थीं। मराठी-हिन्दी फिल्म 'पारिजातक', 'श्री कृष्ण सत्यभामा' (1951) फिल्म के सभी गीत मालती पांडे ने गाया था।

उस्ताद झंडे खाँ

शास्त्रीय संगीत के उस्ताद और सारंगी वादक झंडे खाँ फिल्मों में शास्त्रीय संगीत के सरल और सरस रूप प्रदान करने में पारंगत थे। वे हारमोनियम के साथ अन्य कई वाद्ययन्त्र भी बजाते थे। उस्ताद छज्जू खान, नाजिर खान,खादिम हुसेन खान से उन्होंने शिक्षा प्राप्त की। 'चार चकम' (1932),'राधा रानी', 'भूल भूलैया' (1933), 'शैल बाला' (1932), 'तारा सुन्दरी' (1934), 'प्रभु की दुनिया' (1935), 'पयामे हक' (1939), 'चित्रलेखा' (इसमें ए. एस. ज्ञानी भी संगीतकार थे) (1941), आदि उनकी उल्लेखनीय फिल्में थीं। 'चित्रलेखा' के सभी गीत राग भैरवी पर आधारित थे। उनकी अंतिम फिल्म 'शहंशाह अकबर' थी। उनकी फिल्मों में वाद्ययन्त्रों का सुन्दर प्रयोग एवं लय-ताल का विशिष्ट योग था। कई नामी गिरामी संगीत निर्देशकों ने उनसे संगीत शिक्षा ली थी। प्रसिद्ध गजल गायिका बेगम अख्तर एवं अभिनेता मास्टर निसार ने भी झंडेखाँ से शिक्षा ली थी।

उस्ताद बन्ने खाँ

बन्ने खाँ सारंगी वादक थे। फिल्म 'राधेश्याम' (1932) में बन्ने खाँ ने नवाब खाँ (हारमोनियम वादक), जती बक्श (तबला वादक) और एस0 डी0 खुर्शीद (सारंगी वादक) के साथ मिलकर संगीतकार के रूप में काम किया था। 'प्रभु का प्यारा' (1936) फिल्म में बन्ने खाँ ने पहली बार झंडे खाँ के साथ संगीत दिया था।

उस्ताद बुनियाद हुसैन

बुनयाद (बुनियाद) हुसैन 'बुंदू खान' के नाम से भी प्रसिद्ध थे। वे शास्त्रीय संगीत के अच्छे गाता थे। उनकी तानों के लिए उन्हें 'तान-ए-तलवार' बुंदू खान कहा जाता था। 'मस्तों की ऐन फर्ज है' गजल में उन्होंने तानों का समावेश किया था। उन्होंने 'गुल बकावली' (1947) और 'आत्मरंग' (1937) फिल्म में संगीत दिया था।

प्रो0 बी0 आर0 देवधर

हम सभी जानते हैं कि प्रो0 बी0 आर0 देवधर शास्त्रीय संगीत के प्रकाण्ड विद्वान थे। उन्होंने कई फिल्मों में संगीत दिया, यथा- 'सस्सी पुन्नू (1932), शिकारी (1932) 'पतित पावन' (1933) में उन्होंने शास्त्रीय राग आधारित सुन्दर गीतों का सृजन किया था। 'जहरे इश्क' (1933) की गालिब की गजल 'नुक्ताचीं है गमेदिल' की रचना बहुत सुन्दर थी। इसके अतिरिक्त भी नीला (1935), 'राइफल गर्ल' (1938), धर्म बंधन (1940), अंगूठी (1943), मास्टर जी (1943) आदि फिल्मों में संगीत दिया था। प्रसिद्ध गायिकाएँ लक्ष्मीशंकर और सरस्वती राणे ने प्रो0 देवधर से ही संगीत की शिक्षा ली थी।

उस्ताद मुश्ताक हुसैन

मुश्ताक हुसैन शास्त्रीय संगीत के विद्वान् थे जिनके सहायक के रूप में नौशाद ने काम किया था। 'औरत का प्यार' (1933), 'स्टेप मदर उर्फ सौतेली माँ' (1935), 'बला की रात' (1936), 'बागवान' (1938) आदि उनकी प्रसिद्ध फिल्में थीं। 'औरत का प्यार' फिल्म में उन्होंने कई गीत मुख्तार बेगम से गवाए थे जो अर्द्धशास्त्रीय शैली के थे। ठुमरी शैली के गीत उनकी प्रमुखता थी। 'बागवान' का गीत 'रो-रो नैन गवाऊँ आन मिलो सजना' मुर्की-भरी ठुमरी शैली का गीत था। महफिली रंग था उनके संगीत में।

फिरोज दस्तूर

फिरोज दस्तूर प्रसिद्ध शास्त्रीय गायक थे। उन्होंने कई फिल्मों में गायन किया था तो कई फिल्मों में संगीत भी दिया, यथा-'लाले यमन', 'काला गुलाब', 'वामन अवतार' आदि में गायन और 'सुनहरा बाल', 'गुलबकावली' के कई गीतों को संगीतबद्ध किया।

पं0 बापू केतकर

शास्त्रीय संगीत के विद्वान् बापू केतकर ने भी फिल्मों में संगीत दिया परन्तु मूलतः वे शास्त्रीय संगीत से ही जुड़े रहे। वे पं0 भास्कर बुआ बाखले के शिष्य थे और उन्होंने भास्कर बुआ की ही परम्परा को आगे बढ़ाया। 'श्याम सुंदर' (1932), 'सती सुलोचना' (1935) में केतकर जी ने संगीत दिया था।

पं0 अन्ना साहब माइनकर

1904 में जन्मे श्री माइनकर ने अल्लादिया खाँ तथा अब्दुल करीम खान से संगीत की शिक्षा ली थी। लखनऊ के जमालुद्दीन बख्श से भी उत्तर भारतीय संगीत की बारीकियों को सीखा। वे दक्षिण शैली (कर्नाटक) और मराठी संगीत के भी ज्ञाता थे। फिल्मों में आने से पूर्व एच0 एम0 वी0 से उनके रिकार्ड निकल चुके थे। उन्होंने अनगिनत फिल्मों में संगीत दिया। 'आवारा शहजादा' (1933), 'भक्त प्रह्लाद' (1934), 'भेदी राज कुमार' (1934) उनकी आरंभिक फिल्में थीं। 'आवारा शहजादा' में उन्होंने अहमद जान थिरकवा की तबले की संगत में गजलों की रचना की थी। कम उम्र में ही अस्वस्थता के कारण इनका निधन हो गया था।

दादा चाँदेकर

इनका पूरा नाम शंकर विष्णु चांदेकर था। उन्होंने नीलकंठ बुआ जंगम से संगीत सीखा था। आरम्भ में वे नाटक कम्पनियों में हारमोनियम वादक का काम करते थे। मराठी फिल्मों में वे सक्रिय रहे। बाद में हिन्दी फिल्मों में वे मास्टर विनायक की फिल्मों के स्थायी संगीतकार रहे। 'कालिया मर्दन' (1935), 'बह्मचारी' (1938), 'ज्वाला' (1938-इसके गीतों को धम्मन खाँ ने कम्पोज किया पर पार्श्व संगीत चाँदेकर का था), 'अमृत' (1941), 'संगम' (1941) आदि उनकी प्रसिद्ध फिल्में थी। उन्होंने मराठी और गैर-फिल्मी गीतों की भी संगीत-रचना की थी। उनके ही संगीत में रचा 'रूसला कान्हा' की धुन पर वर्षों बाद फिल्म 'देवर' का 'रूठे सैंया हमारे सैंया क्यूँ रूठें' की रचना हुई थी। लता मंगेशकर की 13 वर्ष की आयु में अभिनीत फिल्म 'मंगलागौर' (मराठी) और इसी फिल्म में लता जी के फिल्मों में गाए एक आरंभिक गीत 'नब्ली चैत्राची नवलायी' के संगीतकार दादा चांदेकर ही थे। वे आकाशवाणी, पूना में संगीत संचालक भी थे।

उस्ताद भुर्जी खाँ

भुर्जी खाँ शास्त्रीय संगीत के उस्ताद थे। प्रसिद्ध तत्कालीन गायिका नायिका मीनाक्षी शिरोडकर ने भुर्जी खाँ से ही संगीत की शिक्षा ली थी। प्रसिद्ध ठुमरी गायिका शोभा गुर्टु की माता और गायिका मेनका बाई भी उन्हीं की शिष्या थीं। भुर्जी खाँ ने 'कुरूक्षेत्र' (1933) और 'जादूगरिन' (अन्नदर्शित) में संगीत दिया था।

अब्दुल करीम खान

प्रसिद्ध शास्त्रीय गायक उस्ताद अब्दुल करीम खान ने भी फिल्मों में संगीत दिया। उन्होंने 'मौत का तूफान' (1935), 'वो कौन'(1935) आदि फिल्मों में संगीत दिया।

1939 में बनी 'साधु या शैतान' नामक फिल्म में भी सम्भवतया उस्ताद अब्दुल करीम खान ने ही अब्दुल करीम मास्टर के नाम से संगीत दिया था।

विदुषी गौहर कर्नाटकी

गौहर कर्नाटकी प्रसिद्ध गायिका थीं। वे प्रसिद्ध गायिका अमीर बाई कर्नाटकी की बहन थीं। उन्होंने कई फिल्मों में अभिनय भी किया। 1937 में 'चाबुक सवार' फिल्म में संगीत दिया।

विदुषी बेगम अख्तर

सुविख्यात गजल गायिका ने भी फिल्मों में योगदान दिया है। 'जवानी का नशा' (1935) नामक फिल्म में प्रो0 रमजान खाँ जो स्वयं एक उच्च कोटि के संगीतज्ञ थे के द्वारा संगीत निर्देशित फिल्म में बेगम अख्तर ने नायिका का रोल किया था और 'कोयलिया मत कर पुकार' शीर्षक प्रसिद्ध ठुमरी शैली की रचना को गाया था।

चंडी राम

चंडीराम प्रसिद्ध संगीतकार बुलो सी. रानी के पिता था। 'इंसान और शैतान' (1933), 'प्रेम परीक्षा (1935),' 'यास्मीन' (1935) में चंडीराम का संगीत था। उन्होंने 'प्रेम परीक्षा' में जद्दन बाई और मेहताब तो 'यास्मीन' में अमीरबाई कर्नाटकी और रत्नबाई से अनेक गीत गवाए थे।

पं0 भीष्मदेव चटर्जी

भीष्मदेव चटर्जी शास्त्रीय संगीत के बहुत अच्छे ज्ञाता थे। वे शिक्षित थे और मूलतः अंग्रेजी के शिक्षक थे। उन्होंने भी फिल्मों में संगीत दिया परन्तु सरल स्वभाव के श्री चटर्जी का मन फिल्मों से भर गया और फिर वे शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में ही रम गए। ध्रुपद गायन में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान था। 1977 में उनका देहान्त हुआ। चौथे दशक के अन्त में आए चटर्जी मेगाफोन रिकार्ड कम्पनी में कम्पोजर के रूप में काम करते थे। 1939 में केदार शर्मा निर्देशित फिल्म 'औलाद' उर्फ 'दिल ही तो है' में संगीत देकर रमोला देवी और रामदुलारी नामक गायिकाओं से गवाया। 'द राइज' (1939) में गायिका छाया देवी से गवाया। 'हिन्दुस्तान हमारा' (1940) और 'कैदी' (1940) में भी उन्होंने ही संगीत दिया था।

पं0 दिलीपचन्द्र बेदी

प्रसिद्ध शास्त्रीय संगीतज्ञ पं0 दिलीप चन्द्र बेदी ने भी फिल्मों में संगीत निर्देशन का कार्य किया। 1934 में 'नूर महल', 'शाही लकड़हारा', 'वीर पूजन' में उन्होंने संगीत दिया। वे भास्कर बुवा (बुआ) के शिष्य थे और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के कार्यक्रमों में उनका गायन होता था। पं0 नारायण राव व्यास के साथ पं0 दिलीप चन्द्र बेदी के गायन के कार्यक्रम भी होते थे। हुस्नलाल (संगीतकार) सहित अनेक संगीतकारों ने उनसे संगीत सीखा।

पं0 ए0 एस0 ज्ञानी

ए0 एस0 ज्ञानी एक शास्त्रीय संगीतज्ञ थे। उन्होंने 'विजय मार्ग' (1938) में हूगन और अमान अली खाँ के साथ, 'दिलावर' (1936) में बी. देवासकर के साथ, तो चित्रलेखा' में झंडे खाँ के साथ संगीत दिया था।

उस्ताद धम्मन खाँ

धम्मन खाँ शास्त्रीय संगीत के बहुत बड़े उस्ताद थे और मेनका बाई (शोभा गुर्टु की माँ) उनकी शिष्या थीं। फिल्म 'छाया' (1936) में उन्होंने शास्त्रीय संगीत आधारित अनुपम संगीत दिया था। शास्त्रीय तानों और लोक का भी सुन्दर प्रयोग था। 'रखिया बँधाओ भैया', 'गूँजत क्यूँ भँवरा' गीत को

रत्नप्रभा ने गाया था तो इंदिरा वाडकर ने गीत 'अंधियारी रजनी है' और 'मतवाली मोहिनी' गाए थे। 'ज्वाला' (1938) में भी उनका ही संगीत था।

पं0 विश्वनाथ बुआ जाधव

अभिनेत्री लीला मिश्र की पहली फिल्म 'गंगावतरण' (1937) में तथा 'ध्रुव कुमार' (1938) में विश्वनाथ बुआ जाधव ही संगीतकार थे।

पं0 सुरेश बाबू माणे

पं0 सुरेश बाबू माणे शास्त्रीय संगीत के विद्वान थे। शांता हुवलीकर जैसी गयिका ने उनसे ही संगीत सीखा था। 'संत तुलसीदास'(1934)में रघुवीर रामनाथकर के साथ सुरेश बाबू ने संगीत दिया और प्रो0 जी0 एन0जोशी ने कई गीत गाए। 1939 में बनी फिल्म 'सच है' में प्रो0 सुरेश बाबू माणे ने संगीत तो दिया ही था, इसके कई गीत भी उन्होंने स्वयं गाया था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिस फिल्म और फिल्म संगीत को सामान्यतया शास्त्रीय संगीतज्ञों द्वारा कम आँका जाता है, उसकी नींव को कई महान शास्त्रीय संगीतज्ञों द्वारा सींचा गया है। इतना ही नहीं, वैसे दिग्गज कलाकारों ने गायन किया है जिन्होंने शास्त्रीय संगीत को भी उस काल में सींचा है जब उसकी जड़ों को कमजोर बनाने के दुःस्सह कार्य किए जा रहे थे। और भी, कि आरंभ से ही हमारे पुरुष-प्रधान समाज में अपनी स्वच्छन्दता के लिए अकुलाई महान् विदुषी गायिकओं-नायिकाओं ने भी फिल्म संगीत में अपनी कला को पिरोया है जिसे हम 'कोठे की शैली' का संगीत कह सकते हैं। कुछ कलाकार थिएटर (पारसी) की पृष्ठ-शैली से भी आए थे जिनका गायन 'लाउड' जरूर था। यद्यपि आरंभ में राग-रागिनियों का विशुद्ध रूप मिलता है। ऐसा होने के कारण ही तब 'मेलॉडी' का कम स्वरूप दिखता है, ताल के ठेके भी सामान्य थे, आकेस्ट्राइजेशन की विशालता नहीं थी। शास्त्रीय गायन की प्रसिद्ध बन्दिशों का भी कुशल प्रयोग हुआ। 'इम्पीरियल फिल्म्स' के संगीत निर्देशक प्राणसुख नायक ने फिल्म 'माधुरी' (1932) में प्रसिद्ध शास्त्रीय गायक पं0 पटवर्द्धन से ही कई गीत गवाए थे। इस फिल्म के एक गीत 'सरिता सुगंध शोभे वसन्त' का ही पहला रिकार्ड (फिल्म संगीत का) जारी हुआ था। 'जवानी का नशा' (1935) में बेगम अख्तर 'नायिका' थीं।

यहाँ ठेठ शास्त्रीय रंग लिए कोठे की शैली भी दृष्टिगोचर होती है। प्रथम बोलती फिल्म 'आलम आरा' में मुन्नी बाई का गाया गीत 'अपने मौला की मैं जोगन बनूँगी' था। 'तलाश-ए-हक' (1935) में जद्दन बाई पर फिल्माया गया 'दिल में जब से किसी का ठिकाना हुआ' उसी शैली का गीत था।

स्पष्ट है कि कई दिग्गज कलाकार संगीतज्ञों ने हिन्दी फिल्म संगीत के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अप्रतिम संगीत दिया है, अपनी कला को दूसरा मुकाम दिया है। यह भी कह सकते हैं कि बोलती फिल्मों की चकाचौंध (Glamour) ने इन्हें आकर्षित किया। यद्यपि यह समय बहुत दिनों तक नहीं चल सका। कुछ ही फिल्मों के बाद इन्होंने स्वयं को समेट लिया अथवा समेटने को विवश होना पड़ा। धीरे-धीरे फिल्मों से पूर्णतः शास्त्रीयता का रंग उतर कर पूर्णतः मेलॉडी-प्रधान हो गया जहाँ विशुद्ध शास्त्रीय संगीत अथवा शास्त्रीयता गौण हो गई और रागों में मिश्रण अथवा नियमों को गौण कर मधुरता को ही प्रश्रय दिया गया जिससे फिल्म संगीत की मेलॉडी का नया रूप सामने आया।

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. 'काव्या', लावण्य कीर्ति सिंह, लक्ष्मीकांत प्यारेलाल, कनिष्क पब्लिशर्स, दिल्ली
2. संगीत कला बिहार, मई, 1997
3. राग, पंकज, धुनों की यात्रा, राजकमल प्रकाशक, दिल्ली

तराना - सदाबहार गायन शैली

प्रो. डॉ.साधना व.मोहोड

सहयोगी प्राध्यापक (संगीत विभाग)
श्रीमती वत्सलाबाई नाईक म.महा
पुसद जि.यवतमाळ (महाराष्ट्र)

सारांश

'गीतं, वाद्यं एवं नृत्यं त्रयं संगीत मूच्यते'- पं. शारंगदेव ने 'संगीत रत्नाकर ग्रंथ में संगीत की परिभाषा बताई है। स्वर, लय और शब्द इन शब्दों का समुचित मेल संगीत में दिखाई देता है। संगीत हमे अमूर्त से मूर्त की ओर ले जाता है। वास्तव मे संगीत को रंग, रूप या कोई आकार नही होता केवल स्वरों की किमया और उससे निकलने वाली ध्वनि के कारण संगीत कला सर्वश्रेष्ठ बनती है। इसीलिए प्राचीन काल में ऋषी मुनियों ने संगीत को मोक्ष के साधन के रूपमे प्रयोग किया।

जिस प्रकार साहित्य में शब्दों का महत्व होता है, उसी प्रकार शास्त्रीय संगीत मे रागों के व्दारा मन की भावनाओं को दर्शाते है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत की दो पध्दति हिंदुस्थान में प्रचलित है।

1) उत्तर हिंदुस्तानी संगीत पध्दति

2) दक्षिण हिंदुस्तानी संगीत पध्दति

उत्तर हिंदुस्थानी संगीत पध्दती में ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, टप्पा, चतुरंग, तराणा, त्रिवट जैसे गीतप्रकार गाये जाते है। एवं दक्षिण हिंदुस्थानी संगीत मे लक्षणगीत, रागम, कृती, पल्लवी, जावळी तिल्लाना ये गीत गाये जाते है।

इस संशोधन के लिए 'तराणा' ये गीत प्रकार लिया है। 'तराणा' इस शब्द को फारसी में 'तरन्नुम ' कहते है। जिसका मतलब गीत ऐसा होता है। तराणा इस गीत में नोम - तोम,तनन,देरेना,तदरेदानी जैसे शब्द दिखाई देते है। इन शब्दो को आजतक अर्थहीन शब्द कहा गया किन्तु तराना एक ऐसा गीत है जो उच्च कोटी का आनंद देता है,तो यह गीत अर्थहीन कैसे हो सकता है?

मुख्य शब्द

संगीत, तराना, तरन्नुम, नोम-तोम, घराना

भारतीय शास्त्रीय संगीत मे एक अनोखा गीत ऐसी 'तराना' गीत की पहचान है। इस गीत में तोम, तनन, तदरेदानी, नादीरदानी ऐसे शब्द होते है। इन्ही शब्दों के कारण 'तराना' गीत लोकप्रिय हुआ है। तराना गीत में प्रयोग किए जाने वाले ये शब्द कोमल है। तराना गीत गाते समय गायक जब द्रुतलय में दीर दीर अथवा तननन ऐसा शब्द प्रयोग करते है तब सितार के झाला का भ्रम निर्माण होता है।

तराना गीत की उत्पत्ती कब हुई इसको लेकर तरह-तरह के कयास लगाए जाते रहे है। 13 वी सदी में अमीर खुसरो हिंदुस्थान आये थे। कई विद्वान ने 'तराना' गीत का निर्माण उ.अमीर खुसरो साहाब ने किसा ऐसे मानते है। लेकीन तराना गीत जैसे शब्दों का चलन वैदिक युग से ही चला आ रहा है। सामगायन में संमिलित ऋचागायन मे 'स्तोभाक्षरो' का प्रयोग होता था जिनमें हा,हो,है इस तरह के शब्दो का प्रयोग होता था। चैथी शताब्दींमे महर्षी भरत ने 'नाटयशास्त्र' ग्रंथ लिखा। इसी ग्रंथमें ध्रुवागीत गाते समय नोम्-तोम् जैसे 'स्तोभाक्षर' या शुष्काक्षरों का प्रयोग दिखाई देता है। पं शारंगदेव इन्होने अपने 'संगीत रत्नाकर' ग्रंथ में स्वर, बिरूद, पद, तेन, पाट,ताल ऐसे प्रबंध के छह अंग बताए है। इनमें से स्वर, तेन एवं पाट इन अंगो का तराना गीत में प्रचलन होता है।

कई विद्वानों ने तराना गीत की परिभाषाएं की है।

पं.विष्णु नारायण भातखंडेः-

हिंदुस्थानी गायक अधिकतर इस नाम का गीत गाते है। जो गायक ख्याल गाते हैं, वे ही प्रायः ये गीत गाते है। ये भिन्न भिन्न तालों मे होता है। उनमे शब्दों का विशेष महत्व नहीं होता। उनके शब्द ना,ता,रे,दानी, ओदानी,तानोम,यलली,यलूम,तदरेदानी इस प्रकार के होते है। तराने में राग व लयकारी का आनन्द आता है। कभी कभी तरानों मे मृदंग के शब्द अथवा फारसी भाषा के एक-दो शेरों (एक प्रकार की कविता) का योग दिखाई देता है। तराना गायन देश-भर में आनन्ददायक माना जाता है। बहादुर हुसेन खॉं, तानरस खॉं व नत्थू खॉं के अनेक तराने प्रसिध्द हैं।

भारतीय संस्कृती कोषः-

हिंदुस्थानी संगीत का एक गीत जिसें 'तिल्लाना' ऐसा भी नाम है। तराने में स्थायी एवं अंतरा ये दो विभाग होते है। तराना याने विभीन्न राग और ताल में गायकी कसरत करने के लिए निबध्द किया हुआ, ताल एवं वाक्य के बोलों का रचनात्मक प्रबन्ध है।(2)

Encyclopedia of Music

Tarana is peculiar style of singing. It is belived that when Amir Khusro first come to India as an unknown man, he found it very difficult to pronounce the high flown Sanskrit words to be found in texts at songs & called it 'Tarana' But actually these meaningless syllables are so called 'Bols of Percussion' instruments like Tabla & Pakhawaj & Musical in the Prabandhas From a previous age.(3)

छतीसगड के लोकगीत 'दण्डागीत' एवं 'सुवागीत' में गीत गाने से पहले 'तानारी,नानारी,ऊऊ किंवा हुँहुँ ऐसे शब्दोका चलन होता है जो तराना गीत के बोलों से साधर्म्य रखती है।(4)

उ. अमीर खॉंः-

इन्दोर घराने के संस्थापक तथा प्रतिथयश गायक उ. अमीर खॉं साहाब इन्होने तराना गीत पर काफी संशोधन किया है। उ. अमीर खॉं इन्होने तराना गीत की उत्पत्ती उ. अमीर खुसरो इन्होने की है ऐसा कहा है। उ. अमीर खॉं साहाब के अनुसार 'तराना' गीत ये सुफी संत इबादत के समय करते है। अमीर खॉं साहाब ने तराना गीत के कुछ फारसी बोलो का अर्थ बताया है।

दर-अन्दर (Inside)

दरा- अन्दर आ आ (Come Inside)

दरतन-तन के अन्दर
तोम्-मै तुम हूँ
नादिरदानी-तू सबसे अधिक जानता है।
तनदर दानी-तन के अन्दर का जाननेवाला।

आचार्य पं. गोकुलोत्सवजी महाराजः-

पं. गोकुलोत्सवजी महाराज इन्होने भी तराना गीत का काफी संशोधन किया है। आपके अनुसार तराना गीत निरर्थक न होके सार्थक है। उसमें वेदों के बिजाक्षरोंका प्रयोग दिखाई देता है। पं. गोकुलोत्सवजी महाराज के अनुसार 'तराना केवल तरन्नुम नही। तरन्नुम का अर्थ तो है केवल गुनगुनाना और तराने का मतलब है पुरा गाना, जिसमें ऐसे संकेतात्मक अर्थ छुपे हुए है, ऐसे संकते छुपे हुए है की, यदि वेदशास्त्र और भारतीय संस्कृती की धरोहर से खोजे तो पता लगता है कि यह गायकी अपने आप में बहूत महत्व रखती है और बहुत सी विशेषताएँ लिए हुए है।(5) आपके अनुसार भारतीय संगीत ये अमीर खुसरो के काल से पूर्व का और वैदिक साहित्य में तराने के संकेत मिलते है।

पं. गोकुलोत्सवजी महाराज ने तराने के शब्दों का निम्नालिखीत अर्थ बताया है।

तदानी - उस समय
तदानी - तब
तोदानी- हे परमात्या तू दोनी है।
लोम् - बुध्दीकी जडता दूर करनेवाला
तन - शरीर
दर - गुहा
दरतन - जिसमें परमात्माका वास है
दीर दीर तदेरे - स्वरों के साथ मैत्रीपूरक क्रीडा करनेवाला
दानी दानी - तू दाता कृपालू है
दीम् - दान देने योग्य

तुलसीराम देवांगन इन्होने तराणा गायकी को 'झाला का आभास कराने वाली' गायकी ऐसा वर्णन किया है।(6) पं. गुलाम रसूल इन्होने तराना गायकी को सदाबहार गायकी कहा है।(7) बाबुलाल शुक्ल शास्त्री इन्होने 'हिन्दी नाटयशास्त्रम' इस ग्रंथ में बहिर्गीत (निर्गीत) प्रबंध के कुछ दाखीले दिये है जिनमे सार्थक शब्दोंका प्रयोग नही दिखता ! उदाहरण स्वरूप

'आश्रावणा निर्गीतः-

कृं दुं जगति यवलितक जम्बुक ऋं रं
तितिसल कुच सलवा।
द्रिं द्रिं गणपती पशुपति कंचुक दिद्दे
परभुज दिगी निशी वा।।
दिगी गिनी च पशुपति निती च।।(8)

ऐसे उन्होने 'वक्रपाणी', 'संघोटना','मार्गसरिते' इन निर्गीत प्रबंध के उदाहरण दिये है जिसमे सार्थक शब्द नही होते।

इससे ये स्पष्ट होता है की वैदिक और नाटयशास्त्र काल में अर्थविहीन शब्दों जैसे शब्दों का प्रयोग वैदिक काल से चलन में है, ना की अमीर खुसरो के समय से। ये जरूर कह सकते है की तराने को लोकप्रिय एवं प्रचलित करने का श्रेय खुसरो को जाता है।

तराना गीत के प्रकारः-

शास्त्रीय संगीत मे गाये जाने वाले जो गीत है उन्ही में से तराना ये गीत है। बाकी गीत की तरह ये गीत भी शास्त्रशुध्द और नियम से गाया जाने वाला गीत है। तराना ये गीत हर एक राग मे गाया जाता है। आजकल कुछ घराणें के गायक छोटे ख्याल के जगह तराना गाना पसंद करते है।

1) ख्यालनुमा तराना
2) रूबाईदार तराना
3) मध्यलय में तराना
4) रास तराना एवं टप्प तराना
5) पेशावर तराना

1) ख्यालनुमा तरानाः-

विलम्बीत लयकारी में गाये जाने वाले तराना को 'ख्यालनुमा तराना' कहते है। विलम्बीत एकताल, विलम्बीत त्रिताल,झुमरा आडाचैताल, तिलवाडा इ. ताल मे तराना गीत गाए जाते है। कुछ विलम्बीत तरानें मे तबले के बोल होते है तो कुछ गीतों मे उर्दू या फारसी बोल होते है विलम्बीत ख्याल के तरह

ख्यालनुमा तराना गाया जाता है। पं.भातखंडे जी के हिंदुस्थानी क्रमीक पुस्तक मालिका भाग 2,3,4 में कुल 22 ख्यालनुमा तराने दिए है।

2) रूबाईदार तरानाः-

छोटे ख्याल के समान मध्यलय मे गाए जाने वाला ये गीत है। रूबाई इसका अर्थ है एकही यमक में आनेवाली दो लाईन। रूबाई ये फारसी शब्द है। रूबाईदार तरानें के स्थायी में तराने के बोल होती है और अंतरें मे फारसी भाषा में दो लाईन होती है। इसमे आलापी और तनाईत भी की जाती है।

3) मध्यलय में तरानाः-

तराना गीत का ये प्रकार आज ज्यादा चलन में है। मध्यलय के कुछ तराना गीत में तबले के बोल, सरगम, तान, आदी का प्रयोग किया हुआ दिखाई देता है। त्रिताल,एकताल के सिवा कुछ तराने झपताल में भी निबध्द किए हुए मिलते है। पं. विष्णु नारायण भातखंडे जी रचित हिंदुस्थानी क्रमीक पुस्तक मालिका भाग 2,3,4 मे कुछ 90 तराने लिखीत स्वरूप में मिलते है।

4) रास तराना एवं टप्प तरानाः-

ग्वाल्हेर घराणे के विद्वान गायक पं.कृष्णराव पंडीत जी और पं.शंकर पंडीत जी ये रास तराना एवं टप्प तराना गाते थे। रास तराना में नृत्य मे उपयोगी बोल होते है और टप्प तराना ये टप्पा गीत रौली के अंग से गाया जाता था।

5) पेशावर तरानाः-

आचार्य डॉ.पं.गोकुलोत्सवजी महाराज आपसे किए हुए साक्षात्कार के दौरान उन्होने पेशावर तराने के बारे में ये कहाँ की पेशावर तराना ये पेचीदा ढंग का होता। शौदी-ब्याह के समय इसे गाया जाता था। कुछ लोग इसे टकसाली तराना भी कहते थे। आज इस तराने का चलन नही है

तात्पर्य है की तराने के उपरोक्त प्रकार होने के बावजुद मध्यलय में गाये जाने वाले तराने के का ही ज्यादातर चलन है।

तराना गीत गाने वाले गायक एवं घराना

संगीत मे 'घराना' शब्द का बहुत महत्व है। भारतीय शास्त्रीय संगीत मे 1) ग्वालियर 2) आगरा 3) जयपुर 4) किराना 5) दिल्ली 6) पटियाला ये घरानों का चलन है। इनसे कुछ घराने में एवं उस घराना के गायकों द्वारा तराना गीत का प्रचार दिखाई देता है।

1) ग्वालियर घरानाः-

सब घरानों की नीव याने ग्वाल्हेर घराना ऐसे माना जाता है इस घराने मे बडे ख्याल की जगह ख्यालनुमा तराना और छोटे ख्याल के जगह तराना गाने का तरीका कुछ विद्वान गायकों ने अपनाया था, जिनमे रहिमत खॉ, इनायत हुसेन खॉ, निसार हुसेन खॉ पं.शंकर पंडीत,पं कृष्णराव पंडीत, विनायक बुआ पटवर्धन, सौ.वीणा सहस्त्रबुध्दे,पं.कुमार गंधर्व,राजाभैय्या पुछवाले, बाळासाहेब पुछवाले इनके नाम प्रमुखतासे आते है। रहमत खॉ साहब अपने तराने में 'दिल दिल' ऐसा शब्द प्रयोग करते थे उस जगह पं विनायकबुआ पटवर्धन इन्होने 'दिर दिर' शब्द प्रयोग द्रुत से अणुद्रुत लय में किया है। उ.नत्थन पीर बक्श एवं उ निसार हुसेन खॉ,साहाब ने कई तरानो की रचनाये की है।

2) अगरा घरानाः-

आग्रा घराना की गायकी में नोम तोम द्वारा आलापी की जाती है, जिनमे रिदनन, तननन, तनन, तोम् ऐसे शब्द प्रयोग किए जाते है। आग्रा घराने के गायकों में उ.फैय्याज खॉ, शराफत हुसेन खॉ, पं.बबनराव हळदनकर, और बहादूर हुसेन खॉ ये विद्वान गायक अक्सर तराना गाते थे

3) जयपुर घरानाः-

स्वर एवं लय का संतुलन साधनेवाली गायकी

ऐसी जयपूर घराणें की खासीयत है। जयपूर घराने में पं.भास्करबुआ बखले,मोघुबाई कुर्डीकर, पं.मल्लीकार्जून मन्सूर, पं.किशोरी आमोणकर, डॉ वीणा सहस्त्रबुध्दे ये विद्वाण गायक तराना गाते थे एवं पं.उल्हास कशाळकर और पद्मा तळवकर आज भी तराना गाते है।

4) किराना घरानाः-

बिनकार बंदे अली खॉं साहाब व्दारा निर्मित इस घरानें मे बीन अंग की गायकी प्रचलीत थी। इस घराने मे उ. अब्दुल करीम खॉं साहाब, पं सवाई गंधर्व, पं. भिमसेन जोशी, डॉ. प्रभा अत्रे आदी विद्वान गायक तराना गाते थे और गाते है।

5) इन्दौर घरानाः-

इन्दोर घरानें की निर्मिती उ.अमीरखॉं साहाब इन्होने की है। इस घराने मे छोटे ख्याल की जगह रूबाईदार तराना गाने की परंपरा थी इंदोर घराणेमे उ.अमीरखॉं साहाब, आचार्य डॉ.गोकुलोत्सवजी महाराज अधिकारवाणी से तराना गाते थे एवं गाते है।

6) रामपुर - सहसवान घरानाः-

इस घराने के मुख्य प्रवर्तक के रूप में उ. इनायत हुसेन खॉं इनका नाम आता है। उ. बहादूर हुसेन खॉं ये ख्याल गायक को तराना सिखाते थे एवं सितार एवं सरोद वादकों को तराणा गीत पर रचना सिखाते थे। उ. निसार हुसेन खॉं साहाब तराना गायकी में माहीर थे। इस घराणे के उ.राशीद खॉं साहाब भी तराना गायकी में माहीर है किन्तू वे अपने गूरू की तरह वादय पर दबाव डालते हुऐ न गाके ख्याल अंग से तराना पेश करते है।

उपरोक्त सभी घराने में से रामपूर-सेहस्वान घराना तराना गायकी को प्राधान्य देने वाला घराना है। ग्वाल्हेर एवं इन्दोर घरानें में भी तराना गायकी का प्रचलन हुआ है।

निष्कर्षः-

तराना इस गीत में तोम्, ततन, नादीरदानी, तुंदीरदानी ऐसे शब्दों का प्रचलन है। इन शब्दो को किसी ने अर्थहीन कहाँ तो किसी ने सार्थक। तराने के उत्पत्ति के विषय में अनेक बाते सामने आती है। कई विद्वानो नें उ.अमीर खुसरो व्दारा तराने की उत्पत्ती बताई और किसी ने प्राचीन, वैदिक युग से ही तराने के शब्दों जैसा चलन अस्तीत्व में था ये सिध्द किया। तरानें के ख्यालनुमा तराना, रूबाईदार तराना, मध्यलय का तराना, रास एवं टप्प तराना, पेशावर तराना ये विभीन्न प्रकार है लेकिन ज्यादातर चलन मध्य और द्रुत लय मे गाये जाने वाले तराने का है। ग्वालियर, इन्दौर, रामपुर सहसवान, आगरा घरानो ने एवं घराने के गायको ने तराना गायकी का प्रचार और प्रसार किया है। अती जलद लय मे जब तराने के शब्दो को गाया जाता है तो मन आनंद विभोर हो जाता है। इसलिए तराना गायकी को सदाबहार गायकी ऐसे कहते है।

संदर्भः-

1) भातखंडे पं.व्ही.एन.हिंदुस्थानी संगीत पदधतीः क्रमीक पुस्तक मालिका भाग 4, पृष्ठ 21
2) भारतीय संस्कृती कोष खंड-4 पृष्ठ 62
3) Encyclopedia of Music,Cross calture Perception of Indian Music.vol.5,page No. 85
4) देवांगन,तुलसीदासःतराना -विश्लेषणात्मक दृष्टी, संगीत तराना अंक जाने.1968,पृष्ठ 12
5) माथुर,डॉ नीताः तराना - एक विश्लेषणः शास्त्रीय संगीत के बहुआयामी स्तंभ आचार्य (डॉ.) पं.गोकुलोत्सव जी महाराज पृष्ठ 108
6) देवांगन,तुलसीदासः तराना विश्लेषनात्मक दृष्टी, संगीत तराना अंक जाने 1968,पृष्ठ 9
7) रसूल,गुलाम सदाबहार गायन शैली 'तराना' अंक जाने 1968 पृष्ठ 25
8) शास्त्री,बाबुलाल शुक्लः नाटयशास्त्रम् एकोणत्रिशोध्याय,पृष्ठ 96
9) पंडीत तुषारः भारतीय संगीत के महान संगीतकार पं शंकर पंडीत पृष्ठ 9, पृष्ठ 47

संदर्भ ग्रंथ सूचीः-

1) अत्रे प्रभाः स्वरागिनी,जास्वंदी पब्लीकेशन,इंदोर प्रथम संस्करन-1994
2) आमोणकर किशोरीः स्वरार्थ रमणी-राग-रस सिध्दांत,राजहंस प्रकाशन पुणे तिसरी आवृत्ती 2011
3) बृहस्पती आचार्यः मुसलमान और भारतीय संगीत, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली,तृतीय संस्करण 1989
4) भटट बलवंतरायः भाव रंग लहरी भाग-3,आचार्य मुद्रणालय, वाराणसी प्रथम संस्करण 1982
5) भातखंडे वि.ना हिंदुस्थानी संगीत पध्दती,क्रमीक पुस्तक मालिका भाग-4 संगीत सदन प्रकाशन इलाहाबाद पंचम संस्करण 2006
6) चैधरी सुभद्राः संगीत रत्नाकर (हिन्दी अनुवाद), राधा पब्लीकेशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1999
7) देसाई चैतन्यः संगीत विषयक संस्कृत ग्रंथ,सुविचार प्रकाशन मंडळ, पुणे प्रथम आवृत्ती 1979
8) मंगरूळकर नारायणः संगीतातील घराणी आणि चरित्रे,स्वरसंपदा प्रकाशन नागपूर प्रथम आवृत्ती 1992
9) माथुर निताः शास्त्रीय संगीत के बहुआयामी स्तंभ-संगीत विश्वमार्तंड आचार्य (डॉ) गोकुलोत्सवजी माहाराज जीवन, कृतीत्व एवं संगीत रचनाएँ, कनिष्का पब्लिशर्स,डिस्ट्रीब्युटर्स,नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2006
10) पंडित तुषारः भारतीय संगीत के महान संगीतकार पं शंकर पंडित, कनिष्का पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्युटर्स,नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2002
11) सिंह तेजपाल (सिंह बंधु), अरोडा प्रेरणाः संगीत के दैदिप्यमान सूर्य उस्ताद अमीर खाँ जीवन एवं रचनाएँ, कनिष्का पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्युटर्स नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2005
12) शास्त्री बाबुलाल शुक्लः हिन्दी नाटयशास्त्र, चैखम्मा संस्कृत संस्थान, वारानसी व्दितीय संस्करण 2005
13) हाथरसी काकाः संगीत मासिक तराणा अंक 1968,संगीत कार्यालय, हाथरस (उ.प्र)

ग्वालियर घराने की गायन शैलीः एक विवेचनात्मक अध्ययन

मेघना कुमार

सहायक आचार्या, गायन विभाग,
संगीत एवं मंच कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

शोध सार

भारतीय शास्त्रीय संगीत में घराना पद्धति को प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है। यह पद्धति भारतीय शास्त्रीय संगीत के संरक्षण तथा सम्वर्धन के लिए अपनी उल्लेखनीय भूमिका में उपस्थित रही। घराना पद्धति ने पारम्परिक बंदिशों का संचयन किया तथा इन बंदिशों एवं गायन शैलियों को अगली पीढ़ी को हस्तानांतरित किया। भारतीय संगीत के गायन के घरानों में ग्वालियर घराने का स्थान उल्लेखनीय है। इस घराने को 'घरानों की गंगोत्री' कहा जाता है। ग्वालियर घराने की मौलिकता तथा शास्त्र सम्मत व्यवहार उसे भारतीय संगीत में उत्कृष्ट स्थान पर प्रतिष्ठित करता हैं।

बीज शब्द

अभिसिंचित, नवसृजित, गायन शैली, परिमार्जित, कल्पनाशीलता;

भारतीय शास्त्रीय संगीत की यात्रा के आरंभ का लिखित प्रमाण वैदिक काल से प्राप्त होता है। इस वृहद् तथा यशस्वी यात्रा में भारतीय संगीत अनेकानेक पड़ाव से होकर निकला। इन विविध पड़ावों में घराना पद्धति का नाम उल्लेखनीय है। भारतीय संगीत की वर्तमान स्थिति को स्थापित करने में घराना पद्धति का विशेष योगदान है। भारतीय शास्त्रीय संगीत की शिक्षण परम्परा में घराना अलग-अलग नाम से विद्यमान रहा है। घराना शब्द का अर्थ घर, कुल, कुटुंब, वर्ग, सम्प्रदाय आदि है।

वर्तमान समय में संगीत तथा घराना एक दुसरे के इतना अधिक निकट आ गये हैं कि जन साधाराण से भी यदि शास्त्रीय संगीत के सन्दर्भ में कुछ चर्चा की जाय तो उसके अंतर्मन में घराना शब्द किसी न किसी समय सहज ही उपस्थित हो जाता है। भारतीय इतिहास के मध्य काल में संगीत की विरासत को सहेज कर आधुनिक काल को सौपने में घराना अपनी सशक्त भूमिका में उपस्थित रहा है। भारतीय संगीत के तीनों अंग गायन, वादन तथा नृत्य में घरानों की संकल्पना रही है। घराना के सन्दर्भ में विद्वानोने चिन्तन किया तथा अपनी लेखनी के माध्यम से समझाने का यत्न किया। कुछ विद्वतजन की घराना सम्बन्धित परिभाषाये अधोलिखित हैं -

श्री कृष्णराव पंडित के अनुसार 'शताब्दियों पुरानी परम्परा उच्च कोटि के गुरु तथा कई पीढ़ियों के गुरु-शिष्य परम्परा से मिल कर घराने का निर्माण होता है।'

श्री शरच्चन्द परांजपे जी के अनुसार 'घराना रीति अथवा शैली का दुसरा नाम है। इसका सम्बन्ध किसी गुरु परम्परा से होता है।'

श्री वामन राव देशपांडे जी के अनुसार 'घराना शब्द का शाब्दिक अर्थ घर है। घर परिवार, वंश, कुटुंब आदि के समान ही गुरु तथा उनके शिष्य परिवार के रूप में तीन-चार पीढ़ियों का शिलशिला बनाये रखने पर घराना का सृजन होता है।'

श्री प्रदीप कुमार दीक्षित जी के अनुसार 'घराना में वंश परम्परा वाला संकेत निहित है।'

अपने समय में प्रचलित व्यवस्था अथवा पूर्व सृजित संगीतिक ज्ञान-विज्ञान को अगली पीढ़ी तक पहुंचाना गुरु शिष्य परम्परा का आधार है। किसी भी विद्या को दीर्घ जीवी बनाने के लिए आवश्यक है कि उसे अगली पीढ़ी के योग्य व्यक्ति को सौप दिया जाय। इसी क्रम में ज्ञान की उन्नति का भी मार्ग प्रशस्त होता है। भारतीय संगीत के तत्कालिक प्रचलित तथा सृजित ज्ञान को अपनी अगली पीढ़ी के अंतर्मन में रोपित करने तथा इस ज्ञान को अभिसिंचित कर के पुष्पित तथा पल्लवित होने का अवसर गुरु द्वारा प्रदान किया जाता है। घराने के सृजन में इस परम्परा तथा उक्त कार्यशैली का आधार रहा है।

भारतीय राजनैतिक इतिहास के मध्य काल के उत्तर भाग में शास्त्रीय संगीत अपने नूतन आयाम को स्पर्श कर रहा था। इस समय राजा-महाराजा तथा सामंत आदि, संगीतज्ञों को अपने दरबार में सम्मानित स्थान दे रहे थे। ऐसे परिवेश में संगीतज्ञ भी सदैव अपने पालक को उसकी रूचि के अनुसार अपने संगीत में कुछ कलात्मक नवीनता का सृजन करते रहते थे। इस प्रकार संगीत का बहुमुखी विकास हुआ। संगीत के गायक वादक कलाकारों ने अपनी सृजनात्मकता से विभिन्न शैलियों का सृजन किया तथा इन्हें दीर्घ जीवी बनाने के लिए अपने शिष्यों को सिखाया। इस प्रकार एक गुरु द्वारा सृजित शैली का अनुसरण लगातार तीन अथवा चार पीढ़ी तक होने पर सम्बन्धित समुदाय को 'घराना' नाम दिया गया। किसी भी घराने से सम्बन्धित होना कलाकारों के लिए अत्यंत सम्मान का विषय होता है। घरानों को सम्मानित स्थान दिलाने के लिए सम्बन्धित घरानों के कलाकारों ने अत्यंत कठिन तपस्या की। घरानों के कठोर नियम तथा गायन की विशेषता ने संगीत जगत में इस संकल्पना को लम्बे समय से सम्मानित स्थान पर प्रतिष्ठित किया है। संगीत के किसी भी घराने ने अपनी लोकप्रियता के लिए कभी भी उच्छृंखल संगीत की इज़ाजत नहीं दी।

गायन के घरानों के सृजन की कहानी नन्थन पीर बख्श के दिल्ली छोड़ कर ग्वालियर पहुँचने से होती है। मध्य काल में शासन का केंद्र होने तथा बादशाहों के संगीत प्रेमी होने के कारण दिल्ली में संगीत साधकों के लिए समुचित वातावरण रहता था। फलतः संगीत साधकों का विशाल समूह दिल्ली में ही निवास करता था। मध्य काल के उत्तर भाग में जब दिल्ली की राजनैतिक सत्ता अपेक्षाकृत कमजोर हुई तथा राजनैतिक अस्थिरता के साथ ही विदेशी आक्रमणों से जूझने लगी तब संगीत साधकों का अपनी संगीत साधना के लिए शांत वातावरण खोजना आवश्यक हो गया। इस समय पटियाला, ग्वालियर, लखनऊ, इंदौर आदि रियासतों के राजाओं ने संगीत साधकों को अपने दरबार में स्थान दिया। दिल्ली से संगीतज्ञों के पलायन के क्रम में नत्थन पीर बख्श का भी अपने परिवार सहित दिल्ली से पलायन हुआ। इन्होने ग्वालियर दरबार में शरण ली।

ग्वालियर संगीत के केंद्र के रूप में प्राचीन काल से ही प्रतिष्ठित था। ग्वालियर के शासक राजा मानसिंह तोमर ने ध्रुपद गायन शैली के प्रचार में मुख्य भूमिका का निर्वहन किया था। इसी ध्रुपद शैली का गायन तानसेन जी द्वारा किया जाता था। इस काल के पश्चात ग्वालियर के संगीत साधकों ने अपनी आधा बिखेरी। सिंधिया राजवंश ने ग्वालियर की संगीत सम्पदा को पुनः संजीवित करने के लिए उचित वातावरण का सृजन किया। महाराजा दौलत राव सिंधिया के इस सार्थक प्रयास का सुखद परिणाम यह हुआ कि देश के विविध क्षेत्र में संगीत साधना कर रहे संगीतज्ञों का रुझान ग्वालियर की ओर होने

लगा। नत्थन पीर बख्श दिल्ली से पलायन करके ग्वालियर में ही रहे। इस समय तक ध्रुपद की गायन शैली का प्रचार कम हो रहा था तथा ध्रुपद का स्थान ख्याल ने ले लिया था। नन्थन पीर बख्श की गायन शैली में ख्याल का ही आधार था। नत्थन पीर बख्श के ख्याल गायन में ध्रुपद शैली जैसा गम्भीरता तथा ठहराव दिखता था। लयकारियों के सौन्दर्य में भी ध्रुपद धमार जैसी सृजनात्मकता दृष्टश्रव्य थी। कहने का तात्पर्य है कि ख्याल गायन में ध्रुपद की प्रतिष्ठा परिलक्षित होती रही। 'नन्थन पीर बख्श ने ख्याल गायन शैली का कलात्मक निर्माण किया, वह से पूरी तरह अनुशासित थी। इसी कारण से नन्थन पीर बख्श की गायन शैली को प्रमाणिक तथा घरानेदार गायकी कहा गया।' नत्थान पीर बख्श को ध्रुपद गायन में भी महारत हासिल थी। ध्रुपद के साथ ही उन्हें टप्पा के गायन में भी प्रवीणता दिखाई थी। इन दोनों ही शैलियों का प्रभाव उनके ख्याल गायन की नवसृजित शैली पर स्पष्ट रूप से दिखता है। नत्थन पीर बख्श ने अपने पुत्र के पुत्र (पौत्र) हस्सू खां तथा हद्दू खां और अपने पुत्री के पुत्र नत्थू खां को अपने द्वारा सृजित शैली के ख्याल गायन की शिक्षा दी। इस शैली में प्रवीण होने के बाद इन तीन कलाकारों ने अपने गायन में बड़े मुहम्मद खां की बलदार एवं पेचीदी तानों को समाहित कर के अपने गायन में अनोखा आकर्षण सृजित किया। यही गायन शैली आगे चल कर ग्वालियर घराने की गायन शैली के नाम से प्रचलित हुई। हस्सू खां, हद्दू खां तथा नत्थू खां के गायन में पुरुषत्व का दर्शन होता था। गायन कला के सिद्धांतों पर आधारित संयम, अनुशासन तथा मर्यादा का सहज दर्शन इन तीन कलाकारों के गायन में होता था।

ग्वालियर के गायन घराने को घरानों का उद्गम स्थल माना जाता है। ग्वालियर की सभी गायन शैलीयों में ख्याल गायन ही प्रमुख है। ग्वालियर घराने के ख्याल गायन में स्वर का लगाव खुला तथा जोरदार होता है। इस घराने में गायन के समय स्वर का दबाना अथवा छुपाना वर्जित है। आवाज़ के जोरदार लगाव के कारण इस घराने की गायन शैली को मर्दाना गायकी कहा जाता है। ग्वालियर घराने में स्वर की साधना पर विशेष ध्यान दिया जाता है। ग्वालियर घराने में आवाज को तीनों सप्तकों में सहज घूम जाने के लिए तैयार किया जाता है। स्वर की साधना के बाद ही तान तथा आलाप की शिक्षा दी जाती है। आलाप के साथ ही बड़े दाने की, छोटे दाने की तथा गमक की तानों का अभ्यास कराया जाता है। ग्वालियर घराने में ख्याल की बंदिश के स्थायी तथा अंतरा को पूरा गाने के बाद राग की बढ़त की जाती है। राग का विस्तार तान तथा आलाप के माध्यम से किया जाता है। ग्वालियर घराने में विलम्बित लय का ख्याल होने के बाद भी अति विलंबित लय में ख्याल का गायन नहीं किया जाता है। ग्वालियर घराने में ख्याल के गायन के क्रम में पहले बड़ा ख्याल तथा बाद में छोटा ख्याल प्रस्तुत किया जाता है। छोटे ख्याल की प्रस्तुती के बाद भजन, अष्टपदी अथवा तराना आदि के प्रस्तुती के बाद गायन की प्रस्तुती को पूर्ण किया जाता है। ग्वालियर घराने की गायन शैली में मौलिकता का बोध होता है। यह गायन शैली सर्वमान्य सिद्धांतों पर आधारित है। ग्वालियर घराने की परम्परागत बंदिशें ध्रुपद अंग की हैं। इस घराने की पारम्परिक बंदिशों को अन्य घराने के कलाकार अपने गायन में सम्मिलित करते हैं। ग्वालियर घराने की पारम्परिक बंदिशों का गढन इस प्रकार है कि स्थायी तथा अंतरे के गायन से ही राग का स्वरूप स्थापित हो जाता है। ग्वालियर घराने में गायन की प्रस्तुती के समय वाणी तथा मुद्रा की शुद्धता इस घराने के गायक कलाकारों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। गायन शैली की कठिनता के बाद भी इस घराने के प्रस्तोता कलाकरों में शरीर के विचलित करने का स्वाभाव नहीं दिखता है। इस घराने में प्रस्तोता कलाकारों के द्वारा घराने की शैली के साथ ही अपनी कल्पना शीलता को विस्तार दिया जाता है। ग्वालियर घराने की गायन शैली शास्त्रोक्त होने के

साथ ही मनोरंजक भी है। अपने इसी गुणों के कारण ग्वालियर घराने की गायन शैली लोकप्रिय हुई। ग्वालियर घराने में गायन की प्रस्तुती के समय मुख्य वाद्य के रूप में तानपुरा तथा तबला होते हैं। संगत के लिए हारमोनियम आदि वाद्यों की अपेक्षा सारंगी अथवा वायलिन को अधिक महत्व दिया जाता है। क्योंकि गायन के अधिकतर अंगों जैसे मीड़, सूत आदि तथा श्रुतियों के अंतर को भी समुचित प्रदर्शन इन वाद्यों से सम्भाव्य है।

निष्कर्षः-

ग्वालियर घराने के सम्बन्ध में कहा जाता है कि यह सभी घरानों का उद्गम स्थल है। इस घराने की मौलिकता इसे घरानों की गंगोत्री के रूप में विभूषित करती है। ग्वालियर घराने की गायन शैली ध्रुपद जैसी उत्कृष्ट गायन शैली का परिमार्जित स्वरूप है। ध्रुपद के सभी अंगों को ख्याल के गायन शैली में स्थान दिया गया है। इसी कारण ग्वालियर घराने की गायन शैली मौलिक तथा सर्वमान्य है। शास्त्रीय सिद्धांतों की कसौटी के साथ ही मनोरंजक होने के कारण यह शैली सदैव ही लोक प्रिय रही। इस लोच पूर्ण शैली में घराने की चीज़ के साथ ही गायक कलाकार के कल्पनाशीलता को स्थान दिया जाता है। ग्वालियर घराने में शास्त्रियता के साथ गायन की प्रस्तुती की जाती है। अपने इन्हीं गुणों से इस घराने की शैली में सदैव नवीनता दिखती है।

सन्दर्भ ग्रन्थः-

1) श्री कृष्ण राव पंडित, ग्वालियर घराना, संगीत पत्रिका जुलाई 1966 पृष्ठ संख्या 25
2) डॉ0 शरच्चंद श्रीधर परांजपे, संगीत में घराना, संगीत पत्रिका जनवरी फरवरी 1982 पृष्ठ 20
3) श्री वामन राव देशपांडे, घरानेदार गायकी, राज कमल प्रकाशन 2020, पृष्ठ 24
4) श्री प्रदीप कुमार दीक्षित, घरानों का भविष्य संगीत पत्रिका जनवरी फरवरी 1982 पृष्ठ 42
5) ज्योंति भरद्वाज, शोध प्रबंध परिवेश में घराना पद्धति की स्थिति और उसमें हो रहे परिर्वनों का अध्ययन विशेष कर ग्वालियर घराना गायन के सन्दर्भ में 2007, दयाल बाग एजुकेशन इंस्टिटयूट, पृष्ठ 17

The Sufi Music in India

Dr. Santosh Kumar

Assistant Professor
Department of Music, School of Professional Studies
Sikkim University- Sikkim, India

Abstract:

There are many personalities and thoughts are being seen in the world, which have helped the humanity to spread divine love in the human for its peace. The Sufi and the music of the Sufism is one of the thought in the same line. Sufism and its style of worshiping the God were musical and this was the most known style of worshiping in the culture of Indian subcontinent. This made a great acceptance in the people of India who were delighted to understand this style of worshiping and praying to the Almighty, without any rigid cast differences. The influence of Sufism can also been seen in the different other sects of Bhakti movement in the Indian sub-continent. The lyrical compositions of Sufism were enlightening the human values and had some impact on the other literatures of that time. Many kinds of musical instruments were also being used to render the Sufi songs by the Sufi's that also added some additional values on the musicians. The nature of Sufism was sight of secularism and an open minded thought process without any impact of power of Kingdoms.

Key Words:
Sufi, Sufism, Sufi Music, Indian Music, Bhakti Movement

Human being developed by a series of evolution process since they appeared on the earth, and this progress has strengthened the civilization oh human being. This advancement in the civilization took place with the usage the physical resources like matters, elements etc, that is definitely termed as materialistic development. The civilization of mankind also resembles the somatic progress of the human being whereas the cultural progress denotes the intellectual progress. The cultural practices of any race or civilization resembles by its benevolent neutrality to the humanity. The religion as a factor of cultural practice is a social consideration by the human being that is observed with the human behavior, morality, mutually faith, and divine admissibility. Divine M. Abalogu & Ekenedilichukwu A. Okolo (2020), in their study on the topic "An Assessment

of the Early Theories of Religion by Edward B. Tylor, James G. Frazer, Sigmund Freud and Their Nexus with Cognitive Theorizing" states that Religion as we have it today is premised on different ideas and perceptions from different scholars which are view from psychological, sociological and anthropological stance. Anthropologist Edward Burnett Tylor′s (1832-1917) define the religion as belief in spiritual beings, stating that this belief originated as explanations of natural phenomena. Belief in spirits grew out of attempts to explain life and death.

The world has evidenced many thoughts and beliefs which have helped the humanity to spread divine love in the human for peace. The Sufi and the music of the Sufism is one of the thought in the same line. Indian subcontinent has experienced the nurture and spread of love and humanity with the Sufis since the medieval period. The Sufism has grown as one of the reaction to the inveteracy of Islam, that in due time developed into a movement to show philosophy of life in society and established as one of the great ideology for mankind. Because of a religious tolerance in the India the Sufi ideology have received a favorable environment to grow, The Sufis in India had protested to the inveteracy, racism, and bigotry of the society and established a good connection to all the religious ideology in the country. Instead of any kind of discrimination of race and cast they openheartedly accepted thoughts of local religions and spread their knowledge of spirituality to the peoples. Sufis had made sarcasm on the belief of the Kings of that time as an incarnation of God and established a notion that the believing in the God and its supreme power that was very personnel to the people. The worshiping to the God is related to the supreme power almighty not with the individual. Sufis also presented the tradition of secularism and independence of the thought and emerged as a spiritual thought for understanding the almighty that have created the world.

The Sufis originated in the Middle East that were a small ethnic group of peoples who have protested to the old racist ideology of orthodox Islamic people and left all the physical fortunes and comfort of life, to get into the love of almighty through music and dance. The simplicity and the naiveness became the outer life concern for these peoples. They use to wear white woolen clothes and started to be known as the Sufis. Probably because of the white woolen clothes only they were named as Sufi (The meaning of word 'Suf' in Arabic is wool). These people started the new tradition of worshiping God in different style and it has emerged in developing efficiently in the 8^{th}& 9^{th} century that completely developed till the start of the medieval period. Sufis were very generous; they believed the aim of their spiritual being as the service to the society.

The Sufis′ of Chisti and Suhravardi traditions who felt music admissible in the Islam and there were some other groups of followers who believed music is forbidden in their religion. Peoples of both the sects and groups came to India and there was a continuous contradiction in their believes and the controversy

remains till today. Hasimuddin Nagauri in the court of Shamsuddin Iltutmish, Shekh Nijamuddin Chisti and Maulana Ilmuddin in the court of Gayasuddin Tuglak respectively had proved that the devotional music is not a sin in Islam. According to Sufis like Shekh Junaid Bagdadi and Shekh Abubak Shibli, dancing, singing and playing musical instruments with devoting oneself into the love and meditation of the God is not only legal but very important in Islam. Mughals, Iltutmish, Lodhi, and other emperors of the Delhi Saltanet had a great influence of Sufis, that′s why many Muslim as well as Hindu musicians had been patronized in their rules. These groups of artistes received a great acceptance in the elite and ruling class of that time that helped them to nurture and flourish the Indian style of music in a boundless means.

The main way of their worshiping to God was the dancing with the devotion of music. The teachings of the Sufi′s were not new for the Indian subcontinent. To do kirtan (chanting Gods name) on the name of the God was a tradition in the region actually it was a part of Sanatan rituals. When the Sufis the peoples indulging into the singing and dancing for their beloved came to India, it was very intrinsic for the locals to be attracted towards these people. These groups of peoples were talking about the not to differentiate the peoples on the basis of cast or race, they preaches for the love for humanity and this resembled the Indian their own words of mind. The poet Acharya Ramshukla (1884-1941), believes that Sufis have a great impact on Mira and some other Krisna Devotees′ Vaishnavas.Chaitanya Mahaprabhu a great Vaishnav saint of Hindus also had a great influence of these Sufis′, the Sufi′s while dancing for the God were getting faint and the same with the Chaitanya Mahaprabhu.

The position of love in the Sufi tradition is on priority, they believed “the love is the worship and, love is the duty and love is the only a secret of happy life”. According to the Sufi poets they bear a resemblance to the God as their beloved in the personification of a woman and feel themselves like a lover in the divine love for her. It was the period of “Prabandh Gayan” (A genre of medieval Indian music) when the Sufis′ entered to this land. They were unaware of this tradition but they liked the discipline, implementation and philosophy of the Raga music and learn the nuances of this tradition. They mixed their style of music and developed many different genres of music that are still very much popular in the region. These beautiful genres were Kawaali, Kalbana, Kaul, Naks-Migaar, Gul-Basit, Rang Dhamal, Tarana, Khyaal etc. The Khayal, Tarana and Basit (Like chaturang) have become undivided part of the North Indian Classical Music (Hindustaani Music). Chisti′s and other Sufis preached in the local folk languages, this language was termed differently in both the major part of India. In South it was termed as ′Turushk” language while in north India it was termed as the ′Dakhini Hindi”. The Sufi used this local language for the singing songs and composed many classical Bandishes (compositions) in this language and

received a great recognition.

There were some limitation related to the music was set in the Sufi Chisti tradition. According to the book "Rshal Sabhaa – va- Mazamir" by Kazi Sanaullah (1810 AD), there was some conditions like-

- Subject of the song should not be against Islam and there should not any comment on the beauty of any man or women who is alive.
- The musicians should not be dependent on music for livelihood and should be with good character.
- The Audience should be with a good moral character and not a person easily loses will for the desire.
- Any time beside the Namaz the music can be listened and performed.
- The concert should be organized in any standalone place.
- If the musical instruments gives devotion for the God than it was admissible.

Kazi Mahmood Dariyayee was a great lover of Hindustaani music. In his compositions the name of Raag and Raagini can be seen-

Naino Kajal, Mukh Tambula Naam Moti malhar |

Sis nawaaun Neha paaun, apane peer krun juhaar ||

According to Qureshi R. (2010) in article title Islam and Music, the Sufi reciter or qawwal, stands in a class apart. Because of the preoccupation of the Sufi with spiritual listening or Samaa (assembly for spiritual advancement: Qawwali), and because of the need for musically skilled performers, most Sufi communities have traditional employed hereditary professional musicians who specialize in the Sufi repertoire and the special style of its performance. He also says that the role of the reciter is spiritually subordinate and the effect of words, no matter how well recited, is strictly God′s work; reciters do not contribute to the religion – the religion does not need that.

The Sufi tradition in India and their hymns is still present in the form of Qawwali.The first hymn in the performance of Qawwali is mostly dedicated to the prophet or his son in law 'Ali'. Then the series of hymns are recited in praise of other saints especially the saints for whom the listeners feel spiritually connected. Here is one of the hymn to India′s greatest and most beloved saint, Muinuddin Chishti, who in the thirteenth century established the strongest Sufi lineage in South Asia. The simple devotional poem is in a folk-like Hindi, with a vocabulary typical of Hindu devotional poetry that speaks as a woman in search of her beloved lord. Notable is the repetition of the names of the saint and of his spiritual successors whose strength is ultimately their connection to Muinuddin; this is articulated in the ascending sequence of names, culminating in that of Muinuddin.

Kirpa karo Maharaj Muinuddin

Tumrî dayâ kî sun ke khabariyâ
An pari hun tori nagariya
Sar jhukaun tumri dahaliya
Jahân karo tum raj, Muinuddin
Tum bin kaise ab nibhâun
Tum bin kis ko hal sunâung
Tumri kahâ par kis dar jaun
Tumhi kaho Maharaj Muinuddin

Khwaja Nijamuddin
Khwaja Fariduddin
Khwaja Muinuddin
Kirpa karo Maharaj Muinuddin

Have mercy, my lord Muinuddin, I have heard the news of your powers and I have come to your abode. Let me bow my head before your threshold. You rule over a vast realm. Without you, how can I cope? Without you, whom can I tell my sorrow? Tell me, to which door should I go? Only you can guide me, my lord. Have mercy, my lord Muinuddin, my lord Nijâmuddin, my lord Fariduddin, my lord Qutâbuddin, my lord Muinuddin. Have mercy, my lord Muinuddin. (Translation by R. Qureshi)

The second qawwâli example is a sophisticated poem in veneration of the poet, unknown, was also a spiritual guide and successor of a saintly lineage in southern India.

Batufail-e-daman-e-Murtaza, main batâun kya mujhe kya mila

Keh Ali mile to Nabi mile, jo Nabi mile to Khuda mile.

Tere naqsh-e-pa se qadam qadam, woh maqam-e-sabr-o-raza milâ

Kahin khak-e-ahl-e-junun mili, kahîn khun-e-rang-e-wafa milâ

Tu amir ibn-e-amir hai, tera faiz faiz-e-azim hai

Tere dar se jo bhi milâ mujhe, mere hausla se siwa milâ

Tere dar se jo, Mere Maula
Maula Mushkilkusha
Ya Sher-e-Khudâ
Ya Hajat Nawa

Tere dar se jo bhi mila mujhe, mere hausla se siwa milâ

Batufail-e-daaman-e-Murtaza. (Translation by R. Qureshi)

What blessing I have received through my attachment to Murtza (Ali): Once I reached Ali, I reached the Prophet, and when I reached the Prophet, I reached God. Following your model, I strive to attain perseverance and submission. You have shown me ecstatic faith, and constancy in belief. You are a Lord of Lords, your beneficence is immense. The gifts I have received at your door always exceed what I asked for. The gifts I have received at your door, my Lord

Solver of Difficulties
Lion of God
Helper in Need

Sufism uses music explicitly as a tool for spiritual advancement an expansion of mystical experience. However, that goal is not shared by orthodox Islam precisely because, along with listening to music, it allow for release beyond the discipline of traditional structures of worship.

The names of the musicians who spread the music of Sufi in India and the subcontinent, or in other words the musicians whose impact can be seen in the contemporary Sufi music in India could be- Amir Khusrau and Nusrat Fateh Ali Khan.

Amir Khusrau:

Amir Khusrau, a great Sufi devotee, poet, and hymn composer of thirteenthcentury Iran and India, is the acknowledged founder of qawwâlî singing. His spiritual poetry in Farsi and Hindi still form the core of SouthAsian Sufi ritual.

Nusrat Fateh Ali Khan:

Nusrat Fateh Ali Khan spread Sufi devotional hymns across the worldthrough his unique rhythmic virtuosity and a melodic appeal that carried the basic Sufi message to international audiences, always preserving the integrity of the texts regardless of sonic packaging.

The different genres of the Indian music reflect the impact of Sufi poets and the singing style. The contemporary Bhajan, bolywood music and even the folk music have great impact of Sufi music. These all popular genres are experiencing the blend of Sufi style of Singing and very much popular among the new generation.

References:

Nagraj L (1991), Hazrat Inyaat Khab Sufi, in Garg, L. N (Ed.), *Sangeet*. Hathras: Sangeet Karyalaya

Qureshi, R. (2010), Islam and Music, in Beck, G. L (Ed), *Secred Sound*, Delhi: Motilal Banarsidass

Baily, J., (May, 1988), Sufi Music of India and Pakistan: Sound, Context and Meaning inQawwali by Regula Burckhardt Qureshi, *The South Asia/West Crossover*, Vol. 7, No. 2, pp. 223-225.: https://www.jstor.org/stable/853542

Shiloah, A, Music and Religion in IslamJul. - Dec., 1997), *Acta Musicologica*, Vol. 69, Fasc. 2 (pp. 143- 15. https://www.jstor.org/stable/932653

Gribetz, A., (1991),, The samâ' Controversy: Sufi vs. Legalist, *Studia Islamica*,No. 74, pp. 43-62. https://www.jstor.org/stable/1595896

Lewisohn, L. (1997), The Sacred Music of Islam: Samâ' in the Persian Sufi Tradition,*British Journal of Ethnomusicology*, Vol. 6 (1997), pp. 1-33. https://www.jstor.org/stable/3060828

Manuel, P. (2008), North Indian Sufi Popular Music in the Age of Hindu and Muslim Fundamentalism *Ethnomusicology,Vol. 52, No. 3 (Fall, 2008)*, pp. 378-400. https://www.jstor.org/stable/2017460

Singh, V. (1993), *Kabeer Sadhana saahitya aur Panth*, 1, Varanasi: Sanjay Prakashan

Vrihaspati A. (1974), *Musalmaan Aur Bharatiya Sangeet*, 1, Delhi:Rajkamal Publication

ग्वालियर घरानाः परंपरा एवं बदलाव

डॉ. किरण प्रकाश सावंत

सहायक प्राध्यापक, ललित व प्रयोगजीवी कला संकुल
स्वामी रामानंद तीर्थ मराठवाडा विद्यापीठ, नांदेड

सारः

भारतीय शास्त्रीय संगीत में ख्याल आज का सबसे लोकप्रिय गायनप्रकार बन चुका है। देश विदेश में यह गायन प्रकार प्रस्तुत होता दिखाई पडता है और यह गायनप्रकार प्रचार एवं प्रसारित करने के लिए कइ घरानों का अमूल्य योगदान रहा है। उसमें ग्वालियर घराना आद्य घराना कहलाता है। हद्दू, हस्सु, नत्थु खाँ के पूर्वज नत्थन पीरबक्ष ने निर्माण किये इस ग्वालियर घराने को अन्य घरानों की गंगोत्री कहा जाता है। ग्वालियर घराने से अन्य कई घरानों की निर्मिती हुई है। इस घराने को विस्तृत शिष्यपरंपरा मिली है। इस घराने के गायकी की विशेषताओं की वजह से आज यह गायकी लोकप्रिय बनी हुई है।

'परिवर्तन यह संसार का नियम होता है' यह बात घरानेदार गायकीयों के लिए भी लागू पडती दिखाई देती है। इस घराने के मूल गायकी में कालान्तर से अनेक बदलाव हुए दिखाई पडते है। ख्याल की लय, राग चयन, बंदिशें, स्त्री कलाकारों का समावेश, इस गायकी में अभूतपूर्व बदलाव लानेवाले मूर्धन्य व्यक्तित्व पं. कुमार गंधर्व अदी विषयों में आये हुए बदलाव की चर्चा की है।

ग्वालियर घराने की मूल परंपरा क्या थी, इस गायकी की विशेषतायें क्या थी और कालान्तर से इस गायकी की किन-किन चीजों में बदलाव आते गये तथा आज इस गायकी का क्या स्वरूप है, यह दृष्टिगोचर होता है, ऐसा संशोधक लगता है।

बीज शब्द

ग्वालियर घराना, गायकी, परंपरा, परिवर्तन, प्रस्तुती।

ख्याल यह गायन प्रकार आधुनिक काल में बहुत लोकप्रिय ऐसा गायन प्रकार है। ख्याल इस शब्द का अर्थ है विचार, कल्पना। रागनियमों का पालन करके अपने कल्पना, इच्छा, विचारों को प्रकट करते हुए विविध ढंगों से राग का स्वरूप उजागर करना इसे ख्याल कहा जाता है। ख्याल की उत्पत्ती कैसे हुई इस बारे में विद्वानों में मतभेद दिखाई पडते है। कूछ विद्वानों के अनुसार ख्याल की निर्मिती अमीर खुसरो ने की, तो दुसरे मत के अनुसार मध्ययुगीन काल में प्रचलित रूपक नामक प्रबंध से ख्याल की निर्मिती हुई। कूछ विद्वान साधारण गीती में से ख्याल का जन्म हुआ ऐसा कहते है। तो कुछ विद्वान यह गीतप्रकार प्राचीन काल से ही अस्तित्व में होने का उल्लेख करते है।

ख्याल इस गीतप्रकार का विचार करते समय उसके घरानों का विचार करना अनिवार्य होता है।

घराने का अर्थ है एक परंपरा, एक विशिष्ट शैली। एक कलाकार उसे मिले हुये तालीम से अपनी स्वतंत्र ऐसी शैली निर्माण करता है, दुसरी गायकी से अलग तत्व, विशेषतायें निर्माण कर अपने शिष्यों प्रशिष्यों के माध्यम से अपनी गायकी प्रसारीत करता है, और इस माध्यम से घरानों की निर्मिती होती है।

घराने की निर्मिती के लिए कम से कम तीन पिढीयों का होना जरूरी होता है। मुख्य गायक ने निर्माण की हुई गायकी में अपनी प्रतिभा से कई विशेषता शिष्यों प्रशिष्यों द्वारा प्रविष्ट की जाती है और इस तरह से घरानों का विस्तार होता है।

ख्याल के कइ घराने प्रसिद्ध है। उसमें ग्वालियर घराना, कव्वाल बच्चे का घराना, किराना, जयपूर, आग्रा, दिल्ली, पतियाळा, मेवाती, भेंडीबाजार, रामपूर सहसवान, सेनिया, इंदोर, मथुरा, रंगीला, अत्रोली, खुर्जा, सिकंदराबाद, सहारनपुर (पंजाब), फतेहपूर, तलवंडी, गोखले मुरादाबाद, श्यामाचुराशी आदी घरानों का जिक्र मिलता है। इनमें से कई घराने नष्ट हो गये, कुछ घराने अन्य घरानों में विलीन हो गये,कुछ घराने थोडे समय तक ही सीमित रहे, तो कुछ घराने शिष्य परीवार न मिलने की वजह से पीछे रह गये। परंतु कुछ घरानों की लोकप्रियता तथा प्रगती अच्छे तौर पर बढती गई और उन घरानों ने शास्त्रीय संगीत में अपना उच्च स्थान निर्माण कर भारतीय संगीत को एक उंचे मकाम पर पहुंचाने में योगदान दिया।

ग्वालियर घरानाः

ग्वालियर घराने को आद्य घरांना कहा जाता है। मिया तानसेन के लडकी की तरफ के वंश में दसवें पुरुष नियामत खाँ उर्फ सदारंग थे। सदारंग के तिसरी चैथी पिढी से इस घराने की सुरुवात हुई ऐसा कहा जाता है। इस घराने के निर्माता नत्थन पीरबक्ष थे। सदारंग के शिष्य गुलाम रसूल शोरी, गुलाम रसूल के भतीजे शक्कर खाँ तथा मक्खन खाँ। शक्कर खाँ के बडे सुपुत्र बडे मोहम्मद खाँ और मक्खन खाँ के सुपुत्र नत्थन पीरबक्ष जिन्होने इस घराने की निर्मिती की। नत्थन पीरबक्ष के सुपुत्र कादर बक्ष एवं पोते हद्दू, हस्सु, नत्थु खाँ यह थे।

ग्वालियर घराने के बुजुर्ग कलाकारः

मोहम्मद खाँ, रहिमत खाँ (भूगंधर्व), बब्बु खाँ, बाळासाहेब गुरुजी, बाबा दीक्षित, देवजी बुवा, बडे बाळकृष्णबुवा, वासुदेवबुवा जोशी, निसार हुसेन खाँ, शंकरराव पंडित, रामकृष्णबुवा वझे, कुंडलगुरु उमडेकर, बाळकृष्णबुवा इचलकरंजीकर, विष्णु दिगंबर पलुस्कर, अनंत मनोहर जोशी, भाटे बुवा, राजाभैय्या पूछवाले, कृष्णराव पंडित, शरच्चंद्र आरोलकर, ओंकारनाथ ठाकूर, शंकरराव बोडस, लक्ष्मणराव बोडस, शंकरराव व्यास, नारायणराव व्यास, विनायकबुवा पटवर्धन, कुमार गंधर्व, यशवंतबुवा जोशी, अशोक दा. रानडे, शरद साठे, वीणा सहस्रबुद्धे, उल्हास कशाळकर, विद्याधर व्यास, मालिनी राजूरकर आदी।

ग्वालियर घराने के वर्तमान के कलाकारः

एल. के. पंडित, मधुकर जोशी, शुभा मुद्गल, नीला भागवत, अमरेन्द्र धनेश्वर, सुधा पटवर्धन, विकास कशाळकर, जयश्री पाटणेकर, शुभदा पराडकर, जयंत खोत, राम देशपांडे, केदार बोडस, कलापिनी कोमकली, शाश्वती मंडल, मीता पंडित, मंजूषा पाटील, शशांक मक्तेदार, अपूर्वा गोखले, पल्लवी जोशी, आदी।

ग्वालियर घराने की विशेषताएंः

1. जोरदार तथा खुली आवाज का प्रयोग।
2. विशेष रूप से प्रचलित राग गाने का प्रचलन।
3. सदारंग-अदारंग इनकी बंदिशों को विशेष रूप से गाया जाता है।
4. विलंबित ख्याल के लिए तिलवाड़ा, झुमरा, आड़ा चैताल आदी तालों का उपयोग किया जाता है। गाने की लय दूसरे घरानों की तुलना में थोड़ी सी चढ़ी होती है।
5. गायकी में ताल के विभिन्न अंगों का विचार किया जाता है। ताल के खंडों का विचार, लयकारी, अतीत-अनागत जैसे ताल के अन्य

क्रियाओं के बारे में विस्तारपूर्वक विचार किया जाता है।

6. बहलाओं के साथ साथ गमकों का भी प्रयोग अधिक तौर पर किया जाता है।
7. सीधे तानों का प्रयोग अधिक किया जाता है।
8. टप्पा अंग के ख्याल, तराने, त्रिवट तथा चतुरंग आदि गायन शैलियों के साथ लय की एकरूप गमक आदि सुंदर अलंकरणों का प्रयोग गायकी को रंजक एवं भावपूर्ण बनाने में पूर्णताः सक्षम है।

ग्वालियर घराने में आये हुए बदलावः

लयः

ख्याल के लिए अति विलंबित लय का प्रयोग बहुत कम दिखाई पड़ता है। जरासी चढ़ी, मध्यलय यह इस घराने की परंपरागत विशेषता है। परन्तु आज ख्याल की लय पहले से अधिक विलंबित हुई ऐसा लगता है। इस बारे में इस घराने के प्रसिद्ध गायक राम देशपांडे कहते हैं, की पहले ग्वालियर घराने में ख्याल की लय जरासी चढ़ी होती थी। उस वजह से पंधरा बीस मिनट में ही एक राग खत्म हो जाता था और उन महफिलों में उन कलाकारों को एक से ज्यादा राग गाने की जरूरत पड़ती थी। परंतु आज इस घराने में जो ख्याल गाए जाते हैं, वह पहले की तुलना में जरा धीमी लय में गाए जाते है। खुद राम देशपांडे तथा उनके गुरु पं. उल्हास कशालकर जी इनके गाने में यह बदलाव हुआ है ऐसा दिखाई देता है।

राग चयनः

इस घराने में हमीर, केदार, बसंत, बहार, कामोद, गौड़ मल्हार ऐसे प्रचलित राग गाने का प्रचलन दिखाई पड़ता है। परंतु बाद में कुछ कलाकारों की प्रस्तुति में अनेक नए रागों का समावेश हुआ ऐसे दिखता है, जैसे यशवंतबुआ जोशी - कलावती, गावती, अभोगी, गोरख। मालिनी राजूरकर - चक्रधर, किरवानी, चारुकेशी, बसंत मुखारी

विनय सहस्त्रबुद्धे - भूपाल तोड़ी, गावती, अहिर ललित

राम देशपांडे - शिवरंजनी, विराट भैरव

इस घराने के गजानन बुआ जोशी जैसे कलाकारों ने एक से अधिक घरानों तालीम हासिल की। इस माध्यम से उन घरानों के अनेक रागों का समावेश उनके गायन प्रस्तुति में होने लगा। उनके शिष्य भी वे राग गाने लगे। इस तरह ग्वालियर घराने के राग संचय में नए रागों का प्रवेश होने लगा।

बंदिशेंः

इस घराने की परंपरा में मुख्यतः सदारंग-अदारंग इनकी बंदिशें मुख्य रूप से गाने का प्रचलन था। परंतु बाद के काल में रामकृष्णबुआ वझे, विष्णु दिगंबर पलुस्कर, विनायकबुआ पटवर्धन, ओंकारनाथ ठाकुर (प्रणव पिया), कुमार गंधर्व (शोक पिया), अनंत मनोहर जोशी, गजाननराव जोशी, बलवंतराय भट्ट, श्रीकृष्ण नारायण रातनजनकर (सुजान), अशोक दा.रानडे, शंकर अभ्यंकर इन जैसे बंदिशकारो ने अनेक बंदिशों का निर्माण किया। अनेकों की बंदिशें पुस्तक रूप से भी प्रकाशित हुई है। मुख्यतः इन कलाकारों के शिष्यों के माध्यम से यह बंदिशें गाने गाए जाने लगी, प्रस्तुत होने लगी है। आज भी इस घराने की तालीम लिए हुए अरुण कशालकर, विकास कशालकर, राम देशपांडे, सावनी शेंडे, नीला भागवत आदि कलाकार भी नए बंदिशों की निर्मिती करते हुए दिखाई देते है।

सरगमः

इस घराने के बुजुर्ग कलाकार अपनी गायकी में सरगम का प्रयोग नहीं करते थे। परंतु बाद के काल के अनेक कलाकार जैसे मालिनी राजूरकर, वीणा सहस्त्रबुद्धे, मधुकर जोशी, शाश्वती मंडल अपने गायन प्रस्तुति में सरगम का प्रयोग बहुत ही सुंदर रूप से करते हुये दिखाई पडता है। कुमार गंधर्व भी कभी कभी सरगम का प्रयोग करते थे।

परंतु सरगम यह संगीत सामग्री इस घराने का परंपरागत भाग नहीं थी। तथा इस घराने के सभी

कलाकार अपनी गायकी में सरगम का नहीं प्रयोग करते है। इस कारण सरगम यह संगीत सामग्री इस घराने के कुछ कलाकारों के परंपरागत गायकी में बाद में प्रविष्ठ हुई ऐसा हम कह सकते है।

स्त्री कलाकारों का समावेशः

पुराने जमाने के कलाकारों के बारे में विचार किया जाये तो ऐसा दिखता है, की जयपूर घराने में तानीबाई घोरपडे, केसरबाई केरकर, लक्ष्मीबाई जाधव, मोगुबाई कुर्डीकर य किराना घराने में चुन्नाबाई, ताराबाई माने, हिराबाई बडोदेकर, रोशनआरा बेगम य भेंडीबझार घराने में अंजनीबाई मालपेकर इन जैसे स्त्री कलाकार अखिल भारतीय स्तर पर बडे तौर पर लोकप्रिय हुई। परंतु इनके समकालीन ग्वालियर घराने में अन्य घरानो कि तुलना में स्त्री कलाकारों कि संख्या कम दिखाई पडती है। यह गायकी जोरदार, खुली आवाज की, गमक बह्लावों से युक्त होने कि वजह से यह संख्या कम रही हों। लेकिन बाद के काल में इस घराने में स्त्री कलाकारों कि संख्या बढती गई ऐसा दिखाई पडता है। वीणा सहस्त्रबुद्धे, मालिनी राजूरकर, जयश्री पाटणेकर, शुभदा पराडकर, शुभा मुद्गल, नीला भागवत, कलापिनी कोमकली, शाश्वती मंडल, मीता पंडित, मंजूषा पाटील, अपूर्वा गोखले, पल्लवी जोशी, सावनी शेंडे आदी स्त्री कलाकार आज ग्वालियर घराने की गायकी को और भी उंचा करने में अपना अमूल्य योगदान दे रही है।

ग्वालियर गायकी में अभूतपूर्व बदलाव लानेवाले मूर्धन्य व्यक्तिमत्वः पं. कुमार गंधर्व

पं. कुमार गंधर्व ने ग्वालियर घराने की परंपरागत गायकी में परिवर्तन कर अपनी खुद की गायन शैली विकसित की। रागविस्तार, ताल में निबद्ध बंदिश, उपज, अंतरे पर आलापी, मुखडे पर बोल आलापी, सरगम, तान इस क्रम से हर एक घराने की गायकी में ख्याल गायन प्रस्तुत होता हुआ दिखाई पडता है।

परंतु कुमार गंधर्व ख्याल गायन की शुरुवात में रागवाचक मुख्य स्वर समूह से रागालाप लेते थे। उसके बाद तालबद्ध बंदिश शुरू करते थे। बंदिश शुरू करने पर बंदिश की स्थायी पहले आवर्तन में बिना गाये पहले बंदिश के शब्दों की सहायता से कामगत करके पहले आवर्तन के बाद पुरी बंदिश गाते थे। आवाज का लगाव, राग प्रस्तुती, बंदिश निर्मिती, ताल निर्मिती (छकताल), संकल्पना आधारित कार्यक्रम, संगीत के चर्चासत्रो में सक्रीय सहभाग आदी विषय में कुमार गंधर्व का अलगपन प्रखर रूप में हमारे सामने आता है।

कुमार गंधर्व का यह कार्य देख उनको इस घराने में बदलाव का कारण कहा जा सकता है।

निष्कर्षः

ग्वालियर घराने को घरानो की गंगोत्री कहा जाता है। यह आद्य घराना माना जाता है। प्रस्तुत अभ्यास से ग्वालियर घराने की मुख्य गायकी में कालांतर से अनेक बदलाव हुये और इन बदलावों से प्रस्तुत गायकी और भी ज्यादा उन्नत हो रही है, ऐसा संशोधक को लगता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. संगीतातील घराणी - डॉ. ना.र.मारुलकर
2. घरंदाज गायकी - वा.ह.देशपांडे
3. किराना घराने- डॉ. अतींद्र सरवदिकर
4. ग्वालियर संगीत कि परंपरा - डॉ.अरुण बांगरे
5. विविध घरानो कि समन्वित गायकी -डॉ.प्रतिभा शर्मा

संगीत सौन्दर्य में बन्दिशों का महत्व

डॉ. रूचि मिश्रा
सहायक प्रवक्ता, संगीत गायन विभाग
आर्य कन्या पी जी कॉलेज, चेतगंज वाराणसी

डॉ. प्रिया पाण्डेय
सहायक प्रवक्ता, संगीत विभाग
श्री गुरू राम राय विश्वविद्यालय, देहरादून

सारांश

संगीत का मुख्य उद्देश्य मानव मन के अमूर्त मनोभावो को मूर्त रुप देना तथा उसका लक्ष्य जिनको सौन्दर्यमय बनाना एवं सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट करके धीरे-2 चरमोत्कर्ष की ओर ले जाकर दिव्यता के दर्शन कराते हुए मानव का उत्थान करना ही है।

संगीत में सौन्दर्य के अनेक तत्व है श्रुति, स्वर, सप्तक, आलाप, तान, वर्ण, अलंकार, गमक, स्थाय, लभ व ताल इत्यादि। उनमें से सर्वप्रमुख तत्व का श्रेय बंदिश को है, संगीत के विभिन्न सौन्दर्य पक्षों में बंधकर शास्त्रीय संगीत को दिशा प्रदर्शित करने वाली शक्ति मात्र बन्दिश में ही निहित है बंदिशे वस्तुतः सम्पूर्ण शास्त्रीय संगीत की नीवं भी है और आधार स्तम्भ भी। बंदिश भारतीय संगीत का एक आवश्यक अंग है और केवल बन्दिश के ही माध्यम से हिन्दुस्तानी संगीत की संमृद्धशाली परम्परा को आगे आने वाली पीढी दर पीढी सुरक्षित रखा जा सकता है।

बीज शब्द
संगीत, सौंदर्य, बंदिश, रचना, राग

साधारण रुप से कोई भी व्यक्ति संगीतात्मक अभिव्यक्ति कर सकता है परन्तु वह सारगर्भित व उददेश्य पूर्ण हो यह क्षमता संगीत के उचित प्रशिक्षण से ही आ सकती है। संगीत एक ललित कला है, अर्थात सुन्दर और मनोहर।

संगीत कं न मोहयेतु

अर्थात संगीत में वह अनेक सौन्दर्य विद्यमान है जिससे मानव को सबसे उच्चस्तरीय आनन्द की प्राप्ति होती है।

संगीत का सौन्दर्य दिव्य है जहॉ संगीत है वहॉ ईश्वर का वास है श्री कृष्ण ने कहा,

वेदानां सामवेदोरस्मि

अर्थात वेदों में सामवेद मै ही हूँ। शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर में संगीत के सन्दर्भ में सौन्दर्यशास्त्र के कतिपय प्रमुख तत्वों के विषय में सामान्य संकेत सूत्र मिलते हैं। संगीत कला को शारंगदेव ने लिखा है,

गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते।

किसी विद्वान का कथन है संगीत की सत्ता से पृथक ईश्वर की सत्ता नहीं है। यदि हम ईश्वर तक पहुँचना चाहते है तो संगीत के माध्यम को पकड़ ले ऐसी दिव्य शान्ति संसार में किसी भी संगीत में नहीं मिलती। इसका भी कारण सुस्पष्ट है। संगीत की

स्वर साधना के लिये श्वास क्रिया पर नियन्त्रण करते ही मनुष्य का अपने शरीर तथा उसकी गति विधियों पर पूर्ण अधिकार हो जाता है। जिसके कारण वह अपने विचारों को संतुलित कर सकता है। शास्त्रीय संगीत का आरम्भ तो ओम से माना ही गया साथ ही साथ जिन रागों के माध्यम से इसका विकास हुआ उनके विषय में भी यह श्लोक मान्य है -

यो यो यां यां तनुं भक्त;
श्रद्धयाचिंतमिच्छति
तस्य तस्यंचलां श्रद्धांतामेव विद्धाम्यहम।
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते
लभते च तत; कामान् मयैव
विहितान्हिवान।

संगीत सौन्दर्य उस रस में निहित है जो रजो गुण तमोगुण को उभार कर चेतना विशेष में परिवर्तित कर देता है और उन क्षणों में मनुष्य काम, क्रोध,शोक, लोभ तथा चिंता से मुक्त होकर ब्रहमानंद सहोदर संगीत आनन्द में अनगाहन करने लगता है, जैसे ही स्वरों की सत्ता आरंभ होती है तब आध्यात्मिक आनंद की अनुभूति होती है, यह आध्यात्मिक आनन्द ही विशिष्ट आनन्द या सौन्दर्य तत्व है।

भारतीय दर्शन के अनुसार सौन्दर्य शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ इस प्रकार है- सौन्दर्य 'सुन्दर' का भाववाचक रूप है। सुन्दर में स्यः प्रत्यय लगने से सौन्दर्य शब्द की निष्पत्ति होती है- 'सुन्दरस्य भावः सौन्दर्यम'। कोशमूलक अर्थ के अर्न्तगत सौन्दर्य शब्द की व्युत्पत्ति के निम्न सोपान हैं -

- 'सु' उपसर्ग पूर्वक 'उन्द' धातु में 'अरन्' प्रत्यय के योग से सुन्दर शब्द निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ चित्त को द्रवीभूत करने वाले कारक से है।
- 'सुन्दर' शब्द की व्युत्पत्ति 'सु' उपसर्ग पूर्वक 'उन्दी' (क्लेदने) धातु में 'अ' प्रत्यय के योग से सिद्ध की गई है।
- 'सुष्ठु' उनन्ति आद्री करोती चित्तमिति' अर्थात् जो चित्त को अच्छी प्रकार आद्र करता है वह सुन्दर है।
- सुन्दर शब्द की व्युत्पत्ति 'सुन्दञ्अरः' के योग से होती है।
- अमर कोष में सुन्दर के अट्ठारह पर्याय शब्दों को श्लोकबद्ध रूप में निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया गया है-

  सुन्दरं रूचिरं चारू सुषमं साधु शोभनम्
  कान्तम् मनोरमं रम्यं मनोज्ञं मन्जु अभिष्टमीप्सितः
  हृद्यं दयितं बल्लभं प्रियम।।

भारतीय सौन्दर्य परंपरा में सौन्दर्य शब्द का प्रचुरता से सुन्दर प्रयोग संस्कृत ग्रंथों में प्राप्त होता है। संस्कृत ग्रंथों में सौन्दर्य सम्बन्धी अवधारणा निम्नलिखित प्रकार से प्राप्त होती है-

- ऋग्वेद में रूप, सुन्नरी, सूनर, चारू, अप्सु तथा पेशस शब्दों का प्रयोग सौन्दर्य के समानार्थी शब्दों के रूप में प्राप्त होता है। इसमें सौन्दर्य को श्री नाम से सम्बोधित किया गया है। इसके अतिरिक्त श्रिय, श्रेष्ठ आदि शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। इसमें सु (उपसर्ग) अनेक बार सुन्दर के अभिप्राय से प्रयुक्त हुआ है, जैसे- सुन्दर वीर पुरूष के लिए सुवीरासः, सुन्दर उत्तम बुद्धि वाले के लिए सुमतीनाम्, एवं परमेश्वर को सुरूपकृत्नु (वह अपने प्रकाश से सब पदार्थों को सुन्दर रूप से युक्त करने वाला है) कहा गया है। इसमें शुभ्रा शब्द का प्रयोग तेजस्विता के लिए हुआ है।
- अथर्ववेद में भी सुन्दर के अभिप्राय से अन्य शब्द मिलते हैं इसमें सम्भलः (यथा विधि सम्भाषण तथा निरूपण करने वाला वर), सुमति (सुन्दर बुद्धि वाली कुमारी), जुष्टा (प्रिय), समनेषु (साधु विचार वाले), वल्गु (मनोहर) सुषदा (रमणीक घर) आदि शब्दों का प्रयोग सौन्दर्य के अभिप्राय से हुआ है।
- यजुर्वेद में सौन्दर्य के पर्याय शब्दों के रूप में सुप्वा (यज्ञ से भली प्रकार पवित्र करना) आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।
- रामायण में सुन्दर के समशील शब्दों के रूप में शोभन, चारू, अभिराम, रम्य, सुभग आदि

का अनेकशः प्रयोग हुआ है।

- महाभारत काल में भी सुन्दरता की अभिव्यक्ति को विभिन्न प्रकार से व्यक्त करने हेतु कई शब्दों का प्रयोग हुआ है, जैसे- रूपवान, दर्शनीयश्च, शोभिने, रूचिरस्ते, मनोहरम् चन्द्रमुखी, प्रसन्ना, च्चि प्रसादिनी, प्रियदर्शन, सुभग, हृद्य आदि।
- श्रीमद्भागवत में सौन्दर्य के स्वरूप के पर्याय के रूप में विभूति शब्द का प्रयोग मिलता है एवं सौन्दर्य के स्वरूप को निम्नलिखित श्लोक के माध्यम से बड़ी सरलता से व्यक्त किया गया है-

तदैव रम्यं रूचिरं नवं-नवं तदैवं शश्वन्मनसो महोत्सवम्।
तदैव शोकार्णव शेषणं नृणां यदुच्यम श्लोक यशोऽनुगीयते।।

- शंकराचार्य कृत सौन्दर्यलहरी में सौन्दर्य शब्द के पर्याय के रूप में लावण्य, धुति, विमल, आभा आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।

सौन्दर्य के मानस स्वरूप को वैदिक ऋचाओं में स्वीकृती मिली है- सौन्दर्य प्रीतिकर अथवा उल्लासप्रद है, मधुर है, स्फूर्तिप्रद है, चिरनवीन है, पवित्र है और दिव्य है।

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार- सौन्दर्य शब्द का प्रयोग अधिक प्राचीन नहीं है। वैदिक साहित्य में सुन्दर तथा सौन्दर्य शब्द का प्रयोग नहीं मिलता, किन्तु प्रिय, पेशय, चित्र, रम्य, भद्र, मधुर आदि शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है। सुन्दर शब्द का प्रयोग सबसे पहले रामायण में प्राप्त होता है। उसके पश्चात महाभारत में किन्तु वह अत्यन्त विरल है।

कलाशास्त्र में भी प्रायः उपर्युक्त शब्द ही मिलते हैं। जिसमें सौन्दर्य के लिए रूप, शोभा, विच्छिन्ति, वैचित्र्य आदि और सुन्दर के लिए रम्य, रमणीय, मनोज्ञ, मनोहर, चित्र, चारू आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है, परन्तु उसे कोई भी पारिभाषिक वैशिष्ट्य प्राप्त नहीं है।

इसके अतिरिक्त भारतीय आचार्यों ने काव्य अथवा कला के सौन्दर्य के लिए अपने कुछ विशिष्ट शास्त्रीय शब्दों का प्रयोग भी किया है, जैसे- रस, अलंकार, वक्रता आदि।

महाकवि माघ के अनुसार- 'क्षणे-क्षणे यन्नुवतामुपैति तदैव रूपं रमणीयतायाः।' अर्थात्- रमणीयता (सौन्दर्य) क्षण-क्षण नवीनता को प्राप्त होता है। महाकवि के इस कथन से सौन्दर्य सम्बन्धी तीन तथ्य स्पष्ट होते है-

- सौन्दर्य प्रतिक्षण नवीनता को प्राप्त करता रहता है अतः उसे ग्रहण नहीं किया जा सकता है।
- सौन्दर्य पूर्ण वस्तुओं के दर्शन में अतृप्ति का भाव बना रहता है।
- सौन्दर्य अपनी सूक्ष्मता और अग्राह्यता से प्रेक्षक को चमत्कृत कर देता है।

संगीत में सौन्दर्य के अनेक तत्व है श्रुति, स्वर, सप्तक, आलाप, तान, वर्ण, अलंकार, गमक, स्थाय, लभ व ताल इत्यादि।

उनमें से सर्वप्रमुख तत्व का श्रेय बंदिश को है, संगीत के विभिन्न सौन्दर्य पक्षों में बंधकर शास्त्रीय संगीत को दिशा प्रदर्शित करने वाली शक्ति मात्र बन्दिश में ही निहित है बंदिशे वस्तुतः सम्पूर्ण शास्त्रीय संगीत की नीवं भी है और आधार स्तम्भ भी। बंदिश भारतीय संगीत का एक आवश्यक अंग है और केवल बन्दिश के ही माध्यम से हिन्दुस्तानी संगीत की संमृद्धशाली परम्परा को आगे आने वाली पीढी दर पीढी सुरक्षित रखा जा सकता है।

बन्दिशों के आवश्यक गुण - बंदिशों के लिए कुछ आवश्यक गुण भी माने गये हैं-

1. अच्छी बन्दिशों में राग नियमों का पालन होना चाहिए, उससे राग के स्वरुप में बिगाड़ न आवे उसमें राग शुद्धता होनी चाहिए।
2. बन्दिश में स्वरों का चलन एवं स्वर श्रृंगार उसका रुप, राग की प्रकृति के अनुरुप होना चाहिए, अन्यथा वह राग के स्वरुप को विकृत कर सकता है।
3. राग की प्रकृति, बन्दिश की गति, कविता का भाव, गायन शैली सभी का आपस में तादात्म तथा एकरुपता होनी चाहिए तभी वह सुन्दर

लगेगी और कर्ण प्रिय होगी।

4. बन्दिश के प्रथम पंक्ति की पुनरावृत्ति बार-बार होती है, अतः प्रारंभिक पंक्ति एवं शब्द सारर्गिभत होना चाहिए, जो अर्थ को स्पष्ट करे, उससे अनर्थ न हो, उसमें गीत के भाव का सार हो।
5. बन्दिश के लिए विशिष्ट गीत शैली ध्रुवपद, ख्याल तथा शैली की गति विलम्बित, द्रुत, मध्य के अनुसार ही शब्दों का चयन हो।
6. बंदिश रचना के लिए उपरोक्त नियमों के अतिरिक्त अन्य जैसे रागों के रायन समय एवं प्रकृति के अनुसार बंदिशों में काव्य का प्रयोग अर्थात मे व मल्हार रागों में वर्षा ऋतु का वर्णन बसन्त एवं बहार रागों मं बसन्त ऋतु के अनूकूल साहित्य का प्रयोग ही होना चाहिए।

उपयुक्त तथ्य बंदिशों के आधार एवं उत्तम नियम हैं। इस क्रम में यह भी कहा जा सकता है कि भले ही रागों के रुप बदलते रहे हैं बंदिशो के माध्यम से ही इन रागों के बदलते रुप का ज्ञान होता है। उस्ताद फैय्याज खान मु0 विलायत हुसैन खां पं0 भातखण्डे एस एन रतजंकर पं0 रामाश्रय क्षा इत्यादि बडें-2 विद्वानों ने एक ही राग में एक से अधिक कई बंदिशों की रचना की जिससे रागों में विविधता की प्राप्ति होती है प्रत्येक बंदिश से राग सौन्दर्य के नवी रुप की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार संगीत सौन्दर्य में बंन्दिशों में तकनीक व स्वरों का माधुर्य मिलने से आनन्दमय संगीत का सृजन होता है।

आधुनिक काल में जबकि सौन्दर्य उत्पत्ति के लिए बंदिश को सबसे उपयुक्त तत्व व माध्यम माना गया है वही संगीतिक सौन्दर्य उत्पत्ति के लिए सबसे महत्वपूर्ण भी माना जाता है।

संगीत सौन्दर्य में बंदिश का महत्व इसलिए भी है क्योंकि बंदिशों के माध्यम से ही रागों का गायन समय ज्ञात होता है। वास्तव में रागों को षट्ऋतुओं में विभक्त किया गया है प्रत्येक राग की निश्चित ऋतु है।

राग	**ऋतु**
श्री राग	हेमन्त
दीपक	ग्रीष्म
मालकंस	शिशिर
मेघ	वर्षा
हिंडोल	बसंत
भैरव	शरद्

दामोदर मिश्र ने संगीत दर्पण के रागाध्याय में शिवमत में रागों की दिव्य उत्पत्ति की चर्चा की है जिनका सम्बन्ध ऋतुओं से है- भगवान शंकर के मुख से श्री राग,वामदेव मुख से बसंत राग,अघोर मुख से भैरव,तत्पुरूष मुख से पंचम और ईशान मुख से मेघ राग उत्पन्न हुआ तथा पार्वती जी के मुख से नट्नारायण राग उत्पन्न हुआ। वर्ष की विभिन्न ऋतुओं में गाने के लिए पंडित दामोदर मिश्र ने अपने ग्रंथ संगीत दर्पण मे लिखा है-

श्री रागो रागिणीयुक्त; शिशिर गीयते बुधै;
बसन्त; स सहायस्तु बसन्ततौ प्रगीयते।
भैरव; सहायस्तु ह्रतौ ग्रीष्मे प्रगीयते्
पंचमस्तु तथा गेयो रागिण्या सह शारदे
मेघरागो रागिणीर्भियुक्तो वर्षास्तु गीयते
नर नारायणो रागो रागिण्या सह हेमका॥

अर्थात श्री राग और उसकी रागिनियों को शिशिर ऋतु (जनवरी-फरवरी) में, बसन्त राग और उसकी रागिनियों को बसन्त ऋतु (मार्च-अप्रैल) में, भैरव राग और उसकी रागिनियों को ग्रीष्म ऋतु (मई-जून) में, मेघ राग और उसकी रागिनियों को वर्षा ऋतु (जुलाई -अगस्त) में,पंचम राग और उसकी रागिनियों को शरद ऋतु (सितम्बर-अक्टूबर) में,और नरनारायण राग और उसकी रागिनियों को हेमन्त ऋतु (नवम्बर-दिसम्बर) में ही गाना चाहिए या फिर-

यथेच्छया वा गातव्या; सर्वर्तुषु सुखप्रदा;।

यथा इच्छा अर्थात जब गायक की इच्छा प्रबल हो तो कोई भी राग सब ऋतुओं में सुख प्रदान करेगा।

और जहाँ तक बंदिशों की बात है तो वह स्वंयं अपने कुछ लक्षण अभिव्यक्त करते हैं जैसे गायन समय अभिव्यक्त करती बंदिश-

राग भैरव में निबद्ध रचना-
लालन जागो रैन गई
राग अहीर भैरव में प्रस्तुत बंदिश
लालन जागो भोर भई लाल तुम,
टेरैं,गोपाल बाल बार-बार
आडाचैताल निबद्ध
भोर की बोलन लागी चिरियां
चली जमुना भरन तिरियां

विभिन्न ऋतुओं पर आधारित बंदिशों से गायन समय तथा बंदिशों में ऋतु सौन्दर्य दोनों ही स्पष्ट होता है। विशेषतः मल्हार राग की बंदिशों में स्वाभाविक रुप से ऋतु वर्णन रहता है,

जैसे-राग सुरमल्हार की बंदिश-
गरजत घनकारे कारे-कारे
डर लागत है अंधियारे
राग गौढ मल्हार में
गरजत बरसत भीजत आइलो
राग मियाँ मल्हार में
आयों घन घेर घेर
गरजि डराय बेर बेर

बसंत ऋतु का सौन्दर्य स्पष्ट करती बंदिश

राग वसंत में निबद्ध ऋतु बसंत मन भाय सरवी री

इसके अतिरिक्त यह भी कहा जा सकता है कि पहले जब स्वर लिपि पद्धति नहीं थी, इन्ही बंदिशों के माध्यम से शिष्य को राग ज्ञान कराया जाता था तथा बंदिशो के द्वारा ही अप्रचलित रागों को सुरक्षित करने में सहायता मिली।

पं0 रविशंकर के अनुसार बन्दिश के शब्द राग भाव को उजागर करने में सहायक होते हैं जैसे राग

गुर्जरी तोडी में निबद्ध
तरसे दोड नैन मैं न देखी
सावरी सुरत तडपत हूं दिन रैन

से मन की व्याकुलता तथा वियोग रस की अभिव्यक्ति होती है।

रागों के रुप बदलते रहे हैं बंदिशो के माध्यम से इन रागों के बदलते रुप का ज्ञान होता है। उस्ताद फैय्याज खान मु0 विलायत हुसैन खरं पं0 भातखण्डे एस एन रतजंकर पं0 रामाश्रय क्षा इत्यादि बडें-2 विद्वानों ने एक ही राग में एक से अधिक कई बंदिशों की रचना की जिससे रागों में विविधता की प्राप्ति होती है प्रत्येक बंदिश से राग सौन्दर्य के नवी रुप की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार संगीत सौन्दर्य में बंन्दिशों में तकनीक व स्वरों का माधुर्य मिलने से आनन्दमय संगीत का सृजन होता है।

आधुनिक काल में जबकि सौन्दर्य उत्पत्ति के लिए बंदिश को सबसे उपयुक्त तत्व व माध्यम माना गया है वही संगीतिक सौन्दर्य उत्पत्ति के लिए सबसे महत्वपूर्ण भी माना जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1 परमिता - त्रैमासिक शोध पत्रिका, जुलाई-सितम्बर-2013, पृष्ठ-4।
2 शरण पंडित भगवत, संगीत निबन्ध मंजरी पृष्ठ-154।
3 शर्मा डा0 स्वत्रंत्र,सौन्दर्य रस एवं संगीत, पृष्ठ-129
4 चैधरी डॉ सुभद्रा, भारतीय संगीत में ताल और रुप विधान पृष्ठ-399।
5 संगीत मैनुअल - डॉ0 मृत्युंजय शर्मा, रामनरायण त्रिपाठी, पृष्ठ-381।
6 गर्ग डॉ0 लक्ष्मी नारायण, निबंध संगीत पृष्ठ-389।
7 परांजपे डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधर,भारतीय संगीत का इतिहास पृष्ठ-211।
8 पाठक पं0 जगदीश नारायण, संगीत निबंध माला पृष्ठ-43।
9 हिन्दुस्तानी संगीत में बंदिशों का स्वरुप-पत्रिका पृष्ठ-55।

आतोद्य

पूर्वांचल के लोक संगीत में वाद्यों की भूमिका

डॉ॰ सुरेन्द्र कुमार

सहायक आचार्य (गायन) संगीत विभाग
सिक्किम केंद्रीय विश्वविद्यालय, गंगटोक

सरांश

लोक शब्द जनसामान्य का प्रतिक है समाज के बीच उद्घाटित कलात्मक भावों की अभिव्यक्ति ही लोक कला शब्द को सार्थक सिद्ध करती है। लोक से तात्पर्य है जनसाधारण, जो चाहे गाँव का रहने वाला हो या शहर का, उसकी शिक्षा-दीक्षा, पहनावा-ओढावा, आचार-विचार, संस्कार-व्यवहार उसके अपनें देश या प्रान्त की प्रतिनिधि संस्कृति के प्रतिक हो और जनसाधारण की वृतियों का वह मूर्तरूप हो। लोक में भुत, वर्तमान और भविष्य सभी कुछ संचित रहता है समाहित रहता है। लोक वह समीर है जिसमें हम मनुष्य स्वांस लेते हैं, लोक स्वयं में अति पवित्र अर्थपूर्ण भाव को संजोया हुआ है। वर्तमान में कहीं भी जो कुछ भी हो रहा है उसके आधार में लोक ही है, सिद्धांत ग्रंथों के प्रणेता विज्ञान और व्यवहार के आधार पर तत्व का विवेचन करते हैं। उन्हें किसी और लोक मानकों के वचनों को प्रमाण रूप में उद्धत करने की आवश्यकता नहीं होती। लोक की विशेषता अनन्त है इसलिए नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरत मुनि ने कहा है कि मैंने अपने ग्रन्थ में जो कुछ भी नहीं कहा है वह बुद्धिमानों को इस लोक जगत से ग्रहण कर लेना चाहिए। भरत मुनि का यह वाक्य सिद्ध करता है कि लोक ही समस्त कलाओं का प्रदाता है प्रणेता है। लोक की धात्री, सर्वभूत माता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव, यहीं हमारे नवजीवन का अध्यात्मशास्त्र है। इसका कल्याण ही हमारी मुक्ति के द्वार और निर्माण का रूप है। लोक, पृथ्वी, मानव इसी त्रिलोकी में जीवन का एक कल्यानतम रूप है। इस दृष्टि से लोक का दर्शन सदैव लोक की मनन-सामर्थ्य को जगाकर उसे मनुष्य बनाने में सहायक होता है।1

बीज शब्द

परंपरा, लोक, वादन, संगीत, ताल, वाध्य, लय।

संगीत के विकास में प्राचीन परम्पराओं से ही वाद्यों का विशेष महत्व रहा है। वास्तव में वाद्यों का अविर्भाव मानव की कल्पना शक्ति एवं प्रयोग क्षमता का ही परिणाम रहा है। लोक संगीत की दो धाराएँ मानी गई है, एक धुन की दूसरी उसके वाद्यों की। लोक संगीत में वाद्यों का महत्व शास्त्रीय संगीत के अपेक्षा बहुत अधिक प्रयोग किया जाता है। विशेष रूप से ताल-वाद्यों का, जिसके अंतर्गत घन तथा अवनद्ध वर्गों के वाद्य आते है चाहे लोक गीत हो,

लोक नृत्य अथवा लोकनाट्य, जिनमें लोक वाद्यों की आवश्यकता तीनों के लिए समान होती है, जिसके बिना लोक विधाएं प्रायः निष्प्राण प्रतीत होते हैं। जिस समय आल्हा तथा फागुन में ढोलक बज उठते है तब लय के मदमाते झोंके मनुष्य के अंग-अंग को झुमा देता है दर्शकों घंटों खोया-खोया वृक्ष-पत्रों की की भाती झूमता और मदमस्त रहता है मानो शंकर की ताल पर सारा ब्रह्माण्ड नाच रहा हो, यह मस्ती, यह मदहोशी, यह हर्षोन्माद की स्थिति और कहाँ परिलक्षित हो सकती है। यह लोक संगीत प्रकृति के उन्मुक्त एवं स्वछंद वातावरण में पुष्पित तथा पल्ल्वित हो रहे हैं जो वह आज भी कृत्रिमता से कोसो दूर दिखाई पड़ता है, इसलिए उसमें हमें वाद्य-यंत्रों का एकछत्र राज दिखाई पढता है। [2] लोक के गीत, नृत्य, नाट्य और वाद्ययंत्र विभिन्न कालों के अनुसार अपने अलग-अलग अस्तित्व और अलग-अलग सौन्दर्य रखते आ रहे हैं। लोक संगीत की सहजता और उसका सौन्दर्यता किसी से छिपी नहीं है। भिन्न-भिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न अभिव्यक्तियों के लिए लोक में अनेकानेक वाद्य पाए जाते रहे हैं जो इस भूभाग की विशिष्टता को दिग्दर्शित करता है। [3]प्राकृतिक द्वारा निर्मित स्थूल पदार्थों में लकड़ी, धातु, पत्थर, चर्म, मिट्टी, नारियल आदि का भिन्न-भिन्न प्रकार से किया गया प्रयोग ही वाद्यों के निर्माण के प्रमुख कारण हैं। समय-समय पर इन वाद्यों के स्वरूप में अन्य संशोधन और परिवर्तन मानव की शिल्पगत उन्नति का परिचायक है। आज जो भी वाद्य हमारे समक्ष मौजूद है वह सहस्त्रों वर्षों के क्रमिक विकास और परिवर्तन का परिणाम है। आज वाद्यों के क्रमिक परिवर्तन से पखावज, मृदंग, तबला, ढोलक, नाल आदि ताल-वाद्यों, साधारण बंसी या मुरली में किये गए अनेकानेक प्रयोग से नफीर, शहनाई, बांसुरी या फिर घंटनाद से विकसित झांझ, मंजीरा, करताल, घुंघरू, नलतरंग, जलतरंग, घंटातरंग आदि वाद्यों के विकास की अविच्छीन श्रृंखला दृष्टिगोचर होती है।[4] वाद्यों के अनेकानेक प्रकारों का प्रयोग शास्त्रीय संगीत एवं लोक संगीत की अनेकानेक विधाओं के साथ स्वर, ताल व् लय की संगति के लिए करके उन्हें रसात्मक उत्कर्ष तक पहुँचाना ही विभिन्न प्रकार के वाद्यों का उददेश्य होता है। सृष्टि के आदि काल से ही लय अथवा ताल के प्रति मनुष्य जाति को विशेष रूचि रही है किन्तु यह देखने को मिला है कि जैसे-जैसे समाज सभ्य होता गया, उसका आकर्षण स्वरों की ओर बढ़ता गया। आज भी यह देखनें को मिलता है कि जो व्यक्ति, समुदाय, प्रान्त एवं देश, लय की अपेक्षा स्वर प्रधानता की ओर ज्यादा प्रभावित होता है। वह लय अथवा ताल के प्रति अनुरक्ति रखनें वालों के अपेक्षा अधिक सभ्य,सुसंकृत होता है। उसमें बुद्धि की विकास तथा ह्रदय की गहराई अधिक होती है। वाद्यों के विकास-क्रम तथा उनके प्रयोग में बहुलता एवं न्यूनता के अध्ययन से यह और स्पष्ट हो जाती है।[5]

भारत के ह्रदय स्थल में स्थित पूर्वांचल का सांसकृतिक ऐतिहासिक एवं सांगीतिक दृष्टि से अपना अनूठा अस्तित्व रखती है जहाँ सभी संप्रदायों के लोग धर्मनिरपेक्षता का सुन्दर सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। हिन्दुओं की पवित्रतम नदी भगीरथी गंगा के साथ-साथ बौद्ध धर्म के लिए पवित्र स्थल सारनाथ तथा गया भी इसी क्षेत्र में स्थित है। जिसकी सांस्कृतिक राजधानी वाराणसी है जिसे हम काशी, बनारस, सर्वविद्या की राजधानी, शिव की नगरी के नाम से सम्पूर्ण विश्व जगत में मशहूर है यह संसार का सबसे पुराना जीवंत नगर है इसका अपना समृद्ध इतिहास है जहाँ संगीत और लोक परम्पराओं का विशाल भंडार भी है।[6] प्रान्त के समाज के दैनिक जीवन में भी वाद्यों का हमेशा से उपयोग होता रहा है जहाँ हर घर में किसी न किसी रूप में मिल ही जाते हैं। यहाँ बच्चे का जन्म होते ही थोड़े दिनों के बाद उसे सीटी, झुनझुना आदि पकड़ा दिया जाता है जिससे वह अपने जीवन की सम्वर्धन लीला को प्रारंभ करता है।[7] लोक संगीत के क्षेत्र में प्रयुक्त वाद्यों कि संख्या असीमित है क्योंकि यहाँ थाली-चम्मच से लेकर तबला–सारंगी तक अनेकानेक वस्तुओं को वाद्य के रूप में प्रयोग करनें की स्वतंत्रता लोक कलाकारों को मिलती है इसीलिए लोक वाद्यों

की कोई परिभाषित सीमा भी नहीं है। संगीत वाद्य का उदेश्य केवल गायन व् नृत्य की लय व् ताल को बांधे रखना ही होता है इसीलिए वाद्यों की निर्मित तथा वादन क्रिया में क्लिष्टता नहीं होती है सुन्दर सरल व् सहज रूप में बजाये गए बोल, छंदों की सहजता और बोलों की मिठास हीं लोक वाद्यों का विशिष्ट कलेवर होता है।

लोक वाद्यों का निर्माण और उपलब्धताः-

भोजपुरी पूर्वांचल प्रान्त की प्रादेशिक भाषा है इस भोजपुरी भाषित क्षेत्रों में प्रचलित लोकवाद्यों का प्रयोग यहाँ के लोक गीतों, लोक नृत्यों एवं लोक नाट्यों के साथ किया जाता है। यहाँ के कुछ वाद्य काल विशेष की आवश्यकता को ध्यान में रखकर बनाये गए हैं या फिर इसे ही कुछ वाद्यों में मानव ने अपने बौद्धिक कौशल से परिवर्तन या परिवर्धन करके नवीन वाद्यों को जन्म दिया है।[8] यहाँ के लोक वाद्य खुले बाजारों में उप्लब्ध नहीं होते वरन इनका निर्माण यहाँ के स्थानीय कारीगरों जैसे- लोहार, चर्मकार, सुथार, कहांर आदि स्थानीय परिस्थितियों एवं परम्पराओं के अनुरूप करते हैं। इन लोक वाद्यों की सामग्रियां यहाँ मौजूद पर्वत, नदियों, वनों एवं घरेलु परिवेश में प्राप्त होती हैं जिन्हें लोक वादक स्वयं एकत्र कर स्थानीय कारीगरों को देते हैं या स्वयं उन सामग्रियों से लोक वाद्यों का निर्माण करते हैं। इन सामग्रियों में जानवरों के चमड़े, पूंछ के बाल, सिंग, टिन, कद्दू के तुम्बे, पीतल, कांसा, लोहा, लकड़ी, मिट्टी, नारियल, पेड़ के पत्ते आदि प्रमुख स्रोत होते हैं। इन सभी प्राकृतिक उपादानों के सहयोग से छोटे-बड़े लोक वाद्यों का निर्माण आवश्यकतानुसार किया जाता है। यह सभी वाद्य आधुनिक चमक-दमक वाले अन्य वाद्यों की तुलना में अत्यधिक सस्ते होते हैं और ये उपलब्धता और प्राचीनता की दृष्टि से मूल्यवान हैं क्योंकि लोक वाद्य हमारे पूर्वांचल संस्कृति के धरोहर हैं जो हमें अपने महान पूर्वजों से विरासत में प्राप्त हुई है।[9]

पूर्वांचल के लोक गीतों के साथ मुख्यतः- कहरवा, दादरा, रूपक, दीपचंदी आदि जैसी तालों में ज्यादा दिखाई पड़ता है लेकिन प्रवाहमान तालों का प्रयोग भी किया जाता है, इनकी चाल विलंबित तथा धीमी लय में बहुत कम गाये जाते हैं। फिर भी कुछ गीतों के साथ वाद्यों का प्रयोग नहीं किया जाता है किन्तु इनमें लय की स्पष्ट झलक मिलती है। सभी लोकगीत स्वर व् ताल प्रधान ही नहीं वरन धुन व् लय प्रधान भी होती है जैसे–चक्की पिसते समय, कपड़े धोते समय, पानी गिरने की निरंतर आवाज, पैदल चलते समय, आटा पिसते समय, ढेकी कूटते समय जो ध्वनियाँ होती हैं वह स्वतः ही लोक वाद्यों का प्रारूप बन जाती है और इसी लय ध्वनी पर गीतों का चलन अनान्यास चलता रहता है।[10] इस प्रान्त के लोक ताल वाद्यों में मूलतः ढोलक, डमरू, नगाड़ा, तासा, ढ़ोल, चंग, छड़, पत्थर के टुकड़े, घंटी, मंजीरा, झांझ, घुंघरू, जोड़ी-झाल, करताल, घड़ियाल, थाली, मिट्टी के बर्तन आदि नामक वाद्य यहाँ के लोक संगीत कलाओं में निहित ताल वैचित्र को तथा ताल वैविध्य को दर्शाने की दृष्टि से महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और सुषिर वाद्यों के अंतर्गत तुरही,शंख, नफीरी, अलगांजा, बीन, बंसुरी, हारमोनियम आदि तथा तत वाद्यों में एकतारा, मुखचंग, जोगिया सारंगी, बेंजो आदि एक उत्कृष्ट माध्यम है। अन्य की तुलना में यहाँ घन वाद्यों का प्रयोग इस क्षेत्र में अधिक प्राप्त होता है संभवतः भक्ति प्रसंगों और लोकनाट्यों, लोकगाथाओं या लोक कथाओं से सम्बंधित गीतों की प्रस्तुतीकरण में कदाचित तसली, करताल, जोड़ी, मंजीरा, घंटी, घुघरू, झांझ आदि जैसे वाद्यों को सरल संगति गीत को अधिक आकर्षक एवं मनोरंजक बना देती है इस प्रकार के वाद्यों को गायक स्वयं ही बजाकर भी अपनी कला की प्रस्तुति कर सकता है। इन वाद्यों के माधुर्य तथा ओज-गुण की प्रधानता इन वाद्यों की श्रेष्ठता को स्वतः सिद्ध करती है क्योंकि इन वाद्यों में लय तथा स्वर के स्वभाविकता एवं प्राकृतिक सौन्दर्य को अभिव्यक्त करनें की क्षमता विधमान है।[11]

लोकवद्यों की महताः-

पूर्वांचल की लोक संस्कृति धरोहर कलायें जैसे– गीत, नृत्य, वाद्यवादन, या नाट्य में विभिन्न प्रकार के लोक वाद्यों का प्रयोग किया जाता है लेकिन सभी वाद्य सभी कलाओं में प्रयुक्त नहीं होते हैं यह विशिष्ट कलाओं के साथ विशेष वाद्यों की परम्परा भी यहाँ आदिकाल से जुडी हुई है। उनको बजाने की विधि, लोक विधाओं की अलग-अलग विषय जैसे- सामाजिक चेतना, सामाजिक आनंद, उल्लास, मंगल कामना, सम-सामयिक समस्याएं तो कभी पुरानी परम्पराओं से प्रभावित नाटक, इनमें अलग गायन एवं अलग वाद्यों को बजाने की परम्परा है। इन वाद्यों के महत्व के पीछे मानव की वह भावनाएं या संवेदनाएं छिपी होती हैं, जिनको उदीप्त करने में यह वाद्य विशेष भूमिका निभाते हैं, शंख की मधुर ध्वनी दूर से आते ही मन में पूजा-अर्चना की भावना उदीप्त कर देती है। जबकि तंत्री वाद्यों की मधुर ध्वनी मन में कोमल भावनाओं को झंकृत कर देती है या फिर यहीं झंकार मन को प्रेम, वात्सल्य अथवा संबंधों की मधुरता से मन को भर देता है और ह्रदय खिल उठता है, वहीँ बासुरी की धुन गंभीर वेदनापूर्ण भावों, प्रेम, भक्ति और श्रृंगार आदि से सम्बंधित अनेकानक भावनाओं को उदीप्त करने में सक्षम होती है। लोक सांगीतिक परिपेक्ष्य में चाहे गीत हो या नृत्य हो या नाट्य में छुपे हुए अनंत भावों को अधिक सशक्त, अधिक मधुर और अधिक माधुर्य प्रदान कर देती है।[12] यह लोक संगीत के साथ में लोक वाद्य न केवल स्वर ही नहीं बल्कि लय के अनेकानेक प्रकारों की संगति से अत्यंत अभिव्यक्ति परक बनाकर उनके रसात्मक संचार में वृद्धि करने का माध्यम बनते हैं।

लोक संगीत में ताल व् लय का विशेष महत्त्व होता है नाटक के संवाद गीतों में लय का अत्यधिक महत्त्व है। यह लय हीत रचना के अनुसार अपना विविध स्वरूप ग्रहण करती है। जिस पर संवाद गीतों की रचना में रागों का चयन अनायास हो रचनाकार को भाव तरंगों के परिणाम स्वरूप निर्धारित हो जाता है ठीक उसी तरह लय भी इन संवाद गीतों में अपना स्वरूप अपने आप ग्रहण कर लेती है। जिस तरह के छंद होते हैं उसी प्रकार छंदों के साथ लय चलते हैं, यहाँ के लोकनाट्यों में संवाद गीतों में साज बजाते व् अभिनेता गाते व् नृत्य करते समय अपनी लय कभी नहीं चुकते। लय के साथ-साथ यहाँ सम की भी प्रधानता दिखाई देती है। प्रत्येक संवाद गीत में एक स्थान पर मान होता है जो शास्त्रीय संगीत की भाषा में सम कहा जाता है। सम संगीत का वह मेरुदंड है जहाँ से लय का चक्र शुरू होता है और पुनः वहाँ आकर समाप्त होता है। सम के साथ तिहाई की भी लोक संगीत में दीर्घ परंपरा है। लोक कलाकारों को यह पता नहीं होता है कि तिहाई कहाँ से कैसे लगाना है पर वह गीत गाते समय सही मान का अनुमान कर लेते हैं और बजाने वाला अनजानें में ही सही जगह तिहाई लगा देता है। तिहाई के साथ-साथ ताल पक्ष अत्यंत प्रबल होता है। वाद्यों से ही ताल वाद्य की उत्पति सर्वप्रथम हुई है जिसमें नृत्य पक्ष को सबल मिलता है। परन्तु लय का अत्यधिक महत्त्व है इसलिए लोक संगीत में आनें वाले वाद्यों का दो प्रयोजन होता है एक तो स्वरों के उत्थान पतन के अनुकूल चलना और दूसरा गीत और नृत्य की कायम रखने के लिए ताल देते चलना।[13]

निष्कर्षः-

अतः इस विविधता को देखते हुये हम यह कह सकते हैं कि वाद्यों, तालों की झंकार मानव मन की मधुरता और संघर्ष शीलता के प्रतिक रहे हैं। तांडव में लय-विप्लव की स्थिति का अनुकरणात्मक प्रदर्शन हो अथवा लास्य में सृजन की मधुर अभिव्यक्ति दोनो ही स्थितियों में वाद्य तनमयता की श्रृष्टि करता है। वाद्यों के अभाव में लोक विधाओं की कल्पना अधूरी सी लगती है। यहाँ के लोक कलाओं में कथानक के अनुरूप गीत संगीत सहित रंजनात्मकता के लिए नाटकों में वाद्यों का विशेष महत्व होता है उसी प्रकार नृत्य और लोकनाट्य भी लोकानुरंजन का एक महत्वपूर्ण अंग है, आंगिक विलाश चेष्टाओं

का प्रयोग करते हुए पुरुष अपने नृत्यात्मक, नाट्यात्मक चेष्टाओं अंग संचालक पद से चाल एवं भाव-भंगिमाओं से लय व् ताल एवं संगीत का आश्रय लेते हुए मुद्राओं के द्वारा अपनी कला को और शोभावान और मनोहारी बनाने का प्रत्यत्न करते हैं, अर्थात यहाँ के लोक वाद्य अनेकानेक लोक कलाओं में प्रचुर मात्रा में प्रयोग किये जाने की वजह से इन कलाओं का प्राण होता है। कभी-कभी यह आभास होने लगता है कि गीत ही वाद्य बन गया है एवं वाद्य ही गीत। पूर्वांचल क्षेत्र में लोक वाद्य विविधता को लिए हुए प्रचुर मात्रा में विधमान दिखाई पड़ता है जो यहाँ के लोक गीत, लोक नृत्य, लोक नाट्यों को अधिक रसात्मक, अधिक भावात्मक एवं सौन्दर्यात्मक बनाने में विशेष भूमिका निभाते हैं। 'इति

संदर्भ सूची -

(1) भनावत,महेंद्र; (1971) लोकरंग, देवनागरी पब्लिकेशन, उदयपुर, पृष्ठ – 03

(2) मिश्र,लालमणि; (2005) भारतीय संगीतवाद्य,भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन,नई दिल्ली,पृष्ठ – 170

(3) बसंत; (2017) संगीत विशारद, संगीत कार्यालय हाथरस, (तीसवाँ संस्कारण), पृष्ठ – 575

(4) सक्सेना, मधुबाला;(2013) संगीत मधुबन, अभिषेक पब्लिशर्स चंडीगढ़, पृष्ठ – 182

(5) मिश्र,लालमणि; (2005) भारतीय संगीत वाद्य,भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन,नई दिल्ली,पृष्ठ – 170

(6) मेहता, भानुशंकर; (1999) सो कासी सेइअ कस न, बूक फेथ इंडिया, दिल्ली, पृष्ठ – 52

(7) जायसवाल, राधेश्याम; (2013) भारतीय संगीत के सुषिर वाद्यों का इतिहास, कनिष्क प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ – 30

(8) परांजपे, शरद; (1969) संगीत वाद्य, चौखंभा संस्कृत सीरीज ऑफिस,वाराणसी, पृष्ठ – 69

(9) जगदेकमल; (1958) संगीत चूडामणि, बड़ौदा संस्करण, पृष्ठ – 69

(10) शुक्ल, हरिलाल; (1986) आदिवासी संगीत, श्री माहेश्वरी प्रेस, वाराणसी, पृष्ठ – 29

(11) परांजपे, शरद; (1969) संगीत वाद्य, चौखंभा संस्कृत सीरीज ऑफिस,वाराणसी, पृष्ठ – 80

(12) कुमार, सुरेन्द्र; (2019) भोजपुरी संस्कृति एवं लोकनाट्य में सांगीतिक परंपरा, कनिष्क प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ – 136

(13) कुमार, सुरेन्द्र; (2019) भोजपुरी संस्कृति एवं लोकनाट्य में सांगीतिक परंपरा, कनिष्क प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ – 144

लोक वाद्य नगाड़ा

डॉ0 चित्रा चौरसिया

असिस्टेंट प्रोफेसर, संगीत विभाग
आर्य कन्या डिग्री कालेज, प्रयागराज

सरांश

नगाड़ा या नक्कारा प्राचीन काल का अत्यंत लोकप्रिय वाद्य है, पौराणिक ग्रन्थों में दुन्दुभी नाम से इस वाद्य का उल्लेख मिलता है, नक्कारा, नगारूँ नकाड़ा इसको कई नाम से जाना जाता है, जिसका अर्थ धौसा या भरी है। हिन्दी में नगारा का शुद्ध रूप 'नक्काराः' है, जिसका उर्दू में उच्चारण नक्कारा है। अर्ध वृत्ताकार पकी हुई मिट्टी के ऊपर चमड़े के पर्दे को मढ़ कर दो डण्डियों के माध्यम से इसे बजाया जाता है। नागड़ा वाद्य का प्रयोग लोकनाट्य, लोकगीत, लोकनृत्य आदि में अलग-अलग तरीके से होता है।

मुख्य शब्द-
नगाड़ा, नक्कारची, बम, ताल, लोकनाट्य।

नगाड़ा वाद्य प्राचीन काल में "संग्राम के समय उत्तेजना के लिए जय घोष के लिए, मंगलकार्यो के समय, राजप्रासादों और मन्दिरों में प्रातः सायं बजाया जाता था। संगीत रत्नाकार में स्पष्ट लिखा है-

"मंगल विजये चैव वाघते देवतालये" अर्थात् यह मंगल, विजय और देवता के मन्दिर में बजाया जाता है, संगीत रत्नाकर के अनुसार इसे आम की लकड़ी से बनाना चाहिए।

नगाड़ा को दमामा नाम से भी जाना जाता है, विशाल नक्कारा को दमामः कहा जाता है, "दमाँ से बना दमामा एक फारसी शब्द है, जिसका अर्थ है

बहुत तेज आवाज करना, दहाड़ना, चिल्लाना आदि। ''संस्कृत की डम्, धम् समानार्थी धातुएँ है, जिनमें ध्वनि का भाव है। धम् में मूलतः ठोकने, बजाने, घूँसा मारने का भाव है। दमामा को पीटा ही जाता है। कबीर ने भी कई जगह ब्रहमनाद के लिए अनहद् बाजा या गगन दमामा शब्द का प्रयोग किया है'' अरबी में 'नक्र' नामक एक धातु है, जिसका अर्थ पीटना या ठोकना है। नगाड़ा जोड़ों में ही बजाये जाते है, किन्तु वृहद नगोड़ को अकेले भी बजाया जाता है।

यद्यपि आज भी अधिकांश मंदिरों में नगाड़ा बजाने की परंम्परा कायम है, ताल वाद्य के रूप में नगाड़ा लोक संगीत एवं लोक नाट्य में बजाया जाता है। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश व लोकनृत्य में नगाड़े की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका है। क्योंकि नौटंकी का ढाँचा पूरी तरह छन्दबद्ध होता है, इसलिए ऊँचे स्वर वाला नक्कारा ही इन छन्दों के लिए अनुकूल संगीत वाद्य है। ''नगाड़ा एक वादक द्वारा दो डंडियों से बजाया जाता है, बड़ा नगाड़ा नीचे स्वर से तथा छोटा नगाड़ा ऊँचे स्वर से मिलाया जाता है, इसके स्वर की ऊँचाई के लिए प्रायः इसे आग में सेंकते है तथा बड़े नगाड़े की सतह में एक छेद होता है, जिसमें पानी डालकर ऊपरी मढ़ी खाल तक पहुँचाया जाता है। जिसके कारण उसका स्वर नीचा हो जाता है'' नगाड़ा अर्ध वृत्ताकार पकी हुई मिट्टी का बना होता है, जिसके ऊपरी सतह पर भैंस की खाल मढ़ी जाती है, इस चमड़े से बने पर्दे पर लकड़ी की दो छोटी छड़ों से प्रहार किया जाता है। जिससे ज़ोरदार ध्वनि उत्पन्न होती है। प्रायः मध्यम आकार के नगाड़े ज्यादा प्रचलित है, किन्तु प्रमुख रूप से तीन प्रकार के नगाड़े प्राप्त होते हैं।

1. वृहद नगाड़ा गोल गुम्बददार खोल को भैंसे के चमड़े में मढ़ा जाता है, चमड़े को टाइट करके मढ़ने के लिए एक चमड़े का रिंग बैठाया जाता है, जिस पर नगाड़ा सीधा टिका रहता है; यह रिंग से मुँह पर मढ़े चमड़े की रस्सी या ताँत में जाल की तरह बुनी रहती है, जिससे नगाड़े का चमड़ा कसा रहता है। बजने वाले अथवा पीटने वाले भाग में लेप लगाया जाता है, जो कि करंज तेल और गंधक का बना होता है। इस नगाड़े की तली में एक छोटा छिद्र होता है, जिसमें इस वृहद नगाड़े को बजाने से हवा इसी छिद्र के द्वारा निकलती है। इसकी आवाज अत्यन्त तेज़ होती है, जिसकी गूँज बहुत दूर तक जाती है, इसे लकड़ी से बने बड़े मोटे डंडे से बजाया जाता है, यह नगाड़ा संदेश देने के लिये युद्ध के आरंभ में बजाया जाता था।

मध्यम नगाड़ा- इस नगाड़े की भी बनावट वृहद नगाड़े के समान होती है, किन्तु मध्यम आकार के होने के कारण इसे गले में टाँगकर तथा ज़मीन पर तिरछा रखकर लकड़ी की डंडी से बजाया जाता है। इसका प्रयोग मन्दिरों, उत्सवों, आदिवासी नृत्यों, व शुभ अवसरों में होता है।

छोटा नगाड़ा-इस नगाड़े का आकार मध्यम नगाड़े से भी छोटा होता है, जिसको कमर में टाँगकर बजाया जाता है, इसका मुँह छोटा होने के कारण इसकी आवाज़ बड़े नगाड़ों की आवाज से कम होती है। यह संताली, खोरठा, हो आदि गीत के संगति में प्रयोग होता है। नगाड़े में कहरवा, दादरा ताल के अतिरिक्त विभिन्न कई तालों का प्रयोग गीत रचना के आधार पर होता है, किन्तु नगाड़े का प्रमुख बोल इस प्रकार हैः-

नगाड़े के बोल-

1. तुर्र ताकी घेना ताकी घेना ताकी ताक
2. तुर्र ताकी घेना घेघे ताकी घेना ताक
3. तुर्र ताकी ताकी ताकी घेना ताकी
4. तुर्र ताकी धागी नाड़ा
5. तुर्र ताकी ताती नाड़ा
6. धागी नाड़ा धागी नाड़ा ताती नाड़ा धागी नाड़ा
7. धागेन धाती नाड़ा, तागेन धाती नाड़ा

एतिहासिक तथ्य के अनुसार नगाड़ा का प्रयोग संदेश देने से जुड़ा है, शासन द्वारा प्रमुख घोषणाएं प्रजा तक पहुँचाने के लिए किया जाता था। इन नगाड़े को बजाने वाले को नक्कारची कहा जाता था, सरकार द्वारा घोषणा किये जाने पर ये नक्कारची नगाड़े बजाते और सेनाए कूच किया करती थीं। मुगलकालीन दरबार में नक्कारखाना होता था, जिसमें अहम् फैसले सरकार द्वारा सुनाए जाते थे, और इन फैसलों की तरफ ध्यान आकर्षित करने के लिए जोर-जोर से नक्कारे बजाए जाते थे, कभी-कभी सज़ा देने तथा कुर्की कराने के लिए भी नगाड़े बजाए जाते थे।

पुराण काल से बेणेश्वर धाम में नदियों से बने बेणेश्वर टापू पर श्री कृष्ण के लीलावतार संत माव जी महाराज के समय से चली आ रही परम्परानुसार प्रत्येक वर्ष पौष पूर्णिमा से माघ कृष्ण पंचमी तक प्रतिदिन भोर में चार बजे नगाड़े बजते है, जिसको सुनते ही भक्तजन बेणेश्वर में डुपकी लगाते हैं, मान्यतानुसार भोर में नगाड़े बजने से जहाँ परिसर में रहने वाले किसी भी श्रद्धालु का अनिष्ट नहीं होता है। नगाड़ा प्रतिदिन रात दस बजे तक मेला की समाप्ति तक बजता रहता है। रात में नगाड़ा बजना यह चेतावनी देता है कि बेणेश्वर धाम में जो भी श्रद्धालु परिसर में है वो वही पीठाधीश्वर के सानिध्य में रह कर वहीं रात गुजारें, ऐसी परम्परा का पालन करते हुए आज भी वहाँ भोर और रात में नगाड़े बजाए जाते हैं।

मंदिरों, दरबारों के अतिरिक्त नगाड़ों का प्रयोग अनेकों लोकनाट्य, लोकनत्य व लोकगायन में भी किया जाता है। उत्तर प्रदेश के सोनभद्र जिले में, ''घसिया' जाति के आदिवासी ढोल, नगाड़ा, शहनाई आदि बजाकर डोमकच नृत्य करते है, तथा उत्तर प्रदेश में होली में होने वाले उत्सव में नृत्य या गीत में नगाड़े का प्रयोग प्रमुख रूप से होता है। झारखण्ड का फगुआ नृत्य, मर्दानी झूमर, बंगला झूमर, खखार नृत्य, दोसमी नृत्य, सकरात नृत्य, ''बा'' नृत्य खड़िया नृत्य, उराँवो का नृत्य आदि में नगाड़ा अत्यन्त प्रमुख व लोकप्रिय वाद्य है, जो कि संगत के रूप में

प्रयोग होता है।

मध्यप्रदेश के कोल जाति में बारात के शुभागमन के समय युवतियाँ कलश लेकर नगाड़े के सामने बिरह टेरती हुई गायन व बिरहा नृत्य करती हैं। राजस्थान के भरतपुर और अलवर जिले तथा हरियाणा जिले में 'बम' नृत्य अत्यन्त लोकप्रिय है, यह नृत्य पुरुषों द्वारा नई फसल के उगने व फाल्गुन की मस्ती पर किया जाता है। जिसमें नगाड़े, थाली, चिमटा आदि वाद्य यन्त्रों की संगत होती है। ब्रज में मथुरा व भरतपुर में भी बम (नगाड़ा) रसिया नृत्य को बड़े भाव के साथ किया जाता है, जिसमें समूह महिलाएं घूँघट करके नृत्य करती है, और पुरुष कई नगाड़ों का एक साथ वादन करते है। "बम" एक बडा नगाड़ा होता है, जिसे मोटे डण्डे के द्वारा दोनो हाथों से पीटकर इसका वादन किया जाता है, 'बम रसिया' नामक गायन भी इस नगाड़े के साथ किया जाता हैं। गोंड, बैगा जनजाति के लोग 'करमा नृत्य' करते है तथा नगाड़े, ढोल, मादल आदि वाद्यो का

शिमला के पारम्परिक पहाड़ी लोकनृत्य की शैलियों में नाटी नृत्य नगाड़े व ढोल वाद्ययन्त्र के साथ किया जाता है। फागुन में धलंडी के अवसर पर गुजरात में धेरैया लोग तथा राजस्थान में रामलीलाओं, शेखावटी और कुमाचनी में नगाड़े का प्रयोग होता है। "ताँबा, पीतल, लोहा आदि धातु से निर्मित नगाड़े को वादक सहित दो चक्कों की गाड़ी पर रख कर विग्रह (मूर्ति) के पीछे बजाते व खींचते हुए ले जाते हैं। कभी-कभी इसे हाथी पर स्थापित कर बजाते हुए जूलूस के आगे-आगे चलते है। रणभूमि हेतु प्रत्युक्त भेरी, दुण्दुभिं आदि, इसी श्रेणी के वाद्य है, और शत्रुदल द्वारा विपक्ष के इन लय वाद्यों को हस्तगन कर लेने का तात्पर्य "विजय" माना जाता था।

भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन (डॉ0 अरूण कुमार सेन) पृष्ठ संख्या-152

ताल वाद्य कचहरी में तथा लोक संगीत और लोकनाट्य में नगाड़े का अपना प्रमुख स्थान है। परम्परागत लोकनृत्य, लोकवाद्य व नाट्य के अतिरिक्त नगाड़े का प्रयोग हिन्दी व भोजपुरी फिल्मी गीतों में भी मिलता है। हिन्दी सिनेमा में साठ से अस्सी के दशक में कई फिल्मी लोकगीतों में बखूबी नगाड़ों का प्रयोग सुनने को मिलता है, जैसे—

1. फिल्म-नवरंग- चल जा रे हट नटखट (गाने के मध्य में)
2. फिलम-ज्वैलथीफ- होठो पे एसी बात (बड़े व छोटे नगाड़े का प्रयोग)
3. फिल्म-आये दिन बहार के-खत लिख दे साँवरिया के (गाने के आरम्भ में)
4. फिल्म-समाधी-काँटा लगा, बंगले के पीछे (गाने के आरम्भ में)
5. फिल्म- अनोखी रात - मेरी बेरी के बेर मत तोड़ो (गाने के आरम्भ में)
6. फिल्म- गंगा जमुना - नैन लड़ जइए तो मनवा (गाने के अंत में)
7. फिल्म-मेरा गाँव मेरा देश- आया-आया अटरिया पे (सुन्दर तरीके से अन्तरे के)
8. फिल्म- दो दिल- बम बबम बम लहरी (गाने के आरम्भ व मध्य में)
9. फिल्म-खोटा पैसा-होली है होली सखी (गाने के आरम्भ में)
10. फिल्म-अर्पण-लिखने वाले ने लिख डाले (शहनाई के साथ नगाड़े का सुन्दर प्रयोग)
11. फिल्म-मेरा गाँव मेरा देश- हाय शरमाऊँ ऐसे कैसे मैं बताऊँ (आरम्भ व मध्य में)
12. फिल्म-चिराग-छाई बरखा बहार (गाने आरम्भ

व मध्य में)

13. फिल्म- जब वी मेट- नगाड़ा नगाड़ा बजा (गाने के आरम्भ में)

नये गानों की अपेक्षा पुराने फिल्मी गानों में नगाड़े का प्रयोग अधिक मिलता है। ऐसा नहीं है कि 90 के दशक और आज के समय नगाड़े का प्रयोग नहीं है, किन्तु पहले की अपेक्षा कम दिखता है। डिजिटल और इलेक्ट्रानिक वाद्ययन्त्रों के कारण नगाड़े की वास्तविक आवाज छुप गई है। कम्प्यूटर के माध्यम से नगाड़े व अन्य वाद्य बजने लगे है। किन्तु ग्रामीण क्षेत्र व लोक संगीत व अन्य सांस्कृतिक पर्वो में नगाड़े का प्रयोग आज भी कायम है, जब लोक वाद्य के विभिन्न वाद्य को उचित प्रोत्साहन देकर हम उनको सुरक्षित व संरक्षित रखने का प्रयत्न कर रहें है तो यह भी आवश्यक है, नगाड़े को भी सुरक्षित रखें यह ऐसा वाद्य है जो कि प्राचीन समय से लेकर आजतक संगीत व संस्कृति से जुड़ा हुआ है।

सन्दर्भः-

- भारतीय संगीत का इतिहास - (पृष्ठ सं0 171) ठाकुर जय देव सिंह
- शब्दों का सफर' (ब्लाग) ढोल की पोल, नगाड़े की क्यों नहीं? MondayFebruary 18, 2008
- भारतीय लोक वाद्य (पृष्ठ संख्या 103) डॉ0 कौशल कुमारी

पुस्तकें-

- लोक वाद्य- डॉ0 एल0डी0 जोशी
- लोक साहित्य की भूमिका- डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय
- भारतीय संगीत का इतिहास- ठाकुर जयदेव सिंह
- भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन- डॉ0 अरूण कुमार सेन
- भारतीय लोक वाद्य-डॉ0 कौशल कुमारी
- संगीत विशारद- लक्ष्मी नारायण गर्ग
- ·https://shabdavali.blogspot.com
- इण्टरनेट व वीकीपीडिया के माध्यम से।
- चित्र -इण्टरनेट व photosbazar.com के माध्यम से।

सितार वादन में बन्दिशों के विभिन्न प्रकार (पारम्परिक एवं समसामयिक सन्दर्भ में)

डॉ गौरव शुक्ल

सहायक आचार्य सितार, संगीत विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

सारांश

भारतीय संगीत के अंतर्गत सितार अत्यंत मधुर एवं लोकप्रिय वाद्य है। सितार की उत्पत्ति और विकास के विषय में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं कुछ विद्वानों का मानना है अमीर खुसरो नामक संगीतज्ञ ने इस वाद्य को निर्मित किया प्रारंभिक समय में तीन तार के कारण इसका नाम सहतार पड़ा। उस समय यह संगत वाद्य यन्त्र रूप में प्रयोग में लिया जाता था बाद में सहतार को सेनिया घराने के अमृत सेन, निहाल सेन, सूरत सेन इन तीन भाइयों ने विकसित और संवर्धित किया और स्वतंत्र वादन वाद्य के रूप में स्थापित किया प्रारंभिक समय में स्वर, लय, ताल एवं वीणा के बोलो के माध्यम से गत का निर्माण किया गया जिसे बंदिश भी कहा गया सितार में सर्वप्रथम बंदिश का प्रारंभ सेनिया घराने के फिरोज खान द्वारा फिरोजखानी गत से हुआ और जन रंजन के अनुसार इसमें परिवर्तन होता रहा आज विश्व पटल पर भारतीय संगीत को स्थापित करने में सितार की अपनी महत्वपूर्ण भूमिका रही हैं। आज सितार पर बहुत प्रकार की बन्दिशों का प्रयोग किया जा रहा है जिसे मैंने अपने इस लेख में प्रस्तुत किया है

बीज शब्द

सितार, गत, बंदिशं, ताल, स्वर

बन्दिश का अर्थ है, स्वर, लय और ताल युक्त रंजक व सुन्दर स्वर-रचना या शब्द-रचना। चाहे शास्त्रीय राग संगीत हो, चाहे लोक संगीत और सुगम संगीत, बन्दिश एक प्रकार की आकृति या दर्पण है, जिसमें रागों के स्वरूप, तत्कालीन रीति-रिवाजों की शक्ल और भगवद् स्वरूप की झाँकी मिलती है। रागों के सूक्ष्म सौन्दर्य और भिन्न-भिन्न रूपों को व्यक्त करने तथा श्रोताओं और रसिकों के ग्राह्य बनाने हेतु संगीत में बन्दिश का विधान बनाया गया है। चूंकि बन्दिश शब्द साहित्य से सम्बन्धित है, इसीलिए संगीत में काव्य और साहित्य का अटूट सम्बन्ध है। काव्य के शब्द या शब्द समूह और संगीत के सुर, लय और ताल के मेल से बन्दिश का निर्माण किया जाता है।

बन्दिश को कलाकार चीज़ भी कहते हैं, जो संगीत के स्वरूप को साकार करती है। ईसा पूर्व चैथी शताब्दी के ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में गन्धर्व या संगीत के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है- गान्धर्वमिति तज्ज्ञेयं स्वर-ताल पदात्मकम् अर्थात् गान्धर्व उसे कहते हैं, जिसमें स्वर, ताल और पद का संग्रह होता है।

एक प्रश्न यह उठता है कि कण्ठ संगीत में स्वर और लय के साथ शब्द और पदों को व्यक्त करने की क्षमता होती है, अत एव कण्ठ संगीत या गायन की रचनाएँ बन्दिश के अन्तर्गत आती हैं? तो क्या तन्त्र वाद्यों या अवनद्ध वाद्यों पर बजाए जाने वाली सामग्री को बन्दिश के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता? ऐसा नहीं है, क्योंकि स्वर, लय और तालबद्ध रचनाएँ ही बन्दिश कहलाती हैं। चाहे कण्ठगत संगीत गायन हो या तन्त्र वाद्यों की रचनाएँ सभी बन्दिश के अन्तर्गत आती हैं। गायन में स्वर, ताल के साथ पद भी रहता है। अतएव ये गेय रचनाएँ कहलाती हैं। तन्त्र वाद्यों में स्वर, लय और ताल रहता है, इसी प्रकार ताल वाद्यों में बोल या पाटाक्षर रहते हैं, इसीलिए तन्त्र वाद्यों और ताल वाद्यों की रचनाएँ गत कहलाती हैं। अतः ये सभी रचनाएँ बन्दिश हैं। इसको दूसरे शब्दों में इस प्रकार भी व्यक्त कर सकते हैं- बन्दिश या गत एक ऐसा घेरा या चैखटा है, जिसके अन्तर्गत स्वर, लय, ताल तथा पद को लेकर एक आकृति बनाई जाती है, जिससे राग विशेष का स्वरूप सामने आता है।

आधुनिक प्रचलित समस्त तन्त्र वाद्यों में सितार अत्यंत लोकप्रिय साज़ है। एक विषय के रूप में विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय तक तथा अधिकांश संगीत समारोह में इस वाद्य का प्रचार-प्रसार है। विद्वानों के मतानुसार सितार का आकार ईरानी तम्बूर और ऊँद के समान है। ऊँद एक पर्शियन वाद्य है। सितार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक भ्रान्त धारणाएँ हैं। अनेक विद्वानों के अनुसार सितार ईरानी अथवा पर्शियन वाद्य है और मुसलमानों के भारत आगमन पर यह वाद्य भारत में आया। तेरहवीं शताब्दी में अलाउद्दीन खिलजी के समय के प्रसिद्ध कवि एवं संगीतज्ञ अमीर खुसरो ने इस वाद्य का निर्माण किया और इसका नाम सेहतार रखा, फारसी में सेह का अर्थ तीन होता है, अतः इस तीन तार के वाद्य को सेहतार कहा जाता था। शनैः-शनैः इस तन्त्र वाद्य का विकास संगीतज्ञों द्वारा होता रहा। इसमें तार और सारिकाओं को बढ़ाते गए, तीन से चार, छः तथा सात बाद में उस्ताद इमदाद खाँ ने तरब के तारों का प्रयोग कर सितार के वर्तमान स्वरूप को प्रकट किया। वीणा के आधार पर प्राप्त सामग्री का वादन सितार पर सन्तोष प्रद सिद्ध हो सका, इसलिए सितार वाद्य की नई शैली गत का विकास हुआ। यद्यपि मूल रूप में गत गायन की शैलियों से प्रभावित था, किन्तु मिजराब के विशेष प्रयोगों के कारण गत की रचना गायन से भिन्न रूप में होने लगी। सर्वप्रथम सेनिया घराने के उस्ताद फिरोज खाँ ने फिरोजखानी गत का निर्माण किया। इसके साथ संगत पखावज वाद्य द्वारा होती थी। इसके बाद सितार में प्रयुक्त बन्दिशों के निर्माण कर्ताओं में उस्ताद निहालसेन के बेटे उस्ताद अमीर खाँ के नाम से अमीरखानी गत चली, कुछ ही दिनों में इसका वादन समाप्त हो गया और मसीत खाँ ने नई शैली की गत मसीतखानी का आविष्कार किया, जिसका वादन वर्तमान समय में भी हो रहा है। यह गत तीनताल की बारहवीं मात्रा से सदैव प्रारम्भ होती है और इसके बोल निश्चित होते हैं, जो इस प्रकार हैं- दिर दा दिर दा रा दा दा रा दिर दा दिर दा रा दा दा रा। इसकी लय विलम्बित होती है। वर्तमान समय में सितार वादन में आलाप के पश्चात विलम्बित लय में इसका वादन होता है। इसी क्रम में सेनिया घराने के ही बहादुर खाँ के शिष्य गुलाम रजा खाँ ने रजाखानी गत का प्रारम्भ किया। यह द्रुत लय तीनताल में बजाई जाती है। इसके बोल निश्चित नहीं होते। यह गत वर्तमान समय में बहुत ही लोकप्रिय है। इसके अतिरिक्त और भी तालों में बन्दिशों का प्रयोग सितार वादन में किया जाता है, जैसे एकताल, रूपक, पंचमसवारी आदि। इस प्रकार हमने देखा कि सितार वादन में प्रारम्भ से आज तक बन्दिशों के विभिन्न प्रकारों का प्रयोग होता आ रहा है और जनारंजन को देखते हुए यह नवीन बन्दिशों का निर्माण भविष्य में भी होता रहेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः-

वसु, डॉ0 पुष्पा, राग रूपान्जलि, रत्ना पब्लिकेशन्स, वाराणसी, वर्ष 2007।

शर्मा, डॉ0 महारानी, संगीत मणि, श्री भुवनेश्वरी प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष 2012।

फर्रूखाबाद घरानाः वंशावली, शिष्य परम्परा एंव वादन शैलीगत विशेषताएं

डॉ. प्रियंका अरोड़ा

सहायक प्राध्यापक, संगीत विभाग
गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर

सारांश

तबला का फर्रूखाबाद घराना तबला-वादन की एक प्रतिष्ठित परम्परा को प्रदर्शित करता है। इस घराने के प्रवर्तक हाजी विलायत खां जी ने लखनउ घराना की प्रशिक्षण पद्वति में परिवर्तन कर एक ऐसे घराने की नींव रखी, जिसकी शिष्य परम्परा आज अपनी समृद्ध विरासत का परिचय दे रही है। इस घराने के विविध कलाकारों ने अपनी प्रतिभा व परिश्रम के फलस्वरुप तबला वादन में ना केवल महती योगदान दिया अपितु दस वाद्य की लोकप्रियता को शीर्ष तक भी पहुँचाया।

बीज शब्द

तबला, घराना, फर्रूखाबाद घराना, प्रवर्तक, शिष्य

अवनद्ध वाद्यों में जो वाद्य संगीत में सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ वह तबला है। इसकी लोकप्रियता इससे सम्बन्धित विविध घरानों की स्थापना से प्रमाणित की जा सकती है। संगीत के क्षेत्र में घराना किसी कला के रक्षण हेतु कार्य करता है और उस घराने की वंश परम्परा अपनी कला को पीढ़ी दर पीढ़ी आगे पहुँचाती है। ''वस्तुतः जब भी कोई कला विद्या विकसित व परिष्कृत होते-होते इतनी सुसंस्कृत और समृद्ध हो जाती है कि कला मर्मज्ञ जनसमाज में उसकी विशेष मान्यता व प्रतिष्ठा हो जाती है, तब उसकी एक परम्परा चल पड़ती है। कला विद्याओं की इस परम्परा में जहां कलाकारों का इतिहास और उनकी कलात्मक उपलब्धियों का समावेश रहता है, वहीं पीढ़ी दर पीढ़ी कला की प्रायोगिक उन्नति के आधार पर भिन्न-भिन्न शैलियों की सृष्टि और प्रगति भी समाविष्ट रहती है।'' अतः घराना संगीत की किसी कला विशेष को मात्र संरक्षण प्रदान नहीं करता बल्कि उसके विकास में भी महत्वपूर्ण सोपान सिद्ध होता है।

फर्रूखाबाद घराना हाजी विलायत अली खां द्वारा प्रतिष्ठित किया गया। उन्होने लखनउ घराना के सुप्रसिद्ध बख्शू खां जी का शिष्यत्व ग्रहण किया और तबला की शिक्षा प्राप्त की। इनकी संगीत के प्रति श्रद्धा व प्रेम से प्रभावित होकर बख्शू खां जी ने इन्हें अपना दामाद बनाया। विलायत अली जी ने लखनउ घराने की परम्परागत वादन शैली में मूल परिवर्तन करके नई पद्वित की रचनाओं का निर्माण किया। इन्हें दहेज में 12

कायदे भी दिए गए। शिक्षा पूर्ण होने पर इन्होंने फर्रूखाबाद वापिस लौट कर तबले का प्रचार किया और परिवर्तित पद्वति के आधार पर फर्रूखाबाद घराने की नींव रखी। इनके नाम के आगे 'हाजी' हज यात्रा करने के उपरान्त लगा। इन्होंने सौ बार हज यात्रा की और खुदा से श्रेष्ठ वादक होने की विनती की, जो कि निस्संदेह स्वीकृत भी हुई। फर्रूखाबाद घराने की रचना तबला वादन के श्रेत्र में मील का पत्थर साबित हुई। ''इस घराने का उदय काल अंदाज़े से 1700 ई. से सन् 1750 ई. के मध्य माना है''। 1857 में हाजी साहिब रामपुर के नवाब युसूफ अली खां के दरबार में नियुक्त हुए। यहीं पर इनकी पीढ़ियां भी आगे से आगे चलती गईं।

विलायत अली खां जी की वंश परम्परा का अध्ययन किया जाए तो ज्ञात होता है कि इनके चार पुत्र-निसार अली खां, अमान अली खां, हुसैन अली खां और नन्हें खां हुए। इनके सबसे बड़े पुत्र निसार अली खां जी ने पखावज और तबला वादन में विद्वता प्राप्त की। हुसैन अली और मुनीर खां निसार अली के शिष्य रहे। हुसैन अली ने अपने बड़े भाई के अतिरिक्त अपने पिता से भी वादन सीखा। हाजी साहिब के पुत्र अमान अली भी तबला वादन में निपुण थे। इनके चैथे सुपुत्र उस्ताद नन्हें खाँ एक नामचीन कलाकार हुए हैं। नन्हें खाँ जी के पुत्र मसीत खाँ और मसीत खाँ जी के पुत्र उस्ताद करामतउल्लाह खाँ जी की प्रसिद्धि देश-विदेश तक फैली। उस्ताद करामतउल्लाह खाँ जी के वंश परम्परा में इनके पुत्र साबिर खाँ जी स्वंय तो इस घराने की वृहद शाखा हैं हीं इनके तीन पुत्र आरिफ खाँ, आसिफ खाँ और आमीन खाँ भी फर्रूखाबाद घराने की आभा को द्विगुणित कर रहें हैं।

हुसैन अली खाँ जी के शिष्य उस्ताद मुनीर खाँ गुणी तबला वादक तो थे ही साथ ही सम्मानित शिक्षक भी थे। ''आपने दिल्ली घराने के उस्ताद बोली बख्श से भी तबला की शिक्षा प्राप्त की थी। आपके शिष्यों में उस्ताद अमीर हुसैन खाँ, उस्ताद गुलाम हुसैन खाँ, उस्ताद अहमद जान थिरकवा, उस्ताद नासिर खाँ, उस्ताद हबीबुदीन खाँ मेरठ, उस्ताद शमशुदीन खाँ बम्बई आदि प्रमुख हैं''। हाजी विलायत खाँ जी की शिष्य परम्परा में उनके साले मियां सलारी खां, इलाही बख्श, इमाम बख्श चूड़ियां वाले, मुबारक अली का नाम आता है। मियां सलारी खां के शिष्यों में मुस्तफा हुसैन, गुलाब हुसैन के नाम प्रमुख हैं। फैयाज़ खाँ और युसूफ खाँ, इमाम बख्श चूड़ियां वाले के शिष्य रहे। फर्रूखाबाद घराने के शिष्य परम्परा की दीर्घ सूची इस घराने की व्यापक परिधि को दर्शाती है, जिनमें सम्मिलित कई नाम इस घराने की विरासत और शोभा में अभिवृद्धि करते हैं, जिनमें उस्ताद छुन्नू खाँ, जहांगीर खाँ ;इन्दौरद्ध, मुरारीलाल ;बरेलीद्ध, रहीम बख्श, वासुदेव प्रसार, श्यामलाल पाण्डेय, अज़ीम खाँ, रायचन्द बोरल, कोमलेश मित्रा, राबिन बासू, हेमेद्र सरकार, निर्मल बैनर्जी, उप्पल घोष, मानस कुंदू, चंचल भट्टाचार्य, विश्वजीत साहु, अजीत पाठक, अरविन्द कुमार पाण्डेय, निखिल घोष, पंढरीनाथ नागेश्कर, ज्ञान प्रकाश घोष, पण्डित आनिन्दो चैटर्जी, पण्डित नयन घोष, रिम्पा शिवा, सुनयना घोष, सिद्धार्थ चैटर्जी, शुभंकर बैनर्जी, अनुब्रत चैटर्जी, संदीप घोष, विवेक पाण्डेय आदि प्रमुख नाम हैं।

उपर्युक्त हस्ताक्षरों में अहमद जान थिरकवा 20वीं शताब्दी के वरेण्य तबला वादकों में से एक हैं। इनका जन्म उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद में 1891 को एक सांगीतिक परिवार में हुआ। 12 वर्ष की आयु में ही इन्होंने, उस्ताद मुनीर खाँ जी से तबले की तालीम प्राप्त की और 16 वर्ष की उम्र में अपनी पहली सांगीतिक प्रस्तुति दी। वादन के समय इनकी उंगलीयां मानो तबले पर थिरकती थीं, इसीलिए इनके नाम के साथ थिरकवा शब्द जुड़ा। वादन पद्वति में नियमों का अनुपालन, उनकी शैली की विशेषता थी। एकल वादन और संगति में प्रवीण उस्ताद अहमद जान थिरकवा अपनी प्रस्तुति में, मोहरा, गत का प्रयोग अत्यन्त दक्षता से करते थे। रामपुर दरबार में संगीतकार नियुक्त होने के अतिरिक्त इन्होंने भातखण्डे कॉलेज ऑफ म्यूज़िक में भी अपनी सेवाएं दी। तबला वादन में इनके अवदान को प्रमुख रखकर भारत सरकार ने इन्हें पदम भूषण से सम्मानित

किया।

उस्ताद अमीर खाँ, उस्ताद मुनीर खाँ जी के शिष्य थे। इनका जन्म 1899 ई को बखैदा गाँव में अहमद बख्श खाँ जी के घर हुआ। उस्ताद मुनीर खाँ, उस्ताद अमीर खाँ जी के मामा थे। इनकी वादन शैली इतनी परिष्कृत थी कि कठिन बोलों को भी यह आसानी से बजा लेते थे। इनकी रचनाएं अधिकतर द्रुत लय में मिलती हैं। इन्हें अपने उस्ताद के साथ विदेश में भी तबला प्रस्तुति का अवसर मिला। इतना ही नहीं, 24 वर्ष की उम्र में अमीर हुसैन जी ने नरेश चक्रदार सिंह के सामने देकर प्रशंसा व पुरस्कार प्राप्त किया। उस्ताद हुसैन जी एक कुशल वादक होने के साथ-साथ प्रबुद्ध गुरु भी थे। मुम्बई में ही इनके 500 से अधिक शिष्य हैं, जो फर्रूखाबाद घराना की कला को विस्तृत कर रहें हैं।

उस्ताद करातमउल्ला खाँ साहिब, उस्ताद मसीत खाँ जी के पुत्र और नन्हे खाँ जी के शिष्य थे। इस महान विभूति का जन्म 1918 ई को उत्तर प्रदेश के रामपुर गाँव में हुआ। मंच प्रदर्शन के साथ-साथ इन्होंने कलकता के ऑल इण्डिया रेडीयो में भी वादन प्रस्तुति के कार्यक्रम दिए। मंच पर अपने घराने की शैली को पूर्णरुपेण वैसे ही प्रस्तुत करना आपकी विशेषता थी। इतना ही नहीं तबला उपज का काम भी यह मंच पर ही करते थे। वादन विद्या के अतिरिक्त इन्हें गायन का भी पर्याप्त ज्ञान था। खाँ साहिब की सोलो वादन में ताल धमार तथा तीनताल में उपलब्ध रिकार्डींग संगीत के प्रेमीयों के लिए अमूल्य निधि है।

पण्डित ज्ञान प्रकाश घोष बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न शख्सीयत थे। इनका जन्म 8 मई 1909 ई को कोलकाता शहर में हुआ। इन्होंने तबला के अतिरिक्त हारमोनियम वादन में भी दक्षता प्राप्त की। संगीत के अतिरिक्त पण्डित जी को खेल और चित्रकारी का भी शौक था। कलकता विश्वविद्यालय से इन्होने पाली भाषा का अध्ययन किया, जिसमें इन्हें प्रथम स्थान प्राप्त हुआ। पण्डित घोष बंगाल के संगीत-संसार के मसीहा कहलाए। उन्होने गायन और तबला वादन में कई नई बन्दिशों की रचना की। इन्होंने हबीबुद्धीन खाँ साहिब से अजराड़ा घराने की पद्वति को सीख कर उसे आगे अपने शिष्यों को भी सिखाया। अतः फर्रूखाबाद घराने में अजराड़ा शैली भी समाविष्ट हुई। 'सौरव एकैडमी ऑफ म्यूज़िक' की स्थापना के अतिरिक्त ज्ञान प्रकाश जी ने जादूभाटा, राजलक्ष्मी, अंधारे आलो, श्रीकांत जैसी बंगाली फिल्मों में संगीत दिया। उनकी सबसे उत्कृष्ट रचना 'चतुरांग' थी, जिसमें तबला, पखावज, तराना और कत्थक का दुर्लभ संयोग था। एक गुरु के रुप में अपने कर्तव्य के प्रति उनकी निष्ठा इतनी प्रबल थी कि वह अपने शिष्यों के रहने का प्रबन्ध उन्होने अपने घर में ही किया था ताकि उनके प्रशिक्षण में को अवरोध ना आए। 1974 में पण्डित ज्ञान प्रकाश घोष जी को संगीत नाटक अकादमी फैलोशिप और 1984 में पदम भूषण सम्मान प्राप्त हुआ।

फर्रूखाबाद घराने के अन्य विद्वान कलाकारों में पण्डित निखिल घोष जी का नाम आता है। 28 दिसम्बर 1918 ई को बरीसाल गाँव में संगीत के एक लब्ध प्रतिष्ठ व्यक्तित्व - अजय कुमार घोष जी के घर इनका जन्म हुआ। निखिल घोष जी ने गायन तो अपने पिता जी से सीखा और तबला वादन अहमद जान थिरकवा, अमीर हुसैन, ज्ञान प्रकाश घोष जैसे गुणीजनों से सीखा। इन्होने अपने समय से कई प्रसिद्ध कलाकारों जैसे उस्ताद फैयाज़ खाँ, उस्ताद हाफिज़ अली खाँ, बाबा अलाउद्धीन खाँ, पण्डित ओमकार नाथ ठाकुर, उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ, पण्डित पन्ना लाल घोष, पण्डित रवि शंकर, उस्ताद अली अकबर खाँ, उस्ताद विलायत खाँ, पण्डित भीमसेन जोशी, पण्डित निखिल बैनर्जी, पण्डित जसराज, उस्ताद अमजद अली खाँ, पण्डित शिवकुमार शर्मा आदि के साथ मंच पर तबले की संगत भी की। पण्डित जी ने 1956 में 'संगीत महाभारती' नाम से एक स्कूल भी शुरू किया, जिसमें शास्त्रीय संगीत की शिक्षा दी जाती थी। इनकी कला का क्षेत्र केवल भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों तक प्रसारित हुआ।

"Ghosh performed on many stages in India and abroad and performed solo at music festivals of Aldeborough (1958),

Edinburg (1958)] Bratislava (1980,1982)] Helsinki (1985)] Rome (1985)] Athens (1985) and at UNESCO, Paris in 1978. He made improvements in the conventional music notation system and wrote a book detailing his system under the tittle, "Fundamentals of Raga and Tala : with a new system of Notation"[4]

इसके अतिरिक्त घोष जी ने यूरोप और अमेरिका के विश्वविद्यालयों में प्रस्तुति भी दी। इनके पुत्र नयन घोष और ध्रुवा घोष तबला और सारंगी के और पुत्री तुलिका सितार की ज्ञाता है। भारत सरकार ने इन्हें 1990 में पदम भूषण सम्मान से पुरस्कृत किया और 1995 में इन्हें हाफिज़ अली खाँ अवार्ड दिया गया। 3 मार्च 1995 को पण्डित निखिल घोष जी का देहावसान हो गया। अपने पीछे वह संगीत जगत के लिए अपनी कला रूपी निधि छोड़ गए, जो सदैव उनका स्मरण कराती रहेगी।

पण्डित पंढरीनाथ नागेश्कर जी का जन्म 1913 ई का गोआ में हुआ। तबला वादन की शिक्षा इन्होने उस्ताद अनवर हुसैन खाँ, श्री जतिन बख्श, उस्ताद अमीर हुसैन खाँ जी से ली। उस्ताद अहमद जान थिरकवा जी द्वारा व्यक्तिगत रूप से इन्हें वादन सम्बन्धी बहुमूलय सुझाव भी दिए गए। इन्होने कई प्रसिद्ध कलाकारों के साथ संगत की, जिनमें से सुरेश्री केसरबाई केरकर, विदुषी हीराबाई बड़ोदेडकर, विदुषी मोगुबाई कुर्डीकर, पण्डित फिरोज़ दस्तुर्जी, विदुषी ज्योत्सनाबाई भोले, श्रीमती बाई नरवेकर, श्रीमती शालिनीताई नरवेकर, विदुषी सास्वती बाई राणे, श्रीमती अंजनी बाई लोलेकर, मीनाक्षी बाई शिरोडकर, विदुषी शोभा गुटू, गोविन्दराम शालीग्राम, विदुषी पदमावती शालीग्राम, उस्ताद अमानत अली खाँ, उस्ताद अमीर खाँ, उस्ताद मंजी खाँ, उस्ताद नन्हें खाँ, पण्डित वी.जी. जोग आदि कतिपय नाम हैं। पण्डित जी की सांगीतिक उपलब्धियों में कई पुरस्कार व सम्मान इनके नाम हुए हैं। 1991 में भारत के त्तकालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह द्वारा 'मराठी कला अकादमी अवार्ड' दिया गया, 1994 में स्वर साधना समिति द्वारा 'स्वर साधना पुरस्कार' प्राप्त हुआ, 1999 में संगीत कला एकेडमी अवार्ड, 2000 में गोआ के गवर्नर मि. मोहम्मद फज़ल द्वारा 'गोमांटक मराठा एकेडमी पुरस्कार' दिया गया।

पण्डित अनिन्दो चैटर्जी ज्ञान प्रकाश घोष जी के सबसे प्रिय शिष्यों में से एक थे। 1954 में कलकता में जन्में पण्डित चैटर्जी का पूरा जीवन ही तबला वादन को समर्पित रहा। तबले की शिक्षा इन्होंने ज्ञान प्रकाश घोष जी से पूर्व विश्वनाथ चैटर्जी ;चाचाद्ध और आफाक हुसैन खाँ जी से ली। इनकी साधना का ढंग बिल्कुल अनूठा था। वादन के समय इनकी केवल उंगलियां और हाथ ही प्रयुक्त होते थे। इनके दांए और बाएं हाथ का संतुलन वास्तव में बेजोड़ था। पण्डित जी एकल वादन और संगत दोनों में सिद्धहस्त माने जाते हैं।

ज्ञान प्रकाश घोष जी के अन्य दक्ष शिष्यों में पण्डित नयन घोष जी का नाम आता है, जो तबला वादक के साथ हारमोनियम बजाने में भी निपुण थे। नयन घोष जी का जन्म 1956 ई को पण्डित निखिल घोष जी के घर हुआ। अतः तबले का पहला ज्ञान अपने पिता जी से ही मिला। उपरान्त अहमद जान थिरकवा, कुमार बहादुर, इश्तयाक हुसैन खाँ तथा पण्डित ज्ञान प्रकाश घोष जी से तबले का शिक्षण प्राप्त किया। इन्होने केवल 4 वर्ष की उम्र में आकाशवाणी पर एकल तबला वादन की प्रस्तुति दी और 18 वर्ष की उम्र में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर देश का नाम रोशन किया। तबले के अतिरिक्त इन्होने सितार भी सीखा। पण्डित नयन घोष जी ने भारतीय कलाकारों के साथ विदेशी कलाकारों के साथ भी मंच सांझा किया, जिनमें प्रमुख नाम पण्डित निखिल बैनर्जी, पण्डित रवि शंकर, विलायत खाँ जी, ज़ाकिर हुसैन, लूईस आर्मस्ट्रांग, ऐलिंगटन और डयूक के आते हैं। इन्हें संगीत नाटक अकादमी अवार्ड, तालमणि, स्वर साधना रत्न आदि से नवाज़ा गया है।

फर्रूखाबाद घराने की समृद्ध परम्परा को एक नए आयाम तक पहुंचाने वाली तेजस्वी कलाकार रिम्पा शिवा को 'Princess Of Table' के नाम से जाना जाता है। इन्होने तबला अपने पिता प्रो. स्वप्न शिवा जी से सीखा, जो फर्रूखाबाद घराने के उस्ताद

करामत उल्लाह खाँ जी के शिष्य हैं। मात्र तीन वर्ष की उम्र से ही इनकी शिक्षा शुरू हो गई थी। उनके शब्दों में "उस समय लड़की का तबला बजाने का माहौल नहीं था। आज तो लड़की लोग इतना अच्छा बजा रहा है, तब मुश्किल था। पिता जी ने सोचा इसको कोई अलग से वाद्य यंत्र देना है या फिर गायन करेगी। ऐसे पहले पिता जी की सोच थी। बाद में उन्होने देखा कि इस लड़की का जन्म तबले के लिए ही हुआ है।" तबला वादन के क्षेत्र में अपनी अप्रतिम प्रतिभा के लिए इन्हें उस्ताद ज़ाकिर हुसैन जी, पण्डित हरिप्रसाद चैरसिया जी, पण्डित जसराज जी जैसे शिरोमणि कलाकारों से प्रशंसा, सराहना, स्नेह और आशीर्वाद भी प्राप्त हुआ। उनकी वादन विशेषता उनके घराने की वादन शैली है। रिम्पा जी के अनुसार "दादा गुरू करामतउल्ला साहिब ने जो बजाया, पिता जी को जो सिखाया, वही पिता जी ने मुझे सिखाया। यह हमारे घराने की बहुत खास़ चीज़ है- 'धा गिन गिन'। यह भी मुझे बजाना बहुत अच्छा लगता है। लोगों को भी बहुत पसन्द आता है, यह हमारे लिए बहुत खास़ है।" इनकी अन्य उपलब्धियों में संगीत नाटक एकेडमी अवार्ड, सम्वक आनन्द अवार्ड, राष्ट्रपति अवार्ड और 'रिम्पा शिवा-प्रिंसेस ऑफ तबला' के नाम बनी डॉक्यूमैंन्टरी फिल्म आती है।

फर्रूखाबाद घराने की वंशावली और शिष्य परम्परा ने इस घराने की समृद्ध वादन शैली को आत्मसात कर इसकी परिधि को ना केवल प्रसार दिया बल्कि वादन की विशेषताओं की विलक्षणता को भी उद्भासित किया। फर्रूखाबाद का तबला वादन अपनी कई विशिष्टताओं के लिए प्रसिद्ध है। यद्यपि यह पूरब बाज की शाखा है तथापि "इसका बाज ना तो लखनउ के जैसा नृत्य से प्रभावित हैं, ना बनारस तथा पंजाब जैसा ज़ोरदार है और ना ही दिल्ली के समान किनार का है। अन्य घरानों के भांति इस घराने में भी कायदे पेशकार आदि बजाए जाते हैं पर इस बाज में रेलों को एक नवीन रूप दिया गया है, जिसे वह रौ अथवा 'रविश' कहते हैं।" इतना ही नहीं तबले में गत बजाने की परम्परा को जो गुरूता मिली वो इसी घराने की देन है। यहां गतें लयकारी के विविध दर्जों में बजाई जाती हैं, जिसमें 'तक तक' व 'धिर धिर' के बोल विशेषतः दिखाई देते हैं। इसके अतिरिक्त चाला प्रस्तुत करने की रीति भी अन्यत्र नहीं मिलती। फर्रूखाबाद घराने द्वारा रचित पेशकार भी इस घराने की विशेषता के अन्तर्गत आता है, जिसका श्रेय अहमद जान थिरकवा जी को दिया जाता है। स्वतन्त्र वादन की बात की जाए तो इस बाज की सफलता को किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं। माधुर्य और संतुलन के गुणों से आबद्ध इसकी वादन शैली में "घिड़ान, क्ड़ा, धिरधिर किटतक तकिटधा, धिरधिर किटतक धेत्, तकतक, धिगनग आदि बोल समूहों का अधिक प्रयोग होता है।" निस्संदेह इस घराने का तबला अपना शुद्ध स्वरूप बनाए रखे है।

निष्कर्षताः यह कहा जा सकता है कि तबला वाद्य को प्रसिद्धि की पराकाष्ठा तक पहुंचाने में फरूखाबाद घराने का योगदान अतुलनीय है। हाजी विलायत खाँ साहिब ने जिस जिस लक्ष्य के संधान हेतु इस घराने की नींव रखी उसे इस घराने के उतराधिकारियों ने ना केवल पूर्ण किया अपितु अपनी योग्यता और गुरूजनों के वरदहस्त के निर्देशन में निरन्तर अग्रसर भी कर रहें है।

संदर्भ

1 गुप्ता, निशि; (2010), ताल शास्त्र का सैद्धान्तिक पक्ष, नई दिल्ली, कनिष्क पब्लिशर्स, पृ.75-76

2 वर्मा, (डॉ) मोहिनी (2011),प्रमुख ताल वाद्य पखावज तथा तबले की विभिन्न परम्पराएं, इलाहाबाद, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, पृ. 28

3 श्रीवास्तव, (डॉ), सुनीता (2011), तबला वादन कला की तकनीकी एंव सौंदर्य पक्ष, इलाहाबाद, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, पृ. 213

4 http:/raagparichay.in>Tabla maestro and guru padam bhusha pandit Nikhil Ghosh

5 रिम्पा शिवा से लिए गए साक्षात्कार। 17 मार्च 2022

6 रिम्पा शिवा से लिए गए साक्षात्कार।17 मार्च 2022

7 श्रीवास्तव, (डॉ), सुनीता (2011), तबला वादन कला की तकनीकी एंव सौंदर्य पक्ष, इलाहाबाद, अनुभव पब्लिशिंग हाउस,पृ. 214

8 पटेल, जमुना प्रसाद (2011), तबला वादन की विस्तारशील रचनाएं (पेशकार, कायदा एंव रेले के विशेष सन्दर्भ में), नई दिल्ली, कनिष्क पब्लिशर्स, पृ. 18

संस्कृति

गुप्तकालीन मूर्तिकला में धार्मिक एवं आध्यात्मिक चिन्तन बोध

महावीर सिंह

विभागाध्यक्ष, इतिहास, विभाग
आगरा कॉलेज, आगरा

सारांश

प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति धार्मिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों से पूर्णतः आबद्ध एवं अनुस्यूत रही है। अतः प्राचीन काल से ही भारतीय कलाकारों ने मात्र बाहा स्थूल सौन्दर्य से वशीभूत होकर कला की अभिव्यक्ति नही की, बल्कि अपनी अन्तः प्रेरणाओं एवं अपनी अन्तर्चेतना में निहित धार्मिक एवं आध्यात्मिक विश्वासों एवं चिन्तन की अभिव्यक्ति देकर कला को मूर्त रूप दिया है। यद्यपि स्थूल सौन्दर्य वस्तुगत यर्थाथ हो सकता है, परन्तु कला के सौन्दर्य में वस्तुगत यथार्थ के साथ-साथ कलाकार की मनस्थितिः विवेक, बुद्धि, चिन्तन एवं आत्मिक अनुभूति भी कला में अनुस्यूत होने के कारण कला में वस्तुगत यथार्थ एवं आत्मगत अनुभूति दोनों का सुन्दर समन्वय होता है। जो कि भारतीय संस्कृति में लौकिक एवं पारलौकिक जीवन में परस्पर सुन्दर समन्वय का प्रतीक है। अतः गुप्तकालीन मूर्तियों में वाध्य स्थल सौन्दर्य एवं अनुभूतिपरक आध्यात्मिक सौन्दर्य बौध दोनो का सुन्दर समन्वय मिलता है। जो कि आज भी भारतीय संस्कृति में यह धार्मिक एवं आध्यात्मिक चिन्तन सांस्कृतिक निरन्तरता के रूप में विद्यमान है।

बीज शब्द

गुप्तकालीन मूर्तिकला, नैसर्गिक, धार्मिक, आध्यात्मिक चिन्तन बोध, सांस्कृतिक धार्मिक निरन्तरता।

प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति धार्मिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों से पूर्णतः आबद्ध एवं अनुस्यूत रही है। अतः प्राचीन काल से ही भारतीय कलाकारों ने मात्र बाहा स्थूल सौन्दर्य से वशीभूत होकर कला की अभिव्यक्ति नही की, बल्कि अपनी अन्तः प्रेरणाओं एवं अपनी अन्तर्चेना में निहित धार्मिक एवं आध्यत्मिक विश्वासों एवं चिन्तन की अभिव्यक्ति देकर कला को मूर्त रूप दिया है।

गुप्तकालीन साहित्यिक अभिलेखीय एवं मुद्रा सम्बन्धी साक्ष्यों से प्राप्त होता है कि गुप्तकालीन शासक वैष्णव एवं शैव धर्मालम्बी थे। परन्तु हमें गुप्तकाल में वैष्णव, शैव, जैन एवं बौद्ध धर्म सभी धर्मो से सम्बन्धित पाषाण, धातु एवं मिट्टी से निर्मित अनेक मूर्तियॉ प्राप्त हुयीं है। जो कि गुप्तकालीन शासकों की धार्मिक सहिष्णुता के साथ-साथ हमारी प्राचीन धार्मिक सांस्कृतिक परम्परा के समन्वयवादी

दृष्टिकोण को भी परिभाषित एवं परिलक्षित करतीं है।[1].

मथुरा, भरहुत और साँची आदि कला-केन्द्रों में परम्परा से जिन अप्सराओं वनदेवियों तथा यक्ष यक्षिणियों की मूर्तियों का निर्माण हुआ वे कटिवस्त्र पहने ऊर्ध्व नग्नावस्था में हैं। लेकिन उनका दैहिक सौन्दर्य उत्तेजनात्मक एवं श्रृंगारिक न होकर प्रांजल, संयत एवं आदर्श भाव से परिपूर्ण है।

इस काल की मूर्तियों में यद्यपि एवं सार्वभौमिकता है, फिर भी प्रादेशिक स्तर पर क्षेत्रगत अन्तर भी पाया जाता हैं। उत्तर भारत में कला-केन्द्रों में मथुरा और सारनाथ कला के प्रमुख केन्द्र थे। मथुरा कुषाण कालीन उन्नत कला का केन्द्र था, अतः प्रारम्भिक गुप्तकाल में कुषाण कालीन मूर्तिकला के लक्षण दिखयी देते है, किन्तु आगे चलकर मथुरा केन्द्र पर गुप्त-शैली अधिक प्रभावी हो गयी। गुप्तकाल में मूर्तियों का प्रभामण्डल अलंकृत होने लगा। जबकि कुषाणकाल में यह सादा था। चीवर (संघाटी) की सरंचना भी गुप्तकाल में अधिक परिष्कृत हेा गयी थी तथा देानों कंधो पर वस्त्र ढ़का जाने लगा। शैली, सरंचना और भाव-व्यंजना में सारनाथ तथा मथुरा शैली में कोई साम्य दिखायी नहीं देता। सौन्दर्य और भाव-निरूपण में सारनाथ की मूर्तिकला में अद्भुत परिष्कार हुआ मथुरा मूर्तियों का भारीपन समाप्त करके इन शिल्पियों ने शरीर को छरछरा, लम्बा तथा भंगिमायुक्त बनाया। वस्त्र की चुन्नटे इस शैली में समाप्त हो गयी थीं। गुप्तकालीन मथुरा कला में सर्वप्रथम विश्वरूप विष्णु की मूर्ति का निर्माण किया गया था। नरसिंह, मानव और वराह के मुखों और आठ भुजाओं वाली ऐसी मूर्ति के प्रभामण्डल में अनेक देवगणों की छोटी-छोटी आकृतियॉ उकेरी गयी तथा इसके प्रभामण्डल के घेरे में रूद्धमुख पंक्ति बद्ध किए गये थे। गुप्तकालीन मथुरा कला की ऐसी तीन विष्णु प्रतिमाएँ अब तक प्रकाश में आयी हैं। दो मूर्ति मथुरा संग्रहालय में तथा एक राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में है। अधिकांश गुप्त राजा वैष्णव धर्म के अनुयायी थे। इस काल में विष्णु की मानवीय मूर्तियों की अपेक्षा उनके वराह, नृसिंह और वामन आदि अवतारों की मूर्तियों अधिक बनी।

वराह मूर्ति-भिलसा (म0प्र0) के निकट उदयगिरि में चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य के द्वारा बनवाये गए एक मन्दिर में पृथ्वी का उद्धार करते हुए नर-वराह की मूर्ति स्थित है। इस मूर्ति में भार के सन्तुलन के लिए बायी भुजा घुटने पर टिकी हुई है। पृथ्वी एक छोटी सी नारी आकृति के रूप में दाढ़ी पर लटकी हुई दिखायी गयी है। मूर्ति के पीछे सागर में स्त्री-रूपी पृथ्वी खड़ी हुई दिखायी गयी है। वराह की शरीर-रचना गठी हुई है, जिसमें शक्ति तथा ओज है।

देवगढ़ (झांसी-उ0प्र0) के दशावतार मन्दिर में रामायण के कई प्रसंगों के मूर्तिशिल्प उत्कीर्ण हैं। यहॉ कृष्ण लीला विषयक मूर्तियॉ में गोवर्धन धारी कृष्ण की मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है। इस समय यह मूर्ति भारत कला भवन, वाराणसी में प्रदर्शित है। विष्णु की मूर्तियॉ भी इस काल में प्राप्त हुई हैं। विष्णु को ध्यान मुद्रा में खड़े हुए चतुर्भुजी मूर्ति प्राप्त हुई है। उनके माथे पर मकर तथा मोतियों के जाल से अलकृंत मुकुट है। कुंडल, भुजबंद गले में माला तथा यज्ञोपवीत धारण किए हुए इस मूर्ति को मोटी कमर बन्द में कसी धोती पहने हुए दिखाया गया है। मूर्ति के ऊपर पूरे खिले कमल की आकृति का छत्र है। गुप्तकाल की यह प्रतिमा ब्राहाण धर्म की सर्वोच्यम प्रतिमाओं में से एक मानी गयी है। शिव तथा उनके परिवार की मूर्तियों गुप्तकाल में प्राप्त हुई है। इसमें शिव को मानवीय रूप और लिंग-रूप दोनों प्रकार की मूर्तियॉ प्राप्त होती है। ऐसी कई मूर्तियॉ इलाहाबाद संग्रहालय, मथुरा संग्रहालय तथा राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित है। पत्नी विध्नेश्वरी के साथ आलिंगन-मुद्रा में तथा नृत्य-मुद्रा में गणेश की मूर्तियॉ की विशेष प्रशसंनीय हैं।

देवगढ़ में शेषशायी विष्णु के साथ लक्ष्मी के तथा उदयगिरि के गुफा में महिषासुरमर्दिनी के अंकन

में मनोभावों तथा शारीरिक सौन्दर्य का विलक्षण मेल दिखाया गया है। इन मूर्तियों में नैसर्गिक सौम्य भाव-व्यन्जना एवं अलौकिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हुई है। इनमें कोमलता, मुखमण्डल की शांति एवं आध्यात्मिक दिव्यता के भावों का अभूतपूर्व अंकन हुआ है।

सप्त मातृ का (सात देवियों का समूह)-पटना (बिहार) संग्रहालय में सुरक्षित है।

	देवी	अस्त्र	वाहन
1.	माहेश्वरी	त्रिशूल	वृषभनन्दी
2.	वैष्णवी	चक्र	गरूड़
3.	ब्राहाणी	कण्डमाला	हंस
4.	कौमरी	बरछा	हंस
	(कुमार कार्तिकेय की पत्नी)		
5.	वराही - वराह		
	(वराह की पत्नी)		
6.	इन्द्राणी	बज्रा	हाथी
7.	यमी	हाथ में नरमुण्ड	शव पर/ उलूक

मृण्मूर्तियां (मिट्टी की मूर्तियां)-

जटाधारी शिव-श्रावस्ती-उत्तर प्रदेश

पहाड पुर (बिहार)-कृष्ण लीलाओं से सम्बन्धित

अहिच्छत्र (बरेली)-गंगा यमुना एवं पार्वती

श्रावस्ती (उत्तर प्रदेश)-यशोदा, कृष्ण व बलराम के साथ एवं मिठाई की टोकरी इत्यादि प्राप्त हुयी हैं।[2]

जैन तीर्थ करों की मूर्तियों की प्रमुख्यतः हमें-देवगढ़ (उ0प्र0) बेसनगर (म0प्र0) बूँदी, चंदेरी (राजस्थान), कंकरीला टीला-(मथुरा उ0प्र0), अकोटा-(बड़ौदा-गुजरात), चैसा-(शाहाबाद बिहार) से प्राप्त होती है।

जो कि मुख्यतः

1. चोकोर शिला के चारों ओर तीर्थांकरों का अंकनकर बनाई गयी है।
2. पद्मासन्न व कायोत्सर्ग मुद्रा।
3. वक्ष पर श्री वत्स लिखा हुआ है।
4. आसन के नीचे दो सिहों के मध्य चक्र का अंकन।
5. यह बैठी व खड़ी दोनों ही मुद्राओं में प्राप्त होती है।
6. पार्श्वनाथ के ऊपर सर्प फण (सर्प का छत्र) है।
7. ऋषभनाथ के कन्धों पर केश बल्लरी या बिखरे हुये हैं।
8. चन्द्र प्रभा जिन की मूर्ति में चन्द्र का अंकन है।[3].

धार्मिक एवं आध्यात्मिक चिन्तन में तप एवं योग की प्रीचन परम्परा के साक्ष्य भी हमें सैन्धव की कला सर्वप्रथम परलक्षित होते हैं। जो हमें गुप्तकालीन मूर्तिकला में भी सांस्कृतिक धार्मिक निरन्तरता के रूप में मिलते हैं। मुख्यतः जैन मूतियां नग्न अवस्था में है। 'नग्न अवस्था' जैन परम्परा के अनुसार जिसकी दिशायें ही 'अम्बर' (वस्त्र) हों। अर्थात 'दिगम्बर' तप एवं कायात्सर्ग की अवस्था-योग एवं तप के माध्यम से शरीर में निहित संवरण (दुष्कर्मो का कर्म संचय) है। उससे शरीर मुक्त होकर 'निर्जरा' (जीवन दुष्कर्मो से मुक्त) हो सके। तप एवं योग के साथ 'पंचमहाव्रत' एवं 'दस अणुव्रत' का अनुपालन की अवधारणा का मूल उददेश्य मनुष्य में निहित 'संवहरण' समाप्त होकर 'निर्जरा' होने पर आगे कर्मो के बंधन से मुक्त या विरक्ति भाव रखकर ही मनुष्य ''कैवल्य'' प्राप्त कर सकता है।[4].

बौद्ध मूर्तियां- बौद्ध मूर्ति या निम्न अवस्थाओं में है-

1. उभय मुद्रा- दाहिना हाथ ऊपर की ओर उठा तथा हथेली सामने की ओर, बाये हाथ में संघाटी (दुपट्टा) का छोर पकड़े हुये हैं।
2. ध्यान मुद्रा- पद्मासन्न स्थिति है। दोनों कर्तल अंक में, ऊपर दायॉ हाथ, नीचे बायॉ हाथ।
3. भू-स्पर्शीमुद्रा-जमीन पर बैठे है, दायॉ हाथ अंक में और बायॉ हाथ जमीन को स्पर्श

करता हुआ है।

4. धर्मचक्र प्रवर्तन- दोनों हाथ वक्ष के सम्मुख हैं और दायें हाथ का अँगूठा और कनिष्ठा बाये हाथ की माध्यमिका को स्पर्श करती हुई है।
5. वरद मुद्रा- दॉया हाथ लम्ब रूप में नीचे की ओर अर्थात दॉये हाथ की हथेली (कर्तल) नीचे की ओर, वॉये हाथ में संघाटी अर्थात घोती का छोर है।

अन्य विशेषतायें-

परिधान चुन्नटदार एवं पारदर्शी। अंग प्रत्यंग दिखायी देती है। अगुलियां अलग-अलग न बनाकर जाल सरीखी है। अगुलिया विभिन्न भाव भंगिमाओं को इंगित (प्रदर्शित) करती है। मुख्य शान्त एवं निष्क्रिय भाव बाल अपोलो सदृश्य घुघराले। जो कि गन्धार कला शैली का प्रभाव दिखाई देता है। अंलकरण युक्त प्रभा मण्डल-मथुरा कला का प्रभाव परिलक्षित। सारनाथ की बुद्धमूर्ति-2 फुट 4 1/2 इंच, पाषाण निर्मित, पद्मासन्न स्थिति में, चेहरे का भाव शान्त एवं निष्क्रिय, अपोलो सदृश्य घुँघरालेबाल, अंलकरण युक्त प्रभा मण्डल। जमालपुर-मथुरा-बुद्धमूर्ति-पाषाण निर्मित, ऊचाई 7 फुट 2 1/2 इंच, खडी मुद्रा में, उभय मुद्रा में, चेहरे का भाव शान्त एवं निष्क्रिय, अपोलो सदृश्य घुँघराले बाल। सुल्तान गंज (बिहार) की बुद्ध मूर्ति-कांस्य निर्मित मूर्ति, ऊचाई-7फुट 6 इच, खडी अवस्था में, यह सबसे बडी बुद्ध मूर्ति है। गुप्तकालीन बुद्ध मूर्तियों में दोनों कंधों पर संघाटि वस्त्र दिखाया गया है जबकि कुषाण कालीन मूर्तियों पर बॉयें कंधे पर ही दिखाया गया है।5.

बोधिसत्व बुद्धमूर्तियां-

विष्णु एवं वराह पुराण में उल्लखित वैष्णव धर्म में अवतारवाद की अवधारणा का जन्म हुआ। इसी से अभिप्रेरित होकर बौद्ध धर्म में बौद्ध सत्वों की अवधारणा का जन्म हुआ। जिसके परिणाम स्वरूप गुप्त काल में बौद्ध सत्वों की मूर्तियॉ बनना प्रारम्भ हो गयी है। जो कि हमें निम्न स्वरूपों में प्राप्त होती है। पांच बोधिसत्व-

1. अवलोकेश्वर - ध्यान मुद्रा में
2. अक्षोम - भू-स्पर्शी मुद्रा में
3. मंजूश्री - वरद मुद्रा में
4. मैत्रेय - उभय मुद्रा में
5. बैरोचन - धर्म चक्र प्रवर्तन

पटना संग्राहलय बिहार से प्राप्त भगवान बुद्ध की मूर्तियां जो कि हमें विभिन्न भावभगिमाओं एंव विभिन्न मुद्राओं में प्राप्त होती है। वह कहीं ना कहीं हमारी प्राचीन धार्मिक-सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं योग परम्पराओं को उद्भाषित करती है। उनकी ध्यान मुद्रा नेत्र धनुषाकार बड़ी आकृति के कमल की पंखुड़ियों जैसे अर्धखुले है एवं चेहरे का भाव शांत एवं निस्पृह एवं सवस्थिति पद्मासन है। चेहरे का भाव शान्त एवं निस्पृह है। उनके सांसारिक जगत के प्रति वैराग्य भाव के साथ साथ असीम अखण्ड आनंद की द्योतक है, ध्यान की इस स्थिति को हम ध्यान की "शाम्भवी अवस्था" कह सकते हैं। पद्मासन की स्थिति-योग की यानी महायोगी की स्थिति है।

भूस्पर्शी मुद्रा में भगवान बुद्ध पृथ्वी जो कि समस्त जगत की जननी है। उसको साक्षी मानकर स्वयं एव इस सांसारिक जगत को संदेश दे रहे है, कि मैने बौद्धत्व यानी बौध ज्ञान प्राप्त कर लिया है। अर्थात जगत का प्रत्येक प्राणी मेरी तरह ध्यान, योग, तप यानी अष्टांग मार्ग से बोधत्व प्राप्त कर सकता है।

धर्म चक्र परिवर्तन मुद्रा भगवान बुद्ध द्वारा सारनाथ में चार आर्य सत्य एवं अटांग मार्ग का उपदेश देना अर्थात एक दार्शनिक व्याख्याता का स्वरूप है। इसके नीचे हिरणों की गति अवस्था में अंकन काल यानी गति का प्रतीक है। इसी के साथ धर्मचक्र जिसमें चैबीस तीलियॉ है। दार्शनिक शब्दावली में यह भी काल, गति एवं जीवन-मरण के निरन्तर गतिशीलता के चक्र का द्योतक हैं। अर्थात जब तक बोधत्व प्राप्त कर निर्वाण प्राप्त नहीं हो जाता है। तब तक मनुष्य के जीवन मरण का चक्र निरन्तर चलता रहता है।

अभय मुद्रा-समस्त जीव-जगत के कल्याण का वरदान दे रहे हैं। यहां पर भगवान बुद्ध निवृत्ति मार्गी होते हुये स्वयं के कल्याण एवं बोध ज्ञान से संतुष्ट नहीं है। यहॉ पर उनकी आध्यात्मिक जीवन दृष्टि ऐकान्तिक न होकर जन कल्याण की समग्रतावादी दृष्टि परिलक्षित होती है। जो कि हमारी सांस्कृतिक परम्परा हैं-''सर्वे सुखन्ति भव'' की है।

वरद मुद्रा-दार्शनिक शब्दावली में उत्सर्जन भाव यानी त्याग की भावना को परिलक्षित करता है। गुप्तकालीन मूर्तियों में गज, अश्व, वृषभ एवं सिंह की आकृतियॉ मिलती हैं। गज स्वप्म एंव विचार का, अश्व गृह त्याग का वृषभ जन्म का सिंह सार्वभौतिक सत्ता का प्रतीक हैं। प्रत्येक पशु का सम्बन्ध एक एक चक्रयुग्म से है। ब्रहमाण्ड में प्रत्येक युग्म पुरूष पशु का प्रतीक है। प्रथम दैवीय शक्ति और द्वितीय भौतिक तत्व का प्रतीक है।

यद्यपि स्थूल सौन्दर्य वस्तुगत हो सकता है, परन्तु कला के सौन्दर्य में वस्तुगत यथार्थ के साथ-साथ कलाकार की मनस्थितिः विवेक, बुद्धि, चिन्तन एवं आत्मिक अनुभूति भी कला में अनुस्यूत होने के कारण कला में वस्तुगत यथार्थ एवं आत्मगत अनुभूति दोनों का सुन्दर समन्वय होता है। गुप्तकालीन मूर्तियों में हाथी एवं व्याघ्र अलौकिक जगत गैंडा एवं भैंसा लौकिक जगत का प्रतिनिधित्व करते हैं। जो कि भारतीय संस्कृति में लौकिक एवं पारलौकिक जीवन में परस्पर सुन्दर समन्वय का प्रतीक है। हाथी वैदिक साहित्य में इन्द्र का वाहन हैं, जबकि बौद्ध साहित्य में स्वेत हाथी बौध सत्व अथवा अलौकिक ज्ञान का प्रतीक है। सर्प की वक्र गति, मार्ग की कठिनता का सूचक अथवा पुनर्जन्म का प्रतीक है। सर्प का केंचुली छोड़ना आत्मा का शरीर से बन्धनमुक्त होना है। वहीं पर कुंडली जागृत आत्मउन्नति का प्रतीक, मेष-परमब्रहम एवं ज्ञान का प्रतीक, चक्र-ब्रहमाण्ड सृष्टि की गति एवं काल का प्रतीक है। वृत-अनन्त, ब्रहमाण्ड एवं सम्पूर्णता का प्रतीक है। जबकि स्वास्तिक एवं वृक्ष जीवन की दृढ़ता पूर्णगति, निरन्तरता एवं अमृता का प्रतीक है। जो कि आज भी भारतीय संस्कृति में यह धार्मिक एवं आध्यत्मिक चिन्तन सांस्कृतिक निरन्तरता के रूप में विद्यमान है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. उदय गिरि द्वितीय शिलालेख-भिलसा (म0प्र0), सांची शिलालेख-रायसेन (म0प्र0)
2. डॉ0 उपाध्याय वासुदेव-प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान पृ0सृ0 24
3. प्रो0गुप्ता आर0एस0-आइनोग्राफी ऑफ हिन्दूज, बुद्धिस्ट एण्ड जैन्स पृ0सं0 108
4. वहीं पृ0सं0 108 से 110
5. श्रोत्रिय, शुक्रदेव-भारतीय कला-गौरव सन् 2007 पृसं0 521

6- Budhist Art of Mathura P.P. 222

7- A Survey of Indian Seulture P.P. 125

8- The Philosophy of India.

9. बाजपेयी कृष्णादत्त, भारतीय दर्शन और ललित कला सरोवर, वाल्यूम-1, वाराणसी, 1987
10. कुमारस्वामी, ए0के0, अर्ली इण्डियन आइकोनोग्राफी, (ईस्टर्न आर्ट, फिलडेल्फिया)
11. शुक्ल द्विजेन्द्रनाथ, प्रतिमा विज्ञान, लखनऊ, 1956

कुमाऊँ की सर्वश्रेष्ठ लोकगाथा राजुला मालूशाही

डॉ संध्यारानी

रीडर, बी. रा. अ. लो संगीत विभाग,
रा.महिला महाविद्यालय, बरेली

नीमा कलौनी

शोधकर्ती, संगीत विभाग
मा0ज्यो0फु0 रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

सारांश

कुमाऊँ की सर्वश्रेष्ठ लोकगाथा राजुला मालूशाही का अध्ययन उद्देश्य यह है कि हिमालय की लोकगाथाओं में कुछ लोकगाथाएं अपनी सुमधुर भावना, तीव्र अनुभूति और सीधे कथ्य की सुन्दरता से ह्दय को सहलाने वाली भंगिमा की दृष्टि से अपूर्व कही जा सकती है। राजुला-मालूशाही की गाथा भी उनमें से एक है, जिसका उद्भव क्षेत्र कुमाऊँ है, किन्तु जो अपनी लोकप्रियता के कारण दूर-दूर तक मध्यहिमालय में गाई जाती है, यह लोकगाथा मनोरम पर्वत श्रृंखला पंचाचूली की उपत्यका में बसे दारमा क्षेत्र से सम्बद्ध है, कुमाऊँ की पहाड़ियॉ न जाने कितनी सदियों से इस लोकगाथा के संगीत स्वरों से गुंजायमान हो रहा है। इसका अनुमान लगाना कठिन है। राजुला मालूशाही की आत्मा वर्षो बाद भी जैसे इस धरती के पोर-पोर में समाई हुई है। कुमाऊँ क्षेत्र की राजुला मालूशाही लोकगाथा सर्वश्रेष्ठ गाथाओं में एक है। आदिदेव भगवान शंकर की तपस्थली नागाधिराज हिमालय पर्वत जो आदिकाल से तपस्वियों की तपस्थली के साथ-साथ आध्यात्मिक प्ररेणा का स्त्रोत भी रहा है, उसी की मनोरम पर्वत श्रृंखला पंचाचूली की उपत्यका में बसे क्षेत्र मल्ला दारमा से होता है, इस अमर प्रेम लोकगाथा का प्रारम्भ होता है, राजुला-मालूशाही गाथा मूलतः प्रेम की मार्मिक अभिव्यक्ति के रूप में कुछ विशिष्ट प्रसंगों के सचयन करती है, प्रेम ही इसका मूल विषय है। प्रारम्भ में प्रेम सम्बन्धी उत्कण्ठा और पूर्वानुराग को दो ह्दयों का नहीं बल्कि प्रकृति के चिरन्तन सत्य के रूप में व्यंजित करने का सफल प्रयास हुआ वहॉ प्रकृति भी प्रेममयी दिखाई देती है। पक्षी, पवन, नदी, भ्रमर निर्झर सभी एक ही अन्तर्हित विकलता और उमंग से उद्वेलित है, सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि भावना और विचार का समन्वित चक्र कर्म की धुरी पर आधारित है। भाव और विचार एक दूसरे के विरोधी न होकर एक दूसरे के उपकारक और उपजीव्य है।

निबैलुग्रेनलीड़, कालिदास, पंचाचूली, दन्तवेद, दन्त भारत

बीज शब्द

लोकगाथा लोक संगीत का विशिष्ट प्रकार है, लोकगीत की अपेक्षा लोकगाथा का आकार बड़ा होता है। लोकगीत में मानव ह्दय के संक्षिप्त भाव अवतरित होते हैं, जबकि लोकगाथा में पूर्व कथानक उभरकर आता है। कथानक लोकगाथा का आवश्यक तत्व है, और यह कथानक प्रायः महान आदर्श वाले

ऐतिहासिक, धार्मिक लोक आदर्श वाले नायक से सम्बद्ध होता है। महान नायक के आदर्शों एवं सद्गुणों को लोकमानस में स्थापित करना ही लोकगाथा का उद्देश्य है।

मानव विभिन्न अवसरों पर लोकगाथायें गाकर सुनाते हैं। इस प्रकार गेयता लोकगाथा का दूसरा आवश्यक तत्व है। लम्बे कथानक के कारण गायक लोकगाथा को कई चरणों में पूर्ण करता है। लोकगाथा साहित्य का कई दृष्टियों से महत्व है, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से लोकगाथा में समाज का समग्र चित्र उपस्थित होता है। समाज का कोई भी पक्ष इससे अछूता नहीं है। सामाजिक परम्पराओं, रीति-रिवाजों, सामाजिक एवं धार्मिक मान्यताओं रूढ़ियों, कार्यकलापों एवं लोक आदर्शो का इसमें यथार्थ चित्रण होता है।

लोकगाथा में अपने पात्रों के चरित्र चित्रण का वर्णन होता है, इसमें नायक, नायिका के चरित्रवान वीर एवं साहसी दिखाया गया है। लोकगाथाओं में हमेशा सत्य और धर्म की विजय दिखायी देती है, धर्म, दान, दया, प्रेम आदि का समाज में प्रस्तर करने में लोकगाथायें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कुछ लोकगाथायें किसी अवसर विशेष पर न गायी जाकर फुरसत के क्षणों में गायी जाती हैं। इसमें मुख्य रूप से राजुला-मालूशाही आठों गंगनाथ आते हैं। आठों का प्रायः भादौ माह में वर्षा ऋतु ही गाने का आयोजन किया जाता है। साथ ही उत्तर प्रदेश में मुख्य रूप से आल्हा और दौला आते हैं, आल्हा प्रायः वर्षा ऋतु में गाया जाता है।

लोकगाथा की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं:-

1. गये होना लोकगाथा का पहला आवश्यक तत्व है क्योकि लोकगाथायें सदैव गायी जाती हैं।
2. लोकगाथाओं में कथानक दीर्घस्थ में प्रायः होता है। इनमें संबंधित नायक के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं का विस्तृत वर्णन होता है।
3. इनका कलेवर लोकभाषा से ही निर्मित होता है। सरल छन्द-विधान, प्रवाहमय लोकगाथा कतिपय प्रचलित अलंकारों एवं लोकोक्तियों आदि का प्रयोग इनकी विशेषताये हैं।
4. लोकगाथाओं में इतिहास सम्मत अनेक पात्रों का वर्णन एवं चरित्र-चित्रण मिलता है। किन्तु इनकी ऐतिहासिकता संदिग्ध होती है, इसका मुख्य कारण गाथाकार शैक्षिक योग्यता का तथा इतिहास संबंधी ज्ञान का अभाव है।
5. इनका रचयिता प्रायः अज्ञान ही होता है, यद्यपि कुछ रचनायें व्यक्ति विशेष के नाम से प्रकाशित रूप में भी मिलती हैं, किन्तु मौलिकाता की दृष्टि से इनका मूल रचियता अज्ञात ही रहता है।
6. लोकगाथाओं में रचयिता के व्यक्तित्व वैशिष्टय का अभाव रहता है, इसकी परम्परा मौखिक होने के कारण वह मूल रचयिता की कृति न रहकर जन-जन की कृति बन जाती है।
7. कुछ लोकगाथाओं को गाते समय निश्चित वाद्यों का प्रयोग भी होता है।

जर्मनी के साहित्य का 'निबैलुगेनलीड़' लोक काव्य है, जिसे वीर काव्य कहा जा सकता है। जर्मनी का प्रणय लोक काव्य 'मिनेसागर' कहते हैं। डेनमार्क का प्राचीन साहित्य भी लोक साहित्य है, जो पौराणिक आख्यानों ऐतिहासिक घटनाओं तथा वीर काव्यों से युक्त हैं। फिनलैंड का प्राचीन साहित्य भी लोक साहित्य है। वहॉ 1200ई0 से 1500ई0 तक लगभग तीन हजार लोकगाथायें लिखी गयी। फ्रांस का लोक साहित्य सुसमृद्ध रहा है। उसके संरक्षण की परम्परा मौखिक रही है, उसके उचित संरक्षण तथा अनुशीलन के अभाव में फ्रांस के देहातों से लोक साहित्य की सुरभि उड़ने सी लगी इनता ही नहीं -युगोस्लाविया के साहित्य का प्रमुख भी लोक साहित्य है। कुमाऊॅ के लोक साहित्य की भांति वहॉ का लोक साहित्य भी गलस्यारों के द्वारा प्ररक्षित रहता है। वे लोग गुलस्या तन्त्री विशेष बजाते हुए साहित्य को संचारित करते रहे इसी कारण उन्हें गुलस्यार कहा जाता है। कुमाऊॅ में इसी प्रकार हुड़का वाद्य विशेष के कारण एक वर्ग हुड़कियॉ कहलाया।[1]

"शीर्ष लुप्त होते जाते लोक साहित्य"[2] के संकलन और विवेचन के प्रयास अधूरे रह गये उसका एक बहुत बड़ा कारण यह है कि हमारा लोकतंत्र लोक भावना से वंचित रहा इस दिशा में ठोस कदम नहीं उठाया गया।

साहित्य जीवन का सर्जन है पुनः जीने की प्रक्रिया है पर जहॉ लोकाभिव्यक्ति का प्रश्न है, इसमें ये दो स्थितियॉ सम्भव नहीं हैं, जहॉ सृष्टा ओर उपभोक्ता की सम स्थिति है। दोनों का एक ही व्यक्तित्व में समाहारा हो जाता है। काव्य की भाव-भूमि के अन्तर के कारण लोककाव्य में इस नियति की स्थिति होना संभव नहीं।[3]

ब्रिटेन में कितने लोग ऐसे हैं जो शैक्सपियर के नाटकों तथा सानेट्स का आनन्द लेते हैं। भारत में कितने व्यक्ति हैं जो कालीदास माघ, भारवि श्री हर्ष अथवा कामायनी का अनुशीलन करते हैं, समाज का थोड़ा अंश है। जो इसका अनुशीलता करता है। इसके अतिरिक्त दूसरी और समाज का वह शेष विशाल अंग है जो अपने देश या क्षेत्र के लोकगीतों की प्रतिक्षण गुनगुनाते रहते हैं, या अपनी लोक गाथाओं या कथाओं का गायन कथन एव श्रवण करते रहते हैं।[4] लोक साहित्यकार का व्यक्तिगत समग्र लोक समाज के व्यक्तित्व में विलीन रहता है। लोक साहित्य का रूप कृति के रूप में न मिलकर श्रुति के रूप में मिलता है तो भी कुमाऊॅ का लोकगायक अपने साहित्य के प्रबंधन रूप को 'दन्तवेद' अथवा 'दन्तभारत कहता है। वस्तुतः फोकलौर अथवा फांक वैलेड्स के स्थान पर दन्तेवेद का या दन्तभारत हो उपर्युक्त शब्द है। [5] लोक साहित्य की भाव भूमि से सर्वथा विमुक्त होकर वह शाश्वत साहित्य नहीं बन सकते हैं। जिस प्रकार धरती से जीवन रस प्राप्त किये बिना केाई भी पौधा फल फूल नहीं सकता है उसी प्रकार लोक साहित्य और लोकगीतों एवं लोकगाथाओं से सीधा सम्बन्ध स्थापित किये बिना उससे शक्ति प्राप्त किये बिना कोई विशिष्ट साहित्य टिकाऊ शाश्वत अथवा अमर नहीं हो सकता है"6

कुमाऊॅ की लोकगाथाओं में कुछ लोकगाथाएं अपनी सुमधुर भावना तीन अनुभूति ओर सीधे कथ्य की सुन्दरता से ह्दय को सहलाने वाली भंगिका की दृष्टि से अपूर्ण कही जा सकती है। राजूला-मालूशाही की गाथा भी उनमें से एक है। जिसका उद्भव क्षेत्र कुमाऊॅ है। किन्तु जो अपनी लोकप्रियता के कारण दूर-दूर तक मध्य हिमालय में भी गाई जाती है।

आदि देव भगवान शंकर की तपस्थली नागाधिराण हिमालय पर्वत जो आदिकाल से तपस्वियों की तपस्थली के साथ-साथ अध्यात्मिक प्ररेणा का स्त्रोत भी रहा है। उसी की मनोरम पर्वत श्रृंखला पंचचूली की उपत्पका में बसे क्षेत्र मल्ला दारमा से होता है। इस अमर प्रेम कथा का प्रारम्भ इसी मल्ला दारमा का सम्पन्न व्यापारी था। सुनपति शौक भोट में हूणों के साथ उसका व्यापार होता था। सुनपति वास्तव में स्वर्णपति अथवा सम्पन्नता का प्रतीक था। उसकी धर्मपत्नी गांगुली शैक्याण एक धर्मपरायण महिला थी, धन सम्पत्ति व प्रचुर वैभव होते हुए भी शौक दंपत्ति को एक महान दुखः था कि उनकी कोई संतान न थी।

समय बीतता गया पर निःसन्तान होने की वेदना उनके मुखः मण्डन से स्पष्ट दृष्टिगोचार होने लगी इन्हें निराशा के क्षणों में एक दिन गांगुली शैक्याण ने अपने पति सुनपति शौक से निवेदन कि जिस आदि देव भगवान शंकर ने हमें इतनी संपन्नता दी है, क्या वे हमें जीवन भर संतान सुख से वंचित ही रखेंगे? क्यों न इस बार हम मकर संक्रान्ति को भगवान बागनाथ की शरण में पावन तीर्थ बागेश्वर में जाकर अपने मन की व्यथा कहें? सुनपति शौक को अपनी पत्नी की बात में आस्था एवं विश्वास का आभास हुआ फलतः जीवनमें प्रयास का नया अध्याय प्रारंभ हुआ।[7]

मकर संक्रान्ति के दिन सम्पूर्ण कुमाऊॅ एंव सुदूर प्रान्तों के श्रद्धालु जन बागेश्वर में एकत्रित हैं। लोक पापहारिणी पुण्य सलिला सरयू-गोमती के संगम पर प्रातः वेला से ही स्नान कर अपने श्रद्धासुमन भगवान शंकर को अर्पित कर रहे थे, काया-माया संतान एवं विचार संचित अभिलाषाओं की पूर्ति के अटल विश्वास को अपने-अपने डर में लिए आशुतोष की मूर्ति के आगे असंख्य याचनाएॅ हो रही थी।

सुनपति शौक अपनी पत्नी के साथ मंदिर में पूजा हेतु जाने की तैयारी में था।[8]

इसी सुपर्व पुण्य लाभ करने वैराठ नगर के राजा दुलाशाही की रानी धर्मादेवी तथा अनुचरों के साथ बागेश्वर में पहुंची थी, अपने विस्तृत राज्य का स्मरण आते ही निःसंतान राजा विचलित हो उठते हैं। उन्हें भी भगवान शंकर से पुत्र प्राप्ति हेतु अपने करूण मन से याचना करती है। मंदिर का प्रांगण संयोग से रानी धर्मदेवी एवं गांगुली शौक्याण का प्रथम परिचय होता है। दोनों एक दूसरे से अपने का कारण पूछते हैं, दोनों निःसंतान है। दोनों की व्यथा एक है। दोनों सगी बहनो ंकी तरह परम मित्र बन जाती है। इसी मित्रता को जीवन भर निभाना चाहती है। और फिर भगवान के सम्मुख यह प्रण है, कि अगर हम दोनों में से एक को पुत्र एक को पुत्री प्राप्त हो तो हम उन्हें परिणय के पवित्र सूत्र में बांधेगी इस प्रकार अज्ञात भविष्य के गर्भ में सम्पन्न हुआ एक आशापूर्ण गर्भ गंद्याक्षत।[9]

समय बीतता गया और वह दोनों स्त्रियॉ भी अपनी भेंट को भूल सी गई। वर्तमान आल्हाद के अतीत पर विस्मृति की यवनिका डाल दी। अब रानी धर्मादेवी की गोद में एक छोटा सा बालक खेल रहा था। कत्यूर राजवंश का भावी उत्तराधिकारी मालूशाही और गांगुली सौक्याणी का आंगन एक बालिका राजुला से मधुमय हो उठा, दिन बीते मास और वर्ष चले आ रहे है। नव वर्ष की उषा देखते-देखते वर्ष की संध्या बन बादलो के सुनहरे पंखों पर उड़ जाते हैं।[10]

राजुला अब अपने पंद्रह वर्ष में कदम रख चुकी थी कैसे थी वह? चैत्र की बसन्ती बयार में इठलाते करूवे की लावण्यता सी या पूस के पालक में बिखरी धरती की मुस्तान सी? जब शारदीय नव मण्डल में पूर्णचन्द की नीरव मुस्कान बिखरने लगती है, तो ऐसा प्रतीत होता है कि राजुला का ही प्रतिरूप हो मेघखण्डों की कोर से झांकती दूज की क्षीण ज्योत्सना राजुला के अधरों पर छिपि मुस्कान सी लगती है, और राजुला की वे बड़ी-बड़ी ऑखे दो जुड़वा नालों की भांति निर्मल गहरी और भी चंचल लगती है।[11]

समय अपनी गति से चलता रहा राजुला बड़ी हुई अकस्मात् एक दिन उसने अपनी मॉ से पूछा " मॉ देवताओं में सबसे पूज्यनीय देवता, पुण्य में सबसे सुंदर पुण्य, राजकुमारों में सबसे दिव्य राजकुमार, दिशा में सबसे बड़ी दिशा, गंगा में सबसे श्रेष्ठ गंगा, वृक्षों वृक्ष कौन होता है। "

राजुलाः- दिसिन में को दिशा ईजू
को दिशा ठुलि होली
गंगन में की गंगे ईजू
को गंगा ठुलि होली
वृक्षन मे की वृक्ष ईजू
को वृक्ष ठुलो होला
देवन में देवा ईजू
को देवा ठुलो होलो
राजन् में को राजे ईजू
को राजा ठुलो होला

मॉ ने कहा बेटी। दिशाओं में सबसे श्रेष्ठ पूर्व दिशा है। नदियों में सबसे बड़ी भागरथी गंगा बड़ी है, देवताओं में देवाधिदेव भगवान शंकर, वृक्षों में बडे ़और पीपल वृक्ष बडे ़माने जाते हैं, तथा राजाओं में श्रेष्ठ राजा मालूशाही है। माता का उत्तर इस प्रकार हैः-

दिसीन में की दिसा चेली
पूरबि दिशा ठुलि
गंगन में की गंगे
भागीरथी गंगा
देवन में को देवा चेली
देवा रे महादेवा
वृक्षन में को वृक्षा
बड़ पीपल ठुलो
राजन में को राजे
राजा रे मालूशाही

साथ ही सहसा याद आया कि प्रण जो इसने रानी धर्मादेवी से बागेश्वर मंदिर में भगवान शंकर के सम्मुख किया है मॉ की बात से राजुला के मन में

प्रेम का लुप्त भाव जागता है, वह उसके दिव्य दर्शन करने की युक्ति सोचने लगीत है। [12]

सुनपित शौक व्यापारी था वह तिब्बत से लाख, कस्तूरी विभिन्न प्रकार की जड़ी-बूटियॉ व ऊन का सामन अपनी भेड़ बकरियों में भरकर कुमाऊॅ की विभिन्न मंडियों में आता है। हर गांव हर नगर में घूम-घूम कर अपने सामान का क्रय-विक्रय करता है। इस बार सुनपति व्यापार करने बैराटनगर की ओर भी जायेगा यह सुनकर राजुला म नही मन अत्यंत प्रसन्न होती है, उसे मालूशाही से मिलने की यही युक्ति सबसे उचित लगती है, पिता सुनपति द्वारा बार-बार मना किये जाने पर भी राजुला जिद पर दृढ़ रहती है। और दुर्गम नदी, नाले, पर्वत, जंगल ादि पार कर पिता के साथ वैराठनगर पहुंच जाती है। [13]

वैराटनगर सुनपति का शिविर लगा है, सकुशल पड़ाव में पहुंचने की प्रसन्नता है सब हर्षोल्लास में आकंठ डूबे हैं, लेकिन सबसे अनभिज्ञ राजुला अलग एकान्त में अपने प्रियतम मालूशाही की स्मृति में ह्दय से उत्कंठा लिए हुए बैठी।[14]

अष्टमी का पावन पर्व है वैराठ नगर के सभी स्त्री-पुरूष, बाल-वृद्ध नर-नारी द्रोणागिरी के मंदिर में अपनी आराध्य देवी को नमन करने जारहे हैं। राजुला भी वहॉ पहुंचती है। कामनाओं से भरी हुई और देव कृपा देखिए द्रोणागिरी के सिद्ध पीठ में अपने राजवंश का परम्परागत ध्वज तोरण अपर्ण करने मालूशाही भी आ पहुंचा।[15]

मंदिर में प्रवेश करते ही उसके अन्दर एक ध्यानमग्न अद्वितीय तथा अनिद्य सुन्दरी दिखाई देती है। विस्मय से मालूशाही खड़ा रह जाता है। लगता है कि इस सुन्दरी के तेज से सम्पूर्ण द्रोणागिरी आलौकिक हो गया हो क्या यह भी मॉ भगवती से कोई वरदान की मांग रही कर रही है। नहीं यह तो स्वयं वरदायिनी है। कौन यह ज्योतिर्मयी? क्या है इसका सुपरिचय और फिर आता है, राजुला का वह प्रतीक्षिण क्षण मधुर मिलन का किन्तु यह मिलन छिपता कैसे? पिता सुनपति इस प्रेम का आभास पाते ही क्रोधाग्नि से भर उठता है। शीघ्र ही व्यापार छोड़कर बैराठ नगर से वापस देश जाने की सोचता है, ताकि दोनों प्रेमी फिर कभी न मिल सके।[16]

सुनपति बेटी से भी अपने व्यापार को ज्यादा मानता था अपनी-अपनी इस योजना के अन्तर्गत व तिब्बत के हूणराजा ऋषिपाल के साथ रजुला के व्याह का पूर्व में बचन दे चुका था। विरहिणी राजुला अभी यौवन का प्रथम प्रहर भी नहीं देख पायी थी। जबकि हूणराज ऋषिपाल बूढ़ा हो चला था। राजुला का रूप इतना संवेदनशील था कि सूर्य के ताप के में घुल-घुल जाता था। और चन्द्रमा की शीतलता में जम जाता है। पारदर्शी देह की स्वामिनी राजुला जब भूमि पर पॉव रखती थी तो दूब घास की हरी छाया पड़ने से पॉव के सभी पगनखों का रंग भी हरा हो जाता था। [17]

क्रूर वधिक की रस्सी से जकड़ी कपिला सी परबश राजुला पिता के दल बल के साथ वापस लौट रही है। मालूशाही के वियोग में उसकी कोमल काया क्षीण हो चुकी थी। अन्त में मॉ की ममता विचलित होती है। वह बेटी को सांत्वना देती है। बेटी तो मालूशाही के प्रति इतनी आसक्त है, तो वैराठ देश जाकर मालू से कहना अगर ते सच्चा प्रेमी है और यदि तेरी नसों में कत्यूरी राणा दूलाशाही का रक्त संचार कर रहा है तो मुझसे ब्याह करने मेरे शौक देश आना। राजुला भगवान शंकर कुलदेवता अपने ईष्ट देवता आदि देवी-देवताओं से याचना करती है कि उसे निर्विध्न उसके लक्ष्य तक पहॅचने में अपनी छत्र छाया प्रदान करें। तत्पशचात् राजुला शौक देश से अकेली ही बैराठनगर को प्रस्थान करती है। सात दिन और रात रातों तक निरन्तर वनों पर्वतों घाटियों एवं दुर्गम पथों को पार कर राजुला अद्धरात्रि मालूशाही के पास पहुंचती है, देखती है कि उसका प्रिय गहन निद्रा में निमग्न है। राजुला उसे नींद से जगाना भी चाहती है क्योंकि निद्रा में व्यवधान डालने में कष्ट होगा। तभी राजुला एक पत्र में अपने मन की व्यथा लिखकर मालू के सिरहने रखकर शौक देश से लायी हुई सुगन्धित पुष्पमालिका उसके गले में डाल गयी। कितनी अभागीन है राजुला कि जो उतनी दूर आने पर भी अपने प्रियतम से दो बात न कर सकी नयनों में अश्रु बहाते

हुए बिना प्रतिक्षा किए चुपचाप राजुला वैराठ से शौक देश को लौंट चली।[18]

रात बीत गई भारे हो गई ब्राहम्णों का वेदपाठ तथा धर्म का रथ गतिमान हो गया घोसलें की चिड़ियॉ आकाश में उड़ गयी दसों दिशाएं आलोकित हो गयी योगी अपनी योग साधना में तथा भोगी अपने सांसरिक कर्मो में तल्लीन हो गया। कहीं दूर कुँजो में किसी गोपाल की वेणु से राग भैरवी के स्वर मुखरित होने लगे। मालूशाही जाग उठता है, जागते वह असमंजस में पड़ जाता है। अरे यह क्या? यह सुगन्धित पुष्पों की माला मेरे गले में कौन डाल गया है, मेरे सिरहाने में यह पत्र किसका है? मालूशाही विस्मय पत्र को पढ़ने लगा पढ़ते-पढ़ते स्वयं खो जाता है। उसके मन प्राणों में पूर्व अनुराग का विरहाकुल संगीत गूंजने लगता है। सारी वैराठ राजुलामय हो गयी सम्पूर्ण सृष्टि कई रूपों में दिखती है वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया।[19]

उसकी स्मृति उसे झकझोर डालती है शक्ति का स्वामी मालूशाही प्रेम की शक्ति के आगे हार गया यह कैसा मोहक क्षण है, कि प्रकृति- स्वरूप नारी की महाशिक्ति ने अपने को सर्वशक्तिमान समझने वाले राजपुरूष को नत कर दिया है। मालूशाही अब राजकुमार नहीं विरहाकुल प्रेम बन गया। पावन प्रेम की गुरूता के सामने सम्पूर्ण राजपाठ तुच्छ लगने लगता है। गेरूवा परिधान गले में रूद्राक्ष की माला व हाथ में तृष्णाघाट -सा कमण्डल लिए अपनी प्रेमिका से मिलने के लिए एक योगी के रूप में घर बार छोड़कर चल देता है। राजहठ और योगहठ के सम्मिश्रण से यह योगी और भी हठी हो गया। द्रोणागिरी से योगी के पथ से बुरूश

पल्लवों की वर्षा होने लगी गगास नदी ने योगी को मंगल कामना देने हेतु सुमंगल कलश का रूप धारण कर लिया।[20]

चलते-चलते तरूण योगी पंचचूली की मनोहर उपत्याका में राजुला के देश दारमा में पहुॅच चुका है। वहॉ उसने दरमा के शिवमंदिर में धूनी रमा ली योगी अपने निरन्तर ध्यान में भी मल्ला दारम के नर नारी तरूप योगी को दर्शन करने आते हैं। यह योगी है? नहीं दसो अंगुलियों के चक्र शुभ ललाटपूर्ण देह में किसी चक्रवर्ती से लक्षण फिर भी योग की धारण सभी दर्शक श्रद्धालु विस्मित हैं। ठगे ठगे से योगी के सम्मुख खड़े हैं कही यह मेरे प्रिय के आगमन का सूचक तो नहीं? योगी के रूप में कही राजकुमार स्वयं तो नहीं आपने पंख लगे पगों से विरही राजुला भी दौड़ पड़ती है। योगी के दर्शन करने तथा दिखते ही पहचान लेती है। यहीं तो मेर मन मंदिर के देवता मालूसाही है। प्रेम के अतिरेक में राजुला का मन अंदर-अंदर रो पड़ता है।[21]

दोनों ने एक दूसरे को पहचान लिया साधक की साधना और साधिका की प्रतिक्षा आज पूरी हो जाती है। विहुल ही दोनों मिलते हैं, धरती के उपहार को अनन्त आकाश में श्रद्धा से स्वीकार कर लिया।[22]

राजुली की ब्याह की तिथि तिब्बत के हूण राजा ऋषिपाल से सुनिश्चित करके सुनपति अपने घर लौंट आया। राजुला के आग्रह पर सुनपति प्रसन्न होकर योगी को आग्रहपूर्ण कर निमन्त्रण देता है। सुनपति की धारण है कि सिद्ध योगी के घर के पदार्पण से उसकी आर्थिक समृद्धि में वृद्धि होगी। योगी सुनपति के घर आ गया राजुला प्रसन्न है। उसका प्रियतम अब उसके नयनों से दूर नहीं हो सकेगा।[23]

एक दिन सुनपति की तीक्ष्ण दृष्टि योगी के वेश में राजकुमार मालूशाही को पहचान गई लेकिन वह ठान लेता है कि इस समय राजुला से कुछ भी कहना उचित नहीं। राजुला की अनुपस्थिति में सुनपति अवसर पाकर भोजन में जहर मिला देता है। राजुला घर में ही बन्दी बना दी गयी पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार ऋषिपाल बारात लेकर आता है। परवंश होकर पिजड़े में बंद मैना सी राजुली ब्याह होकर हूण देश पहुॅच जाती है। [24]

उधर वैराट नगर में मालूशाही का योगी वेश में शौक देश को जाने के दिन से ही उसकी मॉ रानी धर्मा देवी किसी भी अनिष्ट की आशंका में व्याकुल है। वह अपने भाई मृत्यु सिंह तान्त्रिक एंव योगी वेश में नौ लाख सेना भेजती है। शौका देश में मालू

का कही भी पता नहीं है। तान्त्रिक गुरू अपनी योग साधना के बल पर मालू की स्थिति का पता लगाते हैं पता लगाता है कि सुनपति ने मालू को मृह देह हिमखण्डों के बीच दबाकर छिपा दिया है। योगी गुरू अपने मंत्रबल से अमृत सिंचन कर मालू को जीवित कर देते हैं। माूल जाग उठता है वह राजुला को तंत्र-मंत्र अथवा सैन्य बल किसी भी युक्ति से मुक्त कराने की योजना पर अपने मामा मृत्यु सिंह व तांत्रिक गुरूओं से विचार करता है। गुरू मालू के गले में यन्त्र बांधते है। मालू तुरन्त ही तोते का रूप घारण करके तिब्बत की ओर उड़ जाता है।[25]

मालू तोते के रूप में तिब्बत के राजमहल के ऊपर चक्कर काटता है। देखता है कि राजुला हूण राजा की कैद में सात ताले के अंदर बन्द है। केवल हवा व प्रकाश के लिए एक छोटा सा गवाज्ञ है। मालू उसी के अन्दर घुसता है तथा राजुला के सम्मुख अपना असली रूप प्रकट करता है। बिना व्यर्थ समय गंवाये ही एक यंत्र राजुला के गले में बांधता है। जिसे फलस्वरूप दोनों तोता-तोती के रूप में द्रुतगति से शौक देश की ओर उड़ पड़ते हैं राजा ऋषिपाल के महल के तान्त्रिक उसे सूचना देते है कि तुम्हारी पत्नी राजुला को सात तालों के अन्दर की कैद से उसका प्रेमी तोती के रूप में उसे उड़ा ले गया तभी तिब्बत के राजा की सेना बाज पक्षी बनकर तोता-तोती का पीछा करते हैं तब तक तोता-तोती शौक देश की सीमा के अंदर पहुँचकर अपने असली स्वरूप राजुला मालूशाही के रूप में बदल जाते हैं। और अपने गुरू व सेना के पास पहुँच जाते हैं। [26]

ऋषिपाल भी सेना लेकर तुरन्त ही अपनी पत्नी राजुला को छुड़ाने के लिए शौक देश पहुँचता है। ऋषिपाल की सेना और कत्यूरियों की सेना में युद्ध होता है। सुनपति अपने आदमियों को लेकर ऋषिपाल का सहयोग करता है। एक दूसरे को युद्ध में हराकर परम सुन्दरी राजुला को पाने की होड़ लगी रहती है। अन्ततः अपनी सेना को समाप्त होते देख परास्त होकर हूण राजा ऋषिपाल अपने देश तिब्बत को भाग जाता है। सुनपति शौका घायल होकर जमीन पर पड़ा है। [27]

अब सुनपति को अपने जीवन से मुत्यु अधिक प्रिय लगने लगी है। उसके जीवन में पश्चाताप व खेद प्रकट करने के अतिरिक्त कुछ नहीं बचा। क्या मर कर भी शांति मिल जायेगी? जीवन भर जिस समृद्धि एवं वैभव के कारण उनकी ऑखे बंद थी आज जीवन के अन्तिम क्षणों में भीषण यथार्थ ने उसकी आत्मा की ऑखे खोल दी। जीवन, धन, वैभव, का मद, यौवन, बुढापा, हर सांसारिक वस्तु की नश्वरता, ज्ञान-वैराग्य, मोह-भ्रम, अज्ञान, अच्छा-बुरा, अपना-पराया, जीवन ब्रहम, लोक परलोक, मान-अपमान, द्वेष-प्रेम आखिर यह सब क्या है?[28]

यही तो बिडम्बना है कि ये सब प्रश्न मनुष्य को उस समय उद्धेलित करते हैं जब उसके पास इस संसार में रहने के लिए पल भर का भी समय नहीं होता। इनके उत्तर खोजने से पहले ही वह महाप्रयाण कर चुका होता है। तभी ये प्रश्न आज तक सम्पूर्ण मानव जगत के समक्ष उपलब्ध है। 29

गंगुली शौक्याण किंकर्त्तव्यविभूढ सी एक ओर खड़ी है। सुनपति लज्जित होकर अपनी पुत्री राजुला से कहता है बेटी मुझ जैसे वैभव के अन्धे बाप को क्षमा कर दो तभी मेरी आत्मा को शांति मिल सकती है। मालूशाही ? आज से हम सब लोग मित्र बनकर रहेंगे तथा मित्रता को ही सार्थक मानेगें दोनों प्रेमी-प्रेमिकाओं का मिलन होता है।[30]

राजुला-मालूशाही, मृत्यु सिंह, गढ़वाली तांत्रिक गुरूओं व नौ लाख कत्यूरी सेना को सुनपति दम्पत्ति खुशी-खुशी मंगलमय जीवन का आशीर्वाद व उपहार देकर मितुर (मित्र) की तरह विदा करते हैं।

इस प्रकार दोनों प्रेमियों की अमर और पवित्र प्रेम साधना इस कुमाऊँ की प्रसिद्ध लोकगाथा राजुला मालूशाही द्वारा साकार होती है।[30]

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 - डॉ0 भगवत शरण उपाध्याय कृत विश्व साहित्य की रूपरेखा।

2 - डॉ0 गोविन्द चातक के शोध प्रबंध के प्रस्तावना से।

3 - रधुवंश लोक काव्य की भावभूमि ओर रसानिष्पति

हिन्दी आनुशीलन डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक पृ 503-04।
4 - मध्यकालीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्विक विवेचन डॉ0 सत्येन्द्र कृत की भूमिका पृष्ठ 05
5 - श्री कृष्ण लाल का कथन डॉ नारायण दत्त पालीवाल के शोध प्रबन्ध कुमाऊँनी (हिन्दी की उपभाषा) के कवियों को विवचनात्मक अध्ययन पृष्ठ 63 से उद्घृत।
6 - हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास (ना0प0स0) पोषश मात्र की प्रस्तावना पृष्ठ 167
7 - राजुला मालूशाही जुगल किशोर पेटशाली पृष्ठ 01
8 - प्रेम गाथाएँ कुमाऊँ की लोक गाथाओं का साहित्यिक और सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ संख्या 45 डॉ उर्वादत्त उपाध्याय
9 - जोशी डॉ कृष्णानन्द मालूशाही रूपहले शिखरों के सुनहरे स्वर पृष्ठ 71
10 - पालीवाल नारायण दत्त रंगीली वैराट और सुनपति शौक की चेली।
11 - दुती करनी ङ्कान हे गैछे, पुन्यु करनी चना
वैशख सुरिज जसी चैत की कैरूवा जसी
पूस की पालड़ा जसी याव मेरा रे भागीवाना
12- बिष्ट नन्दन सिंह रंगीली गेवाड़ पृष्ठ 28
13- राजुला मालूशाही जुगल किशोर पठशाली पृष्ठ 02
14- पांगती रामसिंह जोहार को इतिहास और वंशावली हस्तलिखित सन् 1936 प्रकाशित 1980
15- डॉ मिश्र मधुसूदन कुमाऊँ की एक उपेक्षित प्रेम गाथा स्मारिका जोहार क्लब 2005
16- जोशी डॉ प्रयाग उत्तराखंड की लोकगाथाओं का ऐतिहासिक आधार उत्तराखंड 1987 पृष्ठ 53
17 - शाह ब्रजेन्द्र राजुला-मालूशाही नाटक हस्तलिखित प्रति 1992
18 - भंडारी शिवराज सिंह यह अमर गाथा है प्रेम की पुरवासी 27, 2006 पृष्ठ 228
19 - वैष्णव यमुना दत्त राजुला मालूशाही पृष्ठ 88
20 - उपाध्याय डॉ उर्वादत्त प्रेम गाथायें कुमाऊँ की लोकगाथाओं का साहित्यिक और सांस्कृतिक अध्ययन पृष्ठ 168
21 - उपाध्याय गोपाल राजुला मालूशाही पृष्ठ 27
22 - जोशी मथुरा दत्त राजुला सौक्याण पृष्ठ 36
23 - जोशी डॉ कृष्णानन्द रूपहले शिखरों के सुनहरे स्वर पृष्ठ 40
24 - ओकवे गैरोला टी0एस0 हिमालयन फोकलोर पृष्ठ 93
25 - चातक डॉ गोविन्द परिचय राजुला-मालूशाही (जुगल किशोर पेटशाली) पृष्ठ 26
26 - जोशी डॉ कृष्णानन्द रूपहले शिखरों के सुनहरे स्वर पृष्ठ 56
27 - राजुला मालूशाही जुगल किशोर पेटशाली पृष्ठ 16
28 - शाह ब्रजेन्द्र राजुला-मालूशाही नाटक हस्त लिखित पृष्ट 32
29 - डॉ कौर श्रीमती मनदीप मालूशाही सन् 2005
30 - डॉ एस0एस0 पांगती राजुला मालूशाही प्रेम गाथा एक समालोचनात्मक अध्ययन 2007

सिख धार्मिक वस्त्रों का परिचय, पंजाब स्थित गुरुद्वारों में प्राचीन वस्त्रों का संरक्षण एवं वर्तमान स्थिति

डॉ. प्रज्ञा पाठक

स्वतंत्र लेखक

डी. फिल., वस्त्रकला, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सारांश

प्रस्तुत लेख सिक्ख धर्म से सम्बंधित धार्मिक वस्त्रों के परिचय एवं पंजाब स्थित कुछ प्रमुख गुरुद्वारों में सुरक्षित, सिक्ख गुरुओं के प्राचीन वस्त्रों के संरक्षण एवं वर्तमान में उनके रख-रखाव की स्थितियों पर केन्द्रित है। ये वस्त्र मुख्यतः दो श्रेणियों में विभाजित किये जा सकते हैं- 1. ऐसे वस्त्र, जो जन सामान्य की लोक वेष भूषा से इतर, गुरुद्वारों में आस्था स्वरूप चढ़ाए जाने वाले वस्त्र हैं जैसे रूमाला साहिब एवं फुलकारी अथवा गुरुद्वारों में प्रयुक्त होने वाले वस्त्र जैसे चानणी। 2. इसके अतिरिक्त खालसा समुदाय (निहंग योद्धाओं) द्वारा धारण किये जाने वाले पारंपरिक वस्त्र, पंज-कपड़े जिन्हें खालसा पंथ की स्थापना के समय गुरु गोविन्द सिंह द्वारा निर्धारित किया गया था।

पंजाब स्थित गुरुद्वारों, प्रमुख रूप से 1. गुरुद्वारा श्री चोला साहिब, डेरा बाबा नानक, जिला गुरदासपुर 2. गुरुद्वारा श्री चोला साहिब, घुदानी कलां, जिला लुधियाना 3. गुरुद्वारा दमदमा साहिब, भठिंडा में लगभग 300 से 500 साल तक पुराने वस्त्र संरक्षित हैं, जिनमें गुरु नानकदेव एवं गुरु गोविन्द सिंह जी के चोले, रूमाला साहिब, दस्तार एवं पजामी इत्यादि सम्मिलित हैं। अध्ययन इन वस्त्रों के संक्षिप्त ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य साथ ही साथ वस्त्र-संरक्षण के लिए प्रयुक्त पद्धतियों पर प्रकाश डालता है।

बीज शब्द

रूमाला साहिब, चानणी, दर्शनद्वार फुलकारी, पंज-कपड़े, वस्त्र-संरक्षण

सिख धार्मिक वस्त्रों का परिचय, पंजाब स्थित गुरुद्वारों में प्राचीन वस्त्रों का संरक्षण एवं वर्तमान स्थिति

सिक्ख धर्मः परिचय

सिक्ख अथवा सिख शब्द का आशय शिष्य, शिक्षार्थी या गुरु द्वारा दीक्षित शिष्य से है। सिख धर्म पहले पवित्र सिख गुरु, गुरु नानकदेव जी द्वारा अविभाजित भारत के पंजाब प्रदेश में 15वीं शताब्दी अंत में विकसित हुआ था।1 नवीनतम स्थापित धर्मों में सिक्ख धर्म दुनिया का पांचवां सबसे बड़ा धर्म है और विश्व भर में लगभग 25 से 30 मिलियन अनुयायी इस मत का पालन कर रहे हैं।2 सिक्ख धर्म का सम्पूर्ण आधार गुरु नानकदेव जी सहित दस पवित्र गुरुओं की शिक्षाओं और दर्शन द्वारा अनुमोदित होता है, जिसे अंततोगत्वा श्री गुरुग्रन्थ साहिब में संकलित किया गया और वर्तमान में सिक्ख समुदाय के लिए श्री गुरुग्रंथ साहिब ही गुरुतुल्य पवित्र एवं पूजनीय है।3

सिख समुदाय के प्रमुख धार्मिक वस्त्र

अध्ययनानुसार इन वस्त्रों को हम दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं। यथा 1. गुरुद्वारों में चढ़ाए जाने वाले वस्त्र अथवा अर्पण-वस्त्र 2. पंज-कपड़े जो दीक्षित सिक्ख अनुयायियों (अमृतधारी अथवा खालसा समुदाय) द्वारा पहने जाने वाले वस्त्र हैं।

अर्पण-वस्त्रः उपहार, चढ़ावे या सम्मान के रूप में प्रयुक्त वस्त्रों को अर्पण वस्त्र कहा जा सकता है, ये कई बार सादे या अत्यधिक सजावटी एवं समृद्ध कपड़ों के आयताकार या चैकोर टुकड़े के रूप में होते हैं। इन वस्त्रों का प्रचलन प्रायः सभी प्रकार के धर्मों में देखा जा सकता है, यथा, चादरें, शाल, चुन्नियां एवं रुमाल इत्यादि चढ़ाने की परम्परा। ये वस्त्र इष्ट को उच्चतम सम्मान प्रदर्शित करने या धन्यवाद स्वरूप निर्मित व अर्पित किये जाते हैं।4 सिक्ख धर्म में इन्हें तीन अलग-अलग स्वरूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है यथा- 1. रुमाला साहिब 2. चांदोवा साहिब 3. दर्शन द्वार फुलकारी

रुमाला साहिबः रूमाला शब्द रुमाल का ही पंजाबी अनुवाद है, जिसका उपयोग श्री गुरुग्रंथ साहिब को ढकने के लिए किया जाता है, जब इसे पढ़ा नहीं जा रहा होता है। गुरुद्वारे में सेवा-कर्म के दौरान भी इसे कभी-कभी उपहार के रूप में लाया जाता है। श्री गुरुग्रंथ साहिब को पहले सफेद सूती चादर से ढका जाता है और फिर रंगीन रेशमी रूमाला साहिब से ढका जाता है, जो अत्यधिक अलंकृत होता है। आज कल रूमाला साहिब विभिन्न प्रकार के वस्त्रों व कशीदाकारियों व अन्य अलंकृत तरीकों से बनाये जाते हैं।5

चंदोवा साहिबः चंदोवे का उपयोग भी धार्मिक वस्त्रों के तौर पर अन्य धर्मों में दिखाई पड़ता है। चंदोवा साहिब या चानणी (पंजाबी शब्दावलि) अत्यधिक अलंकृत कपड़े से बना होता है, जो श्री गुरुग्रंथ साहिब के ऊपर छत्रक के रूप में चार पदों पर स्थापित किया जाता है तथा पालकी साहिब के साथ संलग्न होता है जो श्री गुरुग्रंथ साहिब को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने के लिए प्रयुक्त होती होती है।6

दर्शनद्वार फुलकारीः फुलकारी पंजाब की लोक वस्त्र कला की आत्मा है। दर्शन का अर्थ है, प्रभु से साक्षात्कार अथवा आलाप अतैव प्रभु से साक्षात्कार अथवा दर्शन के इच्छुक अनुयायी द्वारा दर्शन द्वार फुलकारी प्रतीक स्वरूप अर्पित की जाती है। यह विशालकाय खादी वस्त्र पर रेशम के अनबटे धागों से सघन कशीदा कर के बनाई जाती है, विभिन्न प्रकार के प्रतीकात्मक अभिकल्प इस पर काढ़े जाते हैं जो आत्मा-परमात्मा के आलाप को प्रदर्शित करते हैं।7

पंज-कपड़ेः पंज-कपड़े या पांच-वस्त्रों के परिदृश्य को समझने से पूर्व जानना आवश्यक है कि सिक्ख समुदाय कुछ विशिष्ट प्रशाखाओं में विभाजित है, जो ऐतिहासिक काल-क्रम की देन है। सामान्य तौर पर किसी भी पगड़ीधारी अनुयायी को सहजधारी सिक्ख कहा जाता है, जो गुरु ग्रन्थ साहिब का अनुपालन करता है। जो अनुयायी दीक्षित होते हैं या अमृत छकते हैं उन्हें अमृतधारी सिक्ख या खालसा (खालिस या विशुद्ध) कहा जाता है एवं सिक्ख योद्धा अनुयायी निहंग कहे जाते हैं, जो स्वयं को दसवें एवं अंतिम जीवित गुरु, गुरु गोविन्द सिंह जी की सेना का अंग मानते हैं।8 गुरु गोबिंद सिंह जी ने 1699 में खालसा-पंथ की स्थापना के समय अपने अनुयायियों को कुछ न्यूनतम विशिष्ट प्रतीकों को धारण करने का आदेश दिया, जिन्हें पंज-ककार कहा गया यथा 1. केश 2. कंघा (आमतौर पर लकड़ी) 3. कड़ा (आमतौर पर लोहे या स्टील से बना होता है, कभी-कभी सोने का) 4. कशेरा (ढीला कच्छा या अंडरगारमेंट) और 5. कृपाण (छोटी घुमावदार कटारी) किन्तु इसके अतिरिक्त भी अनुयायियों के लिए विभिन्न आयुधों, उपकरणों व प्रतीक चिह्नों सहित पंज-कपड़े की अनिवार्यता की गई।9 पंज-वस्त्रों में मुख्य रूप से 1. दस्तार (पगड़ी) 2. हजूरिया (गले में पहना जाने वाला लंबा सफेद दुपट्टा) 3. लंबा चोला (फ्रॉक जैसी पोशाक) 4. कमर-कशा (बेल्ट जैसा वस्त्र) और 5. कशेरा

(अंडर गारमेंट) शामिल होते हैं। दस्तार और कशेरा हर सिक्ख के लिए अनिवार्य है।10 जनश्रुतियों के अनुसार जब गुरु गोविन्द सिंह के तीन पुत्र (साहिबज़ादे) अन्य योद्धाओं के साथ अपने रण कौशल का प्रदर्शन एवं अभ्यास कर रहे थे तब उनके सबसे छोटे एवं चैथे पुत्र बाबा फ़तेह सिंह भी इस प्रदर्शन में शमिल होने के इच्छुक थे, किन्तु अत्यंत कम आयु होने के कारण उन्हें अभ्यास करने से मना कर दिया गया तब उन्होंने ऊंचे दस्तार-बंगा (किलेनुमा ऊंची विशालकाय पगड़ी) को धारण किया जिससे उनकी लम्बाई बढ़ जाए व विद्युत् आभा वाले नीले चोले, तलवार, चक्रम-खंड इत्यादि आयुधों से सज कर गुरु के सामने आए और निर्भीकतापूर्वक युद्ध में प्रतिभागी बनने कि इच्छा प्रगट की। बाबा साहेब के इस गौरवशाली स्वरूप और वेश भूषा को देख कर गुरु गोविन्द सिंह अत्यंत प्रभावित हुए और इसे योद्धाओं की पारंपरिक वेशभूषा के रूप में स्थापित कर दिया।11

दस्तारः दस्तार शब्द, फारसी शब्द दस्त-ए-यार से लिया गया है या भगवान का हाथ। फारसी में दस्तार शब्द किसी भी प्रकार की पगड़ी को संदर्भित कर सकता है। यह बिना सिला लम्बा आयताकार वस्त्रखंड होता है, जिसे सर पर कई तहों में लपेट कर पहना जाता है। पगड़ी की परम्परा भारत के विभिन्न धर्म-समुदायों में देखने को मिलती है। पगड़ी बाँधने की शैली के आधार पर इसका नामकरण होता है।12 सिक्ख मत में दस्तार समानता, सम्मान, आत्म-सम्मान, साहस, आध्यात्मिकता और पवित्रता का प्रतिनिधित्व करता है। पुरुष और महिलाएं दोनों ही, जो पांच-ककार रखते हैं, अपने लंबे एवं बिना कटे बालों को ढकने के लिए पगड़ी पहनते हैं।

दस्तार धारण करने की विभिन्न शैलियाँ हैं जो विभिन्न सिक्ख समुदायों द्वारा धारण की जाती हैं। जैसे दस्तर-बंगा या विशाल किला। यह अकाली निहंगों द्वारा उपयोग की जाने वाली किलेनुमा ऊंची विशालकाय पगड़ी है। हथियारों की विस्तृत श्रृंखला के लिए पगड़ी को एक स्टोर के रूप में इस्तेमाल किया जाता रहा है।13 इसी प्रकार दुमल्ला हर प्रकार के सिख पहन सकते हैं। दु का अर्थ है दो और मल्ला का अर्थ कपड़ा है। ऐसा इसलिए है क्योंकि पगड़ी का आधार बनाने के लिए आमतौर पर एक कपड़ा होगा और दूसरा पगड़ी बनाने के लिए आधार के चारों ओर लपेटने के लिए प्रयुक्त होगा। ये विभिन्न रंगों और आकारों के होते हैं।14 चित्र सं.-1, 2, 3

चोलाः चोला एक फ्रौकनुमा घेरदार पारंपरिक पहनावा है। यह पोशाक एक योद्धा को आंदोलन और गति की स्वतंत्रता देती है। चोला यूनिसेक्स पोशाक है इसे कई बार भारी कढ़ाई से सजाया भी जा जाता है। यह पीले, सफेद या नीले रंग का होता है जिसमें हथियार रखने के लिए कई जेबें होती हैं।15

कमर-कशाः कमर-कशा निहंग पोशाक का एक अनिवार्य हिस्सा है, जिसे हथियार रखने के लिए कमर के चारों ओर बांधते हैं। नीला चोला पहनने पर पीला कमर कशा या सफेद चोला पहनने पर नीला कमर कशा बाँधना होता है।16

हज़ूरियाः हज़ूरिया (दुपट्टा) नम्रता का प्रतीक है जिसे अरदास (प्रार्थना) के दौरान धारण किया जाता है। यह पंज-ककार के साथ-साथ गुरु को अपने मन को समर्पित करने का प्रतीक है। इसके अतिरिक्त हज़ूरिया सेवा (सेवा) या गुरबानी (भजन) पढ़ने के दौरान सुचना (स्वच्छता) रखने में मदद करता है।17

पंजाब के विभिन्न गुरुद्वारों में पुरातन धार्मिक वस्त्रों का संग्रह

पंजाब के तीन मुख्य गुरुद्वारों में सिक्ख धर्म से सम्बंधित प्राचीन वस्त्रों का संग्रह प्राप्त होता है 1. गुरुद्वारा श्री चोला साहिब, डेरा बाबा नानक, जिला गुरदासपुर 2. गुरुद्वारा श्री चोला साहिब, घुदानी कलां, जिला लुधियाना 3. गुरुद्वारा दमदमा साहिब, भटिंडा। ये वस्त्र निम्नवत हैं।18

1. गुरु नानकदेव जी का चोलाः गुरुद्वारा श्री चोला साहिब, डेरा बाबा नानक, जिला गुरदासपुर (1744) में गुरु नानक देव जी का अति प्राचीन

चोला संरक्षित है। इसे बाबा काबली मल्लजी द्वारा बालक बुखारा, बगदाद से यहां लाया गया था, जो गुरुनानक देव जी के परिवार की 9वीं पीढ़ी के थे। चित्र सं.-4

2. बीबी नानकी जी द्वारा बनाया गया एक बुना हुआ रूमालः बीबी नानकी द्वारा बुना हुआ एक रुमाल भी उपरोक्त गुरुद्वारे में संरक्षित है। इतिहास के अनुसार बीबी नानकी ने यह रूमाल श्री गुरु नानक देव साहिब जी को गुरु साहिब के विवाह के समय दिया था।

3. महाराजा रणजीत सिंह द्वारा समर्पित श्री रुमाला साहबः गुरुद्वारा श्री चोल साहिब, डेरा बाबा नानक, जिला गुरदासपुर को महान सिख सम्राट राजा रणजीत सिंह ने बनवाया था। अहमद शाह अब्दाली पर विजय प्राप्त करने के बाद इस गुरुद्वारे में महाराजा रणजीत सिंह द्वारा समर्पित रुमाला साहब समर्पित किया गया था, जो गुरूद्वारे में आज भी संरक्षित है।

4. श्री हरगोबिंद साहिब का बावन कलियों वाला चोलाः यह चोला गुरुद्वारा श्री चोला साहिब, घुदानी कलां, जिला लुधियाना में संरक्षित है। इसे गुरु श्री हरगोबिंद साहिब जी ने पहना था जो सिख धर्म के छठे गुरु थे। उन्होंने मुगल सम्राट जहांगीर की नजरबंदी से बावन राजपूत शासकों को मुक्त करने के लिए ग्वालियर किला छोड़ने के बाद घुदानी कलां गांव का दौरा किया। वे इस गाँव में पैंतालीस दिनों तक रहे और इस स्थान को छोड़ने के समय गुरु साहिब ने अपने तीन सामानों के साथ गांव के लोगों को आशीर्वाद दिया; 1. जोड़ा साहिब (खड़ावां/जुत्ती) 2. ग्रंथ साहिब का लघु संस्करण जिसे उन्होंने घुदानी कलां गांव में रहते हुए पैंतालीस दिनों की अवधि के लिए इस्तेमाल किया और 3. श्री चोला साहिब बावन कलियां के साथ।

5. भाई महा सिंह के खून के धब्बों से आविष्ट गुरु गोबिंद सिंह जी का चोलाः यह प्राचीन चोला गुरुद्वारा दमदमा साहिब, भठिंडा में सुरक्षित है। तख्त श्री दरबार साहिब दमदमा साहिब को सिख धर्म के अस्थायी अधिकार के पांच तख्तों में से एक के रूप में गिना जाता है। इस गुरुद्वारे का ऐतिहासिक महत्व हुकमनामा से जुड़ा है। गुरु गोबिंद सिंह जी ने तलवंडी साहब को तख्त दमदमा साहिब घोषित करते हुए हस्ताक्षर और मुहर लगाई थी। यह विरासत पंजाब में रहने वाले भाई दल्ला सिंह की 13वीं पीढ़ी की है और इस स्थान पर गुरु साहिब की यादें संजोई गई हैं।

6. गुरु गोबिंद सिंह जी द्वारा पहनी जाने वाली सूती पाजामीः श्री गुरुगोविंद सिंह जी की सूती पाजामी गुरुद्वारा दमदमा साहिब, भटिंडा में सुरक्षित है।

7. गुरु गोबिंद सिंह जी की दस्तारः श्री गुरु साहिब द्वारा इस्तेमाल की गई दस्तार भी उक्त गुरुद्वारे में संरक्षित है।

8. माता साहिब कौर की पाजामी और चोलाः आपके द्वारा धारण की गई पजामी और चोला साहब भी यहीं सुरक्षित हैं।

उपसंहारः वस्त्रों का संरक्षण, रख-रखाव एवं वर्तमान स्थिति

गुरुद्वारा श्री चोला साहिब, डेरा बाबा नानक, जिला गुरदासपुर में संरक्षित वस्त्रों की स्थितिः चोला साहब को शीशे के शोकेस में समतल रखा गया है। संरक्षणकर्ताओं के अनुसार, गुरुओं के सामान को संरक्षित करने के लिए किसी भी प्रकार की वैज्ञानिक संरक्षण तकनीक या विधियों का उपयोग नहीं किया जाता है। गुरुओं के आशीर्वाद के कारण, गुरुद्वारे में संरक्षित कलाकृतियां खराब नहीं हो रही हैं। वे अपनी प्राचीन वस्तुओं को संरक्षित करने के लिए केवल निवारक संरक्षण विधियों का उपयोग कर रहे हैं जैसे नियमित रूप से धूल झाड़ना, सिलवटों को बदलना और समय-समय पर वस्त्रों को धूप में डालना किन्तु कांच के शोकेस में रखे चोला साहिब की स्थिति ठीक नहीं है।19

गुरुद्वारा श्री चोला साहिब, घुदानी कलां, जिला लुधियाना में संरक्षित वस्त्रों की स्थितिः यहां फोटोग्राफी की अनुमति नहीं है। यहाँ संरक्षित श्री चोला साहिब 550 वर्ष पुराना है और एक शीशे के आवरण में समतल रखा हुआ है। इसे बेस फैब्रिक से मजबूत

किया गया है। इन कलाकृतियों के रखवालों ने इस चोले को सुनहरे फीते से रेखांकित किया है ताकि इसके पैटर्न को अधिक स्पष्ट रूप से प्रकट किया जा सके। शोकेस के बेस पर फलालैन जैसा फैब्रिक रखा गया था।20

गुरुद्वारा दमदमा साहिब, भठिंडा में संरक्षित वस्त्रों की स्थितिः यहां भी फोटोग्राफी की अनुमति नहीं है। इन कलाकृतियों की देखभाल गुरुद्वारे के सेवादारों द्वारा की जाती है जैसे नियमित सफाई और धूल झाड़ना, चोल साहिब को शोकेस में रखा गया है और बेस फैब्रिक के साथ मजबूत किया गया है। यहाँ भी किसी प्रकार की उपचारात्मक संरक्षण विधियों का उपयोग नहीं किया जाता है। जहाँ इन वस्त्रों को रखा गया है, उस कमरे की लाइटें बंद रहती हैं ताकि प्रकाश विकिरण से वस्त्रों को कोई क्षति न हो, इन्हें तभी चालू किया जाता है जब कोई आगंतुक इनके दर्शन हेतु आता है। इन्हें पारदर्शी प्लास्टिक की थैलियों में मोड़कर रखा जाता है। ये प्लास्टिक बैग विदेशों से आयात किए गए हैं। आवश्यतानुसार या क्षतिग्रस्त होने पर बैग बदल दिए जाते हैं। साल में एक बार इन वस्त्रों की तहों को खोल देते हैं ताकि सलवटों से इन्हें किसी प्रकार का नुकसान न हो।21

संदर्भ

1. सिंह, खुशवंत. (2006). द इलस्ट्रेटेड हिस्ट्री ऑफ़ सिख्स. लंदन. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 15
2. नेस्बिट, एलेनॉर एम. (2005). सिक्खिज़्मः अ वैरी शॉर्ट इंट्रोडक्शन. लंदन. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 21-23
3. वही
4. रंजन, अदिति. रंजन, एम् पी. (2007). अ जिओग्रेफिकल एन्सायक्लोपीडिया ऑफ़ इन्डियन हैंडीक्राफ्ट. गुजरात. अहमदाबादः मैपिन पब्लिकेशन, 7-9
5. सिखीविकीः एन्सायक्लोपीडिया ऑफ़ सिख्स. .https: /www.sikhiwiki.org/index.php/Rumalla
6. सिखीविकीः एन्सायक्लोपीडिया ऑफ़ सिख्स. https:/ /www.sikhiwiki.org/index.php/Chanani
7. रंजन, अदिति., रंजन, एम पी. (2007). अ जिओग्रेफिकल एन्सायक्लोपीडिया ऑफ़ इन्डियन हैंडीक्राफ्ट. गुजरात. अहमदाबादः मैपिन पब्लिकेशन, 70
8. जिंदल, मुनीश. (2020). साडा पंजाब. चंडीगढ़. एम. एम. राइटिंग्स, 62
9. वही, 63
10. ढिल्लों, हरीश. (2018). द सिख गुरुज़. (13 एडी.). इण्डिया, हे हाउस, 232
11. सिंह, अवतार. हिस्ट्री ऑफ़ खालसा राज. पंजाब, पटियालाः आज़ाद आवाज़, 29
12. वही
13. वही
14. वही
15. खालसा, सुखमिंदर. (19 अप्रैल 2018). इंट्रोडक्शन टू द ट्रेडीशनल ड्रेस ऑफ़ सिख्सः द सेरेमोनियल अटायर ऑफ़ सिक्खिस्म. 6 मार्च 2022. https: /www.learnreligions.com/traditional-dress-of-sikhs-2993014
16. वही
17. वही
18. सिंह, पूजा., गोयल, अलका. (जून 2018). ट्रेज़र ऑफ़ पंजाबः गुरुद्वारा एंटीक्विटीज़, रिसर्च गेट, 46. DOI:10.13140/RG.2.2.33889.22885
19. वही, 4-5
20. वही, 5-6
21. वही, 6

चित्र सं.-1ः दस्तार बंगा पहने सिक्ख योद्धा, 1860

साभारः अल्ब्यूमेन प्रिंट, विक्टोरिया एंड अलबर्ट म्यूज़ियम नं. 0932:5

चित्र सं.-2: दस्तार बंगा पहने सिक्ख योद्धा साभारः दंजपवदंसहमवहतंचीपबण्बवउ

चित्र सं.-3: निहंग सिक्ख अवतार सिंह मौनी, सम्पूर्ण वेश-भूषा व हज़ार फिट के कपड़े का दस्तार

https://imgur.com/t/themoreyouknow/VhYxo

चित्र सं.-4: गुरु नानक देव जी का चोला, गुरुद्वारा श्री चोला साहिब, डेरा बाबा नानक, जिला गुरदासपुर साभारः सिंह, पूजा., गोयल, अलका. (जून 2018). ट्रेज़र ऑफ़ पंजाबः गुरुद्वारा एंटीक्विटीज़, रिसर्च गेट,

Architecture of Kerala Temple theatre- Kutthambalam

Dr. Jyoti singh
Tagore National Scholar
Varanasi

Abstract -

Kutambalam is an auspicious theatre of Kerala temple which is constructed for Kudiyattam dance and other dance forms like Kathakali. In Kerala, a few examples of Kutambalam survive, important among which are The Natyamandapa of the Guruvayur Krishna temple, Tirumuzhikulam Vishnu temple, Vadakkannatha shiva temple theatre, Trichur).

Key words

Kutthambalam, Temple, Architecture, Kerala, Kutiyattam, Milavu.

The temple of India played an important and varied role in Indian culture, it was built to meet the varied needs of the community having its roots in religion. While its construction provided scope for aesthetics, self-expression of master builders, sculptors, painters and common workmen for years, the daily temple ritual provided a livelihood to a large number of people of various communities like garland maker, pujari, musicians and other manual workers.

On festive days people from far and near gathered in temple to partake in general merriment, it provided a social platform. The more important temples were attached with *Natya-Mandapas*(performing space of dance and drama), temple theatres where *Nritya*(dance) and *Natya*(drama) were performed as ritual for offering to god a musical prayer or gratitude. In many temples the *Nritya Mandapa* without walls was an obligatory architectural feature, constructed for ritual dances by devadasis part of ceremonies. These also provided moral education and aesthetic enjoyment to the sophisticated and the cultured as also to the common man.

Kuttambalam of Vadakkannath Shiva Temple, Kerala[1]

In medieval times, the Sanskrit dramatic tradition underwent a change and cquired regional characteristics. Basically designed for performance of *"Kuttu"*

(mono acting) and *Kutiyattam* (Sanskrit drama), the temple theatre of Kerala represent the oldest surviving tradition of theatre architecture in India. Acting as a hereditary profession is continued by the *Chakyars,* exponents of *Kutiyattam*, the sole tradition of Sanskrit drama surviving today.

These kind of temple theatres called *Kutambalam* in Kerala are still to be found from the north to the south. Some important ones are no longer in existence but there are still a large of them that attract the notice of the serious minded.

Stage of Kudalmanikya Kshetram Kuttambalam[2]

The physical architectural form of *Kutambalam* is not only the venue of theatre, but just as mural painting is related to Kathakali, so are the principles of architectural plan and double roofed structure of the monuments of the theatrical performance are related to each other. *Kutiyattam* was ancient and innovative; it moved concurrently on two time dimensions of the a-historical, mythical and contemporary. The architectural form of the *Kuttambalam* with its double roof trellis reefs and beams is an exact counterpart. The roof is either shaped as at the *Kuttambalam* at the Vdakkunnath temple at Trichur and the Kudalmadikam temple at the Irinjalkuda or has dormer windows on either side, enclosed in the roof extensions as the Krishna temple Guruvayur and the Subramanian temple at Haripad. The ridge of the latter roof terminates in a triangular gable-end and latticed, to allow the flow of light and air. The roof in either case is either copper plated and is composed of small rectangular-shaped pieces arranged in parallel lines or is tiled with decorative flat tiles. It slopes down steeply and covers up a major part of the superstructure. The molded heavy stone scale on which stands superstructure set patterns defined in *Shilpashastra*, is hollow, its width depending on its size. It is filled with earth and rubble to form the auditorium floor, in earlier times must have been smeared with cow dung, or mortared but now is cemented. A flight of four or five steps leads to the two main entrances to the auditorium, the front one usually used by men and the one opposite, by women. there are two narrow entrances, usually at both the short sides

of the rectangular auditorium used by the actors before and during the performances.

Stage of Kudalmanikya Kshetram[3]

The auditorium is at times one flat level, though when there is a raised level, it is but a few inches high, in front of the stage, in a few cases, and in one case, reaching beyond the stage on either side. In days gone by, the front of stage, raised or not, was always reserved for the *Brahmanas* and the rest was used for the standing or sitting of the other people. But now-a-days anybody can sit anywhere, irrespective of caste, though the men sit on one side and the women on the other. At the back of stage is the wall of the dressing-room (*Nepathya*). It is pierced by two narrow doors for entries and exit from and to the *Nepathya* . Between these doors or a little off-centre, so as to leave the entrances and exits free, are placed two huge oval -shaped copper drums-*Milavus*. They are placed in a large square or rounded wooden frames.

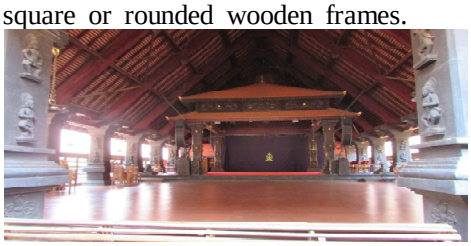

Mordern Kuttambalam Interior Design of Kalamandalam[4]

Standing in the centre of the auditorium, one finds rows of large pillars on either side, front and back and yet similar other rows of medium-sized pillars beyond which are the rows of small pillars mentioned earlier. In small *Kutthambalams* there are only two rows of pillars. The pillars are either entirely of wood or of stone and wood, but they always have a square stone base with a square plane shaft over which at times there is a fluted, ornamented shaft ending in a capital.

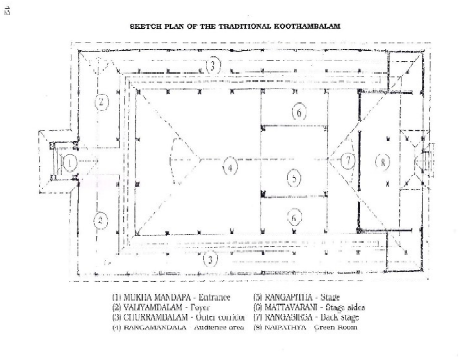

Design of Mr. Appukuttam Nayar[5]

There are three types of ground plans – square, circular and rectangular, the circular temples are distinctive to Kerala. The architectural style of the *Kuttambalam* shares the features of the square and circular temple of Kerala. The stage, usually square or nearly square is a raised platform at one end of the *Brahmana's* sitting level. it is so placed as to face the deity and the actor always

performs facing the god. It also has a molded hollow stone stone base ; which was filled like the auditorium, with earth and rubble and plastered with cow-dung in earlier times or mortared but now cemented. On this stone base,in each corner, usually stands one pillar of turned wood and lacquered in bright red, though in the case of Trichur *Kutthambalam* there are three pillars in each corner . These support the roof over the stage. Thus this roof is again, a single one, flat at the top or a doubled one, ending in *Kalasam*. The entire ceiling under the stage roof is highly ornamental in contrast to the main structure. The ceiling and the breaking up of its surface into uneven ornamental section greatly enhances its acoustic quality. But for the stage roof and the ceiling, the emotionally charged voice of the actor might have been lost in the great height of the auditorium. But for this roof the stature of the actor himself would have been greatly minimized. The acoustics of the *Kutthambalams* are excellent which shows how well *Sthapatis* had mastered this and various other problems facing theatres in those ancient times and so lamentably remind one of the architects of present day in India with their lack of understanding of essentials of theatre architecture.

the construction of the *Kuttambalam* : most of this however belongs to a period long after the ninth and tenth centauries. While it is not certain that these structures existed at the time of *Kulshekhara*, he certainly took the architectural style and floor pattern of the theatre into account while evolving methodologies the presentation of the *Kutiattam*.

There are as is well known, many scattered references to the *Natyamandapa* (or *Nrityamandapa*) and *Natyashala* in Sanskrit literature. The epics particularly the *Mahabharata*, describe the *nrityashalas*. The *Natyashashtra* devotes its full second chapter to a description of the different types of theatres. Later text of architecture, sculpture and even music described about the *Natyamandapa*. The 10^{th} and 11^{th} century texts such as *Mayamat, Maansaar* and *Ishan Shiva* etc. provides valuable material. Finallytwo texts from Kerala of the 16^{th} century *Shilpratna* and *Tantra-samucchaya* contains method of *Kuttambalam* construction. Without going into technical details let us only remember that the Kerala structure responds almost perfectly to descriptions of the *Vikrisht* type(rectangular)in the second chapter of *Natyashashtra*.

As it was a classical Sanskrit theatre, so music is an integral part of *Kutiyattam* or *Kathakali* performances. It consists of vocals well as orchestral. The vocal part consisting of the chanting or singing or the various verses and the recitation of the prose of the texts in certain *Swaras* or tunes. The orchestral music consists of *Milaavus* which may be one, two or three, each differently tuned. They also in different sizes. They are placed in the *Kutapasthanam* behind stage and between the doors in large

sturdy wooden frames (Kutu). The *Milaavu* along with the four instruments, forms the *Panchavaadyam* of *Kutiyattam*, other percussion instruments *Etakka* (an small instrument like Damru,played with stick),*Kurumkurul* is a small *Naagaswaram* type of instrument played in temple of Kerala, *Shankhu* (large conch) is another wind instrument used particularly at the entrance of character like Rama, who is considered to be of divine origin and *Kulittalam* (cymbal) are usede by *Nannyars(or Nangyars*)to keep taal (timing) during the performance. No string instruments are used. Thus only three of four type of instruments described by Bharata are used. Here though the use of music for dramatic purposes is borrowed from the *Natyashashtra*, the instruments and the *swaras* and *talaas* have been adapted to suit regional requirement of southern style. Even this is very brief account of music vocal with its various swaras and instruments with its Talas- is enough how deeply integrated it in *Kutiyattam*.

We have attempted to trace the history of the *Chakyar* and his *Kuttu* in Kerala, from the time of Empire in the 9th cent. A.D. from the time of the founder of this empire *Kulashekhara Varman* (800-820 A.D.), we have traced continuous references to the *Chakyars* and his *Kuttu* in the Sanskrit, *Manipravalam* and Malayalam literature up to the 18th cent. and later. This study has clearly shown that so-called typical architecture of Kerala is really speaking, the architecture of the entire coastal belt forming a geographical unit from Kanyakumari to Gokarna in north Karnataka. The special features of this architecture are the steeply sloping roof and the use of the basic construction material, wood. Both are result of the geography of the region. Heavy rains in the two monsoons force the construction of the roof structure in the particular way, and the abundance of the forest makes wood available cheaply and large quantity.

References :-

1. डॉ रस्तोगी, रेखा- प्राचीन भारत में प्रवेशगृह प्रकाशन विभाग, सूचना प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
2. K. Rama Pisharoti - Kerala Theatre, Journal of the Annamalai University, Annamalai nagar, 1934.
3. Dr. Clifford R. Jones - Temple: Theatre of Kerala Kuttambalam Annual-1968.
4. Dr. Vatsyayan Kapila - The Arts of Kerala Kshetram Gyan Publishing House- 2016.
5. Panchal Govardhan - Kuttambalam and Kutiyattam, Sangeet Natak Akademi-1984.
6. Ramani, RV - Bharat Kalakshetra Theatre, Kalakshetra Foundation, 2004.
7. Sarkar H. - Monument of Kerala, Archaeological Survey of India, New Delhi-1973.
8. Lal Anand - Theatres of India, Oxford University Press, 2009.

I. A research visit of south india (Karnataka, Kerala and Tmilnadu) for temple theatres in 2016 by the scholar.

(Footnotes)

[1] Self Collection by Scholar in Year 2016.

[2] Self Collection by Scholar in Year 2016.

[3] Self Collection by Scholar in Year 2016.

[4] Self Collection by Scholar in Year 2016.(Note- Kalamandalam Kutthambalam is a contemporary auditorium which structure completely based on traditional Kerala Kut thambalm, and the same concept can be seen in Kalakshetra auditorium which was the idea and concept of Vidushi Rukmini Devi Arundel, and the both auditoriums designed by great architect and aesthetic scholar Mr. Appukuttan Nair)

[5] Bharat Kalakshetra The atre by R.V. Ramani.

[6] Self Collection by Scholar in Year 2016.

जनप्रिय असमिया लोक कथाओं में चित्रित स्त्री

बेबी विश्वकर्मा

सहायक प्राध्यापक, नगाँव गर्ल्स कॉलेज (असम)

सारांश

किसी भी समाज की सांस्कृतिक संपन्नता और विरासत का दर्पण उस क्षेत्र की लोक संस्कृति होती है। लोक संस्कृति प्रत्येक समाज की धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अवधारणा की झांकी प्रस्तुत करती है। लोक कथा भी लोक संस्कृति का अभिन्न अंग है। सतत क्रम में प्रवाहित होती ये कथाएँ एक पीढ़ी के अभिज्ञताओं, कल्पनाओं, विचारधाराओं को दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाने का माध्यम बनती हैं। निरंतर चलायमान समय की गति के साथ मनुष्य की वैचारिक संसार का भी विस्तार होता है। मनुष्य कई प्राचीन मान्यताओं को त्याग नई संरचनाओं का निर्माण करता है। अतएव नए समय के संदर्भ में लोक कथाओं की पुनःव्याख्या समीचीन ठहरता है, ताकि लोक कथाओं की लोक-शिक्षा का उद्देश्य सटीक रहे। लोक कथाओं का विस्तृत संसार असमिया समाज में भी प्रस्फुटित है। अतएव प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य असमिया समाज के जनप्रिय लोककथाओं का पुनर्मूल्यांकन स्त्री केन्द्रित दृष्टि से करना है।

बीज शब्द

लोक संस्कृति, लोक कथा, पुनःव्याख्या, स्त्री, असमिया समाज।

असम अनेक जाति-जनजातियों का संगमस्थल है। इसीलिए इसकी संस्कृति बहुआयामी है। इस प्रदेश में लोक कथाओं का विस्तृत संसार समाहित है जो यहाँ की संस्कृति, जीवन शैली, धार्मिक पारंपरिक विश्वास को दर्शाता है। लोककथा केवल बच्चों को मनोरंजन अथवा नैतिक शिक्षा देने हेतु सुनाए जानेवाले साधारण कथा मात्र नहीं है। शिशुकाल में ग्रहण शक्ति अति तीव्र होती है। लोक कथाओं के जरिए शिशु की सामाजिक कंडिशनिंग की प्रक्रिया शुरू होती है। ये कथाएँ सामाजिक विचारधाराओं का प्रतिबिंब है जिन्हें व्यक्ति आत्मसात करता है। अतएव व्यक्ति के मन-मस्तिष्क को शिशुकाल से ही प्रभावित करती इन लोक कथाओं का पुनर्मूल्यांकन आवश्यक है। यह पड़ताल करना जरूरी है कि लोक कथाओं के जरिए जो स्त्री छवि पीढ़ी दर पीढ़ी प्रस्तुत की जा रही है वह वर्तमान समय में संगत है या नहीं। अधिकांश लोककथाओं के उत्पत्ति का कोई निश्चित स्रोत प्राप्त नहीं होता है। लोककथाएँ एकल व्यक्ति द्वारा निर्मित नहीं होती है। यह एक समाज द्वारा गढ़ी और संशोधित की जाती है।

कहानी की गतिशीलता को बनाए रखने के लिए अधिक चरित्र जुड़ते हैं, नया अंश जोड़ा जाता है इसीलिए एक ही कथा के भिन्न-भिन्न संस्करण प्राप्त होते हैं। अतएव शोध की प्रामाणिकता को बरकरार रखने हेतु असम के प्रसिद्ध साहित्यकार लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा द्वारा संकलित घर-घर में पढ़ी-सुनाई जानेवाली जनप्रिय लोककथाओं का संग्रह 'बूढ़ी आइर साधु' को इस शोध पत्र का आधार बनाया गया है ताकि कोई संदेह या भ्रम उत्पन्न न हो।

असमिया स्त्री केन्द्रित लोककथाओं में प्रायः 'लागी' अर्थात पति की चहेती और 'एलागी' अर्थात पति द्वारा अवहेलित, की आपसी रंजिशों से कथा को गति मिलती है। विडम्बना यह है कि ये कथाएँ स्त्री पात्रों के इर्द-गिर्द घूमती हैं फिर भी स्त्री-स्वर यहाँ नदारद है। पितृसत्तात्मक मूल्यों को वहन करती ये कथाएँ स्त्री पात्रों का कोरा विभाजन करती है – यदि नायिका है तो आदर्श, त्याग, क्षमा, परम आज्ञाकारिणी है तो दूसरी ओर अपनी अधिकारों, इच्छाओं के प्रति सजग है तो वह क्रूर, कुटनी, खलनायिका है जो प्रतिहिंसा में व्याकुल होकर विक्षिप्त की भांति व्यवहार करती है। जीवन की सारी ऊर्जा नायिका के विरुद्ध षड्यंत्र करने में व्यर्थ करती है। नारी चरित्रों का यह संकीर्ण चित्रण पितृसत्तात्मक शक्तियों को बलवती करती है। 'औरत ही औरत की दुश्मन है' उक्ति को चरितार्थ करती इन लोककथाओ में पुरुष स्वीकृत व्यवहारों का महिमामंडन तथा पुरुष की गलतियों को ओट में छिपाकर स्वतंत्रचेता स्त्री को दंडित किया गया है। 'बूढ़ी आइर साधु' में संकलित अधिकांश लोक कथाओं ('मेकुरीर जियेकर साधु', 'औकुंवरी', 'तेजीमला', 'चिलनीर जिएकर साधु', 'तुला और तेजा') में बहुपत्नीत्व का चित्रण है। एकाधिक पत्नी का होना पुरुष की प्रतिष्ठा, संपन्नता, पुरुषत्व का प्रतीक था लेकिन दूसरी ओर यह स्त्री जीवन को अनिश्चयता, शंका, प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या से घेरकर स्याह कर देता है।

उपरोक्त लोककथाओं में जलती-कुढ़ती, क्रूरता के हद तक व्यवहार करती स्त्री पात्रों का चित्रण है लेकिन इन पात्रों के ऐसे रवैये के पीछे छुपे मानसिक स्थिति का संकेत लेशमात्र नहीं है। वर्तमान समय में स्त्री के पास आत्मनिर्भर बनने के अनेक अवसर उपलब्ध हैं। लेकिन आधुनिकता के आगमन से पूर्व स्त्री आर्थिक व सामाजिक स्तर पर पूर्णतःपुरुष पर निर्भर थी। लोक कथाओं में भी स्त्री के कार्यक्षेत्र को गृहस्थी तक ही सीमित दिखाया गया है। और घर-बाहर दोनों ही स्थान पर आधिपत्य पुरुष का होता है। स्त्री बचपन से ही यह देख-समझकर बड़ी होती है कि सत्ता पुरुष के पास है। उसे जीवित रहना है तो पुरुष के आकर्षण का, प्रेम का केंद्र बने रहना होगा। उसे समाज यही सिखाता है कि पुरुष मुख्य है और स्त्री गौण। पुरुष के प्रति प्रेम और आत्मसमर्पण स्त्रीत्व का सार भी है और मजबूरी भी। पुरुष बिना वह अस्तित्वहीन है। ऐसी स्थिति में पति प्रेम उसकी एकमात्र पूंजी है और सौतन के आने का अर्थ है उसकी प्रतिष्ठा का धूमिल होना, उसका सर्वस्व छीन जाना। अतः सौतन के आगमन को चुनौती मान लेना उसकी सहज प्रवृत्ति है।

लोककथाओं क 'लागी' पात्र हैं सुखी, समृद्ध है। पति के प्रेम और ऐश्वर्य की एकछत्री अधिकारिणी है। दूसरी ओर 'एलागी' का जीवन दरिद्रता, अवहेलना, अपमान, कष्ट से परिपूर्ण है। ऐसी स्थिति में कोई भी व्यक्ति चाहे, चाहे स्त्री हो या पुरुष प्रसन्नचित इस अन्याय को सहना नहीं चाहेगा। लेकिन इन कथाओं में संघर्षशील, सक्रिय स्त्री को खलनायिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है, ताकि पाठक की सहानुभूति पुरुष पात्र एवं पुरुषोचित व्यवहार करती निष्क्रिय स्त्री पात्रों के साथ बनी रहे। उन्हें हिंसापूर्ण, क्रूर व्यवहार करते दिखाया गया है ताकि उनकी उदण्डता की आड़ में पुरुष सत्ता का प्रपंच छिपाकर सारा दोष स्त्री के ही मत्थे मढ़ दिया जाए। 'चिलनीर जियेकर साधु' में सात पत्नियों के होने के बावजूद सौदागर नव यौवना चील की बेटी की सुंदरता को देखकर वासना संवरण नहीं कर पाता और उससे विवाह करने का निश्चय करता है। विवाहपूर्व चील से वह कहता है – 'मैं तुम्हारी बेटी को सदा सुखी रखूँगा, कभी दुखी नहीं करूंगा'। क्या पता ऐसे खोखले वादें एक-एक करके उसने

अपनी सातों पत्नियों से की हो। अन्य सभी लोक कथाओं की भांति 'चील की बेटी' कथा में भी सौतन बनी स्त्रियाँ आपसी ईर्ष्या में पति प्रेम पर एकाधिकार हासिल करने हेतु नायिका के विरुद्ध प्रपंच रचती हैं। क्योंकि उनके लिए पति का प्रेम और साथ उनके अस्तित्व से जुड़ा है। पति द्वारा अस्वीकृत स्त्री सम्पूर्ण समाज के लिए ताज्या बन जाती थी। पति मालिक है, अन्नदाता है। उसे प्रसन्न रखना, उसकी छत्र छाया में रहना ही स्त्री का ध्येय था। स्त्रियों की मध्य जन्मी इस आपसी तनाव में पुरुष की भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। प्रस्तुत कथा में सौदागर अपनी सभी पत्नियों से कपड़ा बुनने का आदेश देकर यह परखना चाहता है कि किसकी बुनाई बेहतर है। वैसे तो बिहू प्रेम और उल्लास का उत्सव है लेकिन सौदागर पत्नियों के मध्य प्रतियोगिता का माहोल पैदा कर इसे विषाक्त कर डालता है। यदि वह सभी पत्नियों की प्रशंसा करता तो उनकी परस्पर ईर्ष्या, प्रतिस्पर्धा को अधिक बढ़ावा नहीं मिलता।

स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व को समाज ने सदेव नकारा है। पुरुषसत्ता ने ऐसी गाय-सी स्त्री का आदर्श समाज में रखा है जिसका सिर हिले तो हामी में। स्त्री दया, ममता, क्षमा, त्याग की मूरत है। स्त्री ऐसी हो जिसकी अपनी कोई भावना नहीं, इच्छा नहीं, स्वतंत्र सोच नहीं। वह इंसानी मशीन है जिसे पुरुषसत्ता की इशारों पर ही चलना है। वह निष्क्रिय हो, उसके विचार भी निष्क्रिय हो, घर-आँगन तक ही उसकी दुनिया सीमित हो, इन्हीं शर्तों पर स्त्री प्रशंसनीय है, सम्मानित है। जैसे ही वह इन मायनों से दूर हटती है, ताड़न की अधिकारिणी बनती है। इस संदर्भ में राजेंद्र यादव लिखते हैं – 'वे पुशंचली, कुलटा, छिनाल, रंडी, पतिता इत्यादि के नाम से सजा की अधिकारिणी हुई। इस स्वतंत्रता की सजा मौत थी...पुराने राजघराने की सारी जालसाज हलचलों में कोइ-न-कोई कुटनी, वेश्या या ऐसी ही औरत मौजूद थी। अनजानी प्रतिहिंसा से परिचालित वे 'घरों' और गृहस्थों का नाश करती हैं। हमारी सारी लोककथाएँ और पुरानी कहानियाँ इन्हीं कुटनियों, छिनालों, नायिकाओं और वेश्याओं से गति और रंगीनी पाती हैं'। चर्चित लोककथाओं में भी उन्हीं स्त्रियों के साथ कथावाचक की हमदर्दी दिखती है जो शर्मीली, शांत और दब्बू है। 'कांचनी' में कांचनी माता-पिता के आज्ञानुसार कुत्ते से और 'चंपावती' में चंपावती अजगर से विवाह कर लेती हैं। ये पात्र उन पर थोपे गए इन अन्यायपूर्ण निर्णय का विरोध कर सकती थीं, घर से भाग सकती थीं या फिर अन्य कोई रास्ता अख़्तियार करती पर निराशाजनक रूप से झूठे आदर्शों की बली चढ़ती हैं। विवाहोपरांत कुत्ता और अजगर दोनों को रूपवान युवकों में परिवर्तित कर कांचनी और चंपावती के सुखी दाम्पत्य जीवन का चित्रण किया गया है क्योंकि कथावाचक को इन पात्रों के निरर्थक आज्ञाकारिता को सही साबित कर उनका महिमामंडन करना था। ताकि स्त्रियाँ भी इसी परंपरा का निर्वाह करे। निर्विवाद रूप से आदर्श के ओट में पुरुषसत्ता की वर्चस्व को स्वीकार कर खुद की तिलांजलि देती रहें। दूसरी ओर 'चिलनीर जियेकर साधु', 'मेकुरीर जियेकर साधु', 'तेजा और तुला' में जो स्त्री पात्र पति की पुनर्विवाह को नहीं स्वीकारतीं, वें खलनायिका के रूप में चित्रित हैं। क्योंकि दासी की भांति पति की आज्ञा का पालन ही आदर्श पत्नी का धर्म होता है। जो स्त्री इस पतिव्रत का पालन नहीं करती वह बिगड़ेल है, पतित है, समाज और पाठक की घृणा की अधिकारिणी है।

प्राचीन असमिया समाज में स्त्री का कार्यक्षेत्र घर-आँगन तक ही सीमित था। समाज और बाहरी कार्यक्षेत्र में पुरुष का वर्चस्व कायम था ही, गृहस्थी पर भी किसी ओर का हस्तक्षेप को भला स्त्री कैसे सहन करे। लेकिन फिर भी अपने अधिकार की रक्षा के लिए संघर्ष करती स्त्री की नकारात्मक छवि प्रस्तुत की गई है। 'कांचनी' कहानी में छह भाई गृहस्थी चलाने का अधिकार अपने कनिष्ठ भाई को सौंपते हैं। भाभियों को अपने ही घर में एक-एक चीज का हिसाब देवर को देना पड़ता है। यहाँ तक कि भिखारी को भिक्षा देने तक का अधिकार उनके पास नहीं था। चूंकि समाज पितृसत्तात्मक था इसीलिए

स्त्री से यह अपेक्षित था कि वह अन्याय को भी प्रसन्नचित सहन करे, पतियों के साथ देवर की भी जी-हजूरी करे। यही आदर्श स्थिति होती है और आदर्श स्त्री का गुण भी। पर ये स्त्री पात्र इस अन्याय का विरोध करती हैं इसीलिए कथावाचक की दृष्टि में वे अपराधी हैं। परिणामस्वरूप पाठक के समक्ष खलनायिका के रूप में प्रस्तुत की जाती हैं।

अपराध के बदले दण्ड देना न्याय है लेकिन अपराध से बढ़कर दण्ड तो कानून भी नहीं देता। परंतु चर्चित लोककथाओं के वातायन में पुरुष पात्र सर्वश्रेष्ठ और सर्वाधिकार सम्पन्न है। उसे मन-मर्जी करने की छुट है तो दूसरी ओर स्त्री पात्र अधिकारहित होकर सामाजिक-पारिवारिक कर्तव्यों को ढोये जाने के लिए मजबूर है। जब तक पत्नियाँ पति की प्रसन्नता का कारण बनी रहें तब तक सुरक्षित हैं। लेकिन अगर पति उनसे उब जाए तो उनका जीना दुश्वार हो जाता है। दंडस्वरूप वे पति द्वारा बेघर हो सकती हैं। क्योंकि स्त्री का अपना कोई घर नहीं होता, या तो ससुराल होता है या तो मायका होता है। दोनों की घरों की श्री वृद्धि के लिए स्त्री खुद होम होती है। ससुराल और मायके की संपन्नता उसकी दिली ख्वाहिश भी हैं और कर्तव्य भी पर उस पर अधिकार उसका नहीं है। पति का पत्नी पर मालिकाना हक़ है। वह चाहे तो उस पर प्रहार कर सकता है अथवा मृत्युदंड भी दे सकता है। चर्चित लोककथाओं में इस कथ्य के कई निदर्शन प्राप्त होते हैं। 'तुला और तेजा', 'चिलनीर जियेकर साधु' में 'लागी' पत्नी के विरोध प्रपंच करती स्त्री पात्रों से रुष्ट पति उन्हें मृत्युदंड देता है। गलती चाहे स्त्री-पुरुष दोनों पक्षों द्वारा हुई हो, सजा की हकदार सिर्फ स्त्री ही होती है, पुरुष तो बाइज़्ज़त बरी हो जाता है। 'मेकुरीर जियेकर साधु' की कहानी में व्यापारी अपनी कनिष्ठ पत्नी से अथाह प्रेम करता है लेकिन उसी पत्नी के गर्भ से संतान के स्थान पर कद्दू जन्मने की झूठी खबर मिलते ही अलक्ष्मी मानकर उसका परित्याग करता है। सालों बाद जब सच्चाई का पता चलता है तो बड़े ही आराम से बिना किसी अपराधबोध के ज्येष्ठ पत्नियों को अपमानित कर, उनका नाक-कान काटकर घर से बेघर करता है और खुद कनिष्ठ पत्नी और बेटों के साथ सुखी जीवन बिताता है। इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि पत्नियों से अपराध हुई लेकिन क्या उनका पति पूर्णतः निर्दोष था? क्या उसके प्रेम में ही खोट नहीं था? कि जिसस प्रेम का दावा किया, सुनी-सुनाई बातों में आकर उसी को भीषण पीड़ा और गरीबी के बीच धकेल दिया?

भारतीय समाज में प्रचलित अनेक लोक कथाओं में स्त्री एक अबला के रूप में चित्रित है जिसे संरक्षण की आवश्यकता है, जो उसे कोई राजकुमार या कोई सदपुरुष द्वारा मिलता है। चर्चित लोककथाओं में भी स्त्री की इस पुरुषाश्रित छवि का चित्रण है। 'तेजा और तुला', 'मेकुरीर जियेकर साधु', 'चिलनीर जियेकर साधु', 'चंपावती' आदि कहानियों में नायिका को दरिद्रता, पीड़ा, विमाता की क्रूरता से मुक्ति पुरुष द्वारा मिलती है। उससे विवाह कर अपार धन-ऐश्वर्य की मालकिन बनाता है। स्त्री का उद्धार भी पुरुष द्वारा ही संभव दिखाया गया है। इसमें इतना सामर्थ्य कहाँ कि स्वयं खुद की सहायता कर सके, मुक्ति की राह ढूंढ सके। स्त्री की पुरुष निर्भरता में ही पितृसत्ता का नींव खड़ा है।

बड़ो के प्रति श्रद्धा, उनका आज्ञापालन प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक है। लेकिन अक्सर सारी नैतिक जिम्मेदारियों का बोझ स्त्री को ढोना पड़ता है। चर्चित लोककथाओं में भी आज्ञाकारिता स्त्री पात्रों से ही अपेक्षित हैं। वे बड़ों की प्रत्येक उचित-अनुचित आज्ञा का पालन करती हैं तो दूसरी ओर पुरुष पात्रों को हठ करने की, अधिकार मांगने की छुट है। 'औ कुँवरी', 'पानेशै' आदि कथाओं में पुरुष पात्र मन-पसंद की कन्या से विवाह करने की हठ करते हैं और उनकी जिद-पूर्ति भी होती है। परंतु स्त्री की इच्छा-आकांक्षाओं की गला घोंट दी जाती है और अंततः वे पुरुष की जिद, लोभ, कामना का शिकार बन जाती है। पानेशै अपने मुंह-

बोले भाई शादी नहीं करना चाहती थी। वह इस जबरन विवाह से बचने की कई नाकामयाब कोशिशें करती है पर व्यर्थता ही हाथ लगती है। चूंकि कथावाचक पुरुष पात्र का पक्षधर है इसीलिए पानेशै के साथ हुए इस अन्याय के प्रति वह मौन है। पानेशै की मनः स्थिति क्या थी, जबर्दस्ती से बांधे गए इस रिश्तें में वह कितनी तड़पी होगी इसका लेशमात्र भी उल्लेख नहीं है। कहानी का अंत भी पक्षपाती ढंग से यह कहकर कर दिया गया है कि विवाह पश्चात पानेशै और उसके पति ने सुखी दाम्पत्य जीवन का निर्वाह किया। सुख और संतुष्टि तो पुरुष पात्र को अपनी इच्छा-पूर्ति से मिली होगी लेकिन इस बेमेल विवाह में कैद पानेशै क्या सच में सुखी होगी यह विचारयोग्य है।

चर्चित लोककथाएँ पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की स्थिति का चित्र हमारे समक्ष उपस्थित करती हैं। स्त्री की पुरुषाश्रित, डब्बू, दैवीय अतिवादी स्वरूप का गुण-गान ही इन कथाओं में प्रत्यक्ष होता है तथा कथाओं के निर्मिति के पीछे क्रियाशील तत्कालीन सामाजिक संरचना का संकेत मिलता है। स्त्री की अधीनस्थ भूमिका केवल असमिया समाज की ही नहीं सम्पूर्ण भारतीय समाज की सच्चाई है। बहुपत्नीत्व, घरेलू हिंसा आम जीवन का हिस्सा था। लेकिन वर्तमान समय में स्त्री की भूमिका परिवर्तित हुई है। स्वलम्बी, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर, स्वतंत्र व्यक्तित्व सम्पन्न स्त्री, समाधिकार के लिए संघर्षरत है। इसीलिए यह प्रश्न विचारयोग्य है कि क्या आज भी स्त्री संबंधी ऐसे प्रतिगामी अवधारणा समाज में दोहराए जाने चाहिए? क्या ये शिशु के कोमल मन-मस्तिष्क को कुप्रभावित नहीं करेगा? क्या इन कथाओं में नए प्रसंगों को जोड़ने की आवश्यकता तो नहीं है ताकि प्रासंगिकता बनी रहे। यह सच है कि इन कथाओं के जरिए सत्य का असत्य पर, अन्याय पर न्याय के विजय की सीख दी जाती है लेकिन क्या नैतिक शिक्षा देने हेतु स्त्री के साथ अन्याय, हिंसा, स्त्री पात्रों के प्रति हेय भावना का सामान्यीकरण करना संगत होगा? इन लोककथाओं में किया गया स्त्री चित्रण तत्कालीन सामाजिक संरचना का देन है। लेकिन इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि स्त्री की सामाजिक स्थिति में बदलाव आ रहे हैं, सामाजिक संरचना कुछ हद तक परिवर्तित हुई है और अभी भी काफी सुधार अपेक्षित हैं। अतएव वर्तमान समय स्त्री भावनाओं को आहत न करते हुए लिंग आधारित भेदभाव का अतिक्रमण कर मानवीय गुणों की श्रीवृद्धि करनेवाले कथाओं की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. बेजबरुबा, ल. (2011). बूढ़ी आइर साधु. अकनीर प्रिय बंधु 60.
2. यादव, रा, (2007). आदमी का निगाह में औरत. राजकमल प्रकाशन, 16
3. अनामिका (2017) स्त्री विमर्श का लोकपक्ष वाणी प्रकाशन

Cultural Heritage of Khasi Folktales; A Study of India's Northeast and its Tradition

Dr Abhisarika Prajapati

Associate Professor
School of Arts, Humanities & Social Sciences
REVA University, Bangalore, Karnataka,

Abstract

India's Northeast comprising seven sister's states ***is*** *a region with extravaganza of natural beauty with rich cultural heritage. Unfortunately, with due course of time this region also witnessed insurgency and political turmoil which impacted its socio-cultural panorama and practices as well. Violence, tension and tumultuous situation overshadowed the cultural spirit and soul of the states. It is all the more deplorable that outsider's perception about the North-eastern states were told as stories of gun and bullets. Though this region is brilliantly gifted in natural and cultural terms. Khasi culture is among one of those tribal communities of Meghalaya where people have unique culture and cultural traits which give new insight in understanding our life and human condition as well. This paper is an attempt to study the selected folktales of Khasi community and its cultural tradition with a desire to connect it with incredible India. The aim and objective of the paper are also to elaborate the explored line of cultural aspects particularly through Khasi folktales and its significance by making them potential lines of enquiry to critically deconstruct and dismantle the preconceived notions and biasness as presented by media from an outsider's perspective.*

Keywords

Northeast, Khasi, culture, folktale, tradition.

Violence and atrocities generated by political turmoil have often overpowered the rich and unique cultural extravaganza of Northeast India**.** Gun and bullets are not the only realities of the seven sister's states of Assam, Meghalaya, Nagaland, Mizoram, Manipur, Arunachal Pradesh and Sikkim. India's Northeast comprising seven sister's states **is** a region with extravaganza of natural beauty with rich cultural heritage. Unfortunately, with due course of time this region also witnessed insurgency and political turmoil which impacted its socio-cultural panorama and

practices as well. Violence, tension and tumultuous situation overshadowed the cultural spirit and soul of the states. It is all the more deplorable that outsider's perception about the North-eastern states were told as stories of gun and bullets. Though this region is brilliantly gifted in natural and cultural terms. Khasi culture is among one of those tribal communities of Meghalaya where people have unique culture and cultural traits which give new insight in understanding our life and human condition as well.

Khasi tribal community holds its ethnicity in myriad of cultural practices which are evident in their day today life and social customs. It's an ethnic group which are mostly found in Meghalaya though we have few communities across the border as well. North-eastern region of India has diversified linguistic and cultural identity which are mostly apparent in their oral tradition. As the name denotes Meghalaya means abode of clouds and rain and water are usually considered resource of vitality to life. Khasi community as a tribal group follows their matrilineal system and have varied traditions and customs which are reverend and followed despite of technological and digital impact. They have distinct food and dress which formulate and establish their cultural identity. They follow exogamy marriage system and marriage in the same clan is not allowed. After marriage groom has to go to the bride's place. Their practices and customs which make their culture and ethnicity are found vividly in oral tradition where myths and moral stories filled with life lessons are passed on from generation to generation. Khasi mythology is interesting to understand some of the serious environment issues where they believe that trees and natural surroundings are the presence of almighty on the earth and it shows His manifestation in different colours of Nature and destroying them are like challenging the divine power which will bring catastrophe to human life. Traditional political system of Khasi community is democratic in nature. With the impact of missionaries many Khasis converted to Christianity.

Media and other discourses have presented Northeast from their point of view where the representation is restricted to the tension and tussle in the region. Undoubtedly, this region is cut off geographically from the rest of India's mainland and has less exposure of its cultural identity in digital world and consumer's presentation. The seven states are often become a centre of myth making and exoticizing the place by the outsiders. Writers like Mamang Dai, Anjum Hasan, Temsula Ao, Easterine Kire, Indira Goswami and Dhruba Hazarika have come forward and they deconstructing the myth of misrepresentation with their literary works and they have also contributed a lot in documenting the oral tradition of the numerous tribal communities. The writings of these men of letters offer not only stories and fictional narratives filled with tears and suffering of the people due to insurgency and political unrest but they also unpack the rich cultural heritage and tradition of their lives by capturing traditional way of their lives in rich cultural ambience. Senior Editor of Zubaan, Preeti Gill rightly states,

"To say that the Northeastern states are different from the rest of India in almost every way is to state the obvious, but it is important to recognize that these 'differences' have created rifts, giving rise to insurgencies, demands for secession from the Indian state and years of internal conflict and discontent. To the people of the Northeast their world is central to themselves; to 'mainland. The writers from the Northeast region have started writing to establish their ethnic and cultural identity vocalising the dimensions of their rich culture and shades of ethnicity. Jahnvi Baruha in one of her interviews say, "However, more than this recent conflict, what I find informs my writing are other things about the region: the magnificent natural beauty; the gentle, calm people who live here. Many things have changed with the years of relentless conflict and violence appeared in valleys where it was once unknown, but still the land is beautiful and the people gentler than many." The writings by Northeast people have also created a platform to discuss and debate the futility of violence and hallow ideologies which are making people to suffer and disturb social peace as well. In the long term they present beautiful picture of the landscapic beauty with a serious concern for humanity at large.

Folktales and folklores are interesting genre of literature which are often not given space in the traditional literary realm. Every society has some or other kind of folklores which are available in the heart of the society and preserve its spirit and history as well. All folklores originally began as stories by word of mouth, they are passed on from one generation to another in their oral form. The purpose of these folklores is saturated with some or other kind of moral or life lessons which senior generation would share with their experience to younger generation. Mostly and in majority these stories explain and elaborate the mysteries of the origin of earth and this world and existence of many unrealistic or realistic things around us. Many old folktales explain how something came to be. Characters in folktales are usually animals or people. Usually a character in a folktale must face an impossible test. Folktales are significant and seminal to understand what is difficult.

There are many types of folktales in Khasi community which told and retold with same vitality and vibrancy. They may be Animal Tales., Tales of Magic/ Wonder Tales, Religious Tales, Realistic/ Romantic Tales, unclassified Tales. These folktales are evolved and shaped with the conditions of the time and they gguide us during the time of uncertainty to create a sense of unity in a cultural group. They also function to rreinforces the group's identity. The folklores and folktales are often the manifestation of mystery and trickery & magic are the common elements. These folktales teach us valuable lessons of life and important to keep the past alive and human evolution too. Folktales are moral lessons of human virtues.

Khasi folktales are fascinating and have a charm of their own. They offer a tickling pleasure of reading and knowing them with a distinct cultural identity of the Hill people from the periphery.

One of the folktales is the story of The Man-eating Serpent-U Thlen where the mysteries related to hills are given in an interesting way. This story also unfolds the consequences of illicit relationship. Thlen was a legend and a creature with supernatural powers. This folktale also explains the importance of community and the rules which has to be followed the all members of a community to survive together. Its amazingly unpacks the rebirth of the serpent which was very huge and how he was tackled by people together.

In another story there is the narrative of a tribal Khasi who along with other member of a different clan was asked to enter the abode of god who would teach them how to live on the earth with instructions and preaching of god. At the time of departure, he was a given a book also. While coming he was to cross a river which had high tide and swift current. Both of them started swimming to cross the river but unfortunately the current was getting high. The other man tied the book in his hair as he had long hair but Khasi man couldn't. In effort to cross the river the man lost the book in the river and came back to his community empty handed. He was disappointed on losing the book which was given by god to him for the benefit of all the people. But he assures his tribal by saying that he remembered everything and could share the same with his people. This is how they have the starting of oral tradition of narratives which are passed on from generation to generation.

In the folktale of The Legend of li Tree the story is about the place which is still known for its romantic ambience. "On the summit of the mountain there grew a tree of fabulous dimensions — the Iei Tree — which dwarfed even the largest trees in forests. It was of a species unique, such as mankind had never known; its thick outspreading branches were so clustered with leaves that the light of the sun could not penetrate through and the earth beneath its shadow became barren and unfruitful." The tree was so full with leaves that it became impossible for the people to get the sunlight. They also feared to cut it off. Then they decided to cut it for the benefit of mankind. Two woodcutters took this task in their hand. As they started doing their work, they observe that nothing serious is happening. They knew it that the tree had some supernatural power which may harm them. Eventually on little bird came and offered them her help to complete the task. First, they laughed but realised that that was their fault. "When the tiger came to lick the tree that night (all unconscious that the wren had disclosed the secret to the men), the sharp blades cut his tongue, and he fled in terror, bleeding and howling, and never more returned to hinder the work of the wood-cutters, who, now that they were able to carry on their task undisturbed, succeeded in time in cutting down the Iei Tree."

Hence the smallest of bird Ka Phreit helped the humanity and mankind to get sunlight and prosperity too. These folktales are quite interesting and gave a lot of insight to comprehend our world in a logical way. What makes these stories all the more pleasant is their inclusion of nature and animals too as a partner of the wealth of the arth and this planet. Khasi culture is filled with this kind of stories

which teach benevolence, compassion and other human virtues essential for survival and sustainability.

"The Goddesses Ka Ngot and Ka Iam" is another folktale of twin daughter of god f Shillong.

One day they decided to race and go to the highest top of a hill which quite attractive.

"Ka Ngot was more retiring and timider than her sister, and was half afraid to begin the race; Ka Iam, on the other hand, was venturesome and fearless, and had been called Ka Iam because of her noisy and turbulent disposition. Before the race, she spoke very confidently of her own victory and teased her sister on account of her timidity."

The twins transformed themselves into river and started the race. "Ka Iam, full of vigour and ambition, did not linger to look for easy passages, but with a noisy rush she plunged straight in the direction of Shella, the shortest cut she could find. She soon found, however, that the road she had chosen was far more difficult to travel than she had anticipated. Large rocks impeded her path at many points, and she was obliged to spend much time in boring her way through, but she pitted her young strength against all obstacles, and in time she reached Shella and came in view of the plains, where, to her chagrin, she saw that her sister had reached the goal before her and was coming back leisurely to meet her. It was a great humiliation, for she had boasted of her victory before the race began, but, hoping to conceal her defeat from the world, she divided herself into five streams, and in that way entered the plains and joined her sister. The rivers are called after the two goddesses to this day and are known as "Ka Um Ngot" and "Ka Um Iam" (the river Ngot and the river Iam)." More respect is given to one who was compassionate which emphasises further required human virtues.

"The primordial wisdom of Khasi culture explains that this approach resulted in a period of U Kyllang (i.e. what the Khasi refer to as "ka siar" or, in other words, social, political, and economic decisions that resulted in gloom or created undesired social conditions). Perennial philosophies in general and Khasi perennial philosophy in particular warned that a breach with what is ordained by the natural order would have disastrous effects on individual wellbeing, social relations and on the human relationship with nature. However, the trend continued right up to today (see Rousseau 1997, 159-174 for an explanation of the dire results of a breach with what is ordained by the natural order). In fact, the damaging effects of the nature-human schism became so threatening that it resulted in Dualism — which created individual fragmentation, social disharmony, disastrous environmental conditions, and climate change. Subsequently, according to Khasi visionary belief, at the founding of their tradition elders predicted that such conditions would necessitate a great council to address what would become the most crucial issue of our time! Consequently, there is widespread acknowledgement that there is value in indigenous knowledge, its significance for establishing a model of sustainability and

Eco-leadership, and, as well, a relevant insight prescribed in perennial philosophy."

Thus one can easily identify the wisdom hidden in these folktales and folklores which show an entire belief system of Khasi community which keep us reminding the virtues and power of these narratives in solving the most severe and serious issue of todays life. They also help us in understanding the issues like environment, climate change and global warming. They are not merely amusing stories for fun and entertainment but they help us in conceptualising the ideas related to the most burning problems of our time and contemporary society. Theses folktales are required to be documented and preserved for future to as cultural heritage for sustainability.These folktales have cultural prescription of an entire belief system which has indigenous cultural knowledge in solving many issues of daily life and understanding a larger picture.

References:

Kant, Immanuel. (1987). Critique of Judgment. (Pluhar, Werner. Trans.). Indianapolis, Indiana: Hackett Publishing Company

Miller, Leon. (2011). Humanity's Inherent Value Preference for Integral Being. Journal for Interdisciplinary Research on Religion and Science. Number 9, 121-144.

Nongkinrih, Aurelius. (2002). Khasi Society of Meghalaya: A Sociological Understanding. New Delhi: M. L. Gidwani, Indus Publishing Company. Nongkynrih, A. K. (2006).

Who is In? Who is Out? – Equity and Customary Community Forest Management in Meghalaya, India. Hanging in the Balance: Equity in CommunityBased Natural Resource Management in Asia. (Mahanty, Sango. Fox, Jefferson. Nurse, Michael. Stephen, Peter. & McLees, Leslie. Edits.). Bangkok and Honolulu: Regional Community Forestry Training Center for Asia and the Pacific (RECOFTC) and East-West Center, 47-62. Nongkynrih, Kynpham. (2007).

Around the Hearth: Khasi Legends. New Delhi: Penguin Books. Paris Climate Agreement (2015). Environment reporter: Mark Kinver BBC News.

Myth and Folktales of Khasi Culture http://mythfolklore.blogspot.com/2014/07/khasi-goddesses-ka-ngot-and-ka-iam.html

Khasi Folklore Insight That Matches https://hal.archives-ouvertes.fr/hal-02352503/document

थाती

महाराष्ट्रीयन संस्कृति के त्यौहार से संगीत का पारस्परिक अनुबंध

डॉ. शिरीष व्ही. कडू
संगीत विभाग
श्री. शिवाजी कला, वाणिज्य व
कला महाविद्यालय, मलकापूर अकोला

प्रो. वंदना म. देशमुख
संगीत विभाग
श्री. शिवाजी कला, वाणिज्य व
कला महाविद्यालय, मलकापूर अकोला

सारांश

भारतीय त्यौहारों का महत्व हर मनुष्य के जीवन में प्राचीनकाल से आजतक महत्वपूर्ण भुमिका निभाता आ रहा है। इस त्यौहारों से मनुष्य अपनी व्यक्तिगत एवं सामाजिक मुल्य, नियमों के पालन प्रति प्रमाणबद्ध रहा है। इन मुल्य नियमों के प्रमाणबद्धता से मनुष्य सांस्कृतिक जीवनायापन बड़ी आनंद एवं उत्साह से व्यतीत करता है, इस सांस्कृतिक जीवनायापन में मनुष्य संस्कृति से जुड़ा रहता है। 'संस्कृति' यह मनुष्य की सबसे बड़ी देन रही है। इसी संस्कृति कारण त्यौहार मनुष्य जीवन से संवंधित एवं विकसीत होते है, देखा जाये तो संस्कृति यह शब्द विविध विशेषणो को लेकर गुजरता है। किन्तु प्रस्तुत संशोधन शोध-निबंध में इस विशेषण के लिए 'प्रादेशिक या प्रांतीय' नामोल्लेख किया है। क्योंकी 'महाराष्ट्रीयन' शब्द का प्रयोग विशिष्ट प्रादेशिक विभाग के लिए लिया जाता है, जसे हम सभी 'महाराष्ट्र' नाम से जानते है।

महाराष्ट्र में मनाये जानेवाले त्यौहारों की चर्चा की गई है और उसी के साथ गीतों का चुनाव भीं किया गया है। क्युकिं इन दोनों का पारस्पारीक अनुबंध है। इसीलिए गीतों का चयन मराठी और हिंदी भाषा में किया गया है, इस प्रकार गीतों के माध्यम से महाराष्ट्रीयन त्यौहार एवं संगीत का परस्पर अनुबंध दिखाने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द

महाराष्ट्रीयन संस्कृति, त्योहार, संगीत, गीत, लोकसंगीत.

संस्कृति कोई भी हो उसका दर्शन त्यौहारों में देखा जा सकता है, क्यूँकि इन त्यौहारों में सामाईक, सांस्कृतिक एवं व्यक्तिगत मुल्यों का अनुपालन करने की विचारधारा होती है।

महाराष्ट्रीयन त्यौहारों का महत्वः-

हमारा भारत देश विभिन्न समुह का देश है, जहाँ विभिन्न जाती, धर्म, संप्रदायों का विभिन्न रूप देखने को मिलता है। इसिलीए हमारे देश को अद्भूत कहा जाता है। इस महान देश की पहचान त्यौहारों से भी है, विभिन्न समुहोव्दारा विभिन्न त्यौहारों का आयोजन विभिन्न स्तरपर किया जाता है। ऐसी विषेशता 'महाराष्ट्रराज्य' में भी देखी जाती है। महाराष्ट्रमें जो त्यौहार मनाये जाते है उनके भी

अनेक रूप होते है, यह रूप कभी ऋतु के आधारपर तो कभी सांस्कृतिक, धार्मिक या अन्य किसी घटना से संबंधित होकर संपन्न होते है।

देखा जाये तो महाराष्ट्र में भी आये दिन-ब-दिन नए नए त्यौहार संपन्न होते हुए दिखाई देते है। यह त्यौहार किसी एक समुह से संबंधित नहीं रहते इसका कारण उनकी अपनी धार्मिक मान्यताएँ, उनका सांस्कृतिक जीवन, उनका पौराणिक, पारंपारीक, ऐतिहासीक, कथाओंपर का विश्वास, उनकी काल्पनिकता इन सभी बातों का इस समुहपर प्रभुत्व दिख पडता है।

उपरोक्त चर्चा से कहॉ जात सकता है की, यह त्यौहार किसी विशिष्ट जाती या संप्रदाय से संबंधित नहीं रहते। किन्तु इनके व्दारा यह संपन्न होते दिख पडते है। इसिलिए इन त्यौहारों का संबंध विविध क्षेत्रों से संबंधित होते हुए अपनी राष्ट्र की पहचान होते है। त्यौहारों पर ध्यान लक्षित करते है तो यह त्यौहार किसी न किसी विशिष्ट अर्थ से जुडे होते है। इसिके साथ उनका महत्व भी मानवी जीवन में महत्वपुर्ण रहता है।

क्योंकि यह त्यौहार हमें धार्मिक समन्वय बनाने हेतू, कौटूंबिक एवं सामाजिक संबंध दृढ करने हेतु, साथ ही बडो का आदर, सम्मान करने हेतु शक्ति प्रदान करते है। अपने धर्मशास्त्र कें आचार-विचार-नियमों के पथपर चलने की प्रेरणा देते है। मुल्यों में निहित तत्त्वों की पेहचान कराते है। इतना ही मनुष्य की भावनाओं को उत्प्रेरित करते है, मनुष्य की यह भावनाएँ धार्मिक, सामाजिक, कौटूंबिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय क्षेत्र से गुजरती हुई कोई भी हो सकती है। इन अलग अलग क्षेत्र से यह त्यौहार बांधे हुए रखते है। इससें मनुष्य के आनंद, उत्साह, प्रेम के साथ सर्मपण, सदाचार, सद्भावना ऐसे अनेक मुल्यों का संवर्धन होता है। यह मुल्य भी आदर्श संस्कृति की पेहचान बनाते है।

संक्षिप्त में संस्कृति विचारः-

संस्कृति इस शब्द के अंतर्गत मानवी जीवन पध्दती एवं जीवन मूल्य का अंतर्भाव होता है। यह जीवन पध्दती एवं जीवन मूल्य मनुष्य के आचार-विचार, रूढी, प्रथा- परंपरा आदी से संबंधित होकर धार्मिक-सामाजिक आदी क्षेत्रो से जुडी रहती है। इनका संबंध त्यौहारों में पाया जाता है।

त्यौहार और संस्कृति का संबंधः-

त्यौहार ही संस्कृति की पहचान होते है। हमारे देश में विभिन्न त्यौहार मनाये जाते है और त्यौहारों से ही हम अपने धर्म नियमों का पालन करते है। धर्मशास्त्र के अनुसार हम अपने त्यौहारों कों नियमों के साथ अपनाते है, धर्म संस्कृति का महत्तम घटक क्योकि इस धर्म के आचरण में हम अपनी विचारधारा बनाते है और इसी विचारधारा में कार्य करते है इसमे कुछ पारंपारीक पद्धतियों का स्विकार,नई बातों का सामील करने की क्षमता रखते है, इस पारंपारीक स्विकार पद्धति में कपडों से लेकर आभुषण, पूजा पद्धति प्रतिक, चिन्ह इन सभी बातों का नियमों से पालन करते है। हर एक संस्कृति में विभिन्न त्यौहार होते है। जैसे- महाराष्ट्र में रक्षाबंधन, गुढीपाडवा, दिपावली, होली आदी के नाम बताये जा सकते है।

महाराष्ट्रीयन त्योहारों से संगीत का अनुबंधः-

संस्कृति के पहचान त्यौहार होते है, किंन्तू इन त्यौहारों को प्रसारित करने का माध्यम 'कला' ही रहता है। देखा जाये तो भारतीय संस्कृति में बहुत सी कलाओं का समावेश होता है, किन्तु संगीत कला इन कलाओं में सर्वश्रेष्ठ रहती है, क्योंकि संगीत में गायन, वादन, नृत्य कलाओं के साथ शास्त्रों का अंतर्भाव होता है। इन्हीं कलाओं में त्यौहारों से अनुबंध दिखाई देता है। इन त्यौहारों का संक्षिप्त में विवरण इस प्रकार—

1) रक्षाबंधनः-

रक्षाबंधन इस त्यौहार को 'राखी पूर्णिमा' भी कहा जाता है। यह त्यौहार भाई-बहन कें प्रेम का प्रतिक है,इसमें प्रेम, साहस, रक्षण की भावना दिख पडती है। रक्षाबंधन इस शब्द में रक्षा बंधन ये दो शब्द है,जिनका अर्थ ''जो बंधन रक्षा के लिए बॉधा जाता है।'' इस रक्षाबंधन का शास्त्र में 'राखी' यह प्रतिक चिन्ह माना गया है। जिसे रेशमी वस्त्र के

धागे से बॉधा जाता है।

निचे प्रस्तुत हिंदी गीत भाई-बहन के प्रेम का अर्थात् 'रक्षाबंधन' त्यौहार से है।

गीत -

बहना ने भाई की कलाई, से प्यार बॉधा है।
प्यार के दो तार से, संसार बॉधा है।
रेशम की डोरी रेशम की डोरी से संसार बॉधा है।

प्रस्तुत गीत में भाई-बहन के बीच अनुबंध और मानवी भावना का प्रगटीकरण व्यक्त होता है। ताल 'केरवा' में निबध्द इस गीत में सरल सुरोंव्दारा गीत में अंतर्भूत प्रेमयुक्त भाई-बहन के भावो का प्रगटीकरण किया गया है। गीत में कोमल सुरों का भी प्रयोग किया गया है। कोमल सुर मन को भावुक बना देते है, यह इन सुरों की विशेषता है। इस प्रकार कोमल सुर और उनका सरल प्रयोग से गीत में अंतर्भूत भावना सभी को उत्प्रेरित करती है। इस गीत के माध्यम से यह त्यौहार मनाने की 'प्रथा' महाराष्ट्रीयन संस्कृति से दिखाई पड़ती है।

गुढीपाडवाः-

गुढीपाडवा यह त्यौहार महाराष्ट्र में संपन्न होता है। इसी त्यौहार से बहुत सी पौराणिक एवं ऐतिहासीक मान्यताएँ/कथाएँ जुड़ी है। उसी प्रकार कुछ मुल्यों का भी जतन इस त्यौहार द्वारा किया गया है। यह त्यौहार महाराष्ट्र संस्कृति के नए साल की शुरूआत माना जाता है। इस त्यौहार के लिए जो प्रतीक चिन्ह धर्मशास्त्रानुसार नियोजीत किये है, उनमें धातू का लोटा, रेशमी वस्त्र, कडुनिम की डाली और चीनी की लडी को अपनाया है, देखा जाए तो कडूनिम और चीनी का गुण भिन्न है, किन्तु इनमें से एक सीख भी मिलती है। इस कडवापन को अपने मिठास से इतना भरों की इसमें कडवापन ही न रहें यह मानवी जीवन के हितावह में मिला एक संदेश है। अर्थात मानवी संबंध में मिलजुलकर रहना, प्रेम से रहना, सद्भावना से रहना, यह सीख मिलती है। और वैज्ञानिक दृष्टिकोणे से भी फायदेमंद रहा है। क्यूँकी नीम की पत्ती बढी मात्रा में आरोग्यवर्धक है। इसके बावजूद भी हमारी कुछ पारम्परिक पद्धती है जिस दिन त्यौहार रहता है उस दिन अधिक मात्रा में 'स्वच्छता मूल्य' का पालन किया जाता है। यह पर्यावरण प्रति जागरूकता का संदेश इन त्यौहार से बोया जाता है। इस त्यौहार पर आधारित मराठी गीत।

गीत -

गुढीपाडव्याचा सन आता उभारा रे गुढी।
नव्या वरसाचं देनं सोडा मनातली आढी।।
गेली साली गेली आढीं आतां पाडवा पाडवा।
तुम्ही येरांयेरावरी लोभ वाढवा वाढवा।। 1।।
अरे उठा झाडा आग, गुढीपाडव्याचा सन.....

प्रस्तुत गीत लोकसंगीत के आधार पर गाया गया है। लोकसंगीत के गीतों में गीत, वाद्य, स्वर, ताल, लय एवं गायन की विशेषता होती है। लोकसंगीत के गीत यह दो या तीन स्वरों पर गाये जाते है। इनके साथ वाद्य और समूह का भी एक अलग महत्व रहता है। प्रस्तुत गीत दो-तीन स्वरों में निबद्ध है, गीत के लिए 'ढोलकी' की संगत और गायन में समूह की संगत की जाती है। ढोलकी पर बजाया जानेवाला ताल सरल मात्रा का होता है, इससे गीतों में भी सरलता दिखती है। शब्दपक्तिं को दो या चार बार दोहराया जाता है, जिससे वातावरण निर्मिती और समूह में जोश पैदा होता है। वहीं इस गीत में प्रतीत होता है। इस गीत के माध्यम से ही यह त्यौहार की परंपरा दिखाई पड़ती है। अगला त्यौहार 'दीपावली' का है।

दीपावलीः-

दीपावली इस त्यौहार को अन्य त्यौहारों का राजा कहॉ जाता है। इस त्यौहार को अन्य त्यौहारों की तुलना में पॉच दिन मनाने का प्रयोजन है। इन पॉचो दिनों से कुछ पारंपारिक, पौराणिक, धार्मिक, सांस्कृतिक संबंध दृढ होते हुए दिखते है। इन पॉच दिनों में से लक्ष्मीपूजन को अधिक महत्व दिया जाता है क्योंकि इस दिन भगवान श्रीहरी लक्ष्मी जी का पूजन करते है, ऐसी कुछ कथाएँ इस दिन से जुडी है, इतना ही नहीं संपूर्ण वातावरण हर्षोल्लासित हो उठता है। पूरा घर दीपों से सजाया जाता है।

आकाशों में पटाकों की आतिशबाजी होती है। दीपावली के इन शुभ दिनों में एक दिन ऐसा भी है जिसे प्रतिपदा कहॉ जाता है। उस दिन पत्नी अपने पति की पूजा करती है। यह भी एक प्रथा महाराष्ट्रीयन संस्कृति में देखी जाती है। इसके साथ भाई की भी पूजा करने की प्रथा इन्हीं दिनों में महत्वपूर्ण मानी गई है। इसे महाराष्ट्रीयन भाषा में भाऊबीज कहॉ जाता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है की, रिश्तों को सम्मान करने वाली यह महाराष्ट्रीयन संस्कृति है, इतना ही नहीं यह त्यौहार छोटो से लेकर बडोंतक मनाया जानेवाला उसी प्रकार सामुहिक का मुल्य जतन करनेवाला है। इस त्यौहार पर आधारीत गीत प्रस्तूत शोधनिबंध में 'लक्ष्मीपूजन','प्रतिपदा' और 'भाऊबीज' इन तिनों गीतों का वर्णन है, ऐसे गीत का चुनाव किया है।

गीत -

हर्षाचा वर्षाचा दिवाळ सण आला।
कारंजी उठती तेजाळ नाचती बाळ गोपाळ
आनंद दीप गोविंद उधळती चांदणी झेला...।। 1।।

प्रस्तुत मराठी गीत में हिंदुओं के सबसे बड़े त्यौहार दिपावली का वर्णन किया गया है। समूह स्वर में विशेषतःस्त्रियोव्दारा यह गीत गाया गया है। इस गीत के साथ बालक बालिकाएँ अपना आनंद व्यक्त करते हुए समुह नृत्य करते है। गीत के माध्यम से आनंद हर्ष और उत्साह की लहर व्यक्त होती है। गीत का स्वरपक्ष पारंपारिक और लय के मध्यलय से द्रूतलय तक विभिन्न प्रकार किये जाते है। जिससे उपस्थित सभी अपनी जगह पर झुमने लगते है।

इन सभी गीतों की रचना पारंपारीक होती है। इन गीतों में स्वअनुभव से शब्दों का हेरफेर किया जाता है। विशेषता इन गीतों के माध्यम से परंपरा और संस्कृति का जतन किया गया है।

निष्कर्षः-

भारतीय संस्कृति का ही रूप 'प्रांतिक संस्कृती' होती है। क्योंकि भारतीय संस्कृति की बहोतसी मान्यताएँ प्रांतिक संस्कृति पर असर करती है। उसी का उदाहरण त्यौहारों का भी हो सकता है। त्यौहार से ही संस्कृति दिख पडती है। त्यौहार लोगों के जीवन पध्दती का आईना है। जीवनपध्दतीयों के आचार विचार नियमों से ही संस्कृति का प्रारंभ होता है। जिनका विकास संगीत गीतोंव्दारा किया जाता है। इन्ही गीतों के कारण आज मराठी संस्कृति सर्वदुर भलिभॉती मालुम हुई है।

संदर्भ ग्रंथ सुचीः-

1 महाराष्ट्र संस्कृति घडण आणि विकास, शेणोलीकर, देशपांडे, प्रा. हरी श्रीधर, 1972, दामोदर नारायण मोघे, मोघे प्रकाशन, कोल्हापुर.
2 महाराष्ट्राची कला आणि संस्कृती, महाडीक, डॉ. घनश्याम, 2021, श्री. शशीकांत पिंपळापुरे, औरंगाबाद.
3 महाराष्ट्र संस्कृति घडण आणि विकास, शेणोलीकर, देशपांडे, प्रा. हरी श्रीधर, 1972, दामोदर नारायण मोघे, मोघे प्रकाशन, कोल्हापुर.
4 आपले सण आणि उत्सव, जाधव, प्रा. मधू, 2007, राजेंद्र देशमुख, राज प्रकाशन, मुंबई.
5 मराठी लोकसंस्कृतीच्या पाऊलखुणा, मोकाशी, डॉ. मधूकर, 2010, एल. व्ही. तावरे, स्नेहवर्धन प्रकाशन, पूणे.
6 आपले सण आणि उत्सव, जाधव, प्रा. मधू, 2007, राजेंद्र देशमुख, राज प्रकाशन, मुंबई.

काँगड़ा के संस्कार व लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन

डॉ . मंजु पुरी

सहायक आचार्य
हिंदी विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला

सारांश

प्रत्येक राष्ट्र की सांस्कृतिक मौलिकता का रस स्त्रोत वहां के लोकगीत होते हैं क्योंकि लोक गीतों से ही हमें किसी भी देश की अंतर भावना, जीवन पद्धति का परिचय मिलता है। लोकगीत हमारी संस्कृति के वाहक होते हैं। लोक संस्कृति केवल परंपरागत नाच, गीत, चित्रकारी, रंगे चेहरे, किस्से, कहावतें और पर्व त्योहार ही नहीं है बल्कि इनमें हमारे देश की उन्नत जीवनशैली भी है। लोक संस्कृति हमारी जीवन संस्कृति की नींव है, जहां उत्तर आधुनिकता के युग में औद्योगिक सभ्यता लोक संस्कृति के मानवीय व नैतिक आयामों को नष्ट करने पर तुली है वहां पर लोक संस्कृति का ही दबाव है कि मेले, गीत, विवाह, उत्सव, विभिन्न अनुष्ठानों के माध्यम से घर, परिवार, सामाजिक संबंध और नैतिकता का एहसास अभी भी बचा हुआ है। लोकगीत किसी भी समाज की जीवन पद्धति के दर्पण होते हैं इनमें हमारे अतीत के समाज की स्पष्ट झांकी मिलती है, समय के साथ इनमें बहुत कुछ नया जुड़ता रहता है। ये गीत अतीत और वर्तमान के बीच पुल का काम करते है।

कांगड़ा प्राचीन सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक जनपद होने के कारण लोक साहित्य से समृद्ध क्षेत्र है इसमें आर्य -अनार्य सांस्कृतिक रूपों का समन्वयात्मक रूप परम्परित रहा है। स्थानीय प्राकृतिक सुषमा ने यहां के लोक मानस को अनेक रूपों में मुखरित एवं प्रभावित किया है। घाटी के सौंदर्य का आधार इसके उत्तर में स्थित धोलाधर तथा सुदूर दक्षिण में बिखरी शिवालिक पहाड़ियां हैं। यह पर्वतमाला कांगड़ी लोक जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करती है। पहाड़ी लोक स्वर लहरों में कांगड़ी गीतों की स्वर माधुरी जादुई प्रभाव रखती है। विभिन्न गीतों में निहित भावना को जागृत करने की क्षमता इनकी विषय वस्तु में न होकर स्वाभाविक संगीत में है, क्योंकि इन गीतो का अंतरंग जितना जीवंत तथा प्रभावशाली है, बहीरंग उतना ही उसके अनुरूप समृद्ध एवं स्वस्थ है।

बीज शब्द

लोक संस्कार, संस्कृति, जनपद, त्रिगर्त, धोलाधार।

लोक साहित्य की परंपरा उतनी ही प्राचीन है, जितनी की मानव जाति। यह साहित्य किसी व्यक्ति विशेष का ना होकर सामान्य जनमानस का है। लोक साहित्य में रचयिता का व्यक्तित्व नहीं अपितु समूचे समाज का रूप होता है। 'लोक साहित्य सर्वदेशीय, सर्वकालीन और सर्वसम्मत माना गया है क्योंकि इसकी परंपराएं मिटती नहीं बल्कि ग्यात्मक रहती हैं और सदैव आगे बढ़ती हैं इसलिए लोक साहित्य को गतिशील एवं ऐतिहासिक विज्ञान माना गया है।'[1] डॉ श्याम परमार का मानना है कि लोक

गीतों में विज्ञान की तलाश नहीं, मानव संस्कृति का सरल्य और व्यापक भावों का उभार है।

प्राचीन ग्रंथों में कांगड़ा को त्रिगर्त, जालंधर,कांगड़ा, सुशर्मपुर,भीमकोट तथा नगरकोट के नामो से जाना जाता था। कांगड़ा का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। इसके संस्थापक का नाम भूमि चंद्र था जिसकी 234 पीढ़ी में राजा सुशर्म चंद्र हुए जिसने कौरवों की ओर से महाभारत के युद्ध में भाग लिया था। अभिज्ञान चिंतामणि में इस प्रदेश का नाम जालंधर त्रिगर्त दिया गया है

मार्कंडेय पुराण में भी इस प्रदेश का नाम त्रिगर्त आया है।

कांगड़ा शब्द को लेकर विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। कुछ विद्वान मानते हैं कि यहां पर बने विशाल किले का आकार कान जैसा है इसलिए इस स्थान को कानगढ और उसके अपभ्रंश रूप में कांगड़ा कहा जाने लगा। पौराणिक उल्लेख है कि अत्याचारी जालंधर राक्षस को भगवान विष्णु ने मार डाला और उसके कान पर जो किला बनाया गया था उसे कानगढ की संज्ञा दी गई।

कांगड़ा के अप्रतिम सौंदर्य का वर्णन करते हुए विनोद हिमाचली कहते हैं' संस्कृति के संग्रहालय त्रिगर्त का अपना ही आकर्षण है प्रतिवर्ष ग्रीष्म, वर्षा,शरद, हेमंत, शिशिर और बसंत ऋतुए त्रिगर्त भूधरा के चारों और उत्साह, उल्लास और आंनद भर देती है दिन यहाँ सोने की भांति सुनहरे तथा गोधूलि बेलाए गुलाब की भांति लाल होती है। त्रिगर्त की सुरम्यता का रस कोई रसिया अथवा प्रकृति का पुजारी ही ले सकता है ------''[2]

यदि कांगड़ा के सामाजिक व संस्कृति प्रवेश की बात की जाए तो यहां की सभ्यता और संस्कृति का संबंध मनुष्य की जंगल से नगरों और महानगरों तक की यात्रा से है। प्राचीन कांगड़ा अथवा त्रि गर्त क्षेत्र वैदिक पौराणिक काल से ही आदिम निवास की शरण स्थली रहा और मनुष्य ने इसकी नदियों,घाटियों और उपत्याका में सभ्यता और संस्कृति के चिन्ह अंकित किए है। 'कांगड़ा की धोलाधर शैलमाला के नीचे जन -जीवन में संस्कृति, लोक संस्कृति, लोक साहित्य और लोक परम्परा की मन्दाकिनी सतत प्रवाहित रहती है।'[3]

कांगड़ा के लोग सरल और सीधे स्वभाव के हैं वे धर्म भीरु देशभक्त, और प्रकृति प्रेमी है इनका आपने पशुधन से लगाव इतना गहरा होता है कि यह पशुओं का पालन भी बच्चों की तरह करते हैं। डॉक्टर रंधावा कांगड़ी जीवन के बारे में बताते हैं कि यहां के लोग प्रकृति के निकट रहते हैं अतः इनके जीवन में एक सूरत मिलती है। वहीं डॉ गौतम व्यथित ने कांगड़ा की सुंदरता का वर्णन करते हुए लिखा है- 'कांगड़ा घाटी के मस्तकपर सजी संवरी धौलाधार के सौंदर्य से प्रभावित होकर कर्नल हरकोर्ट आदि विदेशी प्रशंसकों ने इतना तक कह दिया कि विश्व भर में इसके समानांतर प्राकृतिक स्वभाव वाला क्षेत्र अन्यत्र नहीं देखा''[4] लोकगीतों की आत्मा लोकहृदय में बसती है। उनका क्षेत्र गांव है तथा गायक अनपढ़,साधारण स्वाभाविक जीवन के अभ्यस्त ग्रामीण पुरुष स्त्रियां जो बिना किसी प्रलोभन,प्रशंसा,लिप्सा के जीवन के खाली क्षणों को समरसता से भरते रहते हैं। ये गीत इनके संपूर्ण जीवन के कोश हैं। लोक साहित्य में क्षेत्र विशेष के विभिन्न समुदायों संस्कृतियों एवं लोक जीवन का यथार्थ रूप व्याप्त रहता है। यह लोकमानस के सुख-दुख,हर्ष-विषाद, आशा-निराशा, रीति-रिवाज, खान-पान, रहन-सहन, धर्म और संस्कृति की सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति करता है।

लोक साहित्य में लोकगीतों का प्रमुख स्थान है। लोकगीतों में प्राचीन सभ्यता व संस्कृति के चित्र अंकित रहते हैं। लोकगीतों के उद्गम की परंपरा वैदिक साहित्य में भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। हिमाचल के गीत अन्य प्रदेशों की तुलना में अधिक सरस,मधुरएवं हृदयस्पर्शी हैं हमारे संस्कारों से जुड़े लोकगीत हमारे सुख-दुख के सच्चे भागीदार हैं। हमारे यहां प्रचलित संस्कारों में जन्म,मुंडन,ने यज्ञयोपवित,विवाह एवं मृत्यु संस्कारों को प्रमुखता प्राप्त है। प्रत्येक अवसर के लोकगीत अपनी अलग -अलग छटा बिखेरते हैं प्रेम पखरोल्वी का मानना है कि 'इन गीतो मैं जनसाधारण के वास्तविक

जीवन की झांकी मिलती है। इन गीतो की परंपरा बहुत अनोखी है। ये गीत बेटी को अपनी मां से,बहू को सास से प्राप्त होते चले आ रहे हैं तभी तो यह जीवित है और उतने ही प्रभावोत्पादक भी है।'[5] संस्कारों से सुनिर्मित एवं सुनिर्धारित होते है इसलिए संस्कारों में भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक तत्वों का समावेश स्वाभाविक है। यज्ञ और यज्ञागिन संस्कारों के प्रमुख अंग है। ध्यान देने योग्य बात यह है की समस्त संस्कारों में व्यक्ति पूर्व की ओर मुँह करके बैठता है जो इस बात का सूचक है की वह जीवन तथा प्रकाश की प्राप्ति के लिए तत्पर है। मानसिक ओर आध्यातमिक गुणों की प्राप्ति के लिए हिन्दू संस्कारों में प्रतीकवाद का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। ध्रुव तारा अचल निष्ठा, खील और चावल उर्वरता और समृद्धि के प्रतीक है। प्रत्येक संस्कार में प्रजनन, रक्षण, पोषण, रंजन, समवर्धन और उपनयन के सामाजिक और आध्यात्मिक तत्त्व संन्हित और स्त्रोत थे। कांगड़ा जनपदीय समाज में होने सामाजिक संस्कारों में पुरोहित की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है प्रत्येक संस्कार में नारियों द्वारा गीत गाना इन संस्कारों को समाज से जोड़ता है गीत गाना लोकाचार एवं लोक संस्कृति को व्यक्त करता है। कांगड़ा जनपदीय समाज में मनाए जाने वाले सामाजिक संस्कारों का संक्षिप्त वर्णन लोकगीतों के माध्यम से किया गया है।

''शिशु के जन्म से सम्बंधित गीतों को हम दो भागो में बाँट सकते है।

1) पूर्व पीठीका के गीत-दोहद, पुत्र कामना, प्रसव पीड़ा, धाय को बुलाना व नेग से सम्बंधित गीत आते है।
2) उत्तर पीठीका में पुत्र जन्म के पश्चात् होने वाले रीति रिवाजो जैसे ब्राह्मणों को दान, ननिहाल में माँ और बालक का स्वागत इत्यादि गीत आते है।[6]

जन्मगीत :दोहदन

गर्भवती नारी को अनेक प्रकार की खट्टी मिट्ठी और बेमौसमी वस्तुएँ खाने की इच्छघेरती है। दोहद इसी प्रकार की इच्छाओं को कहते है।

'दोहद शब्द दो हृदय से बना है। पेट में पल रहे जीव और माँ की इच्छाएं मिलकर विचित्र रूप धारण करती हैं'[7] काँगड़ा की भोली-भाली युवती का मन जब भी खाने को करता है तो वह अपने घर के सदस्यों को बेर लाने के लिए कहती है लेकिन करके सभी सदस्य किसी ना किसी कारण से बेर ना भूल जाते हैं तब वह अपने पति को बेर लाने के लिए कहती है तो वह अपनी धोती की लड़ से बेर बांध कर लाता है। माननी नायिका कहती है कि वह बेर तभी खाएगी जब पति बेरो को रुमाल में बांध कर लाएगा

धोती दे लड़ विच मैं नइयो खांदी
हतथ दे रुमाल विच बनन लिआओ
मेरा दिल बेरा जो
मैं तां बेरियां बेर पुकाराँ, मेरा दिल बेरा जो

पुत्र कामना-कांगड़ा की नारी, अन्य भारतीय नारियों की तरह पुत्र प्राप्ति की उत्कट लालसा रखती है। वह अपने मायके को भी अपनी अवस्था के विषय में शुभ सूचना देना चाहती है त वह कौवे को अपना संदेशवाहक बनाकर भेजती है और उससे कहती है

''उड़ियां कागा चिटिया भयागा
जाई बोहयां मेरी अम्मा नर वेदनियां
धिया जो सपना होया ए
सुपने च नन्द सुहागन
द्रुवा ले ई आई ऐ
चुप करियां धीए सर्व सुहागनी
त्रु ठडी वेद भिआई ऐ।'

दायी बुलाना

कांगड़ी संस्कार गीतों में दायी को माँ समान माना गया है।

दायी के माध्यम से पुत्र पैदा होने की स्थिति का बहुत ही सुंदर चित्रण कांगड़ी लोकगीतों में मिलता है त दाई गोरी के पति को कहती है कि यदि उसके यहां पुत्र पैदा होगा,उसका वंश पड़ेगा गोत्र बढ़ेगा तो वह उसे क्या देगा। तब गोरी का पति कहता है-वह उसे बधाई के पांच रूपये,सिर के

लिए चुनरी देगा और उसका कन्हैया उसकी गोद में खेलेगा।

'जाम्मे तेरे पूत बधै परवार बधै तेरा जी
दइया माईया की ओ मिले अजी आं
पंज रुपएड़े रोक अजी दइये पंज रुपएयडे रोक
सिरे जो चोप, कन्हैया तेरी गोदा खेले अजी आं

बधाइयां-

बच्चे को कृष्ण का स्वरूप मानकर माता पिता को बधाई देने के संदर्भ में कांगड़ी सोहर निम्नलिखित है

घर वसुदेव दे जनमैया पुत्र, जसोदा पलंग चढ़ी
नंद करे गौआ दे दान,सोपने दे सिंग मढ़ी।

नामकरण संस्कार

बच्चे के जन्म के नवें,ग्यारहवें अथवा तेरहवें दिन नामकरण संस्कार संपन्न होता है। स्थानीय बोली में इसे गुंतर या पंजाप भी कहा जाता है। गोमूत्र द्वारा जच्चा को शुद्ध करने के कारण इसे गुंतर कहा जाता है। इस दिन पुरोहित बच्चे का लग्न गिनता है और टीप (जन्म पत्री)लिखता है नामकरण संस्कार के समय बालक तथा उसकी मां का गोबर से शुद्ध किए एक मंडप में बैठते बैठती है। बच्चे का बाप भी इसमें भाग लेता है। सर्वप्रथम पुरोहित,कुल देवता,गणेश,बच्चे के वस्त्र,कलश,गंगा नदी की पूजा करवाता है। इसके पश्चात नाई बच्चे के माता-पिता तथा बच्चे को गाय का मूत्र चटाता है मंगल गीतों की धुन के साथ साथ सर बधाई के रूप में गुड़ और चने बांटे जाते हैं।

अन्न प्राशन संस्कार

जब बालक छह महीने का हो जाता है तब अन्नप्राशन संस्कार होता है' यह संस्कार कांगड़ा में खीरपू नाम से प्रसिद्ध है। यह संस्कार बच्चे की अभिरुचियों को मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का अवसर प्रदान करता है। खीरपू अर्थात खीर को कटोरे में डालकर एक चंगेर में रख दिया जाता है। कटोरे के चारों और पुस्तक, पैन, आभूषण, चाकू आदि रख दिये जाते हैं। बच्चे को घर के निकट खुला छोड़ दिया जाता है। यदि बालक पैन या पुस्तक उठाए तो समझा जाता है कि वह विद्वान होगा। यदि आभूषण उठायें तो वह धनवान होगा। यदि खीर उठाये तो माना जाता है की वह पेटू होगा।[5]

उपनयन गीत

कांगड़ा जनपद में यह संस्कार के स्वर्ण जातियों में ही होता है अन्य जातियों में से विवाह के समय पूरा करने की प्रथा है।

'भिछिया दिनयो मेरी माये जी, भिछिया दिनयो मेरी माये

तुम्हारियां तां भि छि या,माये मैं ब्राह्मण होया।

संस्कार लोकगीत सामूहिक अवचेतन की सहज अभिव्यक्ति होने के साथ-साथ हमारे सामाजिक जीवन के तौर पर भी हैं।' लोक गीत लोक की ग्रामीण / साधारण, सीधे सरल मनुष्य की अनुभव /अनुभूति भरी मार्मिक अभिव्यक्ति है जो समय की सच्ची साक्षी तथा शिष्ट साहित्य के लिए बीज सामग्री की तरह है।'[9]

ारी अध्यात्म में प्रधान निर्मल संस्कृति का अलौकिक रू सर्वत्र झलकता है।

विवाह गीत

सुहाग,कन्या पक्ष के यहां गाए जाने वाले हर्षोल्लास पूर्ण गीत है। इनमें कन्या का पिता से सुयोग्य व सुंदर वर ढूंढने का आग्रह, सुविधा भरे गांव में ब्याहने की इच्छा तथा उपयुक्त वर पाने की संवेदना व्यक्त की गई

विदाई गीत

विदाई गीत में जहां बेटी माता-पिता सगे संबंधियों के नाम ले लेकर विलाप करती है और सभी को द्रवित कर देती है। इस भाव को कांगड़ी विदा गीत में बड़ी श्रद्धा से अभिव्यक्त किया गया है

बेटी बावे बेहड़े गई से,सुहान मंगण
बावे ऐह वर दिता,सो वर दित्ता।

बेमेल विवाह

बेमेल विवाह के प्रति घृणा का भाव प्रस्तुत कांगड़ी लोकगीत में दिखाया गया है

धीया सरेखा ना मिलेया जुआई
असा क्या पाप कमाया

मृत्यु गीत

मृत्यु संस्कार जीवन का अंतिम संस्कार है। यह शौक का दृश्य उपस्थित करता है। कांगड़ी मृत्यु गीतों में व्यंजित लोक भावनाओं का स्वरूप निम्नलिखित है।

मौत ना मानणी आई गई,जिंदडी तलमल होइ गई

छातियां जांद्रा चढ़ी गिआ,करना नीं दिंदा ग़ल

सुखो तै आईया चिट्ठियां, हरि बोलो,वावला हरि बोलो।

श्रम गीत

लोक में सामूहिक रूप से काम निपटाने की परंपरा है। धान रोपती,फसल काटती तथा घास काटती,कृष्काए शारीरिक थकान को दूर करने हेतु गीत गाती है। इन गीतों के माध्यम से नायिका अपने मन की बात को बताती है।

अमाँ तां बापू मेरे द्रमाँ दे लोभ, छोटडे -बरे जो ब्याही

कदी ता होणा मेरे बरे लम्मड़े, कदी तां होणी मेरे जीवन जोड़ी

ऋतु गीत

भारत में ब्रज की होली की अपनी परंपरा है,जिसकी छाप समस्त भारतीय हिंदी जनपदों में परम्परित होली गीतों में सहज दृष्टवय है। कांगड़ी होली गीत का रूप निम्नलिखित है।

रंग दे चुनरिया, रंग दे लाल
मेरे पिया से रंगाई मंगले,रंग दे चुनरिया लाल

भक्ति गीत

मनुष्य जीवन के चार पुरुषार्थ धर्म,अर्थ,काम और मोक्ष माने गए हैं इनमें से धर्म को प्रथम स्थान इसलिए दिया गया है क्योंकि अर्थ काम और मोक्ष का नियंता भी धर्म को ही माना जाता है। भक्ति रस में डूबे असंख्य लोकगीत लोक कंठों की शोभा बढ़ाते हैं। बाबा बालक नाथ,मीराबाई, गूगा जी के गीत, शिव और गोरा के गीत और मां भगवती के गीत हमें कांगड़ीलोक साहित्य में देखने को मिलते हैं।

संस्कृति परंपराओं के वाहक लोकगीत विभिन्न संस्कारों के समय गाए जाते हैं। यह गीत ऊंच-नीच, धनी-निर्धन की सीमाओ और सामाजिक बंधनों का अतिक्रमण करते हुए हर आंगन में गूंजते हैं। अतः कहा जा सकता है कि लोकगीत जीवंत काव्य है यह कभी ना तो पुराने हुए हैं और ना ही नए। यह उस जंगली पेड़ की तरह है जिनकी जड़ें भूत की गहराई में है। ये नित्य नवीन शाखाओं, पतियों और फूलों को उत्पन्न करते रहते हैं इन्हीं से हिमाचल का रहन-सहन,रीति-रिवाज,आकांक्षाएं और परंपरा जीवित है। ये अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए विख्यात हैं। वास्तव में इन लोकगीतों का मुख्य विषय मानव को मानवता से जोड़ना है जिससे हिमाचल का दिव्य सौंदर्य पूर्णता से उभर कर आया है। जीवन के प्रत्येक कार्य को यह हिमाचली लोकगीत जुड़े हुए हैं लिए इन्हीं के कारण लोक संस्कृति अमर है और ये लोकगीत हिमाचल संस्कृति की अमूल्य संपदा है

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. दिनेश्वर प्रसाद, लोक साहित्य और संस्कृति, पृष्ठ 105
2. विनोद हिमाचली, त्रिगर्त, पृ
3. डॉ गौतम शर्मा 'व्यथित 'हिमाचल की ठोलर लोकगाथाएं, पृष्ठ 11
4. प्रेम पखरोलवी, हिमाचल का जन जीवन एवं आस्थाएं, पृष्ठ 38
5. प्रोफ. चमन लाल गुप्त, हिमाचली संस्कृति एवं समाज :लोकगीतों के दर्पण में पृष्ठ 7

ब्रज के लोक जीवन में राम

डॉ0 शेफाली चतुर्वेदी

हिन्दी विभाग, आगरा कॉलेज, आगरा

सारंश

लोक जीवन को समग्रता में देखता है। युगों-युगों की स्मृतियाँ, आस्था, विश्वास, मान्यताएं, परम्पराएं इसमें समाहित होतीं हैं। ये स्मृतियाँ मिलकर किसी एक कथा और घटना को युगानुरूप किस दिशा में मोड़ दें यह पूर्वानुमान करना कठिन है। जीवन जीने की प्रक्रिया में अवचेतन में अवस्थित लोक-स्मृतियां, परिस्थितिवश कई रूपों में प्रकट होती हुई पौराणिक व ऐतिहासिक विषयों को नए-नए आयामों से जोड़ती है। ब्रज के लोकजीवन में मर्यादा पुरुषोत्तम राम एवं सीता जी के सन्दर्भ में जो गीत प्रचलित हैं, उनमें हम लोक-स्मृति, लोक-दर्शन और कथात्मक पुनर्रचना को नए रूपों में उपस्थित पाते हैं। लोक वाचिक परंपरा से प्राप्त प्रभावों को आत्मसात करता है, इसीलिए साक्षात् प्रभाव व कर्ण परंपरा से प्राप्त प्रभावों के गड्डमड्ड स्वरूप से कई नई घटनाएं आकार पा लेतीं है और उसके सदस्य बड़ी नाटकीयता से उन्हें गीत, गाथा आदि के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। ब्रज लोक रचनाओं में लोकरक्षक राम आदि महान व्यक्तित्व सामाजिक संबंधों से बंधे सामान्य से व्यक्ति प्रतीत होते हैं। लोक अपनी कल्पना और इच्छानुरूप उनके जीवन की प्रमुख घटनाओं को संयोजित करता है।

बीज शब्द

लोक, राम, सीता, लक्ष्मण, शांता, लव-कुश

'मथुरा का आदिकालीन सन्निवेश यमुना के दक्षिण तट पर हुआ था। कहते हैं उससे पूर्व मधुबन वर्तमान महोली में लवण नामक असुर ने कुछ गुफाएं बनाई थी और वहीं पर वह निवास करता था। देवों की प्रार्थना पर राम ने अपने छोटे भाई शत्रुघ्न को लवणासुर का उपद्रव शांत करने के लिए वहाँ भेजा और उन्होंने उस को परास्त कर मथुरा नगरी का सन्निवेश किया, जो देव निर्मित पुरी कही गयी। वाल्मीकि रामायण में इसका उल्लेख है। मथुरा सन्निवेश की एक भौगोलिक विशेषता है, वह यह कि मथुरा पुरी प्राच्य और उदीच्य के बीच का देहली द्वार थी। मध्य देश के सार्थवाह और व्यापारी पूर्व से पश्चिम की ओर यात्रा करते समय मथुरा के भांडागारिकों (शाही भण्डार का अधीक्षक) से संपर्क करते हुए आते जाते थे। '(मीतल प्रभुदयाल, ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ-5) मथुरा के चारों धार्मिक सम्प्रदाय- जैन, बौद्ध,वैष्णव और शैव, ब्रज के सांस्कृतिक स्वस्तिक की चार भुजाएं थीं।

वल्लभाचार्य द्वारा प्रेरित सूरदास और परमानंद ने तथा श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रेषित सनातन गोस्वामी और रूप गोस्वामी ने साहित्य और जीवन के माध्यम से ब्रज में हरि भक्ति की अमृतधारा का प्रादुर्भाव किया, फिर तो उनके अन्य सहयोगियों के साथ ही साथ निंबार्क, मध्वाचार्य, राधावल्लभाचार्य और हरिदास आदि आचार्यों एवं भक्त महानुभावों ने धर्मोपासना और भक्ति साहित्य का दिव्य स्रोत ही बहा दिया।

उस काल में देशज भाषाओं का पूरा विकास हो चुका था। उनके माध्यम से एक ओर चंडीदास और विद्यापति ने, दूसरी ओर नरसी मेहता और मीराबाई ने तथा बीच में तुलसीदास ने भक्ति धर्म की धारा को लोक धरातल पर प्रबल वेग से प्रवाहित कर दिया था। उसके कारण बंगभूमि से लेकर राजस्थान, गुजरात तक जनता भक्तिरस में सराबोर हो गई। उसका श्रेय ब्रज के धार्मिक और सांस्कृतिक आंदोलन को है। भक्ति कालीन प्रसिद्ध लोक कवियों के साथ-साथ समाज का एक ऐसा वर्ग भी था जिसके कानों में लोक कवियों की रचनाओं की गूंज सुनाई दे रही थी, वह भी सामाजिक परिस्थितियों का आकलन कर रहा था और अपने लोकाचार में मान्य देवताओं के रूप को समाहित कर रहा था। इस देश के मान्य देवता राम, कृष्ण, शिव और शक्ति है किंतु अनेक ऐसे देवता भी हैं जो मात्र स्थानीय है। इस तरह लोक और शास्त्र की भक्ति धाराएं समानांतर युगपद चलीं हैं।

यहाँ के आनुष्ठानिक जीवन की समृद्धि के प्रमाण जन्म विवाह आदि संस्कारों के बहुसंख्य गीतों में मिल जाते हैं। लोक रचनाओं में सामाजिक जीवन के प्रतिफलन का एक अर्थ यह भी होता है कि इसमें बदलते रहने के अतिरिक्त नए सृजन की क्षमता भी होती है। कभी यह विश्वास किया जाता था कि पूँजीवादी युग में लोक साहित्य का विकास संभव नहीं है। यह सच है कि औद्योगीकरण से सामुदायिक जीवन का पुराना ढांचा टूटा है लेकिन नए प्रकार के पेशेवर समुदायों का भी विकास हुआ है जिसका अर्थ है नए प्रकार के सामुदायिक लोक जीवन एवं साहित्य का विकास। मौखिक लोक साहित्य की अपनी परम्परा है, जिसमे जीवन पद्धति में परिवर्तन के कारण परिवर्तन और विकास संभव होता है। इसमें जीवन के राग-विराग, संयोग-वियोग और हर्ष विषाद का जीवंत प्रतिबिम्ब होता है। मध्यकाल के संत तथा भक्त कवियों ने लोक साहित्य के विविध रूपों, विशेषतः लोक गीतों का भरपूर उपयोग किया है और यही कारण है कि अब भी भक्ति काल के काव्य में ताजगी और लोक जीवन की आभा है संत और भक्त कवियों का साहित्य लोक चेतना और लोक भावना का साहित्य है। इस तरह इस समय भक्ति के क्षेत्र में लोक और शास्त्र साथ-साथ चले हैं।

सामान्यत यह धारणा है कि ब्रज में मात्र कृष्ण साहित्य है किंतुः समन्वयवादी समरस समाज में सुदीर्घ काल से ब्रज भाषा में भी रामकथा रची जाती रही है। स्वामी रामानन्द (रामार्चन पद्धति), ईश्वर दास (भरत मिलाप),विष्णुदास (रामायण कथा), सूरदास (नवम स्कंध राम कथा), तुलसी दास (विनय पत्रिका, गीतावली, दोहावली), प्राणचंद चौहान (रामायण महानाटक), हृदय नारायण भल्ला (हनुमन्नाटक का अनुवाद), केशवदास (रामचंद्रिका), नरहरि दास (पौरुषेय रामायण), सेनापति (कवित्त रत्नाकर में संग्रहीत), गुरु गोविंद सिंह (दशमस्कंध में 24 अवतारों से संबंधित रचना में रामावतार प्रथम रचना के रूप में गोविन्द रामायण नाम से जानी जाती है पदमाकर भट्ट (राम रसायन), रसिक गोविंद (रामायण सूचनिका), सरजू राम पंडित अनिल (जैमिनीयाश्वमेध पर्व), गोकुल नाथ (सीताराम गुण अर्णव), मधुसूदन दास (रामाश्वमेघ), मनियार सिंह (सुंदरकांड हनुमान छब्बीसी), गणेश कवि (वाल्मीकि रामायण श्लोकार्थ प्रकाश ग्रंथ) ललकदास (सत्योपाख्यान), खुमान कवि (लक्ष्मण शतक), नवलसिंह कायस्थ (रामचंद विलास, आल्हा रामायण), गिरधरदास (परशुराम कथामृत तथा राम कथामृत), मुरलीधर (रामचरित), लछिराम (रामचन्द्र भूषण), ऋषिकेश चतुर्वेदी (रामकृष्णायन, राम-कृष्ण विलोम काव्य)। इसके अतिरिक्त रसिक सम्प्रदाय, रामसनेही सम्प्रदाय, सरभंगी पंत आदि के अनुयायियों ने रामकथा को अपने मतानुसार रचा है। प्रायः यह माना जाता है कि विक्रम की दूसरी सहस्त्राब्दी में

वैष्णव धर्म के अनेक आचार्यों और संतों ने ब्रज भूमि में अपने केंद्र बना कर कृष्णोपासना का मार्ग प्रशस्त किया। इसी कारण ब्रज का लोक साहित्य भी कृष्णमय है। यह बात कुछ हद तक सही है, लेकिन रामभक्ति ने भी ब्रज भाषा लोक जीवन को प्रभावित किया है। ब्रज लोक संस्कारों की कई ऐसी रचनाएं हैं जो राममय है।

शिशु जन्म ऐसा अवसर है जब चारों ओर हर्षोल्लास का वातावरण होता है पर इस अवसर पर गाई जाने वाली कितनी ही सोहरे हैं जिनमें स्त्री के सुख-दुख, उसकी सूझबूझ, आपसी संबंधों को लेकर कहानियों बुनी गई है। एक सोहर कथा गीत रामकथा की बड़ी कल्पनाशील पुनर्रचना पर आधारित है, जिसके कई पाठ है। श्रीराम अयोध्या की गद्दी पर आसीन हुए। चारों ओर रामराज्य का सुख वैभव व्याप्त हुआ पर महल में अचानक एक घटना घट गई। राम की बहन ने सीताजी से रावण का चित्र बनाने को कहा।

राजे ननद भवन बैठिए भाभी कैसी सूरत देखि,
रामनु चित्र से लिखि दिखराइए।
भाभी भैया की नारी गरभ ते,
ठाढ़े है के काढ़िए।

(सत्येन्द्र, ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ-137)

यह प्रसंग तो परिचित है कि राम धोबी के उलाहने पर सीता को घर से वन भेज देते हैं, पर सोहर में ननद भाभी के संवाद के समावेश से कथानक लोक रंग में रंगकर एक अलग ही नाटकीय रूप धारण कर लेता है। इस सोहर में लोक स्वयं पर आरोप नहीं लेता, वह कहता है कि राम की बहन शांता अर्थात सीता की ननद ने चालाकी से आग्रह करके भाभी सीता से रावण का चित्र बनवा लेती है। चित्र बन जाने पर भाई राम को बुलाकर दिखाती है और सीता के मन में रावण के प्रति प्रेम का लांछन लगाती है। राम उग्र होकर अपने भाई लक्ष्मण को आज्ञा देते हैं कि उसे जंगल में छोड़ आएं। स्त्री की एकनिष्ठता व पुरुष के सामाजिक वर्चस्व संबंधी अधिकारों को मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र पर आरोपित कर लोक सामाजिक मान्यताओं को और सुदृढ़ करने का प्रयास करता है या यों कहें कि स्त्री की तत्कालीन स्थिति पर प्रकाश डालता है।

ऐसा ही एक सोहर गीत पूर्वी हिंदी तथा बुंदेली में भी प्राप्त होता है–

आम अमिलिया की नन्हीं नन्हीं पत्तियाँ निबिया की
शीतल छाँह, बहि तरें बइठी ननद भौजाई,
चालें लागी रावन की बात- बुंदेली
ननद भौजाई दूनौ पानी गई, अरे .....
पानी गई, भौजी जौन रवन तुम्हें हरि लेइग उरेहि
दिखावहु। .पूर्वी

एक अन्य पाठ-

भगिनी भई दावादार सुरति मोपै रामन की लिखवाई।
पियरी सी माटी लईये री ननदिया, कोई परदा
लीप बनाउँ।। सुरति0।।
पुतनी सी माटी लइये री ननदिया, कोई परदा
पोति बनाउँ।। सुरति0।।
साठी के चामर लइये री ननदिया, कोई परदा
चीति बनाउँ।। सुरति।।
हाथ लिखे पैयाँ लिखे रे, हाथ लिखे पैयाँ लिखे
रे।। सुरति0।।
और लिखे बतीसों दाँत, सुरति मोपै रामन की
लिखवाइ।। सुरति।।
हाथ छिलगुरी लिखि नहिं पाई, तौलों आय गये
वन सों राम।। सुरति0।।
ठंडे से नीर जु लइयौ सीतारानी, प्यास लगी बड़ी
जोर।। सुरति0।।
अंचल ओट करौ मेरी ननदी, चीते देंउँ
बिगारि।।सुरति0।।
तुम तौ भावज जाउ महल कों, कोई हम ही देंइ
बिगारि।। सुरति0।।
उठि के सीता गईं महल बिच, कोई ननदी ने दये
दिखाय।। सुरति0।।
तुम तौ कहते भैया सीता सतवन्ती,जाके हिरदे
रामन बास।।सुरति0।।
एक बिरछ की सीतल छैयां, कोई सीता बैठी

हैं जाय,
कछु हारी कछु मजलि की मारी, तीजे भारी अंग,
आक ढाक कौ दौना बनाऔ और अमर बेलि बगडोरि
अजौ लौं देवर जल लै कैं लौटे तौ लौं सिया गईं ऐं सोय

(बंसल नरेशचन्द्र, ब्रज की लोकगाथाएँ, पृष्ठ- 40)

इन गीतों में जन अपवाद कारण नहीं है, इसमें ननद का छल ही मुख्य कारण है। एक अन्य पाठ में आता है-'भाभिए बहुतेरी समझाइए, हठीली हठि परि गई'-इस गीत में सीता को अपने सत्त पर भरोसा है। वह मार्ग में एक भुर्जी से सरसों भुँजवाती हैं। सीता चलती जाती हैं और भुर्जी सरसों खाती जाती हैं। थककर एक वृक्ष की शीतल छाया में वे बैठ जाती है, उन्हें नींद आ जाती है। लक्ष्मण जल लेकर लौटते हैं-

लै दोंना बरगद पै टाँगौं लछमन दीनी आन
जो तू दोना सत कौ अगरो बूंद टपकि गिरि जाय
जबही ओट है गये लछिमन बूंदें टपकी हियरा बीच।
का बिपता बेटी तुमपे परि गई, कैसी रही हौं रोय,
चलिकें बेटी मढ़ी पै बिरमौ, भली करिंगे राम।

सीता खरी उतरी पर लक्ष्मण अपनी आन को अपनी आँखों से देख नहीं पाए। रोती बिलखती सीता को साधू स्वभाव मुनि अपने आश्रम ले गए।

लोक गीतों या कथागीतों में जो महत्वपूर्ण बात होती है वह 'टेक' होती है। यह शास्त्रीय संगीत शब्दावली में 'स्थायी' कही जाती है। 'टेक' गीत के आवश्यक रूप विस्तार के उपरान्त दुहराई जाती है। जैसे- सुरति मोपे रावन की लिखवाई।

इस विवेचन की अगली कड़ी के रूप में कश्मीर का एक विरह गीत (मान) प्रस्तुत है जिसमें ननद, भाभी एवं देवर की उपस्थिति उक्त गीतों के समान ही दृष्टिगोचर होती है-

गोम जंगलन मन्ज में त्रावित मननअतिथ कुसअने।
राज़अ जनकन्य कूरं आसिय सूर कोरुनम
दिलबरन.... जअम दोपुनम गोछ में हावुन,
ओस रावुन कुस मनुष्य। दिच में तस शक्लाह
बनअविथ, मनन अविथ कुस अने।

यहाँ सीता का देवर अर्थात लक्ष्मण दावत के बहाने ले गया। सीता कहती हैं कि पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तर चारों दिशाओं में अंधेरे में उसको ढूंढा। मेरी ननद ने मुझसे दिखाने को कहा कि रावण कैसा मनुष्य था? मैने उसको रावण की शक्ल बनाकर दे दी, उन्होंने मुझे छोड़ दिया। अब मना कर कौन लाएगा?

लोक साहित्य के पितामह स्वर्गीय झबेर चंद मेधाणी ने 'रढियाली रात भाग दो में उद्धृत गीत में सीता की ननद द्वारा उनसे लंका का चित्र बनाए जाने का दुराग्रह ही एकमात्र हेतु कथित है। ननद और सीता का संवाद

वहु रे वहु, मारी समरथ वहु, लंका लखी देखाड़ो।
हु रे न जाणु मारी बाई जी रे, लंका केम लखाशे।
वहु रे वहु, मेरी समर्थ वहु लंका चित्रित कर दिखाओ। मैं नहीं जानती लंका कैसे चित्रित कर सकती हूँ।

इसी प्रसंग में तुलसी कृत 'गीतावली' की बात करें तो रामचंद्र जी आत्मसंघर्ष एवं अन्तर्विरोध से जूझ रहे है-

राम बिचारि के राखी ठीक दै मन माहिं, लोक बेद सनेह पालत पल कृपालहिं जाहिं।

प्रियतमा,पति देवता, जिहि उमा रमा सिहाहिं,गुरुविनी सुकुमारि सिय तियमनि समुझी सकुचाहिं।

(तुलसीदास, गीतावली, पृष्ठ-368)

बहुत सोचविचार कर राम सीताजी को त्यागने का मन बना लेते हैं लेकिन मन में एक संकोच है कि वे गर्भवती हैं, सुकुमारी हैं।

चरचा चरनिसों चरची जानमनि रघुराई,दूत मुख सुनि लोक-धुनि घर घरनि बूझी आ

प्रिया निज अभिलाष रूचि कहि कहति सिय सकुचाई, तिय तनयसमेत तापस पूजिहौं बन जाइ।

जानि करुनासिंधु भाबी बिबस सकल सहाई,धीर धरि रघुबीर भोरहि लिए लषन बोलाइ।

चतुर शिरोमणि श्री राम ने अपने चरों से सलाह मशविरा किया। दूतों के मुख से लोकमत को जानकर अपने महल से आ सीताजी से पूछा-

प्राणप्रिये! अपनी अभीष्ट रूचि बताओ। तब सीताजी ने सकुचाकर कहा— मैं वन में जाकर स्त्री और बालकों के सहित तपस्वियों का पूजन करना चाहती हूँ। तब करुणासागर भगवान् राम ने होनहार के वश सारी सहायता उपस्थित देख धैर्य धारण कर सवेरा होते ही लक्ष्मण को बुलाया और सीताजी को वन में छोड़ने का आदेश दिया।

एक ब्रज लोक गाथा है जिसमें लवकुश और राम लक्ष्मण का संवाद है-

खेलत रूप सरूप रानी के दोनों बालिका, जुरिमिलि बालकु खेलु बनायौ रामा, आइ गये लछिमन राम
माँजि धोय लोटा भरि लाये रामा, पानी तो पीऔ श्री भगमान
तिहारे हात जलु नाहिं पी में बालिका, जाति बताऔ माई बाप।

(सत्येन्द्र, ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ-75)

लवकुश के युद्ध का, राम के आतंक का, उनके वैभव का यहाँ कहीं भी पता नहीं। बटोहियों की भांति लक्ष्मण राम उधर आ निकले। वे उनके लिए भली प्रकार मांजकर लोटा पानी लाए हैं। साहित्य में जिस रूप में राम से लव कुश का मिलन बताया गया है ऐसा यहाँ नहीं है। निश्चय ही यह गीत लोकगाथा माना जाएगा।

ब्रज में मंगलकाव्य एवं ब्याहुलो की भी बड़ी पुष्ट परंपरा है। 'सीता ए ब्याहन' का गीत 'सीता कौ मंगल' इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है-

सीता ए ब्याहन आये ओ लछिमन राम जनकपुर आये
जब जादौपति घर ते ओ निकरे तौ भले भले सगुन बिचारि ओ लछिमन
जब जादौपति बागनु आये तौ बागनु फूली फुलवारि ओ लछिमन

सीता को ब्याहने राम लक्ष्मण जनकपुर आए हैं। जब जादौपति अपने घर से चले तो शुभ शकुन मुहूर्त देखकर। जब वे बागों में पहुंचे तो बाग में सारी फुलवारी फूली हुई थी।

जब जादौपति तालनु आये तौ करहा झुकामन लागे ओ लछिमन,
जब जादौपति कुसटनु आये भिस्तिन मसक छुड़ाईं ओ लछिमन
जब जादोपति सीमन आये तो करहा चरामन लागे ओ लछिमन,
जब जादौपति द्वारनु आये पंचन सीस नबाए ओ लछिमन
जब जादौपति बारौठिनु आये तौ कुल्हड़ बान छुड़ाए ओ लछिमन
जब जादौपति फेरनु आये तौ सखियनु मंगल गाये ओ लछिमन

(शर्मा मालती, ब्रज के लोकसंस्कार गीत, पृष्ठ-256)

तालों पर आकर वे अपने ऊंटों को बैठाने लगे। जब वे कुओं पर पहुंचे तो भिश्तियों ने पानी की मशकें छोड़ी। गांव की सीमा पर चारागाह में आकर वे अपने ऊंट चराने लगे। जब जाधव पति द्वार पर आए तो पंचों ने उन्हें प्रणाम किया, जब वे द्वाराचार के लिए आए तो लक्ष्मण ने आतिशबाजी छोड़ी, जब वे भाँवरों के लिए आए तो सखियों ने मंगल गान किया। यहाँ दो कल्पनाएँ है-जादौ पति और करहा- ऊँट। प्रश्न है कि राम जाधव पति कैसे हो सकते हैं? जबकि गीत में लक्ष्मण, जानकी, राम की चर्चा है। गीत में ऊँट की चर्चा भी बड़े विलक्षण रूप में है जो शगुन का संकेत दे रही है। जब कभी भी संक्रमण काल होता है तब लोक नाना प्रकार की कल्पनामय असम्भाव्य घटनाओं से युक्त लोक रचनाओं को जन्म देता है। लोक रचनाओं में कथानक एवं भावतत्व अधिक महत्वपूर्ण है और कथानक का मूल तत्व अभिप्राय है। अभिप्राय कथानक के सभी अंगों को अपने में समेटे हुए है क्योंकि कथानक घटना चरित्र और कार्य के मेल का परिणाम है। अभिप्राय घटना के भी हो सकते हैं चरित्र के भी और कार्य की भी। यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि अवतारवाद और समन्वयवाद पर विश्वास करते हुए लोक कृष्ण एवं राम दोनों का ही स्मरण कर रहा है। मर्यादित व्यवहार की कामना राम के रूप में विद्यमान हैं और ब्रज क्षेत्र का प्रभाव कृष्ण की लीला जादौपति शब्द में सन्निहित है। लोक वार्ता भूतकाल की प्रतिध्वनि होने के साथ साथ वर्तमान और समकाल की दृढ आवाज़ भी है।

प्रसारवाद के सिद्धांत के अनुसार लोक साहित्य का प्रसार होता है। गीत की अंतर्वस्तु भाषा विशेष के लय विधान में बंधी रहती है। सामान्यतः इसका प्रसार उन्हीं भाषाओं में होता है जो पारिवारिक दृष्टि से संकालिक स्तर पर समीपी है और जिनकी संरचना इस प्रकार की है कि मूल लय विधान के साथ इसका भाषांतरण सरलता से हो जाता, लेकिन कुछ विशेष स्थितियों में इसका अपवाद हो सकता है जहाँ पारिवारिक दृष्टि से एकदम भिन्न भाषिक समुदाय भी सदियों तक पड़ोस में या एक साथ रह जाते हैं वहाँ उनकी संस्कृति के समीकरण की प्रक्रिया उनकी भाषाओं में उच्चारण या लय विधान और यहाँ तक कि पात्र विधान के स्तर पर संरचनात्मक समीपता उत्पन्न कर सकती है।

इसी प्रकार 'सीता को मंगल' श्री राम सीता और लक्ष्मण पर आधारित कथा गीत है।

सीता को मंगल गाइये गावहु मन चित लाइ, सीता
राम अहेरें नीकरे लछिमन लगि लीये साथ सीता
बगदौ ओ लछिमन बावरे भूख मरोगे पियास सीता
नाँय हमें भूख न प्यास ऐ चलिंगे तिहारे साथ सीता
नाँय म्वाँ कुअटा न बाबरी, नाँय जसरत कौ तालु सीता
एकु बनु नाँखि दूजौ नख्यौ, तीजे बन लगि आई प्यास सीता
ढूँडौ-सौ महुआ झालरौ ब्यापै चढ़ि गये राम सीता
तनक तलैया सीतल देखी म्वाँ चलौ जलु पी लेंइ सीता
तनिक बिटरिया भाट की जौ के खेत रखवारि सीता
कौन राजा कौ खेतु ऐ कौन राजा को देसु सीता
कौन रजन की लाड़िली कहार तिहारौ नामु? सीता
जनक राजा की लाड़िली सीता हमारौ ऐ नाम सीता
एजी बलि राजा कौ ऐ खेतु सीता
कौन रजन के लाडिले कहा र तिहारौ ऐ जामु? सीता
जसरथ के रन बाँकुरे राम हमारौ ऐ नामु सीता
लछिमन हमारौ ऐ नामु सीता जे वर घूमें फुलवारि सीता

(शर्मा मालती, ब्रज के लोकसंस्कार गीत,पृष्ठ- 257)

एक ठूंठ से हरा हुआ महुआ का पेड़ था, उस पर राम चढ़ गए तो उन्हें वहाँ एक छोटी सी तलैया दिखाई दी। राम ने कहा चलो वहाँ चल कर पानी पी लें। राम लक्ष्मण ने वहाँ पहुँचकर देखा कि एक भाट की छोटी सी लड़की जौ के खेत की रखवाली कर रही है। राम ने पूछा किस राजा की प्यारी बेटी हो? क्या नाम है? सीता ने उत्तर दिया- हम राजा जनक की लाडली बेटी है और सीता हमारा नाम है। किसी भी कलाकृति के समय-आकलन के लिए आवश्यक है कि उसे रचना के पूरे विधान और समग्रता में देखा जाए जिसमें कि वह रची गई है। संरचना लोक रचना की रीढ है। बहुत सारे गीतों की रचना का आधार कहानी होती है।

बैमाता, वीमाता (मेरठ) या बिहाई (आगरा, मैनपुरी जिले) प्रजनन शक्ति की देवी के नाम है। यह सृष्टि निर्माता प्रजापति की शक्ति के रूप में दिखाई देती है। एक गीत देखें-

बै गिरारे का फिरै?
तू तौ राम के मैहलन्द्र आउ हिरनी
जौ चरै तुम खोलो ओ कौसिल्या फाँटिक ओ तुम खोलो
ओ जसरथ फाँटिक हारी बै ठाड़ी दरबार, हिरनी।
बै ऊँचौ सौ डारूँगी बैठनो
अरू लट छोड़ि लागूंगी पाँय हिरनी।
बै रीती री जइयो कुम्हार के अरू भरीअ हमारे घर आउ हिरनी।
बै हडिया परै सरकाइये अरू करुए हमारे घर लाउ हिरनी।

(शर्मा मालती, ब्रज के लोकसंस्कार गीत,पृष्ठ- 83)

हे बै माता! तुम घर के चारों ओर और गाँव की गलियों में क्यों घूम रही हो? बै तुम तो राम (शिशु के पिता का नाम) के महलों में आओ! हिरनी जौ चर रही है दशरथ-कौशल्या। तुम घर का फाटक खोलो, देखो तुम्हारी बै तुम्हारे द्वार खड़ी है। बै! तुम्हारे बैठने को मैं चौकी बिछाऊँगी, अपने केश फैलाकर तुम्हारे चरण छूऊँगी। बै खाली होने पर तुम कुम्हार के यहाँ जाओ। वहाँ से भरी-पूरी हो

हमारे घर आओ बै हँडिया (मिट्टी की छोटी मटकी) तो तुम एक तरफ खिसका देना और भरे हुए करवे *(करक, टोंटी वाला कुल्हड़) हमारे घर ले आना।*

च्यौं ठाड़ी री बै बाहिरी? च्यौं ठाड़ी री बै बाहिरी?
तू तौ दौरि कुम्हार के जाउ री कुम्हरा के ते माटी लाउ री च्यौं। तू तौ दौरि हमारे घर आउ री, च्यौं।

बै तुम घर के बाहर क्यों खड़ी हो? तुम जल्दी से कुम्हार के यहाँ जाओ। कुम्हार के यहाँ से मिट्टी लाओ। बाहर क्यों खड़ी हो? मिट्टी लेकर तुम दौड़ के हमारे घर आओ। यों बाहर क्यों खड़ी हो? बै गीतों में बै से खाली होने पर कुम्हार के यहाँ जाकर मिट्टी और भरे करवे लेकर घर में आने की प्रार्थना है। यहाँ माटी जीव तत्व की प्रतीक है और करुए पूर्ण निर्मित जीवन के।

ब्रज की होली जगत प्रसिद्ध है। इस होली गीत में राम-लक्ष्मण व सीता के वन गमन का चित्रण और उनकी महिमा का गुणगान तथा हनुमान का सुमिरन बहुत सुन्दर ढंग से किया गया है-

बन चले दोनों भाई, इन्हें कोई बरजौ री माई। अरे
आगे आगे राम चलत हैं, तो पीछे लक्ष्मण भाई।
बीच बीच में चलत जानकी, तो सोभा बरनी न जाई।। इन्हें कोई.
अरे राम बिना मेरी सूनी अजोद्धा, लक्ष्मण विन ठकुराई। अरे
सिया बिना मेरी सूनी रसोई, तापे दुख सहेउ न जाई।। इन्हें कोई .....
अरे रामण मार राम घर आये, घर घर बजत बधायै।
अरे मात कौसल्या करत आरती, हनुमान चौर ढुराई।। इन्हें कोई.....
अरे बाजत ताल मृदंग झांझ ढप और मजीरन जौई।
उड़त गुलाल लाल भये बदरा, तौ अबीर लिए भर आई।। इन्हें कोई.....

(चतुर्वेदी द्वारकानाथ, रंग झर बरसै री, कलकत्ता,पृष्ठ- 6)

होली चर्या पर ब्रज में सैकड़ों होलियाँ है जिनमें कृष्ण राधा गोपिकाओं की चर्चा है, लेकिन कुछेक होलियाँ रामचंद्रजी पर भी आधारित है किंतु उनकी संख्या बहुत कम है। इस तरह ब्रज लोक जीवन में रामचन्द्रजी की उपस्थिति सामासिक संस्कृति का बहुत सुंदर उदाहरण है।

लोक जीवन की सबसे बड़ी विशेषता उसकी स्वाभाविकता एवं सहजता है और यही सहजता लोक रचनाओं की प्राण है। लोक रचनाकारों की भाषा, रचनाविधान और विचार प्रक्रिया की कई-कई परतें हैं, जिनसे किसी स्थान एवं भाषा विशेष की संस्कृति का अंदाज लगाया जा सकता है। भाषा एक सुनिश्चित तथा अलंघ्य, सार्वभौमिक व्यवस्था नहीं बल्कि कई स्थानीय आदि भेदों की समग्रता है जिनमें से प्रायः एक बोली अपने सांस्कृतिक साहित्यिक आदि महत्व के कारण भाषा का स्थान प्राप्त कर लेती है और अन्यसभी भेद उस भाषा की बोलियाँ कहलाते हैं। संरचनात्मक भाषाविज्ञान में भाषा के मानक या सार्वभौम रूप की अपेक्षा भाषा के बोले जाने वाले रूप को स्वीकार किया है।

संदर्भ

- मीतल प्रभुदयाल,2001, ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास,मथुरा, साहित्य संस्थान
- सत्येन्द्र,1949,ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन,आगरा, साहित्य रत्न भण्डार
- बंसल नरेशचन्द्र, 2001,ब्रज की लोकगाथाएँ, सूकरक्षेत्र शोध संस्थान, कासगंज
- तुलसीदास, 23वां संस्करण,गीतावली,गोरखपुर, गीता प्रेस
- शर्मा मालती, 2009, ब्रज के लोकसंस्कार गीत, गाज़ियाबाद, अनुभव प्रकाशन
- चतुर्वेदी द्वारकानाथ,संवत् 2046,रंग झर बरसै री, कलकत्ता, श्री माथुर चतुर्वेदी सभा
- मुंशी विमला, 1993,कश्मीर इतिहास संस्कृति तथा लोकगीत, दिल्ली आर्य बुक डिपो

लोक खेलः विरासत की अद्भुत परम्परा

डॉ. लक्ष्मीकान्त चंदेला

सहायक प्राध्यापक हिन्दी

शासकीय स्वषासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिंदवाड़ा, म0प्र0

सारांश

ज्ञान की नेति-नेति परम्परा संजोए लोक खेल समय की आंच में पके हुए होते हैं इसलिए सार्वभौम एवं सार्वकालिक होते हैं जिनके खेल व्यवहार से मानव-मन में सहयोग एवं जुड़ाव की समन्वित प्रवृत्ति विकसित होती है। यही कारण है कि जीवन से बेहद संपृक्त होते हैं किन्तु अब मशीन और मनुष्य की उत्तर आधुनिकता के बीच खो गए हैं। जिससे मनुष्य इनसे दूर हो रहा है तथापि व्यक्ति में नैतिक, चारित्रिक पतन तो हुआ ही है सामाजिक-सांस्कृतिक संबंध-ज्ञान भी शून्य हो गए हैं और काया हमेशा-हमेशा के लिए कृशकाय। बीमारी भी इतनी असाध्य कि पीढ़ियां इस 'जेनेरिकता' को लेकर जन्म ले रही है।

दरअसल, ये लोक खेल प्राचीन देश का गौरव होते हैं तथा तद्युगीन लोक मानस को आनंद प्रदान करते हैं। जिससे व्यक्ति चेतना के कपाट खुलते हैं तथा स्व-विकास के साथ-साथ जगत् कल्याण की संकल्पनाएं बलवती होती हैं। लोक खेलों की ऐसी आदर्श संस्कृति जो वार-प्रहार और अचानक आक्रमण के समय रक्षात्मक शैली का विधान करती हुई खिलाड़ी को निपुण बनाती है।

फिर खेल-खेल में ये लोक खेल अभ्यस्त करा देते हैं कि हार-पहार, नदी-नाले एवं आपदा-विपदा में फँस जाने पर कैसे बचा जा सकता है? ऐसे बहुविध कौशल सम्पन्न ये खेल जीवन के अभिन्न होते हैं। इसलिए लोक परम्परा में शामिल हो विरासत बन पाते हैं।

बीज शब्द

लोक, खेल, कला-कौशल, तत्व एवं संबंध ज्ञान

हमारा लोक ही हमारी विरासत है जिसमें कुछ परम्पराएं इतनी प्राचीन, अद्भुत व अद्वितीय हैं कि उन्हें बिसरना अथवा उनसे दूर जाना जीवन के लिए घातक है। लोक से दूर होने का परिणाम इतना घातक होगा शायद किसी को पता नहीं था। हुआ यह कि देखते-ही-देखते जीवन दो पीढ़ियों में विभक्त हो गया और नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ी को चुकी हुई मानने लगी। जब लोक से दूर जाने का परिणाम इतना घातक, तो कल्पना कीजिए लोक खेलों से दूर होने का परिणाम कितना घातक होगा? यह सवाल संभवतः सभी के मानस में उठ रहे होंगे, क्योंकि असल सच्चाई यही है। नैतिक, चारित्रिक पतन के साथ-साथ सामाजिक-सांस्कृतिक संबंध-ज्ञान भी शून्य हो गए है और काया हमेशा-हमेशा के लिए कृषकाय। बीमारी भी इतना असाध्य कि

पीढ़ियां इस 'जेनेरिकता' को लेकर जन्म ले रही है।

जिनमें जय-पराजय का भाव न होकर जगत् व्यवहार महत्वपूर्ण होता है तथा अनुभव से लेकर अनुशासन तक खेल-खेल में सीख जाने की प्रवृत्ति; फिर भी लोक खेलों से दूर हो रहे हों तब अनुसंधान का उद्देश्य है-

- लोक खेलों से बच्चे एवं आज की पीढ़ी को जोड़ना।

-लोक खेलों को सहेजना एवं संजोना।

-खेल शिक्षा में लोक खेलों को सम्मिलित करना।

-मशीन और आधुनिकता के बीच खोने से बचाना।

-तत्व ज्ञान की प्राप्ति माध्यम बनाना है।

महत्व - लोक खेलों के आदर्श प्रतिमान उसकी रक्षात्मक शैली एवं संबंध-ज्ञान पर निहित है इसलिए लोक जीवन में इनका विशिष्ट महत्व है, गोया-

-लोक खेल एक साधना है, एक कला है।

-सहभागिता की समन्वित भावना है।

-इन खेलों में बिखराव नहीं जुड़ाव की भावना होती है।

-शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक के साथ-साथ चित एवं चरित्र विकास में सहायक होते हैं।

-युग जीवन को नया संदेश देते हैं।

- ये दिमागी कसरत की आदर्श प्रविधि होते हैं।

आदिम समय से लोक खेलों का अभीष्ट हमारी परम्पराएं रही हैं। इन्हीं से विस्तार पाता हुआ लोक सहेज पाया है किन्तु आधुनिक जन सामान्य इनसे दूर हो रहा है। इसलिए शून्य संबंध-ज्ञान लिए व्यक्ति न तो व्यक्ति रहा और न ही मनुष्य बल्कि पूरा-का-पूरा मशीन बन गया है जो कि लोक खेलों से दूर होते जाने का परिणाम। गुल्ली डंडा और गढ़ा गेंद की बजाय मोबाइल और कम्प्यूटर गेम आ गए है। ऐसा लगने लगा है कि लोक खेल अब मशीन और मनुष्य की उत्तर आधुनिकता के बीच खो गए हैं। लोक में कुछ ही चीजें हैं जो मनुष्य को मनुष्यता और जीवन को जीवटता प्रदान करती हैं फिर आज का मनुष्य क्यों अनजान बना हुआ है? बेहद चिंता का विषय है कि "गांव में जो लोक था, विलुप्त हो रहा है। एक नई अल्पसंस्कृति जन्म ले रही है।"[1] जो मनुष्य को मशीन बना रही है, जिसमें न संवाद है न संवेदना। बस, जड़ता-ही-जड़ता; जिसने मनुष्य को तत्त्वहीन एवं भाव शून्य बना दिया है। लोक के अध्येता इसका कारण 'कहानियों से विलुप्त होते लोक' को मानते है।

वैसे,लोक "लोकस्मिन् निष्ठा, पुरोप्रोक्ता मयानघ"[2] को मर्यादित करता हुआ समस्त विश्व का बोधक है अथवा "जहां बेहतर जीवन लोक मन की अनुभूतियों के साथ जिया जाता है"[3], वह लोक है और खेल जीवन का एक विधान है जिसे प्रकृति स्वयं तय करती है 'खेलन हरि निकसै ब्रज खोरी' की तरह। जिसे लोक सम्पन्न करे तो लोक-लीला, सूर मन व्यंजित करे तो रास-लीला और ईश्वर विधान रचे तो प्रभु लीला कहते हैं। इस तरह समग्र विश्व के सामाजिक,सांस्कृतिक आदि अर्थ को वहन करने वाला व्यापक शब्द 'लोक' है। इसलिए खेल मानव जीवन का अनिवार्य हिस्सा है मगर आधुनिक जन उस लोक से क्यों दूर हो रहा है? कल्पना से परे है।

वस्तुतः लोक खेलों का अपना अनुशासन है जिनमें जय-पराजय का भाव न होकर जगत् व्यवहार महत्वपूर्ण होता है। इसलिए दुनिया की रीत और प्रीत सहज विद्यमान रहती है। हां, इनमें निश्चित संख्या, सामग्री, समय व स्थान नहीं होते बल्कि समय व अवस्था के आधार पर जब जी चाहा खेल शुरू।

ऐसी प्रकृत विद्या से अब लोक दूर हो रहा है जिससे व्यक्ति अपने भीतर के आनंद से वंचित हुआ है? अब तो कथाओं से भी लोक दूर होता जा रहा है। अब गांवों में चौपाल भी नहीं लगती जहां खेल-कथा का अनुश्रवण कर सकें। लोक लीला भी नहीं रही जहां 'चरणदास चोर' जैसी नौटंकी को देख अपने भीतर मन को समझा सकें। खेल-गीत भी

नहीं गाए जाते जिनके अनुशासन से समूचा ब्रज भक्ति की अलौकिकता से अनुगुंजित हो। इस तरह इनमें प्राचीन देश का गौरव तथा परम्पराओं की संकल्पना निहित होती है किन्तु आज की आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता और उपभोक्तावादी प्रवृत्ति ने खेल के आदर्ष को बदल दिया है। इसलिए इनकी अवधारणा बाजार संयत हो गई है जबकि ''लोक खेल लोक जीवन से जुड़कर विकसित होता रहा है, अब वह उद्योग से जुड़ गया है।''[4]

लोक खेलों ने वे प्राणतत्व दिए जिनसे जीवन बड़ी सरलता से गतिमान होता था किन्तु मोबाइल-कम्प्यूटराधारित खेलों ने मशीनी जड़ता प्रदान कर लोक और लोक खेल दोनों से दूर कर दिया। मशीनी जड़ता की कलुषता का परिणाम यह हुआ किः उसे न तो यंत्रज्ञान हो पा रहा है और न ही तंत्र ज्ञान। इसलिए यह तत्वज्ञान अब 'सपनेहुं सुख नाहिं'-सा लगने लगा है।

दरअसल आज हमें आवश्यकता है मनुष्य को मशीन होने से बचाने की। चित और चरित्र को आधार देने की, वरना वह दिन दूर नहीं जब कहा जाने लगे 'चित्त भय सब शून्य'। चिंता की इसी आतुरता ने इस विषय पर शोध आलेख लिखने के लिए जिज्ञासु बनाया एवं जैसा बन पड़ा लोक खेल-खेल में लिखने का प्रयास किया। इस प्रयास की एक कोशिश रामकुमार कुंभज की इन पंक्तियों में प्रतिबिंबित होती है-

''सोच लिया है
कल की इबारत कल लिखेंगे
आज का फैंसला आज करेंगे।''[5]

यानि लोक खेलों को अब रोज खेलेंगे और जुड़े रहेंगे उनकी अलौकिक सौन्दर्यानुभूति से। जिससे लोक खेलों की इबारत इतनी वास्तविक होगी कि उसके विशिष्ट गुणों से कठोरता भी मात खा जाएगी, जैसे-

''नंगे पांवों की
कठोर धरती से निरन्तर कुश्ती
मात खाती रही कठोरता।''[6] (शैलेन्द्र चैहानः मैं इसी मिट्टी में पैदा हुआ)

इस तरह कल के सुन्दर भविष्य की इबारत लिख सकेंगे। इबारत वैसे भी अलौकिक है क्योंकि इनके न जन्मदाता का पता है, न जन्म भूमि का। इसीलिए ये लोक खेल किसी पुरस्कार के मोहताज नहीं होते और न ही उपलब्धियों की चाहत; इनमें तो केवल रिश्तों व संबंध-ज्ञान की बेमिसाल संकल्पनाएं होती हैं। मनोरंजन और शिक्षा तो इनका अभिन्न है। वैशिष्ट्य भी ऐसा कि खेलते-खेलते एक पीढ़ी-से-दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होते हैं जिसके लिए प्रशिक्षक की अनिवार्यता न होकर ज्ञान की सहजता और कल्पना की तत्परता ही महत्वपूर्ण होती है। इस तरह हुनर और हौंसला की प्रभावान्विति लोक-क्रीड़ा की समृद्धि का परिचायक बनी। इस अनूठे अनुशासन में खेले जाने वाले कुछ लोक खेल उल्लेखनीय हैं - गड़ी बंटना, डुब्बुक चिरैया, कूकी (छुपमछुपाई), गुल्ली-डंडा, गढा-गेंद, टिप्पू के अलावा खेल गीत-गायन-वादन-नृत्य और कथा-कहानियां भी आते हैं जिन्हें रुत-ऋतु-रुचि,अवसर,और उपलब्धता के आधार पर खेले जाते हैं। देखिए-

गड़ी बंटना या बनाना- 'गड़ी' लोक का बहुश्रुत शब्द है जिसका मतलब है 'साथी'। यह जोड़ी या समूह का भी परिचायक है। लोक में खेल प्रारंभ से पहले 'गड़ी' बंटते हैं जिससे खेल पारदर्शी और समन्वित ढंग से खेला जा सके। इससे समान अनुभव, क्षमता और दक्षता वाले दलों का गठन होता है जिससे खेल बराबरी से सम्पन्न होते हुए खिलाड़ियों तथा दर्शकों को आनंद लोक तक ले जाता है। इन खेलों में ज्ञान, कर्म और इच्छा का ऐसा समन्वय होता है कि विजय, जय-विजय की अखंड अनुभूति सहज ही करा देते हैं। 'गड़ी' बनाना लोक की असाधारण बुद्धि-चातुर्य का प्रतिफलन है इससे बालक-बालिकाओं में दुनिया के व्यवहार ज्ञान का बोध होता है। इस सत्य को स्वीकारते हुए लोक खेलों के अध्येता कह सके कि- ''ये खेल बच्चों के मानस को संस्कारित करने और स्मृतिवान बनाने का भी सहज कार्य करते हैं।''[7] यही कारण है कि

लोक में यह विरासत के रूप में सहेजी जाती है।

डुब्बुक चिरैया - यह लोक का अतिप्रिय प्रकृत खेल है जिसे नन्हें बच्चे बहुत ही उत्सुकता से साथियों के साथ खेलते हैं। यह खेल गांव के घर जिसमें आंगन और उस आंगन में न ज्यादा ऊंची न ज्यादा नीची पार होती है जिसमें बच्चे चढ़कर नीचे कूदते हुए खेलते हैं। यह कूदने की प्रक्रिया ठीक वैसी ही होती है जैसे गगनचर पक्षी आसमान में उड़ते हुए धरती में सतर्क उतरता है। इससे बच्चों का भीतरी भय एवं झिझक दूर होती है तथा धरती से आसमान और आसमान से पुनः धरती में आने की प्रक्रिया से परिचित हो पाता है। इस खेल को एक साथ कई बच्चे खेल सकते हैं। इस खेल गति से चढ़ने-उतरने की दक्षता आती है एवं सावधानी की अनिवार्यता को समझ पाते हैं। इससे उनका शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, रणनीतिक कौशल विकास के साथ-साथ चित्त और चरित्र का संवर्धन हो पाता है।

लोक खेलों के दूसरे स्वरूप-सौन्दर्य पर प्रवेश करते हैं तो लोक में खेल गीत, खेल गायन, खेल वाद्य एवं कथा-कहानियों का खेल भी पूर्ण वैशिष्ट्य लिए हुए है जिसे अनुभवशील एवं समय की आंच में पके जन-समुदाय दोनों पीढ़ियों को सुनाते हुए सम्पन्न करते हैं। इसमें धरती-पृथ्वी, राजा-रानी, नदी-तालाब, पर्वत-पहार, शेर-हिरण, खरगोश, मेंढक-मछली, सांप-नेवला, हाथी-चींटी, बंदर-भालू, कीट-पतंगा, तोता-मैना, वन-बिलाव आदि समस्त चिरई-चुनगुन से लेकर दाई-माई,परी एवं देवी-देवताओं की नीति-ज्ञान परक रोचक कथा होती है। इनके श्रवण करने से श्रोता के ज्ञान चक्षु सत्संवरण कर समय से साक्षात्कार करते हैं। ज्ञान की यह नेति-नेति परम्परा को 'गोबरैला कीड़ा' की कथा देखिए-

गाय जिस जगह गोबर करती है, कुछ समय पश्चात् उसमें एक कीड़ा उत्पन्न होता है, अपने उत्पन्न होने का संकेत भुनभुन के साथ देता है एवं उसकी पहचान गोबर के गोल ढेले को बनाते हुए एक निश्चित-अनिश्चित दिशा की ओर लेकर जाता है। वह गोल ढेला छोटे से बड़ा होता हुआ आकार में इतना बड़ा हो जाता कि उस कीड़ा की शक्ति से कहीं ज्यादा। जिसे ढकेल कर अज्ञात की ओर ले जाते-जाते स्वयं को समाप्त कर लेता है। यानि अपने को मिटाने से बचाने वाली नीति ज्ञान विषयक कथा 'कहैया' का आधार होती है एवं सुनने वाले के बीच खेल सम्पन्न होता है। ऐसे तर्क ज्ञान सम्पदा की अकूत धरोहर से बड़े-बूढ़े सभी परिचित होते हैं जिसकी जीवन में यदा-कदा जरूरत पड़ती है।

खेल-कथा - दरअसल खेल कथा का कहैया, मानवीय-व्यवहार के परिवृत्त को कथा-वृत्त बनाता है, जैसे स्मृत्याख्यान में उपस्थित 'मां की लोक कथा' है- ''एक बुढ़िया को हथेली में फोड़ा उगता था - इस फोड़े के फूटने पर उसमें से एक मेंढक निकलता था। यह मेंढक उसके सगे पुत्र जैसी उसकी सेवा करता था। वह मनुष्य की आवाज में बोलता-बतियाता है - उसका समूचा व्यवहार मनुष्य जैसा था।''[8] ऐसे ही हबीब तनवीर का सुप्रसिद्ध नाटक 'चरणदास चोर' कथा खेल का विस्तार है। इस कथा-कहानी के खेल में प्राणिजगत् के आपसी व्यवहार की विरासतीय अनुभूति होती। अतः लोक कथा-खेलों के संस्पर्श से मानवीय संस्कार मजबूत होते हैं।

खेल गीत - लोक में 'हिलावै, दुलावै, मल्हावै, जोई-सोई कछु गावै' सा खेल गीतों का स्वानुशासन है। ऐसे विशाल खेल गीतों की परम्परा में हिमांचली खेल कथा 'किक्कली' अति प्रसिद्ध है जिसमें ''दो कन्याएं अपनी बाहों की कैंची बनाकर एक-दूसरे के हाथ कसकर पकड़ लेती हैं और अपनी अंतिम पंक्ति पर गीत की लय के साथ अपना एक हाथ उठाती है-

किक्कली कलीर दी, भाबो मेरे वीर दी
दो वीर देई मेरे रब्बा, इक मुंशी इक पटवारी
किक्कली कलीर दी, पग्ग मेरे वीर दी
दुपट्टा मेरी भाबो दा
नी मैं एक किल्ली टंगा, नी मैं ओस किल्ली टंगा किक्कली कलीर दी।

अर्थात् मैं किक्कली खेल रही हूं। मेरे दो भाई हैं, एक मुंशी है और दूसरा पटवारी है। मेरे भाई की पगड़ी है और भाभी का दुपट्टा। मुझे भी मेरे भाई

और भाभी ने दुपट्टा दिया है जिसे मैं कभी एक खूंटी पर टांगती हूं और कभी दूसरी खूंटी पर टांगती हूं।"[9] इस तरह भाव-प्रवण संचेतना की संपृक्तता से आवृत्त खेल कथा का कथानक संबंध ज्ञान का वैशिष्ट्य लिए है। फलतः अपने ही भीतर के अपनों से जद्दोजहद करता हुआ लोक आज भी अपने अंदर लोक खेलों को जीवित रखा है। इसलिए परम्परा और विरासत तो हैं ही सुन्दर भविष्य की इबारत भी हैं क्योंकि इनमें जीवन के आदिम व्यवहार से लेकर रिश्तों-संबंधों की प्रगाढ़ कला-संस्कृति की समन्वित दृष्टि सन्निहित है।

फिर ये खेल-खेल में अभ्यस्त करा देते हैं कि आने वाला खतरा अथवा वार-प्रहार व अचानक आक्रमण से कैसे बचा जाए? इस तरह की रक्षात्मक शैली लिए लोक खेलों को एकल, संयुक्त, दिन-रात, पानी-बरसात, ठंडी-गर्मी में सभी आयु वर्ग के खेलते हैं। इन्हीं से स्वास्थ्य एवं सुरक्षा का अद्भुत समन्वय हो पाता है।

निष्कर्ष - इस तरह बचपन से विजय बीज बो देने की कसरत कराने वाले लोक खेल प्रकृत संस्कारों एवं लोक व्यवहारों के साथ लोक मन में बसे होते हैं तथा रस-रंजना की प्रवृत्ति से लोक मानस का परिहार कर चैतन्यता से भर देते हैं जिससे काल-अकाल और अवसर के अनुकूल अपने को साधता हुआ तत्व ज्ञान का अर्जन कर आनंद लोक में विहार करने लगता है। लोक खेलों के ऐसे विशिष्ट गुण सूत्रों से पुरुष, युग पुरुष हुए तथा युग निर्माता भी। इसलिए लोक मन की संपदा एवं विरासत के रूप के सहेजे जाते हैं।

अस्तु, मानवीय विरासत के लिए यह कहा जाना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि लोक खेल नहीं तो हमारी विरासत भी नहीं, उसकी रक्षा-संरक्षा नहीं, भाव-अनुभाव नहीं। इसलिए इस विरासत को संरक्षित करने के लिए लोक खेलों को खेलना होगा, अपनाना होगा।

पुनःश्च, ये लोक खेल ही हमें मशीन होने से बचा सकते हैं क्योंकि मनुष्य जितना आधुनिक हुआ है उतना ही मशीन बना है और उत्तर आधुनिक का तो कहना ही क्या? पूरा-का-पूरा मशीन बना दिया है अर्थात् मोबाइल गेम, कम्प्यूटर गेम आदि से। अतः लोक खेलों द्वारा मशीन से मनुष्य बनाने की एक कोशिश होगी जिसे हम सभी को मिलकर प्रयास करना चाहिए। नहीं तो साधु साधु ...

संदर्भ सूची -

1. खत्री, डॉ. सुनीता (2017 मई-जून) अक्षरा, कहानियों से विलुप्त होता लोक, म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, श्यामला हिल्स भोपाल, पृ. 89
2. दइया, पीयूष (2002) लोक, 'लोक और शास्त्र' लेखक राममूर्ति त्रिपाठी, भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर राजस्थान-313001, पृ. 373
3. चंदेला, लक्ष्मीकान्तः समकालीन कविता में लोक तत्व, बोधि प्रकाशन,सी-46, सुदर्षनपुरा इंडस्ट्रियल एरिया एक्सटेंषन नाला रोड, 22 गोदाम, जयपुर-302006, प्रथम संस्करण 2018, पृ.15
4. शुक्ला, डॉ. मधुरानी (नव.2021) : अनहद लोक, खेल के सौन्दर्यबोध में उपभोक्तावाद का प्रभाव लेखक डॉ आलोक मिश्रा (व्यंजना आर्ट सोसायटी) 109डी/4 अबुबकरपुर, प्रीतमनगर सुलेम सराय, प्रयागराज-211011, पृ. 313
5. चतुर्वेदी, त्रलोकी नाथ(2014 अप्रैल 9) साहित्य अमृत, 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002, पृ. 43
6. चतुर्वेदी, त्रलोकी नाथ (2014 अप्रैल, अंक 9) साहित्य अमृत, 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002, पृ. 70
7. मिश्र, अशोक (2018 मार्च-जून 106) आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, श्यामला हिल्स, भोपाल- 462002, पृ. 3
8. खत्री, डॉ. सुनीता (2017 मई-जून) अक्षरा, लोक आख्यान और मिथक के अन्तर्संबंध, म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,हिन्दी भवन, श्यामला हिल्स भोपाल, पृ.95
9. मिश्र,अशोक (2018 मार्च-जून 106)चौमासा, आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, श्यामला हिल्स, भोपाल-462002, पृ. 166-167

होली गायनः एक रंगारंग परम्परा

डॉ. मधुमिता भट्टाचार्य

असिस्टेंट प्रोफेसर
संगीत एवं मंचकला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सारांश

संगीत एवं ललित कलायें मानव की मनोगत भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति का एक सशक्त और श्रेष्ठ माध्यम है। भारतीय समाज में अति प्राचीन काल से ही होली प्रिय उत्सव रहा है। किसी भी युग का साहित्य तत्कालीन समाज की साँस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक गतिविधियों को प्रतिबिम्बित करता है। भारतीय समाज तथा संस्कृति के अन्तर्गत आयोजित तथा प्रचलित विभिन्न उत्सवों इत्यादि का भी विशद् वर्णन प्राप्त होता है। भारतीय जनजीवन में विभिन्न धार्मिक पर्वों एवं उत्सवों पर गान, नृत्य का प्रदर्शन अनिवार्य रूप से किया जाता रहा है।

बीज शब्द

होली, त्यौहार, गीत, रंग, बसन्त उत्सव

हमारे देश में होली का त्यौहार बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है। इस त्यौहार से सम्बन्धित अनेक गीतों की रचना हुई है। इन गीतों और होली गायकी के ऐतिहासिक तथ्यों को सबके समक्ष लाना मेरा उद्देश्य है।

भारतीय संस्कृति में श्रृँगार और आनन्द महोत्सव के रूप में वसंत एवं होली क्रीड़ा का सदैव से ही प्रमुख महत्व रहा है। प्राचीन ग्रंथों में इसे मदनोत्सव या मदन महोत्सव भी कहा गया है। श्रृँगार रस एवं वसंत के वैभव गान से युक्त फाल्गुन मास में प्रस्तुत की जाने वाली गान, नृत्य परम्पराओं में रास, रासक, नाट्यरासक तथा चर्चरी इत्यादि सशक्त साँस्कृतिक परम्पराओं का समावेश है। इन विधाओं का विकास भारत के विभिन्न प्रान्तों एवं क्षेत्रों के निवासियों की अभिरूचि, भाषा, रहन-सहन व्यवहार तथा परम्परागत संस्कारों के अनुरूप हुआ है। अतः भारतवर्ष में वसंतोत्सव एवं होली जैसे सुअवसरों पर गान नृत्यादि के प्रदर्शन की एक समृद्ध एवं विकसित परम्परा रही है।

फाल्गुन की मस्ती में ताल देता हुआ धरती पर आता है-ऋतुओं का राजा वसंत। चंदन के समान शीतल, सुखद गंधवाली, आनन्दित करने वाली हवा बहती है। कोकिल के स्वर से अमराइयाँ मुखर हो उठती है। वसंत के स्वागत के लिये सारे वृक्ष फूलों से भर गये हैं। जल में कमल खिल गये हैं। वसंतोत्सव का महत्व सम्पूर्ण संसार में है।

''दूसरी शती में जैमिनी ने मीमांसा दर्शन में 'होलिकाधिकरण नामक एक अध्याय जोड़कर इस लौकिक त्योहारों का आर्यीकरण किया।1 ''कोषीतकि ब्राह्मण के अनुसार शीतकाल में बोई

हुई फसल चैतमास में पक जाती थी और इस अवसर पर फाल्गुनी पूर्णिमा का वैश्वदेव पर्व माना जाता था। इस पर्व पर पवित्राग्नि में भूना जाने वाला अन्न 'होलक' कहलाया। इसका अपभ्रंश 'होला' बना और उससे संबंधित उत्सव होलिकोत्सव कहलाया।2 ''वात्स्यायन के कामसूत्र में इस उत्सव का नाम 'होलाका' दिया है।''3

''शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से होली शब्द हो तथा ली इन दो शब्दों के संयोग से बना है। भाषा शब्दकोश के अनुसार 'हो' शब्द संबोधन वाचक है और उल्लास एवं हर्ष की अभिव्यक्ति का बोधक है।''4 आनन्द एवं उल्लास की प्रवृत्ति होली गान की समस्त विधाओं में परिलक्षित होती है।

होली के अतिरिक्त होला, होलाका, होलिका आदि तो है ही साथ ही इन सभी शब्दों के अर्थों में भी पारस्परिक सम्बद्धता दिखाई देती है। ''उदकक्ष्वेडिका' नामक उत्सव का भी वात्स्यायन ने उल्लेख किया है। उपयुक्त क्रीड़ा का वर्णन आगे चलकर भोज के श्रृँगार प्रकाश (ई॰ 11वीं) में भी मिलता है। यह वर्तमान होली का ही पूर्व रुप है। इस ग्रन्थ में वसंत में आयोजित किये जाने वाले लोकोत्सवों में सुवसंतक और मदनोत्सव दोनों का उल्लेख मिलता है। वसंत के प्रथम दिन को सुवसंतक कहा गया है। मदनमहोत्सव का आयोजन मदन त्रयोदशी पर होने का उल्लेख है।5 पुराणों से ज्ञात होता है कि मदनोत्सव कई दिनों तक मनाया जाता था। यह उत्सव चैत्र शुक्ल द्वादशी को आरंभ होता था। इसके दूसरे दिन अर्थात् त्रयोदशी को भी मदन की पूजा की जाती थी और सम्मिलित भाव से स्तुति की जाती थी। चैत्र शुक्ल चतुर्दशी की रात्रि को केवल स्तुति ही नहीं वरन् नाना प्रकार के गान एवं नृत्यों का आयोजन किया जाता था तथा पूर्णिमा के दिन सार्वजनिक रुप से उत्सव मनाया जाता था जो कि आज भी होलिकोत्सव अथवा होली के रुप में हिन्दू संस्कृति में विद्यमान है।6

'वर्ष क्रिया कौमुदी' के अनुसार चैत्र शुक्ल चतुर्दशी को मदन महोत्सव में प्रातः काल से एक प्रहर तक संगीत और वाद्य की संगति में श्रृँगारिक अपशब्दों को बोलते हुये कीचड़ उछाला जाता था।7

मुगलों के राज्यकाल में संस्कृति एवं कलाओं का अद्भुत समन्वय हुआ। मुगलों की राजधानी आगरा थी जो कि ब्रज प्रदेश (मथुरा-वृंदावन) के ही समीप थी। अतः ब्रज की संस्कृति और कलाओं का प्रभाव मुगल राज दरबार पर भी पड़ा। मुगल सम्राट अकबर, जहाँगीर, औरंगजेब, शाह आलम, बहादुर शाह ज़फर आदि के नाम से अंकित होरियाँ मिलतीं हैं। जहाँगीर स्वयं महफ़िल-ए-होली में उत्साहपूर्वक सम्मिलित होते थे। इसका प्रमाण तुज़के जहाँगीरी में मिलता है। शाहजहाँ के युग में होली को ही आब-ए-पाशी या ईद-ए-गुलाबी के नाम से जाना जाता था। शायरों में ख्वाजा हैदर अली आतिश, इंशा और तबन आदि ने दरबारी होली का ज़िक्र अपनी लेखनी से किया है।

मुहम्मदशाह के समकालीन दरगाह कुली खाँ की व्यक्तिगत डायरी 'मुरक्का-ए-दिल्ली' में प्राप्त विवरणों के आधार पर वसंत मनाने के प्रमाण मिलते हैं। वसंत के अवसर पर मेला हुआ करता था जहाँ सुगंधित द्रव्य और इत्र छिड़का जाता था। आज़म खाँ, लतीफ़ खाँ जैसे दरबारियों की महफ़िलों में बड़े-बड़े संगीतज्ञों एवं नर्तकियों का कार्यक्रम होता था।

नवाब वाजिद अली शाह स्वयं एक कुशल कत्थक नर्तक भी थे। नवाब अपने अन्तःपुर में परीखाना के सहयोग से संगीत प्रधान नृत्य नाटक अभिनीत करते थे जिनमें रहस और इन्दरसभा प्रमुख थे। इन नाटकों में स्त्री पात्रों द्वारा गेय होलियों का प्रचुर प्रयोग किया गया है।

आधुनिक युग में भी शास्त्रीय विधि से गाये जाने वाले चैदह मात्रिक धमार ताल में निबद्ध होरी या धमार नामक गीतभेद का सम्बन्ध मूलतः होली पर्व से है।8

अतः होली, धमार शैली का पल्लवन हमारे प्राचीन मंदिरों एवं देवालयों से ही हुआ। होली पढ़ने और गाली गाने के प्रसंग भी अष्टछाप काव्य में यत्र-तत्र मिलते हैं। ब्रज प्रदेश में होलिकोत्सव पर चर्चरी एवं धमार आदि गान नृत्य परम्परा का इतिहास

अत्यंत प्राचीन है। वस्तुतः हिन्दुस्तानी संगीत में होली गान की उत्पत्ति एवं विकास परम्परा का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। वर्तमान समय में हिन्दुस्तानी संगीत में होली अथवा होरी नामक शास्त्रीय गान शैलियों का सम्बन्ध भी होली पर्व से ही है। हिन्दुस्तानी संगीत में होली नाम से प्रचलित दो गान विधायें प्रचलित हैं-1) होरी या होरी-धमार, 2) होली ठुमरी या चाँचर। भारत में वसंतोत्सव एवं होलिकोत्सव जैसे अवसरों पर गान नृत्य वाद्यादि के आयोजन की परम्परा अत्यन्त प्राचीनकाल से चली आ रही है।

होली गीतों के नामकरण के लिये एक कथा प्रचलित है। प्राचीनकाल में हिरण्यकश्यप नाम का एक राजा था। उसको प्रहलाद नामक एक पुत्र हुआ। चूंकि पुत्र की भगवद् भक्ति से उसका पिता प्रसन्न नहीं था। इसलिये उसने अपने पुत्र को बार-बार मारने का प्रयास किया और भगवान पर अटूट आस्था होने के कारण उसकी रक्षा होती रही। अंत में हिरण्यकश्यप ने अपनी बहन होलिका को अग्नि में बैठाया परंतु प्रहलाद सकुशल बच गया और होलिका भस्म हो गई। तभी से होलिका दहन की प्रथा प्रारंभ हुई। होली का प्रभाव वसंतपंचमी के दिन से प्रारंभ हो जाता है।

हिन्दुस्तानी संगीत के अन्तर्गत होली गान की अधिकांश बंदिशें प्रायः स्थायी व अन्तरा युक्त मिलतीं हैं। होलियों में एकाधिक अन्तरें भी पाये जाते हैं। होलियों में ठुमरी शैली की भाँति मुख्य राग के अतिरिक्त अन्य रागों का मिश्रण भी संभाव्य है। यह विधा होली चाँचर या होली ठुमरी के नाम से जानी जाती है। चाँचर ताल में निबद्ध होली के लिये चाँचर संज्ञा के प्रयोग की प्रथा रही है। यद्यपि चाँचर ताल का प्रयोग ठुमरी, चैती इत्यादि गीत विधाओं में होता है तथापि गीत के विशेष अर्थ में चाँचर शब्द से अभिप्राय केवल होली के लिये ही होता है। चाँचर (चैदह मात्रिक एवं सोलह मात्रिक) में निबद्ध होलियों के अतिरिक्त कई ऐसी होली की रचनायें हैं जो तीनताल, दादरा, कहरवा इत्यादि तालों में गेय है। वर्तमान में होली की संरचना एवं गायकी के आधार पर ठुमरी विधा का ही भेद समझा जाता है। ठुमरी की भाँति ही होली ठुमरी आरंभ करने से पूर्व गेय राग में संक्षिप्त आलाप किया जाता है। इसके अन्तर्गत बंदिश के स्थायी खंड को गाते हुये उसके बोलों को राग एवं ताल के अनुसार विविध स्वर संदर्भों से अलंकृत करते हुये बंदिश का विस्तार किया जाता है। बोलों का अलंकरण करने हेतु स्वर सौन्दर्य के विविध उपकरणों यथा कण, मींड, मुर्की, खटका इत्यादि का यथोचित प्रयोग किया जाता है। बंदिश में निहित बोलों को अलंकृत करने का कार्य दो रुपों में किया जाता है-(1) बोल बनाव (2) बोल बाँट। बनाव शब्द से सजाने अथवा श्रृँगार करने का बोध होता है जबकि बाँट शब्द प्रस्तार, खंड के लिये प्रयुक्त होता है। अतः जब कलाकार अपनी कलात्मक प्रतिभा के आधार बंदिश के बोलों को विविध स्वर संदर्भों से सुसज्जित करते हुये बंदिश का विस्तार करता है तो वह कृत्य बोल बनाव कहलाता है। बोल-बाँट में निहित ताल के अनुसार बोलों का संयोजन विविध लय प्रस्तारों में किया जाता है। बोल बनाव एवं बोल-बाँट का यह कार्य प्रायः बंदिश की स्थायी अथवा टेक की प्रथम पंक्ति या मुखड़े के आश्रय से किया जाता है। बोलों के विविध स्वर संदर्भों अथवा लय खंडों में गुम्फित करते हुये बंदिश के मुखड़ा भाग की पुनरावृत्ति की जाती है। गीत की समाप्ति पर लग्गी अथवा द्रुत लय में बंदिश को गाने का विधान है। कुछ ऐसी होलियाँ हैं जिनमें गीत के मध्य से ताल परिवर्तन का नियम है।

होली गायन पद्धति विशिष्ट प्रकार की है। ख्याल गायक जब होली को विभिन्न तालों में गाते हैं तो वह गीत होली का गीत कहलाता है। फ़ाग संबंधित पदों को ख्याल गायक दीपचंदी, त्रिताल आदि में गाते हैं। होली गीत बहुधा बिलावल, वृन्दावनी सारंग, दुर्गा आदि रागों में गाये जाते हैं किन्तु काफी राग में होली गीत निखर जाता है।

होली गीतों की विषयवस्तु की दो श्रेणियाँ होतीं हैं। एक क्रीड़ा विलास की और दूसरी ओजपूर्ण।

ओजपूर्ण गीतों में रामायण तथा महाभारत के विविध युद्धों का वर्णन होता है। राम-कृष्ण के जीवन की मधुर झाँकियाँ भी इन गीतों में मिलतीं हैं। राधा-कृष्ण से संबंधित अनेक गीत मिलते हैं-

राधा वर खेलत होली
नंदगांव के ग्वाल सखा है
बरसाने की गोरी
खेलत फाग परस्पर हिलमिल
सुखरंग में रस भोरी

इसके अतिरिक्त 'मैं तो रंगूंगी अबीरी रे
पिया की पगिया ।

अन्य गीतों में ''कन्हैया घर चलो गुईयाँ, आज खेलें होली तथा होली मैं खेलूँगी सैंया से डट के'' इत्यादि हैं।

उपरोक्त सभी गीतों में होली की अनूठी छटा का दिग्दर्शन होता है। होली गायन की परम्परा सम्पूर्ण भारत देश में व्याप्त है। बनारस में होली गायन शास्त्रीय पक्ष लिये हुये होता है। ठुमरी अंग से होली गायन की विशिष्ट परम्परा बनारस घराने में प्रचलित है। आज भी यह परम्परा विद्यमान है। श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी, रसूलन, श्रीमती गिरिजा देवी, श्रीमती सविता देवी इत्यादि कलाकारों ने होली का अत्यन्त सुन्दर गायन किया है।

होली सम्बन्धित गीत पारंपरिक होने के साथ - साथ कर्णप्रिय होते हैं। इन गीतों को पीढ़ी दर पीढ़ी पहुँचाना आवश्यक है। इनमें बहुत से गीत ऐसे हैं जो विलुप्त हो रहे हैं। इन बन्दिशों को प्रचलित करते हुये अगली पीढ़ी को हस्तांतरित करना हमारा दायित्व है। लोक संगीत से होकर उपशास्त्रीय संगीत की विधा होने तक इस होली गायन शैली का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋतुगीतः स्वर और स्वरुप - पृ॰ 188 - डा॰ शांति जैन, अयन प्रकाशन, 1/20 महरौली, नई दिल्ली - 110030, प्रथम संस्करण - 1992
2. वही पृ॰ 189
3. वही पृ॰ 189
4. हिन्दुस्तानी संगीत में होली गान - पृ॰ 4 - डॉ॰ नीता माथुर, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली - 2, संस्करण - 2002
5. वही पृ॰ 9
6. वही पृ॰ 11
7. वही पृ॰ 11
8. वही पृ॰ 12

मण्डी जनपद विशेष की पारम्परिक नृत्य संगीत परम्परा - बुढड़ा नृत्य

डॉ0 हेमराज चन्देल 'राजरंग'

सहायक आचार्य कण्ठ संगीत
राजीव गांधी उत्कृष्ट राजकीय महाविद्यालय, शिमला

सारांश

हिमाचल प्रदेश अपनी लोक संस्कृति और संगीत में वैविध्य का अपार भण्डार संजोये हुए है, जहां एक ओर यहां के संगीत में निबद्ध व अनिबद्ध लोक संगीत का एक विशाल भण्डार है, जो इसके हर क्षेत्र विशेष की थाती है। ऐसे ही क्षेत्र मण्डी जनपद है, जो अपने लोकगीतों व नृत्य की विविध शैलियों से समृद्ध क्षेत्र है। जिसके गीत संगीत में अपने अपने इष्ट देवी देवताओं, त्योहारों, मेलों, उत्सवों व संस्कार पर आधारित लोक संगीत का अथाह भण्डार है। वहीं नृत्य प्रकारों में लुडडी, गिद्दा, नाटी, बुढला नृत्य, माला नृत्य के साथ साथ स्वांग, बांठड़ा इत्यादि लोक नाट्य परम्पराओं का भी निर्वहन किया जाता है। मण्डी जनपद का ऐसा ही एक प्रसिद्ध प्रचलित लोक नृत्य है, जो मण्डी जनपद के बल्ह क्षेत्र में अधिक प्रचलित है। इस लोक नृत्य की मुख्य विशेषता इसका चरित्र प्रधान होना है जिसके कारण लोक नाट्य की श्रेणी में भी रखा जाता है किन्तु इसमे किसी भी चरित्र का प्रत्यक्ष संवाद न होने के कारण एवं नृत्य गीतों पर आश्रित व आधारित होने के कारण इस लोक नृत्य का हिमाचल प्रदेश के नृत्यों की परम्परा में एक विशेष स्थान प्राप्त है।

बीज शब्द -

बुढड़ा नृत्य परम्परा, बांठड़ा, साहिब व चन्द्रावली, साधु, डण्डु

हिमाचल प्रदेश भारतवर्ष का एक छोटा सा सुन्दर पहाड़ी राज्य है, जो अपनी स्थानीय परम्पराओं, गीत, संगीत, नृत्य एवं अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है। हिमाचल प्रदेश भौगोलिक, सामाजिक व सांस्कृतिक दृष्टि से एक विस्तृत प्रदेश है, जो अनेक प्रकार की विविधताओं को अपने आप में संजोंये हुए है। ऊंची ऊंची बर्फ से लदी चोटियां, हरे भरे पेड़ों से ढकी पहाड़ियां, कल कल बहते झरने, नदियां, सीढीनुमा खेत तो वहीं दूसरी ओर मैदानी इलाके, हरे भरे बड़े-बड़े खेत। इतनी विविधता होने पर भी आपसी सामंजस्य तथा एकरूपता इस पर्वतीय क्षेत्र के गौरव को और अधिक बढ़ा देती है। हिमाचल प्रदेश में जहां अन्य कलाएं पनपी और अपनी पराकाष्ठा पर पहुंची, वहीं गीत, नृत्य एवं यहां की त्रिवेणी-संगीत का विकास सराहनीय रहा है। यहां के लोकगीत, नृत्य, लोक वाद्य आज भी अपनी मिठास और आकर्षण के लिए प्रसिद्ध है। लोक साहित्य के विभिन्न आयाम जैसे लोकगीत, लोकगाथाएं, लोककथाएं एवं प्रकीर्ण लोक धरोहर के कारण शेष भारत के लिए हिमाचल प्रदेश सदैव आकर्षण का केन्द्र रहा है।

हिमाचल प्रदेश के कुल बारह जिले हैं और इन बारह ज़िलों में कम से कम आठ प्रकार की भिन्न भिन्न सामाजिक व सांस्कृतिक विविधताएं पाई जाती हैं, फिर चाहे वह भाषाई आधार पर हो या खानपान या रहन सहन के आधार पर, जो हिमाचल प्रदेश की लोक संस्कृति व गीत संगीत को एक विशेष आयाम प्रदान करती है। अधिकतर गीत एकल व सामुहिक रूप से गाये जाते हैं। वाद्यों का प्रयोग अधिकतर गायकों व नर्तकों को संगत देने के लिए ही होता है।

लोक जीवन में परम्परागत वातावरण में हर्षोल्लास के अनेक अवसरों में लोक वाद्यों की संगति अनिवार्य होती है, किन्तु वाद्य के अप्राप्य होने की स्थिति में लय के लिए तालियों का आश्रय लिया जाता है। जिससे संगीत व नृत्य स्वतः निबद्ध से अनिबद्ध स्वरूप की आमुख हो जाता है। अतः अनिबद्ध परम्परा उतनी ही प्राचीन है जितना कि आदिम समाज के हृदय की भावनाएं, जो आज भी लोक संगीत के उन उदगारों को व्यक्त करती हुई अन्तर्मन की भावनाओं को आहलादित कर संवेदनाओं को उभारने में संबलता प्रदान करती है और जब यही भावनाएं और पुष्ट होती हैं तो नृत्य के रूप में अपने चारों ओर उमंग व उल्लास का वातावरण का सृजन करती हैं। हिमाचल प्रदेश अपनी लोक संस्कृति और संगीत में वैविध्य का अपार भण्डार संजोये हुए है,जहां एक ओर यहां के संगीत में निबद्ध व अनिबद्ध लोक संगीत का एक विशाल भण्डार है, वहीं दूसरी ओर नृत्य परम्परा भी लोक संगीत अपने आप में एक अथाह सागर समेटे हुए है, जो इसके हर क्षेत्र विशेष की थाती है।।

मण्डी जनपद विशेष की गीत, संगीत व नृत्य परम्परा

मण्डी जनपद क्षेत्र अपने लोकगीतों व नृत्य की विविध शैलियों से समृद्ध क्षेत्र है। मण्डी जनपद का इतिहास रियासत काल के रूप में सातवीं आठवीं शताब्दी से प्राप्त होता है। 15 अगस्त सन 1947 को जब रियासती युग का अन्त हुआ व सम्पूर्ण देश में लोकतन्त्र की स्थापना, जब हिमाचल प्रदेश भी देश के अन्य प्रान्तों की भान्ति एक राज्य के रूप में स्थापित हुआ और मण्डी जनपद एक जिले के रूप में मानचित्र पर उभरा। इसके पूर्व दिशा की से ओर कुल्लू, उत्तर की ओर से चम्बा, कांगड़ा, पश्चिम से षिमला बिलासपुर ज़िलों व दक्षिण से हमीरपुर जिले से इसकी सीमाएं लगती हैं। कुल्लू घाटी के सीमावर्ती क्षेत्रों में, जिनमें सराज व चैहार घाटी, दूसरी ओर चम्बा, कांगड़ा, और तीसरी ओर से कहलूर व महासू का सीमावर्ती होने के कारण यहां के गीत प्रकारों के स्वरूप व संरचना में साम्य भाव पाया जाता है। जिसके कारण इन सीमावर्ती क्षेत्रों का प्रभाव भी इस जनपद के गीत, संगीत व नृत्य पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। यही नहीं अनेक गीत व नृत्य प्रकार ऐसे भी हैं जो सांझी परम्परा की विरासत संजोए हुए है।

मण्डी जनपद अपने लोकगीतों की विविध षैलियों से समृद्ध क्षेत्र है। जिसके गीत संगीत में अपने अपने इष्ट देवी देवताओं, त्योहारों, मेलों, उत्सवों व संस्कार पर आधारित लोक संगीत का अथाह भण्डार है। वहीं नृत्य प्रकारों में लुडडी, गिद्दा, नाटी, बुढला नृत्य, माला नृत्य के साथ साथ स्वांग, बांठड़ा इत्यादि लोक नाट्य परम्पराओं का भी निर्वहन किया जाता है।

मंडी जनपद अपनी लोक संस्कृति और संगीत में वैविध्य का अपार भण्डार संजोये हुए है, जो इस क्षेत्र विशेष की थाती है। जहां एक ओर यहां के संगीत में निबद्ध लोक संगीत का एक विशाल भण्डार है, वहीं दूसरी ओर अनिबद्ध लोक संगीत अपने आप में एक अथाह सागर समेटे हुए है जिसमें पंडतू, बालो, बजोग, हीरादेई, गंगी, मोहणा व छिंजोटीयों जैसे अनेक अनिबद्ध परम्परा के गीत प्रकारों की धरोहर है वहीं नृत्य परम्परा में इसके मैदानी भागों में जिनमें मण्डी, सुकेत, बल्ह, नाचन में लुड्डी नुत्य, जोगिन्दर नगर, लडभड़ोल व चुहार के क्षेत्र में लुड्डी लुहासडी नृत्य परम्परा, नागरी नृत्य जनपद के नगरीय क्षेत्रों में, बुढड़ा नृत्य मण्डी, सुकेत, बल्ह, नाचन इसके अतिरिक्त चुहार, करसोग, चच्योट व सराज क्षेत्रों में नाटी नृत्य परम्परा प्रसिद्ध है।

बुढड़ा नृत्य

बुढड़ा नृत्य मण्डी जनपद का एक प्रसिद्ध प्रचलित लोक नृत्य है जो मण्डी जनपद के बल्ह क्षेत्र में अधिक प्रचलित है। इसके अतिरिक्त यह मण्डी सदर, नाचन, सुकेत, करसोग व चच्योट के क्षेत्रों में भी किया जाता है। यह लोक नृत्य चरित्र प्रधान होने के कारण लोक नाट्य की श्रेणी में भी रखा जाता है किन्तु इसमे किसी भी चरित्र का प्रत्यक्ष संवाद न होने के कारण एवं नृत्य गीतों पर आश्रित व आधारित होने के कारण इसे लोक नृत्य परम्परा में स्थान प्राप्त है।

बुढड़ा या बुढला एक ही शब्द का प्रतिरूप है अर्थात कुछ स्थानों पर इसे बुढला नृत्य भी कहा जाता है। लोक परम्परा में कुछ क्षेत्रों में इसे 'बांठडा' का प्रतिरूप 'ग्वालूरा बांठड़ा' भी कहा जाता है अर्थात ऐसा बांठड़ा जो ग्वालों जो प्रायः अस्वर्ण होते थे, के द्वारा मनोरंजन के लिए किया करते थे, कालान्तर में यह अन्य लोगों द्वारा द्वारा भी किया जाने लगा। वे घर घर जाकर इसका प्रदर्षन करते और भेंट स्वरूप बदले में अनाज प्राप्त करते। यही कारण है कि इसे 'ग्वालू.रा बांठड़ा' भी कहा गया। क्योकि पहले बांठड़ा स्वर्ण लोगों द्वारा ही किया जाता था।

लोक परम्परा में इस लोक नृत्य के दो रूप प्रचलित हैं एक रूप में बुढड़ा का अर्थ भगवान शिव से लिया जाता है तथा उसमें भगवान शिव की बारात का मंचन किया जाता है। इस नृत्य प्रकार का आरम्भ भगवान षिव की स्तुति से किया जाता है, जो इस प्रकार से हैः -

सुमिरो सिव देवा, सुमिरो सिव देवा।।
जगतां तारन संगट हारण,
चन्दर धारण खल जन मारण,
गण रछक जन रत सेवा।। सुमिरो सिव देवा
मसाणा निवासा, नित सुख हासा,
तिहुं लोक परकासा, तांडव लासा,
भांग तराई लेवा।। सुमिरो सिव देवा
खडे .जोड़े हाथा, चरणा माथा,
भोले नाथा, तेरी ही गाथा,
रखि लै पत देवा।। सुमिरो सिव देवा

इसके दूसरे नृत्य प्रकार में इस नृत्य का प्रारम्भ शिव स्तुति से न कर एक आख्यान या मुनादी से किया जाता है। जिसमें इसके शुरू होने की घोषणा की जाती है, जैसेः-

''चानणी ओची री लागा ग्वालूआ रा बांठड़ा लागा''

अथवा

''चानणी ओची री पार चागा, ग्वालूआ रा बांठड़ा भाईयो लागा''

इस प्रकार के बुढड़ा नृत्य का प्रचार सुकेत, चच्योट व करसोग के क्षेत्रों में अधिक पाया जाता है।

इस नृत्य रूप में शिव के स्थान पर 'बुढडा' एक बुढ़े चरित्र के रूप में प्रदर्षित किया जाता है।

बुढड़ा नृत्य के पात्र

बुढड़ा नृत्य में मुख्य भूमिका में भगवा शिव या बुढड़ा चरित्र रहता है। जिसके इर्द गिर्द सारे नृत्य का परिवेष सजाया जाता है। अतः सर्वप्रथम भगवान शिव नंदी सहित नृत्य प्रांगण या मंच पर आते हैं, इनके बाद साहिब व मेम के रूप में चन्द्रावली, साधु, डण्डु व बारातियों के रूप में भूत प्रेत शामिल रहते हैं। जो अपने अपने क्रम से मंच पर आते हैं।

बुढड़ा नृत्य के पात्र विशेष एवं वेशभूषा

1. **भगवान शिव** - भगवान शिव का चरित्र पूरे शरीर पर भस्म धारण किये हुए, सिर पर 'सेल' जो एक वृक्ष जिसे स्थानीय भाषा में बिहुल कहा जाता है, के रेशो से बनता है, को जटाओं के रूप में धारण करता है। मृगछाल के स्थान पर धान के पराल को धारण करते हैं। हाथ में कमण्डल व त्रिषूल लिये होते हैं
2. **बुढ़ड़ा** - यह पात्र एक कुबड़े बुढ़े व्यक्ति के रूप में होता है। इस पात्र के शरीर पर धान की प्रराल .एवं 'बगडू' घास, सेल या मक्की बालों की दाढ़ी मूछ लगाई जाती है। सिर पर एक बड़ा सा टोप, हाथ में डण्डा व पीठ पर किरडू या कपड़े की गठरी रहती है।
3. **साहिब और मेम 'चन्द्रावली'** - ये दोनो ही

पात्र अर्थात साहिब व मेम जिसे लोक परम्परा में चन्द्रावली कहा जाता है, एक साथ मंच पर आते हैं।

साहिब - एक अंग्रेज फौजी की वर्दी में रहता है। सिर पर हैट अर्थात अंग्रेजी टोपी और हाथ में बन्दूक का प्रतिरूप रहता है।

चन्द्रावली - मेम के रूप में चन्द्रावली नामक महिला चरित्र को सजाया जाता है। जिसे लोक परम्परा में चन्द्रावली या चन्द्रौली. कहा जाता है और इस चरित्र विशेष की भूमिका महिलाओं द्वारा न होकर पुरूषों द्वारा ही निभाई जाती है। जिसे सुन्दर ढंग से सजाया जाता है। सिर पर चुनरी, चोली, घागर पहने, बदलते परिवश में कई बार आजकल सलवार कमीज पहने रहती हैं, नृत्य करती हुई मंच पर आती हैं। कई बार एक से अधिक चन्द्रावलियां भी दिखाई जाती हैं।

4. **डंडू या मसखरा** - डंडू या मसखरा पात्र अपनी उल्टे सीधे हाव भाव व कार्येकलापों से हास्य भाव पैदा कर दर्षकों का मनोरंजन करता है। यह पात्र उल्टी कमीज पजामा पहने, पजामें की एक टांग उपर किये, कभी एक जुता पहने, गलें में 'लीर' अर्थात पुराने कपड़े की पट्टी टाई के रूप में लटकाये, कभी चन्द्रावली से शरारत करता हुआ दर्शको को उसे अपनी पत्नी बताता है जो कभी साहिब को छेड़ता है।
5. **साधु** - दो या तीन लोग साधुओ की वेशभूषा में रहते हैं। गेरूआ वस्त्र धारण किये, हाथ में चिमटा लिये, सिर पर सेल की जटाएं व गले में रूद्राक्ष की मालाएं धारण करते है।
6. **भूत-प्रेत** - इस में अलग अलग प्रकार के भूत प्रेत शिव बारात के सन्दर्भ में शामिल होते हैं, जो लोगो के बीच मे वेश बदल कर छिपे रहते हैं और अपने अपने निश्चित समय पर दर्शकों के मध्य उपस्थित होते हैं और उनको रोमांचित करते हैं। ये भूत प्रेत अलग अलग प्रकार के मुखौटे पहने, मक्की के सुखे पौधों जिन्हे स्थानीय भाषा में 'टांह्डे' कहा जाता है, धान की पराली एवं फटे पुराने चिथड़े इत्यादि धारण करते है।

विशेषताएं : इस नृत्य के मंचन के समय सभी पात्र क्रमशः भगवान शिव नंदी सहित, बुढड़ा, साहिब व मेम के रूप में चन्द्रावली, साधु, डण्डु व बारातियों के रूप में भूत प्रेत अपने अपने पात्र के अनुरूप गीतों के साथ मंच पर आते हैं और अपनी अपनी रीति से नृत्य कर लोगों का मनोरंजन करते हैं। यह संपूर्ण नृत्य गीताश्रित होने के कारण इसमें गायकों,शहनाई, ढोल नगाड़ा करनाल व रणसिंगा वादकों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। जो प्रारम्भ से लेकर अन्त तक इस लोक नृत्य की हर कड़ी को आपस में जोड़ कर रखते हैं एवं पात्रों की सार्थका को बनाये रखते हैं।

बुढड़ा नृत्य मण्डी जनपद के विभिन्न भागों में दशहरे से दो दिन पूर्व अर्थात असौज मास की अष्टमी से लेकर पूर्णिमा तक विशेष रूप से आयोजित किया जाता है। इसके अतिरिक्त शिवरात्रि के अवसर पर मण्डलू पूजन पर भी किया जाता है।

सांगीतिक पक्षः यह नृत्य के सांगीतिक पक्ष की दृष्टि से गीत संगीत की अनेक विविधताएं लिए रहता है। जिसके कारण यह लोक नृत्यों में विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान रखता है। ढोल नगाड़ा की थाप पर, शहनाई, करनाल व रणसिंगों की ध्वनियों पर लोकगीतों का निर्वहन अत्यन्त लोम हर्षक होता है। कभी कहरवा, कभी दीपचंदी,कभी झपताल जैसे तालों का लोक रीति से इसके गीतों में व्यवहार पाया जाता है। एक चरित्र से दूसरे चरित्र के गीतों के प्रवेश हेतू "माले माले माले माले माले " इन शब्दों के गायन के माध्यम से वातावरण को और अधिक रोचक व बनाया जाता है।

संदर्भ ग्रंथः

1 हिमाचल का कला वैभव - डा0 तुलसी रमण
2 हिमाचल प्रदेश का इतिहास - मियां गोवर्धन सिंह
3 हिमाचल के लोकगीत -सुदर्शन वशिष्ठ
4 हिमाचल के ऋतु गीत - डा0 सूरत ठाकुर
5 लोक कलाकारों से प्राप्त जानकारी।

भारतीय लोक कला में बुन्देली लोक चित्रकला का स्वरुप

डॉ0 सचिव गौतम

सहायक आचार्य, इन्स्टिट्यूट ऑफ़ फाइन आर्ट्स,
छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

सारांश

भारत की संस्कृति विभिन्न संस्कृतियों का संगम है। ऐसी ही एक संस्कृति बुन्देली है। उत्तर में यमुना, दक्षिण में विन्ध्य, उत्तर पश्चिम में चम्बल, दक्षिण पूर्व में और आजमगढ के बीच के क्षेत्रों को बुंदेलखंड कहा जाता है। बुन्देली लोक कला धार्मिक एवं एवं जीव सत्तात्मक है। जो लोक की श्रद्धा एवं विश्वास से जुडी है। इसीलिए बुन्देली लोक कला में सूरज, चाँद, पशु पक्षी, पहाड नदियाँ, काम करते लोग, महिलाएं, खेलते बच्चे एक साथ देखे जा सकते हैं। परम्परागत लोक कलाओं में प्रकृति के जीवंत चित्रण को बुन्देली लोक कला का स्तम्भ माना जाता है। वास्तव में बुन्देली लोक कला को तीन रूपों में देखा जा सकता है- भित्ति चित्र, भूमि अलंकरण और शरीर अलंकरण।

बुन्देली लोक कला के बीते वैभव की झलक हमें हमें पाषाण कल से भी प्राप्त होती है। प्रागैतिहासिक बुन्देली लोक कला, बुंदेलखंड में रहने वाले आदिवासी समुदाय से जुडी है। जिनका पता बीसवीं सदी में चला। सागर पन्ना, होशंगाबाद, छत्तरपुर तथा रायसेन के भित्तिचित्र इस समय की लोक कलाओं के उदाहरण हैं। इसी काल में आदिवासियों द्वारा पूजी जाने वाली मुर्तिया लोक कला के रूप में आज भी विद्यमान हैं। जरुरत है इसे संरक्षण देने की और इसके विकास की तभी बुंदेलखंड अपनी पहचान कायम रख सकता है।

बीज शब्द

बुंदेलखंड, दशार्ण, चितेरा, लोकचित्र, भूमि पर चित्र, भित्तिचित्र

भारतीय संस्कृति पुरातनता, धर्मपरकता, आध्यात्म, दर्शन, सर्वजन हिताय व सर्वजन सुखाय के मौलिक सूत्रों में घिरी हुई एक मुक्तमाला के सामान है। भारतीय कला भी इन्हीं आदर्शों का साकार रूप है। भारतीय कला ने किसी भी युग एवं स्थान पर कोई भी शैली एवं प्राविधि का अभ्युदय व विकास किया हो, परन्तु उनमें भारतीय संस्कृति के इन मूल तत्वों का ह्रास नही होने दिया। अजंता एलोरा अपभ्रंश मुगल राजपूत पहाड़ी व अन्य कलाओं में विभिन्न रूप और शैलियाँ दर्शित होती हैं पर उनमें समन्वय, आध्यात्म और लोकहित को सर्वोपरि रखा गया है। लोक शब्द जातिवर्ग, वर्ण, धर्म संप्रदाय, नगर-ग्राम्य, शिक्षित-अशिक्षित, धनी-निर्धन और विकसित-अविकसित आदि से ऊपर उठकर समष्टि के लिए व्यवहार में आता है, जहाँ व्यक्ति स्वतंत्रता, तार्किकता, अहं और स्व का प्रभाव-प्रसार जैसा थोथापन नही होता है।1 कला की उन्नति में लोक कला का बहुत महत्त्व रहा है। कला का

विकास तो राजाश्रयों में पेशेवर कलाकारों द्वारा हुआ है परन्तु लोक कला का विकास घरों के आँगन में, गावों में, अशिक्षित लोगो के द्वारा, बिना कोई ख्याति के शांत व अबोध रूप से धार्मिक तथा सांस्कृतिक व पारिवारिक परम्पराओं के साथ बिना बौद्धिक विचारों के होता आ रहा है। लोक कला को किसी प्रलोभन या प्रोत्साहन की आवश्यकता नहीं होती है। वह तो स्वच्छंदता तथा मौलिकता के साथ सदा प्रगति करती है क्युकी उसका सम्बन्ध तो प्राणिमात्र से है।[2]

किसी भी देश की संस्कृति वहां के रहने वाले व्यक्तियों के धर्म, दर्शन, साहित्य, कला एवं सामाजिक विचारों के आधार पर जन्म लेती व विकसित होती है। भारत की सन्स्क्रृती ऐसे ही तत्वों का संगम है। यही कारण है की यहाँ की संस्कृति की धारा प्राचीन काल से आज तक प्रवाहित हो रही है। यहाँ का आध्यात्मवाद शरीर मन और आत्मा का अतीत लोक कलाओं के माध्यम से आज भी परिदृश्य होती है। यही कारण है इतने उतार चढाव के बाद भी लोक कलाएं आज भी अपने स्वरुप को सहेजी हुई है। ऐसी ही एक संस्कृति बुन्देली है। उत्तर में यमुना, दक्षिण में विन्ध्य, उत्तर पश्चिम में चम्बल, दक्षिण पूर्व में और आजमगढ के बीच के क्षेत्रों को बुंदेलखंड कहा जाता है।

बुंदेलखंड भारत के भौगोलिक नक्शे में नही दिखाई देता यह एक क्षेत्र प्रचलित नाम है। जो उत्तर प्रदेश व मध्यप्रदेश के कुछ जनपदों को मिलाकर बनता है। एक प्रचलित अवधारणा के अनुसार उत्तर में यमुना दक्षिण में विन्ध्य की श्रेणियों, उत्तर पश्चिम में चम्बल, दक्षिण-पूर्व में पन्ना, आजमगढ़ श्रेणियों से घिरा हुआ क्षेत्र बुंदेलखंड के नाम से जाना जाता है। इस क्षेत्र में उत्तर प्रदेश के जालौन, झाँसी, ओरझा, हमीरपुर, बाँदा, चित्रकूट आदि क्षेत्र तथा मध्यप्रदेश के दतिया, टीकमगढ़, छत्तरपुर, पन्ना तथा ग्वालियर तथा पश्चिम चम्बल नदी तक प्रसारित विस्तृत क्षेत्र आता है। कनिंघम ने बुंदेलखंड के अधितम विस्तार समय इसमें गंगा और यमुना का समस्त दक्षिणी प्रदेश जो पश्चिम बेतवा नदी से पूर्व में चंदेरी जिलों सहित विंध्यवासिनी देवी के मंदिर तक तथा दक्षिण में नर्मदा नदी के मुहाने के निकट बिल्हारी तक के क्षेत्र को माना था।

बुंदेलखंड क्षेत्र का इतिहास अति प्राचीन है। कालांतर में इसे अनेक नामों से प्रसिद्धि प्राप्त हुई। यह अपनी वीरता, पराक्रम, शौर्य, धार्मिकता और कला के लिए विख्यात रहा है। बुंदेलखंड के प्राचीन नाम - चेदि, दशार्ण, आटविक, मध्यदेश, जेजाक भुक्ति आदि रहे हैं। एतिहासिकता के आधार पर यह मौर्यकाल, गुप्काल, राजा हर्षवर्धन तथा परवर्तीकाल में स्वतंत्र प्रदेश न रहकर किसी प्रदेश विशेष के अंतर्गत रहा है। बुंदेलखंड का प्राचीन नाम 'दशार्ण' अर्थात दस नदियों का देश। वे दस नदियाँ क्रमशः - केन, धसान, पहुज, बेतवा, सिंध, जमुना, नर्मदा, टोंस, जामनेर तथा चम्बल हैं। नदियों के अतिरिक्त विंध्यांचल की पर्वत श्रेणियां भी इस क्षेत्र की एतिहासिक गरिमा को बढ़ाती हैं। विख्यात विंध्यांचल पर्वत का वर्णन पौराणिक ग्रंथों और घटनाओं में भी आता है।[3]

भारतीय कलाओं में चित्रकला को श्रेष्ठ बताया गया है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अलग- अलग तरह की चित्रकलाओं ने अपना एक विशेस महत्त्व बनाया है। उन्ही चित्रकलाओं में लोकचित्र एक महत्त्वपूर्ण अंग है। यह भारतीय संस्कृति का प्रमुख अंग है। लोक कला का जन्म कब हुआ इसके बारे में कई विद्वानों के अपने- अपने तर्क हैं। यह कहा जा सकता है कि श्रृष्टि और मानव जीवन के प्रारंभ से ही लोक कलाओं व लोक चित्रकला का उदय हुआ। बुंदेलखंड में लोक चित्रों की परम्परा अति प्राचीन रही है। इन लोक चित्रों का श्रोत आदि काल से भी मिलता है। उनमें निर्मित प्रतीक चिह्न आज भी इन लोक चित्रों का हिस्सा हैं। लोक चित्रकला बुन्देली लोक जीवन के प्रत्येक पक्ष में सम्बद्ध रहती है। उसकी व्यापकता सर्वत्र दर्शनीय है।

बुन्देली लोक कला धार्मिक एवं एवं जीव सत्तात्मक है। जो लोक की श्रद्धा एवं विश्वास से जुडी है। इसीलिए बुन्देली लोक कला में सूरज, चाँद, पशु पक्षी, पहाड नदियाँ, काम करते लोग,

महिलाएं, खेलते बच्चे एक साथ देखे जा सकते हैं। परम्परागत लोक कलाओं में प्रकृति के जीवंत चित्रण को बुन्देली लोक कला का स्तम्भ माना जाता है। सरल सुबोध तथा अपनत्व से परिपूर्ण बुन्देली अपनी लोक कलाओं में समाज का यथार्थ चित्रण कर उस पृष्ठभूमि को जीवंत करता है। जिसको देखकर आँखों के सामने वह दृश्य चित्रित हो जाता है। यही स्थिति हमें लोक कलाओं, लोक गीतों में भी दिखाई देती है। आल्हा खंड, महोबा खंड, रामायण कथा, महाभारत कथा आदि इसके उदाहरण हैं। बुन्देली लोक कला अपने आप में महत्वपूर्ण, सौन्दर्यपरक तथा यथार्थ के धरातल पर खडी है। बुन्देली लोक कला के बीते वैभव की झलक हमें हमें पषाण कल से भी प्राप्त होती है। प्रागैतिहासिक बुन्देली लोक कला, बुंदेलखंड में रहने वाले आदिवासी समुदाय से जुडी है। जिनका पता बीसवीं सदी में चला। सागर पन्ना, होशंगाबाद, छत्तरपुर तथा रायसेन के भित्तिचित्र इस समय की लोक कलाओं के उदाहरण हैं। इसी काल में आदिवासियों द्वारा पूजी जाने वाली मुर्तिया लोक कला के रूप में आज भी विद्यमान हैं।

बुंदेलखंड में लोक चित्र परंपरा अपनी अलग पहचान रखती है। पर्व त्योहारों पर बुंदेली महिलाएं उनसे संबंधित चित्र रेखांकन बनाकर उनकी पूजा कथा कहती हैं वर्ष पर कोई ना कोई चित्र बनाने की परिपाटी समूचे बुंदेलखंड में मिलती है। बुन्देली लोक कला यहाँ के चित्र व मूर्ति (खिलौने) आदि में मिलते हैं। चित्रकला के लिए मुख्यतः गोदना, ग्यारस के लिखना, मृत्तिका पात्रों पर आलेखन,सांझा, चैक और विवाह के अवसर पर बने खम्भों के उल्लेखनीय हैं। बुन्देलखण्ड में लोक चित्रकार को ग्वालियर में चितेरा, दतिया में बिर्तिया और छतरपुर में कर्मगार आदि कहा जाता है। लोक चित्रों के माध्यम भी प्राकृतिक तत्वों पर निर्भर हैं जैसे- चूना, गेरू, गोबर, मिट्टी, व चुने के रंग, घर में प्राप्त सामान्य वस्तुएं जैसे- हल्दी, चावल, आटा, सिंदूर, रोली, महावर, चन्दन, कागज, नील आदि। यह सब साधारण जीवन में प्राप्त होने वाली सुलभ सामग्रियां हैं। इन वस्तुओं का प्रयोग भी मानवीय भावनाओं को इंगित करता है।

लोक चित्रों की पृष्ठभूमि के कई प्रकार हैं, परन्तु इन्हें वस्तुतः तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है - भूमि पर निर्मित चित्र, भित्ति चित्र, अन्य वस्तुओं पर।

1- भूमि पर निर्मित चित्र

बुंदेलखंड की लोक चित्रशैली में भूमि पर चित्रण करना एक प्रमुख अंग है। जिसे गोबर व मिट्टी से तैयार भूमि पर निर्मित किया जाता है। इस चित्रण में चैक पूरना, उरैन, सांझी, नौरता, गोधन, दौज आदि।

चैक पूरना - बुंदेलखंड में प्रत्येक शुभ अवसरों पर चैक पूरना निर्मित करना महत्पूर्ण रहता है। यह मुख्यतः आटे या सूखे रंगों से बनाया है। इसे चैक डालना भी कहा जाता है। यह कई आकारों में निर्मित होती है जैसे-चैकोर, सात कोणीय, अष्ट कोणीय, पुष्पाकार आदि। इसमें शुभ आकारों के प्रतीकों का प्रयोग मुख्यत किया जाता है जैसे- कलश, स्वस्तिक आदि।

उरैन - उरैन का अर्थ है-उर अर्थात ह्रदय, रैन अर्थात रहना-यानि ह्रदय में रहना। इसे घर की महिलाएं मुख्या अवसरों पर निर्मित करती हैं। घर के मुख्या द्वार पर भूमि को गोबर से लीपकर तैयार करती है जिसपर सूखने के पश्चात विभिन्न रेखाओं के माध्यमो से आकृतियाँ निर्मित की जाती हैं।

सांझी-सांझी श्राद्ध पक्ष में आश्विन आश्विन कृष्ण पक्ष में भूमि पर चित्रांकित की जाती है। प्रारंभिक दिनों में गोबर तथा फूलों से सजी जाती है और बाद में रंगों द्वारा निर्मित की जाती है। यह ब्रज की लोक चित्रांकन से प्रभावित है। संध्याकालीन निर्मित किये जाने की वजह से इसे सांझी नाम दिया गया। बुंदेलखंड में पुराने समय में सांझी का चित्रांकन कर्ण के लिय चैकोर मिट्टी का चबूतरा बनाकर सांझी निर्मित की जाती है।

नौरता- बुंदेलखंड में नवरात्री में कुवांरी कन्याओं के द्वारा नौरता खेलने की परम्परा है, जिसमें सुआटा,

झिंझिया, टेसू तथा झिंझिया टेसू का विवाह चार भागों में किया जाता है और मनाया जाता है। इस उत्सव में बालक - बालिकाएं दोनों भागीदार होते हैं। इसमें बालिकाएं प्रतिदिन अलग - अलग रंगों से भूमि पर आकृतियाँ निर्मित करती हैं। भूमि पर निर्मित यह आकृतियाँ उनकी प्रतिभा का भी परिचय देती हैं।

गोधन (गोवर्धन)-गोवर्धन गोबर से बनाए जाते हैं। दीपावली के दूसरे दिन गोधन पूजा की परम्परा है। इस दिन महिलाएं गोबर से भूमि पर आकृतियों का निर्माण करती है जिनमें शुभ चिह्नों सहित विभिन्न आक्रतिया होती है।

दौज- इसे दूज या भाई दूज के नाम से भी जाना है। यह एक त्यौहार के रूप में मनाया जाता है। जिसमें बहनें अपने भाई के लिए व्रत रखकर भाई की लम्बी उम्र के लिए पूजन करती हैं। इसमें महिलाएं गोबर व मिट्टी से लीपकर भूमि टायर करती है तत्पश्चात सुख जाने पर खड़िया या चूना या फिर चावल पीसकर उससे तैयार रंग से रेखाएं निर्मित की जाती है। जिनमें चैकोर, गोल और शुभ चिह्नों सहित देवी- देवताओं को लोक सांकेतिक आकृतियों में निर्मित किया जाता है, तत्पश्चात उन आकृतियों का पूजन कार्य किया जाता है।

2- भित्ति चित्र

बुंदेलखंड में भित्तिचित्रण विशेष स्थान रखतें हैं। भित्तिचित्र दीर्घकाल तक घरों, भवनों आदि की दीवारों पर स्थाई तौर पर निर्मित रहते हैं। भित्तिचित्र अपने विभिन्न आकारों व शैलियों में पाए जाते है। कुछ प्रमुख शैलियों का विवरण इस प्रकार है-

मोरइला- मोरइला का अर्थ मोर के चित्रों से है। इसे मोर मुरैला भी कहते हैं इसका संबंध व्यक्ति अलंकरण से है। दीवारों को छुई मिट्टी से पूछ कर उस पर पतली गीली मिट्टी से मोरो की जोड़ी की आकृतियां बनाई जाती है। सूखने के बाद जिन्हें गेरु खड़ीया आदि रंग कई रंगों से रंगते हैं कोई कोई एक रंग में मोर मुरैना रंग देते हैं।

सुरैती- सुरैती बुंदेलखंड का पारंपरिक भित्तिचित्र है दीपावली के मौके पर लक्ष्मी पूजा के समय सुरैती का रेखांकन महिलाओं द्वारा किया जाता है। सुरेती का जालीनुमा अंकन बुंदेली महिलाओं की कल्पनाशीलता की कलात्मक परिणीति है। इस चित्र में देवी लक्ष्मी की आकृतियों का लोक संकेतों में निर्माण किया जाता है। वही भगवान विष्णु का आलेखन किया जाता है। सुरेती का रेखांकन गेरू से किया जाता है। पूजा के पश्चात लक्ष्मी जी की कथा कही जाती है। सुरेती की लोकप्रिय कला की दृष्टि से बुंदेलखंड का सर्वश्रेष्ठ प्रतीकात्मक चित्र है।

चितेरी कला- यह बुंदेलखंड में प्रचलित लोक भित्तिचित्र कला का मुख्य अंग है। इसे परिवार में होने वाले मुख्य अवसरों जैसे- विवाह आदि पर घरों की दीवारों पर निर्मित किये हैं। चितेरी कला राजस्थान की कला से प्रभावित है। शुभ कार्यों व शुभ अवसरों पर इस चित्रशैली को निर्मित करते हैं। दीवारों पर शुभ संकेतों का निर्माण होता है तथा देवी देवताओं को सांकेतिक व सुन्दर रूपों को लोक शैली की परम्परागत माध्यमों से निर्मित किया जाता है। इसको बनाने के लिए चूना, बबूल का गोंद, व अन्य प्राकृतिक तत्वों से निर्मित रंगों का प्रयोग किया जाता है। गेरू से पृष्ठभूमि निर्मित की जाती है। तत्पश्चात इस पर आकृतियों का निर्माण किया जाता है।

ढरकौना- इसमें गेरू से निर्मित शुभ प्रतीकों का प्रयोग होता है। ढरकौना बुंदेलखंड की प्रचलित लोक भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है दृ निचे की ओर बहना। इसे मंदिरों, मुख्य भवनों की सीढियों और चबूतरों पर निर्मित किया जाता है। इसमें गेरू को पानी में घोलकर उसे रुई के माध्यम से पृष्ठभूमि पर लगते हैं जिससे गेरू निचे की ओर बहने लगता है, यही ढरकौना कहलाता है।

हरछठ- भाद्रपद महीने में कृष्णपक्ष की षष्ठी तिथि पर हलषष्ठी मनाई जाती है। बुन्देली भाषा में इसे हरछठ या हलछठ कहा जाता है। इसमें बलराम और श्रीकृष्ण की पूजा मुख्य रूप से की जाती है। मुख्या रूप से महिलाएं संतान प्राप्ति के लिए पूजा करती हैं। इसमें स्त्रियाँ व्रत रखकर दीवार को गोबर

व गेरू से लीपकर पृष्ठभूमि तैयार करती हैं। तत्पश्चात उनपर शुभ संकेतों का निर्माण किया जाता है। मध्य में लोकशैली में बलराम श्रीकृष्ण का सांकेतिक चित्रण किया जाता है। साथ ही सूर्य, चन्द्र, तारे, गाय, हल, चक्र आदि का सांकेतिक रूप चित्रित किया जाता है।

इन सबके अलावा कुनघुसू पुने, नाग पाचे, अहोही आठें, ऋषि पंचमी, कोहबर, भये के सांतिया आदि लोक भित्तिचित्र बुंदेलखंड की लोक चित्रशैली में देखने को मिलते हैं।

3- अन्य माध्यमों में लोकचित्र

भूमि और भित्ति अर्थात दीवार के अतिरिक्त बुंदेलखंड में दूसरे माध्यमों में भी लोकचित्रण देखने को मिलता है। जैसे शरीर पर गोदना गोदवाना, मिट्टी के पत्रों पर आदि।

शरीर पर गोदना-बुंदेलखंड की ग्रामीण महिलाओं तथा जनजातीय आदिवासियों में यह कला अधिक प्रचलित है। इनके शरीर पर अक्सर नाम या शुभ संकेत गुदे हुए पाए जाते हैं। इसके अलावा आदिवासीय जनजातियों में महिलाये अपने शारीरिक सौन्दर्य को बढ़ने के लिए भी गोदना गोदवाती हैं। इसे पारंपरिक रूप में सुई की चुभन सह कर निर्मित करवाया जाता है।

मिट्टी के पात्रों पर अंकन- बुंदेलखंड में प्रचलित कुठला पूजन में मिट्टी के पात्र का प्रयोग होता है। जिसे लोकाकृतियों से सजाकर रखा जाता है। इस पात्र को अनाज से भर दिया जाता है। पात्र के ऊपर गोबर और हल्दी से नौ ग्रहों को प्रतीक रूप में निर्मित किया जाता है। तत्पश्चात पारंपरिक रूप से पूजन कार्य किया जाता है।

पान के पत्ते पर-बुंदेलखंड में आस माई पूजनोत्सव के अवसर पर पान के पत्ते पर चन्दन व हल्दी की सहायता से शुभ आकृतियों का निर्माण किया जाता है। इसमें कचैरिया आदि खाद्य सामग्री भी राखी जाती हैं जो सौभाग्य का प्रतीक होती है। पान पर निर्मित चित्र मनुष्य को जीवन की विपरीत परिस्थितियों में भी अडिग रहकर कार्य करने की प्रेरणा देता है। पान का पत्ता घिसकर मुरझा जाता है, परन्तु हल्दी घिसने के बाद भी और ज्यादा खिलकर अपना रंग निखारती है। यही इसका सन्देश है।

इनके अलावा चैती पूनी, चरुआ पूजन आदि में मिट्टी के पात्रों को सजाकर प्रयोग होता है। कपड़ो तथा अन्य वस्तुओं पर भी इस लोक शैली का कार्य होता है।

बुंदेलखंड की लोक चित्रशैली अत्यंत समृद्ध और प्रभावी है। इन चित्रों में पौराणिक कथाओं, देवी- देवताओं, लोक कथाओं तथा लोक जीवन से जुड़े विषयों का चित्रण देखने को मिलता है। इन लोक चित्रों में जन मानस की सरल भावनाएं दृश्यमान होती हैं। मानव जीवन की सार्थकता, जीवन का महत्व और लोक संकेतों के रहस्यात्मक स्वरुप इन चित्रों को और भी परिपक्व बनाते हैं। इन लोक चित्रों में बुंदेलखंड की लोक संस्कृति, मान्यताएं तथा परम्परा आदि का मूर्त रूप परिलक्षित होता है। लोक चित्रों में किसी भी प्रकार की नीरसता नही होती वे द्वेष और लालच से दूर होते हैं। उनमें मनुष्य मात्र की मौलिक संवेदनाओं की ही प्रमुखता है। जिनमें उत्साह, मनोरंजन और उल्लास स्वतः ही प्रस्फुटित होता है। वे अपने आप में पूर्ण हैं।

चितेरी कला

पान के पत्ते पर

हरछठ

पौराणिक कथा आधारित बुंदेलखंड की लोक शैली भित्तिचित्र

सन्दर्भ

1. ए0 आर0अग्रवाल, कला विलास, नवीन संस्करण- 2007, मेरठ
2. लोकेशचंद्र शार्मा, भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास, 26वां प्रकाशन 2018, मेरठ
3. मधु श्रीवास्तव, बुंदेलखंड की लोक चित्रकला, प्रथम संस्करण- 2002, इलाहाबाद
4.

'वाचिक लोक कथाओं की भारतीय परम्परा'

डॉ0 अमित कुमार पाण्डेय

फेलो, भारत अध्ययन केन्द्र
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी

सारांश

लोक कथाओं के प्रारम्भिक सूत्र हमें सबसे पहले ऋग्वेद के संवाद सूक्तों में दिखाई पड़ते हैं जिसमें दो-तीन पात्रों के बीच कथोपकथन मिलता है। ऋग्वेद में शुनःशेप की कथा, अपाला-आत्रेयी की कथा, च्यवन भार्गव की कथा तथा सुकन्या मानकी की कथा वैदिक कालीन कथा परम्परा के सुन्दर उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रंथों पर विचार करें तो शतपथ ब्राह्मण की पुरूरवा-उर्वशी की कथा, शाट्टायन ब्राह्मण में वृश नामक पुरोहित की कथा, शतपथ ब्राह्मण में दध्यड़ अथार्णव की कथा का वर्णन मिलता है जिनका लोकप्रिय नाम दधीचि ऋषि था। इन्हीं की हड्डियों से वज्रा बना था जिससे इन्द्र ने वृत्रासुर का वध किया था। उपनिषदों की ओर चले तो कठोपनिषद का यम नचिकेता संवाद की कथा प्राप्त होती है। वैदिक, पौराणिक तथा लौकिक साहित्य में समृद्ध लोक कथाओं की परम्परा संस्कृत वाङ्मय के माध्यम से मिलती है। संस्कृत साहित्य में लोक कथाओं का सर्वाधिक प्राचीन संग्रहण हमें गुणाढ्य के 'वृहद्कथा' के रूप में प्राप्त होता है। वृहद्कथा संस्कृत वाङ्मय का ऐसा ग्रंथ है जो भास, शूद्रक और श्रीहर्ष जैसे संस्कृत के मूर्धन्य नाटककारों के लिए उपजीव्य रहा है। इसके अतिरिक्त 'रामायण', 'महाभारत', सोमदेव का 'कथा सरित्सागर', विष्णुशर्मा का 'पंचतंत्र' जो भारतीय कथा परम्परा में पशु-पक्षियों के माध्यम से नैतिक मूल्यों को स्थापित करने वाले अभूतपूर्व ग्रंथ रूप में ख्यात है। इस ग्रंथ की रचना राजकुमारों को नीतिशास्त्र का उपदेश देने के लिए की गई थी। नीति कथाओं तथा मनोरंजक कथाओं के क्रम में हितोपदेश, बैतालपंचाशिका, सिंहासन बत्तीसी, शुकसप्तति तथा सबसे अलग जातक कथाओं की समृद्ध परम्परा मिलती है

बीज शब्द

लोक कथा, भारतीय परम्परा, वेद, संस्कृति, मानवीय सत्य

भारतीय वाङ्मय की सबसे बड़ी खूबसूरती यह है कि इसमें लिखित साहित्य के साथ-साथ एक लम्बी वाचिक या मौखिक परम्परा भी है। जिसकी समृद्ध विरासत हमें लोकोक्तियों, पहेलियों, लोकविश्वासों तथा लोककथाओं के रूप में मिलती है। देशी या जनपदीय भाषाओं में उपलब्ध लिखित और मौखिक साहित्य की परम्परा का महत्त्व स्थापित करते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि- देशी भाषाओं के साहित्य में, लोक कथाओं में, कहावतों में, किवदंतियों में और अनेक प्रकार के परिभाषिक शब्दों में उस महान उथल-पुथल और सांस्कृतिक मिलन की कहानी प्रच्छन्न रूप से बहती चली आई है। इस दृष्टि से हमारी देशी भाषाओं का साहित्य- लिखित और अलिखित बहुत सी ऐसी बातों को

बता सकता है जो उनकी वर्तमान परिधि और जन्मकाल से बाहर की है, इस प्रकार उनके अध्ययन से हम सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति को समझने की कुंजी पा सकते हैं।

लोकसाहित्य के अन्तर्गत आने वाली भारतीय लोककथाओं के स्वरूप पर विचार करते हुए आचार्य विद्यानिवास मिश्र ने लिखा है कि- *'भारतीय परम्परा के विशिष्ट अभिलक्षणों में एक यह भी है कि यह वाक् केन्द्रित परम्परा है। वाक्केन्द्रित कहने का अर्थ केवल यह नहीं है कि यह मुख्यतः वाचिक है। अंशतः यह बात सही है कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी माता पिता से सन्तान को या गुरू से शिष्य को सौंपी जाने वाली थाती परम्परा कहलाती है।'* दरअसल समस्त भारतीय भाषाओं में वाचिक और साहित्यिक वाङ्मय में उपलब्ध भारतीय लोक कथाओं की परम्परा का मूल स्वरूप यही है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित होता चला आ रहा है। लोक कथाओं के प्रारम्भिक सूत्र हमें सबसे पहले ऋग्वेद के संवाद सूक्तों में दिखाई पड़ते हैं जिसमें दो-तीन पात्रों के बीच कथोपकथन मिलता है। ऋग्वेद में शुनःशेप की कथा, अपाला-आत्रेयी की कथा, च्यवन भार्गव की कथा तथा सुकन्या मानकी की कथा वैदिक कालीन कथा परम्परा के सुन्दर उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रंथों पर विचार करें तो शतपथ ब्राह्मण की पुरूरवा-उर्वशी की कथा, शाट्रायन ब्राह्मण में वृश नामक पुरोहित की कथा, शतपथ ब्राह्मण में दध्यड़ अथार्णव की कथा का वर्णन मिलता है जिनका लोकप्रिय नाम दधीचि ऋषि था। इन्हीं की हड्डियों से वङ्का बना था जिससे इन्द्र ने वृत्रासुर का वध किया था। उपनिषदों की ओर चले तो कठोपनिषद का यम नचिकेता संवाद की कथा प्राप्त होती है। वैदिक, पौराणिक तथा लौकिक साहित्य में समृद्ध लोक कथाओं की परम्परा संस्कृत वाङ्मय के माध्यम से मिलती है। संस्कृत साहित्य में लोक कथाओं का सर्वाधिक प्राचीन संग्रहण हमें गुणाढ्य के 'वृहद्कथा' के रूप में प्राप्त होता है। वृहद्कथा संस्कृत वाङ्मय का ऐसा ग्रंथ है जो भास, शूद्रक और श्रीहर्ष जैसे संस्कृत के मूर्धन्य नाटककारों के लिए उपजीव्य रहा है। इसके अतिरिक्त 'रामायण', 'महाभारत', सोमदेव का 'कथा सरित्सागर', विष्णुशर्मा का 'पंचतंत्र' जो भारतीय कथा परम्परा में पशु-पक्षियों के माध्यम से नैतिक मूल्यों को स्थापित करने वाले अभूतपूर्व ग्रंथ रूप में ख्यात है। इस ग्रंथ की रचना राजकुमारों को नीतिशास्त्र का उपदेश देने के लिए की गई थी।

नीति कथाओं तथा मनोरंजक कथाओं के क्रम में हितोपदेश, बैतालपंचाशिका, सिंहासन बत्तीसी, शुकसप्तति तथा सबसे अलग जातक कथाओं की समृद्ध परम्परा मिलती है जिनका सम्बन्ध गौतम बुद्ध के पूर्व जन्म से माना जाता है। राजा-रानी, भूत प्रेत, हाथी, घोड़ा, देवता, परी आदि पात्रों से जुड़ी पालि भाषा में लिखित इन जातक कथाओं का भाषाशास्त्रीय, समाज-शास्त्रीय तथा पुराण शास्त्रीय दृष्टि से बड़ा स्थान है। उपर्युक्त सभी लोक कथाओं का उद्देश्य, व्यक्तिगत और सामाजिक हित तो है ही पर उनका मुख्य उद्देश्य लोक मंगल है। भारतीय लोककथाओं का यही वैशिष्ट्य भी है जिसे डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय कुल आठ भागों में विभाजित करते हैं- (1) प्रेम का अभिन्न पुट (2) अश्लील शृंगार का अभाव (3) मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों से निरन्तर साहचर्य (4) मंगल कामना की भावना (5) सुख और संयोग में कथाओं का अंत (6) रहस्य, रोमांच एवं अलौकिकता की प्रधानता (7) उत्सुकता की भावना (8) वर्णन की स्वाभाविकता।

वैविध्य की दृष्टि से भारतीय लोककथाओं के अनेक रूप दिखाई पड़ते हैं। जहाँ बच्चों को सोते समय सुनाई जाने वाली मनोरंजक कथाएं एक प्रकार की हैं तो तीज पर्व आदि में सुनी सुनाई जाने वाली लोककथाएं दूसरे प्रकार की। कुछ लोककथाएं 'एक राजा था और एक रानी थी' की शैली में शुरू होती हैं तो कुछ लोक कथाएं 'जंगल में एक शेर और भालू रहते थे' की शैली में, वहीं एक तीसरे प्रकार की लोककथा 'किसी राज्य में एक ब्राह्मण रहता था' की शैली में भी शुरू होती है। राजा-रानी की कहानी भी जनसाधारण के दुःख सुख क इर्द-गिर्द ही चलती हैं, उसमें भी विपदा के बादल गहराते हैं और विपदा चाहे जितनी लम्बी हो उसका अंत

आता ही है, सुख के पल भी आते हैं और कहानी का अंत इस भरत वाक्य से होता है 'जैसे उनके दिन फिरे वैसे सबके फिरे।' इस तरह विपत्ति में डूबते उतराते मन को लोक कथाएं सांत्वना प्रदान करती हैं।

भारतीय लोककथाओं की एक बड़ी विशेषता यह है कि उनमें सुखी जीवन की सामूहिक आकांक्षा भरी होती है। यह कामना 'निजी' जीवन तक सीमित नहीं होती। जो कमजोर और साधनहीन हैं लोक उनके सुख की भी कामना करता है। 'सर्वेभवन्तु सुखिनः' का मंत्र हमें लोककथाओं की तरह अधिक प्रभावी रूप में व्यक्त होता है। लोक कथाएँ गरीब, मेहनतकश सीधे सरल तथा छल-कपट से दूर रहने वाले लोगों के सुख की भावना करती है। ये छल, प्रपंच, कुटिलता तथा घोर अन्याय के विरोध का मानस भी रचती हैं। लोककथाओं में स्वार्थपरता, लोभ और लोलुपता की आलोचना मिलती है। अमूमन ऐसी कथाएं पशुओं के हवाले से कही जाती हैं। सियार और ऊँट में दोस्ती हो जाती है। उस पार से आने वाले पशु-पक्षियों से उन्हें पता चलता है कि नदी के उस पार इस बार 'खरबूजे' की पैदावार अच्छी हुई है। दोनों खरबूजा खाने चल पड़ते हैं। सियार ऊँट की पीठ पर बैठ जाता है। दोनो उस पार जाकर खूब खरबूजा खाते हैं। थोड़ी ही देर में सियार का पेट भर जाता है, और वह हुआँ-हुँआ करने लगता है, ऊँट के बार बार मना करने पर भी वह नही मानता है और कहता है कि मुझे हुआँस लगी है। खेत का रखवाला जग जाता है, फिर ऊँट को मार पड़ती है किसी प्रकार जान बचा कर नदी किनारे पहुँचा तो सियार उछल कर ऊँट की पीठ पर बैठ जाता है। ऊँट भी बीच नदी में पहुँच कर कहता है कि मुझे 'लोटवास' आ रही है और ऊँट लोटने लगता है। सियार तैर नहीं पाता और पानी में डूबकर मर जाता है। इस कथा को स्वार्थपरता के दुष्परिणाम या जैसी करनी वैसी भरनी के पाठ के रूप में भी पढ़ा जा सकता है।

दुख और विपदा में पड़े हुए लोकमानस को उत्साह दिलाने के लिए राम की कथा है। उस अभागे राजकुमार की भी कहानी है जिसको नई-नवेली सौतेली माँ के कहने पर राजा घर से निकाल देता है और वह अपने गरीब और साधारण मित्रों, नाई-धोबी-बढ़ई-दर्जी के सहयोग से परदेश में न केवल सभी विघ्न बाधाओं पर जीत हासिल करता है, बल्कि किसी अज्ञात राजा की राजकुमारी सहित उसके आधा राजपाट का मालिक बन कर लौटता है। घर निकाला होता है तो वनवास भी होता है। वनवास में दनवा या किसी राक्षस से मुठभेड़ होती है और जीत राजकुमार की ही होती है। जाहिर है, हाथी-घोड़ा, रथ-पालकी-फौज-फाटा-लाव-लश्कर के साथ किसी राजा की जीत में वह खुशी नहीं हो सकती जो एक घर से निर्वासित साधनहीन अभागे लड़के की जीत से होती है जिसके बारे में कोई कह सकता है कि भले ही वह निर्वासित था लेकिन था तो वह एक राजकुमार, जिसके लिए जान निछावर करने को साथी भी तैयार थे, लेकिन उस अकेली चिड़िया को आप क्या कहेंगे जिसकी दाल एक खूँटे में फँस जाती है जिसे पाने के लिए उसने शांतिपूर्ण तरीके से और धैर्यपूर्वक एक लम्बा सत्याग्रह चलाया और सबसे पहले बढ़ई के पास पहुँच कर कहती है- बढ़ई बढ़ई खूंटा चीरा-खूटवे में दाल बा। का खाईं का पीही-का ले परदेश जाई? जीवन मरण के प्रश्नों से जूझती हुई वह नन्हीं चिड़ियाँ एक दाल के दाने की प्राप्ति हेतु अद्भुत संघर्ष करती है और सर्वथा जीत उसी की होती है और उसे अपने श्रम का फल मिलता है। इस प्रकार कहानी यह शिक्षा देती है कि जीवन का अधिकार, रोजी रोटी का अधिकार केवल कानून से नहीं वरन धैर्यपूर्वक लम्बे संघर्ष से ही मिल सकता है। भोजपुरी-अवधी-अंचल में प्रचलित ऐसी तमाम छोटी-छोटी लोककथाएं जीवन संघर्ष में प्रेरणा और धैर्य का उदाहरण है। लोकथाओं के संसार में जहाँ सत्याग्रह अपने सर्वोच्च रूप में प्रमाणित होता है तो वहीं पशुओं के माध्यम से हृदय परिवर्तन का मानवीय सत्य भी उद्घाटित होता है- जब घने जंगल में सिंह ने गाय को दबोच लिया तो गाय ने विनती की- भैया घर पर बछड़ा मेरा इंतजार कर रहा होगा। बस एक बार जाकर

उसे आखिरी बार दूध पिला आऊँ, सच मानो मैं खुद आकर तुम्हारे सामने हाजिर हो जाउंगी, फिर तुम मुझे खा लेना। सिंह उसकी बात पर विश्वास कर लेता है घर पहुँचकर गाय ने बछड़े से सारी बात बतायी और कहा कि बेटा आज जितना दूध पी सकते हो, पी लो फिर शायद हम न मिल सके। बछड़ा माँ को नहीं छोड़ना चाहता था और माँ तो वैसे भी नहीं छोड़ना चाहती थी। अतः हारकर दोनों ही सिंह के सामने जाकर खड़े हो जाते हैं और एक दूसरे को धक्का देकर खुद को खा लेने का अनुरोध करने लगते हैं। दोनों की एक दूसरे के प्रति त्याग और समर्पण की भावना को देखकर सिंह का हृदय पसीज जाता है और वह दोनों को छोड़ देता है- कथा का सारांश यह है कि एक दूसरे के प्रति त्याग और समर्पण की भावना ही वह अमृत है जो परिवार ही नहीं सभी मानवीय सम्बन्धों को चिर काल से ही जीवंत करता आया है। सच कहें तो हमारी लोककथाएं जहाँ दुःख और विपत्ति में अटूट बने रहने का धीरज प्रदान करती हैं तो वहीं सुख में विनम्रता, दयालुता, परोपकार और सेवा का संस्कार भी देती हैं।

हमारी लोककथाओं के माध्यम से अमूमन जिन आदर्शों की स्थापना होती है या हुई है उनमें काल्पनिकता से कहीं अधिक वास्तविक जनजीवन का अंश मिलता है। रामायण में आए हुए राम और लक्ष्मण जैसे पुत्र दशरथ जैसा पिता, कौशल्या जैसी माता, सीता जैसी पत्नी, हनुमान जैसा सेवक, भरत जैसा भाई समाज के मंच का आदर्श बने हैं तो लोककथाओं में भी ऐसे कितने पुत्रों और सुहृदयों ने भी अपने उदात्त चरित्र और आदर्शों से लोकमंच को सुशोभित किया है। भक्त पूरनमल की कथा प्रसिद्ध है, जिनके आज्ञापालक होने जैसा कोई आदर्श उदाहरण नहीं है। त्याग बलिदान जैसे उच्च कर्मों की प्रधानता हमारी लोक कथाओं की प्रधान विषय वस्तु है, जो आज भी कही-सुनी जाती हैं।

आदर्श स्त्री पात्रों सीता, सावित्री, कुन्ती, तारा, मंदोदरी, दमयन्ती, सुलोचना, द्रौपदी, अहिल्या जैसी नारी पात्रों से आख्यायिकाएँ भरी पड़ी हैं। जहाँ सती अनुसूइया जैसी देवियाँ पौराणिक आख्यानों की शोभा की वस्तु हैं तो कुसुमादेवी और चन्द्रावल जैसी सतियों ने लोक साहित्य की मर्यादा को और भी पुष्ट किया है। लोक कथाओं में मिलने वाले भाई बहन का प्रेम, पति-पत्नी का प्रेम, माँ और पुत्री का सहज मित्रवत प्रेम और वात्सल्य जहाँ निश्चित आदर्शों की स्थापना करते हैं तो वहीं विमाताओं और भाभियों का कपटपूर्ण और छलपूर्ण प्रेम का सुन्दर परिपाक लोक कथाओ में प्राप्त होता है। ऐसी ही एक कथा है जिसे बचपन में मेरी दादी सुनाया करती थीं, जिसे सुनकर बालमन उस समय भी द्रवित हो जाता था। कथा यह है कि- सतबहिना नाम की एक लड़की थी जो सात भाइयों के बीच अकेली थी। माता-पिता जब तक जीवित रहें उसे बहुत लाड़-प्यार देते रहे समय बीता, माता-पिता नहीं रहे, सातों भाई परदेश कमाने चले गए। इधर सातो भाईयो की पत्नियों ने उस लड़की को नाना प्रकार का दुःख देना प्रारम्भ कर दिया, कभी वे सरसो और चावल को बिना सूप के अलग करने को देंती तो कभी बिना रस्सी के जंगल से सूखी लकड़ियाँ लाने को कहतीं। हद तो तब हुई जब भाभियों ने लड़की से कहा कि कुएँ पर जाकर 'चलनी' से पानी भर ले आओ, भला चलनी में पानी कहाँ टिकता, वापस आने पर पानी नहीं रहता तो उसे और दुख दिये जाते और दुखी होकर रोती हुई वह कहती- माई मरगो, बाबू मरगो-सातो भईया विदेश चलगो। भऊजाई बड़ा दुख दारिन। ऐसी कथाएँ द्रवित तो अवश्य करती हैं लेकिन साथ ही वे सार्थक सीख भी देती चलती हैं, कि अपने तो अपने होते हैं।

भारतीय लोक कथाओं का इतिहास उतना ही पुराना है जितना मनुष्य का इतिहास। ऐसे में जय-पराजय, सुख-दुख और आशा निराशा की बीच उत्पन्न इन कथाओं में कहन शैली का भी अपना महत्त्व है अर्थात् कथा को इस रूप में प्रस्तुत किया जाता है कि वह एक बार सुनकर ही कंठस्थ हो

जाती थी, ऐसी रोचक कहानियों के पात्र सूरज, चंदा, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे होते थे यानी पूरी प्रकृति जहाँ कथा की पात्र होती थी जिसकी अंतिम पंक्ति यह होती थी कि- 'कहनी' गईल बन में-सोचा अपने मन में। कथा सरित्सागर, वृहत कथामंजरी, पंचतंत्र, हितोपदेश, जातक कथाएं, सिंहासन बत्तीसी, बैताल पचीसी आदि लिपिबद्ध कथाओं की परम्परा में ये लोककथाएँ इस मायने में भिन्न हैं कि सीधे-सादे गंवई नर-नारी के मुँह से निकली ये कथाएं सांस्कृतिक विरासत को अक्षुण्ण रखने में काफी हद तक कामयाब रही हैं।

भारतीय लोककथाओं का सर्वाधिक विकास सामूहिकता के साथ उस दौर में हुआ, जब मनोरंजन के साधन नहीं हुआ करते थे। शिक्षा का ऐसा प्रसार भी तब नहीं था, जीवन में ऐसी आपाधापी भी नहीं थी। ऐसे समय में लोगों ने अलाव के पास बैठकर, खेती, किसानी करते हुए, बच्चों को सुलाते हुए, रोपनी, सोहनी करते हुए लोक कथाओं को सुना-सुनाया करते थे। अब वह पीढ़ी नहीं रही उन्हीं के साथ लोककथाएं भी नष्ट हो गई। आज आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय संस्कृति की जीवंत थाती के रूप में उपलब्ध 'भारतीय लोककथाओं' को हम सम्हाल लें, सुरक्षित करें, उन्हें लिपिबद्ध करें, उनको संरक्षित करें, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ, सुख-दुःख, धैर्य, क्षमा, परदुख कातरता और सत्य को जान सकें तथा आने वाली अगली पीढ़ी को हस्तान्तरित कर सकें, क्योंकि भारत की सांस्कृतिक परम्परा के विशिष्ट अभिलक्षणों में से एक यह भी है कि यह एक वाक्केन्द्रित परम्परा है।

सन्दर्भः

- ♦ लोक साहित्य की भूमिका, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली।
- ♦ लोक और शास्त्र अन्वय और समन्वय, आचार्य विद्यानिवास मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
- ♦ वागर्थ पत्रिका, जुलाई 2018, 276वाँ अंक, भारतीय भाषा परिषद्, कोलकाता।
- ♦ लोक साहित्य, इन्द्रदेव सिंह, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ।
- ♦ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग-9.

फागुन लोक संगीत होरी अथवा होली उप शास्त्रीय संगीत

डॉ0 श्वेता केशरी

प्रवक्ता, संगीत गायन विभाग
किशोरी रमण महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मथुरा

सारांश

प्रस्तुत प्रपत्र में फागुन मास में गाये जाने वाले उप शास्त्रीय व लोक गीत प्रकारों की चर्चा की गयी है। इस प्रपत्र में जितनी भी चर्चा की गयी है उसकी यह विशेषता है कि वह किसी पुस्तक में किये गये अध्ययन पर आधारित न होकर प्रायोगिक रूप में आज क्या प्रयोग में है उस पर केन्द्रित है। क्योंकि इस परिवर्तनशील युग में जहां समय व मांग के अनुरूप सब परिवर्तनशील है उस युग में कभी-कभी शास्त्र व प्रयोग में भेद भी देखने को मिलता है। फलस्वरूप इस प्रपत्र में लेखिका की ये कोशिश रही है कि आज जो प्रयोग में है उसे ही प्रस्तुत किया जायें। फलस्वरूप आज उप शास्त्रीय व लोक गीत प्रकारों में से जो गीत प्रकार फागुन मास में बहु प्रचलित है उनका स्वरूप उदाहरण सहित बताने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द

फाल्गुन, लोक संगीत, होली, उपशास्त्रीय संगीत

फाल्गुन या फागुन मास हिन्दू पंचांग के अनुसार शिशिर ऋतु में आने वाले माघ मास के बाद आता है। हिन्दू परम्परानुसार छः ऋतुओं में बारह मास बताये गये है अर्थात् प्रत्येक ऋतु में दो-दो मास का विभाजन इस प्रकार से देखने को मिलता है - 1. ग्रीष्म ऋतु - ज्येष्ठ, आषाढ़ 2. वर्षा ऋतु - श्रावण, भाद्रपद 3. शरद् ऋतु - आश्विन, कार्तिक 4. हेमन्त ऋतु - मार्गशीर्ष, पौष 5. शिशिर ऋतु - माघ, फाल्गुन 6. वसन्त ऋतु - चैत्र, वैशाख। इनमें वर्षा ऋतु के श्रावण मास, शिशिर ऋतु के फाल्गुन मास व वसन्त ऋतु के चैत्र मास का उप शास्त्रीय संगीत से कुछ विशेष ही सम्बन्ध है। जिनमें सावन या श्रावण में कजरी, हिण्डोलादि, फागुन में होरी व चैत मास में चैती गाये जाने की परम्परा है। चाहे साहित्य जगत की बात करें या संगीत, दोनों में ही इन प्रसंगों पर आधारित रचनाओं की भरमार देखी जा सकती है। प्रकृति व संगीत का यह सम्बन्ध इस बात का प्रमाण है कि न केवल मनुष्य, जीव-जन्तु, पेड़-पौधे अर्थात् जो भी चेतन अवस्था में है वह सभी संगीत से अछूते है अपितु संगीत भी इन सब से अछूता नहीं है। केवल संगीत ने ही नहीं प्रकृति व मानव जीवन को प्रभावित किया है अपितु इसका प्रभाव संगीत पर भी पड़ा।

प्रस्तुत प्रपत्र में शिशिर ऋतु में बताये गये फाल्गुन अथवा फागुन मास में गाये जाने वाले प्रकारों में मुख्य रूप से उप शास्त्रीय तथा लोक

संगीत में गायी जाने वाली रचनाओं पर प्रकाश डाला गया है। यह मास सदैव से ही संगीत रसिक जनों का प्रिय रहा है।

फलस्वरूप संगीत के किसी भी आयाम चाहे वह शास्त्रीय, उप शास्त्रीय, लोक संगीत हो या सुगम व फिल्मी संगीत, ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जो कि फाल्गुन या यूं कहें कि होरी के रंग से अछूता हो। यह इतना वृहत् विषय है कि इसमें प्रत्येक क्षेत्र पर लिखने या चर्चा करने की अपार सम्भावना है अतः प्रस्तुत प्रपत्र में मुख्य रूप से उप शास्त्रीय व लोक संगीत की चर्चा की जायेगी क्योंकि जैसा कि हम सभी इस बात से भलीभांति परिचित हैं कि फागुन उप शास्त्रीय संगीत का अत्यन्तम् प्रिय विषय रहा है।

फागुन मास में गाये जाने वाले गीत -

सर्वप्रथम शास्त्रीय रचनाओं की ओर दृष्टिपात करें तो शास्त्रीय शैलियों में शैलीगत विस्तार की दृष्टि से ध्रुपद गान शैली के समकक्ष मानी जाने वाली शैली ''धमार'', जिसमें गाये जाने वाले पद होरी विषयक होते है व धमार ताल में गाये जाने के फलस्वरूप धमार कहलाती है। धमार शैली की यह विशेषता ही है कि इसके पद होरी प्रसंगों पर आधारित होते है। इसके अलावा शास्त्रीय संगीत की बात करें तो जिन रागों में होरी का दादरा व ठुमरी आदि की रचना बहुतायत से देखने को मिलती है जैसे राग काफी, सिन्धुरा, पीलू, इन रागों में शास्त्रीय रचनाओं पर भी इसका प्रभाव पड़ा फलस्वरूप होली विषयक साहित्य इन रागों की शास्त्रीय रचनाओं में प्रायः ही देखने को मिल जाते है। उदाहरणार्थ राग काफी की रचना -

स्थयी - रंग जिन डारों मानो गिरधारी।
सास ननद मोरी देंगी गारी
मैं हारी, मानों गिरिधारी।।

फागुन गीतों में उप शास्त्रीय संगीत की बात करें या फिर लोक संगीत की दोनों ही वर्गों में अनेक गीत प्रकार देखें जा सकते है। फागुन मास में होरी विषयक जितने भी गीत प्रकार देखने या सुनने को मिलते है उनमें मुख्य रूप से शिव जी व कृष्ण जी की होरी का वर्णन इन गीतों में प्राप्त होता है। कृष्ण की होरी ब्रज क्षेत्र के अलावा सब जगह सुनने को मिलती है किन्तु काशी की परम्परा में कृष्ण की होली के साथ ही साथ शिव जी की भी होली सुनी जा सकती है। उप शास्त्रीय संगीत में होरी अथवा होली प्रसंग की अनेक दादरा व ठुमरियां सुनी जा सकती है। जो उप शास्त्रीय संगीत के रागों जैसे मिश्र काफी, मिश्र पीलू, मिश्र खमाज आदि रागों में रचित होते है। होरी दादरा के साथ दादरा ताल बजायी जाती है तथा अन्त में बनारस परम्परा में लग्गी-लड़ी का जो चलन है उससे समाप्ति होती है व ठुमरी मुख्य रूप ये जत्त ताल में बद्ध होती है जिसमें भी अन्त में लग्गी-लड़ी से समाप्ति करने की परम्परा है। उदाहरण स्वरूप बनारस की पारम्परिक होरी के कुछ शब्द इस प्रकार से है-

होरी का दादरा -

स्थायी - बरजोरी करो ना मोसे होरी में।
अन्तरा - 1. आधी रात सो घर आये हो
धर जावोगे चोरी में।।
2. अबीर गुलाल कुमकुम केसर
मुख मीजत हो रोरी में।।
3. कहत छबीले निडर भये छैला
लिये फिरत रंग झोली में।

होरी की ठुमरी -

स्थायी - कौन तरह से तुम खेलत होरी रे
देखो लला मोरी आंखन खटके।।

अन्तरा - गारी मैं दूंगी तोसे ना डरूंगी
अबके फाग तोहे रंग से रंगूंगी
देखो लला मोरी आखन खटके।।

होली धमार -

शास्त्रीय संगीत में धमार शब्द का प्रयोग कई अर्थों में देखा जा सकता है पहला, धमार नामक शास्त्रीय संगीत प्रकार है, जो कि धमार ताल में ही गाई जाती है और उसमें होरी के पद होते है अर्थात् होरी के पद जो कि धमार ताल में गायी जाती है धमार कहलाती है। दूसरा, धमार नामक ताल जो कि 14 मात्रा की होती है। इस ताल का प्रयोग केवल धमार शैली के साथ ही होता है। इसके अलावा हवेली संगीत या पुष्टिमार्गीय संगीत में इस ताल का प्रयोग पदों के साथ प्रचुरता से देखा जा सकता है। तीसरा, जिसकी चर्चा यहां होली धमार शीर्षक के अन्तर्गत की जा रही है। होरी धमार शैली लोक संगीत परम्परा के साथ ही साथ उप शास्त्रीय परम्परा का भी अभिन्न प्रकार है, जिसे हम इस रूप में समझ सकते है कि लोक गीत प्रकार होरी धमार का विस्तार जब उप शास्त्रीय तरीके से किया जाता है तो वह उप शास्त्रीय प्रकार की होरी धमार कहलायेगी। होरी धमार जिला काफी राग में ही सामान्यतया रचित होता है व सभी की धुन सामान्यतया एक समान ही होती है। और जैसा कि पूर्व में भी चर्चा की गयी है कि इसमें गाये जाने वाले पद होली के होते है तथा यह चाचर छंद 3-4-3-4 में गायी जाती है, जिसका आधुनिक रूप दीपचन्दी के समान है। उदाहरण स्वरूप

होरी धमार राग जिला काफी ताल दीपचन्दी

कैसी होरी मचाई, कन्हाई
अचरज लख्यो ना जाई, कैसी होरी मचाई॥
एक समय श्री कृष्ण प्रभो को
होरी खेले मन आई, एक से होरी मचे नही कबहु
यातें करू बहुताई, यही प्रभु ने ठहराई॥
कैसी होरी मचाई, कन्हाई.....

होरी धमार के गायन की परम्परा हवेली संगीत में भी देखी जा सकती है जिसमें होरी के पद तो होते है किन्तु ताल का प्रयोग दीपचन्दी न होकर चढ़ी हुई लय की धमार होती है। यहां एक बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य यह है कि प्राचीन पुस्तकों में धमार ताल का जो स्वरूप देखने को मिलता है उसकी छंद 3-2-2-3-2-2 की होती है किन्तु प्रायोगिक रूप में 3-4-3-4 के छन्द से ही प्रयोग में लायी जाती है। उदाहरण स्वरूप धमार ठेका का प्राचीन रूप इस प्रकार है -

ठेका - धमार ताल

त धी ट धी ट धाँ त कि ट कि ट ताँ
1 2 3

उपरोक्त लिखित यह ठेका पखावज की प्राचीन पुस्तक मृदंग तबला वादन सुबोध ;भाग तीनद्ध से लिया गया है, जिसमें विष्णु दिगम्बर पलुस्कर पद्धति में लिखी हुई धमार ताल का ठेका है। इस पद्धति में खाली के लिए त्रिभुजाकार का प्रयोग किया जाता है फलस्वरूप देखने से स्पष्ट है कि प्राचीन परम्परा में धमार ताल का छन्द 3-2-2-3-2-2 का प्राप्त होता है।

इसी छंद में अधोलिखित हवेली संगीत परम्परा में गाई जाने वाली होरी धमार जो कि फागुन मास में ही गायी जाती है उदाहरणार्थ प्रस्तुत है -

औरन सो खेले धमार
लाल मोसो ऐड़ो ही डोले, मोसो मुख हूं न बोले।
औरन सो खेले धमार.....
राधा जूं पनिया निकसी, ताको घूंघट खोले
सूरदास प्रभु लाडिलो, हियरा बिच डोले।
औरन सो खेले धमार.....

लोक संगीत की बात की जायें तो लोक संगीत में फागुन के गीतों की भरमार देखी जा सकती है। फागुन में गाये जाने वाले विविध लोक छंद के नाम चन्द्रशेखर मिश्र जी ने अपने लेख **'फागुन के लोक छंद'** में कुछ इस प्रकार बताये

है - फाग, होरी या होली, धमार, चैताल, डेढ़ ताल, तीन ताल, झूमर, बारहमासा, उलारा, चहरा, बेलवइयां, लेज तथा मनोरा। जिसमें से यहां लोक में बहु प्रचलित फागुन मास में गाये जाने वाले गीत प्रकारों के कुछ उद्धरण गीत के बोलों के साथ दिये जा रहे है।

फाग -

फाग व होली अथवा होरी के सम्बन्ध में एक भ्रांति लोक प्रचार में है कि दोनों एक ही होते है किन्तु होरी व फाग दोनों ही एक दूसरे से भिन्न होते है। इस सम्बंध में बनारस परम्परा की सुप्रसिद्ध उप शास्त्रीय गायिका व कलाकार विदुषी सुचरिता जी से चर्चा के दौरान उन्होंने बताया कि सूखी होली अर्थात् अबीर से खेली जाने वाली होली को फाग कहते है। बनारस की पारम्परिक रचना ''खेले मसाने में होली दिगम्बर'' में इसी सूखी होली की ओर संकेत किया जा रहा है, जिसमें भस्म से होली खेलने का वर्णन रचना में हो रहा है। होली व फाग, इन दोनों के भेद पर चन्द्रशेखर जी ने भी लिखा है कि ''होली व फाग ये दोनों एक ही छंद के दो नाम नहीं अपितु पृथक-पृथक लोक छंद है।'' फाग गान शैली में अनेकों धुन में रचनाएं सुनने को मिलती है। गान शैली का स्वरूप और अधिक स्पष्ट करने हेतु यहां उदाहरण स्वरूप एक पारम्परिक फाग दिया जा रहा है -

सिव सती खेलैं फाग हरे लाल, सिव सती खेलै फाग।
हो ..... नाचत
आहे नाचत ताल बजावत डमरू
सिव सती खेलै फाग हरे लाल.....
एक ओर नाचत सिव सती हो, एक ओर भूत बैताल हरे लाल हो..... नाचत
आहे नाचत ताल बजावत डमरू
सिव सती खेलै फाग हरे लाल।।

चैताल -

लोक संगीत का एक प्रकार चैताल है, जो कि फागुन मास में गाया जाता है। चैताल अत्यंत ही लोक प्रसिद्ध गीत प्रकार है। यहां चैताल से आशय शास्त्रीय संगीत में ध्रुपद शैली के साथ बजायी जाने वाली ताल चैताल अथवा चारताल से नहीं है अपितु यहां चैताल विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है अर्थात् गीत का वह प्रकार जो कि चार तालों में गाया जाता है चैताल कहलाता है। इस गीत प्रकार के प्रत्येक खण्ड के बाद ताल बदलती है। और पूरे गीत में चार बार ताल परिवर्तन के फलस्वरूप इस गीत प्रकार को चैताल कहते है और चूंकि यह फागुन मास में गाया जाता है इसलिए इसमें पद का विषय होली विषयक होता है। चैताल साधारणतया एक ही धुन सुनने को मिलती है। व चैताल की समान्यतया सभी रचना में तालों का क्रम भी यही रहता है। अधोलिखित गीत प्रकार चैताल का प्रकार है जिसमें गीत के प्रत्येक खण्ड में ताल परिवर्तन व तालों का क्रम देखा जा सकता है।

मन मोहन मोह लिए, मन बंसी बजाई।
ऐहो बंसी बजाई। **ताल - दीपचन्दी**
जमुना तीर कदम्ब करि छहिंया,ग्वालिन संग कन्हाई।
ग्वालिन संग कन्हाई री गुंईया ग्वालिन संग कन्हाई।

ताल - दादरा
भरी अनुराग राग अस टेरत
ताल - कहरवा
सखी सगरी सुधी बिसराई
त बंसी बजाई **ताल - दीपचन्दी**
मन मोहन मोह लिए, मन बंसी बजाई।
त बंसी बजाई।

चौताल के ही समान डेढ़ ताल व तीन ताल भी फागुन में गाये जाने वाले गीत प्रकारों में से है। जिसके विषय में लेखक लिखते हैं कि ''डेढ़ ताल का बोल तो चैताल जैसा ही उतनी ही मात्राओं का होता है किन्तु अन्तरे में आधे ताल की वृद्धि हो जाती है। बाकी सब चैताल की भांति ही होता है। व तीनताल को तिताल या तिताला भी कहते है। यह सीधे-सीधे डेढ़ ताल का दूना होता है, किन्तु बोल

में मात्र आधा ताल ही बढ़ता है।''

चहका -

चहका होली के अवसर पर गाया जाने वाला लोक संगीत का एक प्रकार है। लोक संगीत प्रकारों की यह विशेषता होती है कि वह धुन आधारित होती है। चहका की भी अपनी एक विशेष धुन है जिसमें चहका गाया जाता है। प्रस्तुत चहका का साहित्य शिव जी पर आधारित है।

आनन्द बन आज मची होरी।
शिव गौरा मगन खेलत होरी।।
इत शंकर उत पारवती मां।
रती आनन्द मोहन जोड़ी।।
शिव गौरा मगन खेलत होरी।।
आनन्द -----

झूमर -

फाग में गाये जाने वाले लोक गीत प्रकारों में झूमर भी लोक प्रिय प्रकारों में से एक है। झूमर की अपनी एक निश्चित धुन होती है, जिस धुन में प्रायः झूमर गाये जाते है। यह दीपचन्दी ताल में सुनने को मिलती है। फागुन मास में होने वाले प्राकृतिक छटा का वर्णन इन रचनाओं में देखने को मिलता है जैसे - पेड़ों पर आम की बौर का आना, टेसू के पुष्पों से लहलहाता उपवन, फागुनी बयार, कोयल की कूक आदि प्राकृतिक परिवेश व इस मौसम में मनुष्य के मन में होने वाले उल्लास व भाव का अन्तर्भाव इन रचनाओं में देखने को मिलता है। उदाहरण रूप में यहां ऐसी ही एक रचना दी जा रही है जिसमें फागुन की मौसमी छटा का बहुत ही सुन्दर चित्रण रचना में किया गया है।

डारि डारि फिरे मतवारी कोयली, फागुन के महिनवा में।
टेसू फूले अमवा बौरे महके गुलबवा जियरा डोले।
सन सन बहेला बयरिया, साजन फागुन के महिनवा में।।

होरी रसिया -

रसिया ब्रज के लोक संगीत का बहुत ही लोक प्रचलित प्रकार है। रसिया का सम्बन्ध किसी समय या अवसर से नहीं होता है यह किसी भी समय गायी जा सकती है। प्रायः लोग होरी व रसिया को एक ही चीज़ समझ लेते है। जिस पर प्रकाश डालते हुए ब्रज की सुप्रसिद्ध लोक गायिका माधुरी शर्मा जी ने बताया कि ''रसिया व होरी दोनों ही अलग-अलग गीत प्रकार है। रसिया एक प्रकार की धुन होती है उसमें जब होरी गाई जाती है तो वह होरी रसिया कहलाती है। यहां होरी रसिया से तात्पर्य रसिया के उस प्रकार से है जिसमें होरी का वर्णन होता है। साथ ही उन्होंने इस ओर भी संकेत किया कि होरी में गाई जाने वाली पंक्तियां रसिया में गाई जाने वाली पंक्तियों की अपेक्षा लम्बी होती है।'' यहा उदाहरण स्वरूप एक होरी रसिया दी जा रही है।

आज बिरज में होरी रे रसिया
होरी रे रसिया बरजोरी रसिया
अबीर गुलाल के बादर छाये
धूम मचायी रे सब मिल सखियां
आज बिरज में .....

इसके अतिरिक्त बारहमासा, उलारा, बेवलईयां, लेज व मनोरा भी कुछ गीत प्रकार है जो कि फागुन मास में गाये जाते है। जिसमें बारहमासा के विषय में कहा गया है कि फागुन में जितने प्रकार के लोक छंद गाए जाते है, उन सब में बारहमासा गाया जाता है, छंद चाहे कोई हो, पर उसमें बारह महीनों का वर्णन हो तो उसे बारहमासा कहा जायेगा। उलारा, चहका और बेवलईयां, ये तीनों प्रायः चैताल, डेढ़ताल या तीनताल की समाप्ति के बाद गाए जाते है। इनमें उलारा को कहीं कही 'लहरा' भी कहते है और चहका तो छोटा होता है किन्तु बेवलईयां काफी बड़ा होता है। लेज़ एक ऐसा लोक छन्द है, जिसका प्रयोग प्रायः प्रतिपक्षी को परास्त करने के लिए किया जाता है। इसका बोल बहुत छोटा होता है किन्तु अन्तरा बहुत ही बड़ा होता है।

(उपरोक्त चर्चित फागुन मास में गाये जाने वाले उप शास्त्रीय व लोक गीत प्रकारों में उदाहरण स्वरूप जो रचनाऐं दी गयी है वह मौखिक परम्परा से विदुषी सुचरिता गुप्ता जी से प्राप्त की गयी है।)

सौन्दर्य

Colour Therapy: Therapeutic benefits of Colours

Shalini Tiwari

Assistant Professor
Dept. of Drawing & Painting
KMGGPGC, Badalpur

Abstract

In present time, there are various innovative ideas to cure the diseases and colour therapy is one of them. It is a very ancient concept of treatment in which colours are used to cure the diseases. The other name of colour therapy is Chromo therapy. Every colour has a different impact on human body and have a different intensity, thus in colour therapy, therapists use the therapeutic benefits of colours. Colour is a property of light and has an energy and human body has various energy points called chakra. Different colours stimulate the different chakras in the human body, provide energy and cure the diseases related to that chakra. Colours have not only a physical benefits but also have a psychological benefits. In modern time peoples are more interested in unconventional ways of treatment such as naturopathy, colour therapy etc.

Key words:

Colour therapy, Chromo therapy, human body, chakra, disease.

Nature is the best healer and has a cure for every disease. In present time people are moving back towards the nature for the healthy living and treatment for their diseases. Nature cure is a constructive method of treatment and a cure without drugs. Naturopathy is a way of life. It is a distinct philosophy and science which strengthens the age, old faith in the correction of bodily disorders, restoration and maintenance of health through elements freely available in nature. Nature cure believes that disease is an abnormal condition of the body resulting from the violation of the natural laws, so it heals the diseases with the help of natural elements. Color therapy is the part of naturopathy. Human body

is compassed of five great elements. Imbalances of these create diseases. These five elements include, air, water, Earth, Heat and space. Treatment by these are called nature cure. Apart from above stated pancha mahabhoot therapies like air therapy, fire therapy, hydro therapy, mud therapy, some other therapies such as exercise, massage, electro therapy, yoga, color therapy etc. are also practiced by naturopaths.

Sun is the source of light and energy on the Earth. Sir Isaac Newton discovered the seven colors of light through the prism. Color is light, split into different wave lengths, vibrating at different speeds and frequencies. These wavelengths of energy are visible to us as colors. Color therapy is very ancient and it goes back over 5000 years. Color therapy has been used in India, China and Egypt for centuries. Color therapy is the use of color to treat physical, emotional, mental and spiritual imbalance. Color enters the eyes and stimulates the Pituitary and Pineal glands, which release substances that affect the endocrine system, glands and various body parts. If the Pituitary and Pineal glands do not get a balance of every color, the hormone production can be inhibited or accelerated. In order to be healthy we require the energy from the full color spectrum. Every color has a different influence on behavior and brain of people and colors can heal disorders generated out of stress. Color Therapy is also known as chromotherapy. Human has seven chakras in different parts of their body and seven colors are related with seven chakras. These chakras are the energy centre of human body and they must be balanced for smooth functioning of the body. The use of colors creates energy stimuli that interacts with the energy system of human body and helps to stabilize it on many different levels. By providing the correct focus of energy or color to the affected area, it begins to correct the balance. Once balance is restored, we can more effectively rid ourselves of toxins and it is not only effective in healing but also in stimulating deeper levels of consciousness. In color therapy focus is on energizing the chakras through the various colors.

Impact of colors on chakras in human body

The meaning of chakras is “wheel or circle of light” and refers to one of the 7 major energy centers, which spins like a wheel through and around the body. Each one these energy centers has a specific purpose in the healthy functioning of our bodies. Each chakra is different in color, size, shape, rotation or spin and the amount of energy is also different that is produced by the chakras. Each chakra resonates at a different frequency, a different refraction of infinite light. Red has a slower vibration, bends the least and is associated with the base chakra and closest to the Earth. Violet is refracted the most, vibrates at the highest frequency and therefore corresponds to the crown chakra, the highest chakra.

Base Chakra (Red)

This is the area of consciousness of the physical body. All physical sensation,

including pleasure or pain is seated in this area. Powerful emotions such as rage, hatred, revenge and aggression emanate from here. It relates to our power, sexuality and the fire in our lives. This chakra is situated in the area from the feet to the tailbone and links to the circulatory system as well as any imbalance in the feet, legs, pelvis or genitals. Red color helps to give us vitality, courage, inner strength, self confidence and encourages us to achieve our goals. It gives us the power and inner strength to pursue our dreams. It also heals arthritis and stimulates circulation.

Sacral Chakra (Orange)

This is the area in the body that links to the adrenal glands which is affected by shock of any kind. When experiencing a shock, the entire aura becomes misplaced. To repair this rub the orange oil down the left hand side of the body, from the ear to the ankle. This centre is linked to the reproductive system, colon, elimination system, kidney, liver, bladder, hips. Orange helps with depression and releasing anxieties. Orange increases the intake of oxygen and heals the lungs.

Solar Plexus Chakra (Yellow)

This area links to the stomach, digestive system, liver, gall bladder, a nervous system, middle of the back, pancreas and spleen. This area is known as the stress area in the body. It assists the body in the assimilation of nutrients and links to acidity in the body. Stress causes an imbalance of the solar plexus, which often affects the function of the kidneys and liver. Solar plexus chakra is connected to our mental and thinking self. Yellow helps with memory, mental fatigue and nervousness. It also cures digestive, liver problems, diabetes and weight problems.

Heart Chakra (Green)

This center associates with the air elements and the sense of touch. This is influential in the function of the thymus gland and the entire immune system of the body. This centre mediates and balances the activities of all other chakras. If shut down, it will also affect other chakras. Heart chakra is connected to our loving self. Some of its qualities are harmony, kindness, sensitivity, emotional balancing, unconditional love, understanding and growth. Green color brings calm and peace in and helps to relax muscles, nerves and thoughts.

Throat Chakra (Blue)

This area relates to the throat, neck, jaw line, glands and thyroid. Throat chakra is connected to our expressive self. Some of its qualities are honesty, politeness, expression, will and creative self. Use blue to smooth tired nerves, insomnia and hyperactivity. It helps with communication, holistic thoughts, stability, fevers and menstrual issues. Blue aids in mental relaxation, giving a peace of mind.

Third eye/brow Chakra (Indigo/ Royal Blue)

Brow chakra is connected to our universal seeing self. This center receives the commands from the higher self. It is situated at the center of the brow, over

the area known as the third eye. It is linked to that level of the sib conscious mind, which controls intuitive perceptions, creative imagination and visualization. It relates to the immune system, eyes, nose, sinuses, headaches, face, memory, brain and pituitary gland. Indigo purifies the blood system and calms nerves, relieves pain and skin problems.

Crown Chakra (Violet)

The Sanskrit name of the seventh chakra is sahasrara, which means 'one thousand' and is often depicted as a 1000 petal lotus at the crown of the head. Lotus is the symbol of enlightenment and this chakra is connected to our knowing and spiritual self. This chakra influences the pineal gland, which regulates the body's biological clock. It regulates aging, sleep inducement and moods. Violet stimulates the endocrine system, lymphatic and central nervous system. Violet can lead us into a realm of spiritual awareness, where it becomes the last gateway

through which we must pass in order to become united with our true self or divine inner being. Violet also helps kill bacteria and heal skin rashes.

Various forms of Color Therapy

Colors have a very huge impact on human beings and also affect the person physically, mentally, emotionally and spiritually. To see the impact of colors someone has to feel, smell and hear the colors. Colors can be used in various forms such as – color bath, essential oils, food, drink, clothing etc.

Colored Essential oils and Aromatherapy

Essential oils are a combination of aroma and color. The use of colorful and aromatic healing plants and herbs has been used since ancient time for healing, relaxing, killing germs, meditation and spiritual practices. The colored oils are made in a sacred, loving process which is truly felt when using them. They reflect to emotional issues and affect physical well being. The oils help to release the imbalances gently. The oils are absorbed by the skin and taken through the blood and nerve system to every cell in the body. Color sprays are used to bring auric alignment and balance. They also harmonize the energy in the environment. Essential oils can be categorized in a variety of ways: color, odor and base, middle and top notes. Red oils are considered base notes, healing and harmonizing the root and spleen chakras. Yellow and green are classified as middle notes, healing to the solar plexus and heart chakras. Blue, indigo and violets are top notes, healing to the throat, eye and crown chakras.

Color - Visualization Therapy

In this therapy everything depends on our senses to learn, how colors and scents affect us. Color is one of the easiest tools we have to help us with health, harmony and balance. The more often we use color with awareness the more often we can fully experience what we want to experience in life.

Color - Breathing Therapy

Breath is our life force. When we breathe in air it also contains light, color,

sound, aroma and electromagnetic energy. We breathe in the color vibration of the people, places and objects around us. The more intentionally we breathe color in to ourselves and our environment the more we shall experience the benefits.

Conclusion

Human body is like a machine and there are various energy centers situated in our body in the forms of chakras, which gives energy to our body. To achieve higher self and good health we have to energize all chakras of the body. Each chakra is related with different organs, over active and less active, both conditions of chakras are harmful for our physical, mental and spiritual health. Color therapy is related with our chakras and keep the chakras in balanced position. Just as our external body needs a shower frequently, the internal body and mind filled with so many negative thoughts and energy also needs a cleansing. Color Therapy allow the mind and body to become more healthy and active.

Thus color therapy equips us with the right tools to handle life's uncertainties in a remarkable calm manner. It is the science that harmonizes the mind, body connection most effectively. It is a power tool for facing life's challenges with an attitude that will delight us.

References

·Alijandra, (1995) "*Healing with the rainbow rays: the art of color energy therapy*". Emrald Star Pub.

·Azeemi, Khawaja Shamsuddin, (1999) "*Color Therapy*" Karachi: al- Kitab publications.

·Birren, F. (2016) "*Color Psychology and color therapy; A factual study of the influence of color on human life*", Pickle Partners Publishing.

·Elliot, A. J. (2015) "*Colour and psychological functioning: a review of theoretical and empirical work*". Frontiers in psychology.

·Gruson, L (1982-10-19). "*Color has a powerful effect on behavior*", researchers assert, The NewYork Times. Retrieved 2009-09-18.

·Gurney, J. (2010) "*Colour and light: A guide for the realist painter*" (Vol. 2.) Andrews McMeel Publishing.

·Hoffman, Maryanne E. (1998) "*Color Therapy for children*" Published by Star Visions.

·Kumar, Kaul, H, (1992) '*Yogasanas for Everyone* (1st ed) Surjeet publication: New Delhi.

·Wauters, Ambika, (1989) "*Chakras and their Archtypes*", The crossing pres, Freedom, California.

Perceiving Beauty and Truth: A Study of Mizo Idioms and Expressions

R. Zothanliana
Assistant Professor
Dept. of Education, Mizoram University

H. Malsawmi
Professor
Dept. of Education, Mizoram University

Abstract

This paper studies the idioms and expressions found in Mizo language. It describes the meaning, highlights the beautiful forms of languages and diction hidden behind the literal meaning and articulates the different Mizo tradition and culture associated with these beautiful forms of expression. It describes the interconnection of Mizo culture with these expressions.

Keywords

Mizo, Mizoram, idioms, expressions, culture

Society and culture all over the world, having their own language, either in the spoken or written form will have their own specific way of using their language. This comes with the development of language within the society itself. Since language developed within a society and since society is bonded together by the same language, it is conceivable that the style and usage of language will be social-specific. These specific and culture appropriate usages are understood as idioms, expressions and proverbs. The relationship of culture with language cannot be overemphasized. The influence of culture on language and vice versa can be witnessed in diverse aspects. Language can be seen as a representation of the culture, the society, customs and tradition, and even personal experiences. In Mizo, idioms, proverbs, expressions and phrases are referred to as '*lawng Upa*' which when literally translated means 'Old Language' (lawng – Language, Upa – Old). These *lawng Upa* have been passed on from generations to generations in the oral form.

The written form of Mizo came out only in 1894 with the development of the Mizo alphabet by the pioneer missionaries – Rev. J.H. Lorrain and Rev. F.W. Savidge. They used the Roman script for writing the Mizo alphabet. With regard to the use of *lawng Upa*, the literal

translation does not carry the literal meaning. It was not used only by 'Old' persons and the usage of the term *Upa* (old) does not mean that the origin of the phrase is unknown or too old. The representation of Mizo traditions, customs, social values and culture within these *lawng Upa* makes it valuable. This paper is an attempt to read these *lawng Upa* to appreciate the aesthetic beauty, content of wisdom, representation of cultural and social practices, values, traditions and believes embeded within it.

Mizo is a language spoken in the state of Mizoram by the Mizos. It is also spoken by a small number of people in states like Manipur, Meghalaya and Tripura and in neighbouring countries like Banglaseh and Myanmar. Chhangte says that 'It is a Tibeto-Burman language, in the Central subgroup of the Kukish or Kuki-Chin branch' (93).

Idioms are understood as a form of expression that contains a figurative meaning. They are found to be occuring in languages all around the world and Mizo is also very rich in idioms. These idioms are said to represent a different form of expression and thus need explanation. They carry proverbs and words of wisdom, poetical expressions, and different forms of diction.

Beauty – The term 'beauty' encompasses a wide variety of interpretation and perception and when it comes to the understanding of 'beauty' from a literary point of view, it can be known and felt in different ways. If we are to refer to literary terms and devices, we may consider devices like rhyme, rhythm, intonation, phonic beauty as a measure of the beauty that can be appreciated through the sense of hearing. Apart from these, beauty can also be felt as beauty appeals to the heart. In order to appreciate the beauty of these idioms and expressions, one must understand them and be able to interpret the meaning. To comprehend these expressions will help one to feel the beauty, the uniqueness, the richness in vocabulary, the colorful style of expressions, the rich culture and practices embedded inside them, the description of identity of the society, the portrayal of nature in its varied forms, and other things associated with these idioms and expressions.

Let us take a look at one Mizo expression: *'Sem sem dam dam, ei bil thi thi'* (To share is to live, to eat alone is to die). One can definitely hear a repetition of similar sounds which is understood as 'alliteration' and the repetition of identical consonant sounds and also that of vowel sounds, also referred as consonance and assonance, highlight the phonic beauty that this short expression carried. By reading it, one can also recognize the wonderful rhythm created by the repetition of vowel and consonant sounds. Mizo being a tonal language, the reading of this idiom using the correct vowel tone makes it rhythmical. There are other idioms in which alliteration has been skillfully used. Some of them are:

a. "Lal ngai lo lal a na, an lal a kha"

b. "Hmeichhe thu, thu ni suh, chakai sa, sa ni suh"

c. "Hotu lu leh vate lu a lawk"

These idioms and expressions are also rich in the use of alliteration and it cannot be helped but appreciate the beauty of sound carried by these idioms. When

read in the correct tone, even someone who does not understand the Mizo language will still be able to appreciate the phonic beauty of these idioms.

Another idiom, *"Dam leh tlang khatah,*

Thih leh ruam khatah" (Let's live on the same hill, and die in the same vale) ends with a rhyme. This two lined idiom expresses contrasting situations in life. It also talks about two opposite locations. Mizo villages were built on top of a hill, so, the hill represents being alive. On the other hand, Mizos never have their homes and villages in the valley. So, the valley can never be used in connection with life and living. The idiom talks abouth living and death but the most important message seems to be the idea of unity, love foe one another, brotherhood and to never desert friends and families. It calls for the union of friends, family members and villagers to stand united both in life and death. The ability to express these contrasting situations in just two lines and sending the important message of bravery, union and brotherhood requires the work a very able person/poet.

Apart from these higlighted idioms, there are other idioms and expressions which describe beauty of sound. It will take too much space and time to describe the meaning of each idioms and expressions. However, if you are able to read the following expressions correctly in Mizo, you will be able to witness the beauty of sound carried by these idioms. A person knowing the meaning will also be able to identify the nature and style of Mizo expressions and writing.

a) A biling a balang
b) A bul a bal
c) A ngial a ngan
d) A mik a mak
e) A khual a tual
f) A kul a tai
g) A kum a khuain
h) A leh a lingin
i) A zawng a zain
j) Chhiat ni mhat ni hiau – thli thaw heuh heuh
k) Chingal dil din thu ni suh, chakai
l) Chun leh zua rang a hring, a hring
m) A ruk a ral
n) A sur a sa
o) A zawng a za
p) A thim a var
q) A kip a kawi
r) A pawng a pui
s) A rim a ra
t) A zan a zan
u) Dik dak
v) Hrang hiau
w) Hmeichhe thu, sa, sa ni suh
x) Sial rangin sial sakawlin sakawl

Beauty can be understood in other diverse forms: when it is true to its characters, when different from others with regard to being unique, and when it is presented the way it is expected. Mizo idioms and expressions carry with them truth which is centre to its character. The beauty of these idioms can be seen in the way it has been used to teach the different Mizo good values. They show the good way of living together in harmony, how to be good neighbours, how to be obedient to elders and rulers and how to respect them. These idioms show the importance of society, the duty of social members and the good practices of the society. They are used as a means of handing over values and traditions from generations to generations and this really adds to the beauty of these expressions.

Beauty can be seen by knowing the closeness of these idioms to Nature and the relation of man with Nature being emphasized through these expressions.

Characteristics of Mizo idioms and expressions –

1. Describing Mizo culture and tradition – It is indeed easy to follow many Mizo traditions and practices through the idioms and expressions. Most of the pet animals of the Mizo – fowl/ poultry, cow, pig, dog, cat, goat, etc – are to be found mentioned in abundance. Some expressions are used to describe these pet animals as they are whereas in some forms of expressions, they are used in an allegorical manner, as symbols, as metaphors and other forms of expression. For instance, the Mizo expression, *'Ar mial fin'* (Wise/cunning like a multicolored hen) is used metaphorically to describe a cunning person, *'Arpui mei ang'* (like a hen's tail) is used for describing equality and *'Ui leh kel thlunpawlh ang'* (like a goat and a dog tied together) is talking about opposition of people/person belonging to the other group. These idioms – and other idioms – cleverly describe the true nature of human beings.

The societal practice and tradition of Mizo can be seen through these idioms. They describe how a society is being guided to different conducts, how family is subjected to control and discipline, how young men and women court each other, how children are being treated, their work culture, their fight for survival, different relationships, their beliefs regarding religion and other related issues, things to do, forbidden and unlawful practices, etc are being described by these idioms.

2. Interconnection with Nature – One of the greatest characteristics of Mizo idioms and phrases is the connection they have with Nature. Mizos appreciate and respect Nature. They live in close connection with Nature and they know the importance of Nature in their lives and the importance for their survival and all these are reflected through their expressions. Different expressions like *'Khua-in/Khuanu'n zah ngai se la'* (Let mother nature be kind to us), *'Khuanu sam suih'* (Bonded by Nature: literal translation will be the tying of the hair together by Nature to show good relationship, especially that of husband and wife) *'Khuavang ri kham sa'* (Demarcated by Nature: to draw boundaries between villages, plantations and respect the boundaries of nature) show their respect for Nature and try to avoid going agaist the will of mother nature. They know that they are provided for their living by nature and that their survival depends on nature. So, they admire and have great reverence for nature and take proper care to not destroy it. Mizos named the stars, have names for the seasons, months and the moon in its different appearances which show their close observance of nature. They have expressions for the different weather and climate they encountered. They closely observe even the small wild animals around them and have expressions like *'Laiking fa neih ang mai'* (to bear many children like the lizard – but not taking good care of them) *'Chhimbuk sa kham ang'* (Having too much meat like the owl, used for describing someone who looks inactive and dull) 'Chhimtir ar chuk ang' (A mice attacked by a fowl, used for describing someone who runs here and there, being not calm and quiet) to describe human beings by drawing

allegory from the behaviour and appearances of these animals.

3. Describing moral ethics and values – Mizo idioms and phrases are concered with moral values and ethics and focus on the relationship of human beings with fellow being, human and other living beings around them, relationship of human beings with other beings who are considered as more powerful and having supernatural authority over human beings. These are taught and handed down from generations to generations. *"lhenawm do ai chuan khaw sarih do a thlanawm zawk"* (to fight with seven villages is much better than to fight with one's own neighbour) expresses the importance of being a good neighbour and not just trying to have good neighbours. Expressions like, *"Lampui chang khatah mi an be chhe ngai lo"* (one must not argue with others while walking together), *"Mahni infak leh sakhi ngalah engmah a bet lo"* (praising oneself and a deer's leg does not have anything of value), *"A mha lam kawng a chho, a chhe lam kawng a phei"* (the path of goodness is an uphill climb while the path to evil is an easy walk), *"Piangsual nuihsan suh, piansual leh pharin tlai luat a nei lo"* (never mock the disabilities of others, it is never too late to be a disabled person and a leper) and others are carrying valuable teachings which are closely related to the teachings of different religion. The expression, *"Mihring hmelma ber chu mahni a ni"* (man's greatest enemy is himself) carries with it wisdom and the importance of self control.

4. Teaching – These idioms and expressions are also used as an important medium for teaching other things which are not yet mentioned. Some of the things that are taught through these expressions are – bravery, living together, respect for elders, respect both gender and sexes and taking care of the female gender, respect for the society, and different other aspects which are considered as important. There is a saying, *'Ruai mhehna leh chaw eina hmunah aia upa an bar khalh ngai lo'* (not to start eating before those who are older than you start to eat) which will inculcate the value of respecting elders. Division of work among the different workers, genders, and giving responsibilities show the organised structure of the Mizo society. Women are not expected to go to the village blacksmith's house. So, if a woman is visiting the blacksmith, she will not be made to wait for her turn. Likewise it is considered inappropriate for a man to draw water and so, if a man is visiting the place where water is drawn by the villagers, he will not be made to wait for his turn and can overtake all those who are waiting for their turn to draw water. To describe this, Mizo have an idiom which says, *'Pumah hmeichhia an lal a, tuikhurah mipa an lal'* (Women are given importance at the blacksmith's and men at the village well). The expression, *"Laichin leh mhian inah lo chuan mhalai tan sa chhim loh tur"* (youths must avoid going to the house of others for meat if it is not the house of their friends and relatives) tells us of the way one must behave according to their age and according to the responsibilities they have in the community. These idioms are used

to describe the importance of proper organisation and set up of the village life and Mizo expected to build houses in line with others and maintain proper sanitation. They even say that *"Kawt lama in sak zawm sei chu thihna a ni"* (to extend one's house toward the public road may result in death). These expressions are very much relevant even in today's world.

5. Getting information on Mizo history – A reflection of Mizo history, culture and tradition can be seen from these idioms as these idioms carry folk wisdom and charm with regard to the use of specific language and terms. Mizo ethos and values are clearly reflected through these expression, different characteristics of the Mizo society can be seen and these idioms and expressions are very rich in carrying historical elements with them.

6. Transmission of messages – One of the most important functions of having a language is to send and receive messages and this can be seen in the case of Mizo idioms too. Diverse forms of messages are being transmitted through these proverbs, idioms and expressions. However, it must be known that idioms are not like normal form of expression as they differ a lot in many ways. They are to be understood and explained in order to know its real meaning. The style, the behaviour and the potential that idioms carry has to be studied in order to decipher the real message communicated.

7. Understatement and exaggeration – Idioms are used in many instances as a means of understatement and exaggeration and to carry a hidden meaning behind it. Expressions like *'Ar chil zat'* (same amount as the saliva of a fowl) and *'Ui hum zat'* (that can be carried by the palm of a dog) express the small quantity of the things that are being referred to. *'Ar hmai tiat'* (Equivalent in size to the face of a fowl) is used to express the miniature size of things like land, etc describing how tiny it is. There are numerous expressions which are used as an exaggeration to describe beauty, greatness, vastness, strength, speed, height, depth, etc.

8. Ironic and sarcastic – Idioms can be ironic and sarcastic since they carry hidden meanings with them. Expression like *'Fahrah puan hlai'* (Broad/wide as the blanket of orphans) tells of something which deos not bear a good quality. *'Zadeng tlawm tur ang mai'* mocks the Zadeng tribe, who held many meetings when they were about to surrender to other tribes. This expression is used to refer to meetings that are called very often without much benefit. Traits of sexism and gender stereotyping can be found in plenty in Mizo idioms. Mizo being a pratriarchal society, the victim is often the female gender. However, there are also expressions which favour the female. Let us try to mention some of those idioms:

a) Hmeichhe thu, thu ni suh, chakai sa, sa ni suh (Words of a female are not to be considered seriously just as the meat of a crab is not considered as a real meat)
b) Hmeichhe finin tuikhur ral a kai lo (The wisdom of a female does not cross or go beyond the village well)
c) Hmeichhia leh chakaiin sakhua an nei lo (A woman and a crab are without

religion)

d) Fahrah leh khawtlang an mangrual (Orphans and the community support each other)

e) Khual khuaa makpa thiin feh a kham lo (The death of a son-in-law in another village does not bar one from going to work)

f) Pasal pakhat leh thing phur khat hmuh zawh loh a awm lo (It is not a problem to find one husband and one set of firewood)

g) Nula leh nghalengin duh an thlang (A young girl and a fish have the liberty to choose)

h) Hmeichhia leh uite chuan a chulnel peih apiang an nel (A woman and a dog favour those who are close to them)

i) Nu leh nu insual pain mhelh ngai a ni lo (A man must not stop the fighting of women)

j) Hmeichhe mawng chu menah thlak tur (Women's speech are to be neglected)

References:

Chhangte, Lalnunthangi. A Preliminary Grammar of the Mizo Language. Master's Thesis

—. Mizo Syntax. PhD Dissertation, University of Oregon, Eugene, 1993.

Lianthanga, C. *Hmanlai Mizo Nun*. Aizawl. Mizoram Publication Board. 1999

Ropianga, F. *Mizo lawng Upa Dictionary*. Churachandpur, L&R Printing Press. 1980.

Shaha, Brojo, N. *A Grammar of the Lushai Language*. Calcutta, The Bengal Secretariat Press. 1884.

Zawla, K. *Mizo Pipute leh an Thlahte Chanchin*.Aizawl. Lengchhawn Press. 2000 (5th Edn)

Contribution of Ustad Sharafat Hussain Khan to Indian Classical Music

Dr.Alok Acharjee
Guest Lecturer
SDM Govt. Music College

Abstract

The tradition and heritage of Indian classical music is very old as well as popular. From ancient days itself the journey Indian classical music has been on a spontaneous and profound run. And its popularity is also continuing with ups and downs manner since the old days till the present. Each artist, for keeping the tradition intact has contributed his/her entire life for music and tried his utmost to place music in the highest pedestal in the planet. Since the Vedic period, the concept of gharana and music has been responsibly kept up by the Gurus (teachers) with utmost devotion and dedication and this is still going on. The Guru used to teach the complete aspects of gayanshaili to the students with inextricable care. In later times, the students used to imbibe the teachings of the masters into them and in order to propagate music they constantly tried. They have also tirelessly perspired to place their music in world platform. One of them is Ustad Sharafat Hussain Khan Saheb from Agra gharana. His contribution to Indian music is incredible. I have tried to present his contribution to Indian music as a tiny student of music.

Keywords:
Alapchari, Chiz, Laykari, Gharana, Harkat

Ustad Sharafat Hussain Khan is the name of a brightening star in the galaxy of Indian classical music. Among the varied personalities, who have perspired a lot to grow and enrich the music of Agra gharana, Utsad Sharafat Hussain Khan is one of them. He was not much of a dynamic singer, rather he was the singer of top level who was constantly engrossed in music and tried to see the image of God or Allah in that. There are many stalwarts in Indian music who have followed the path shown by the master and imbibed the singing style of that particular gharana and represented that in front of public; Ustad Sharafat Hussain Khan is one of them. Within a very short span of time, he has learnt and made expertise out of himself on all the nuances

of singing and came out as a perfect singer before his audiences. Since all the other members of his family in some way or the other was related to music, whatever requirements were needed he had achieved all from his family. Along with the blessings of the parents, he was also blessed with talim from several legends and stalwarts; he came out as a maestro of singing at a very tender age. Many believe that he was a child prodigy. With the blessings of Allah or God this is next to impossible to achieve such a place in the realm of singing.

This child prodigy took birth in the year 1930 in a village called Atrouli, Uttar Pradesh. As the fact of the matter goes, he was raised in the environment of musical family and he started learning from his father from a very early age. He was the youngest among three brothers and sisters and was very much pampered. His learning of music started via a game like manner. In Atrouli village their house was named as ''Moushiki Manzil"to everyone. If anyone used to pass by their house, they could easily understand that music practice is going on in the house. Everyday music practice was a daily routine in that house. All the members of the family were associated with music. His father Liyaquat Hussain Khan was appointed as a court singer in the royal house of Jaipur. His mother Allah Rakhi Begam was also related to music. One of his brothers, Hasmat Ali Khan was a tremendous Sitar player. His sister Digban Begam was greatly fond of music. From this it is very much clear that he was raised in a musical family and that is the reason he could learn many difficult things of music at very early age. Moreover, all the relatives of his family were associated with Jaipur Gharana. In the musical assembly of ''Moushiki Manzil" there used to be gatherings of many stalwarts of music fraternity. It will not be an exaggeration to state that it was an assembly of stars. Not only they used to perform, rather all the members in those musical gatherings used to discuss about music in an openly manner.

Sharafat Hussain Khan at an early age came in contact with such maestros those who were mega stars of Indian music. The first phase of his music learning took place when he was 4 years of age from his father. Then one day Ustad Faiyaz Khan came to 'Moushiki Manzil.' That day after listening to his performance Ustad Faiyaz Khan was eagerly glad and stunned. In that early age his voice had several harkat, murki and command over tone, moreover use of various complicated taan. Right after listening him, Ustad Faiyaz Khan requested his mother Allah Rakhi Begam to take him to Baroda along with him. He wanted to teach this child in a full-fledged manner over there in all sorts of gayanshaili. Since he was child, firstly his mother refused. But later on, thinking about the future he was sent along with Ustad Faiyaz Khan Sahib to Baroda. When he reached the age of 9, with the inspiration of Ustad Faiyaz Khan teaching of music to Ustad Sharafat Hussain Khan started with full kinetics. He started taking talim following the rules of Agra gharana. In every part of India, wherever he went for performance Ustad Faiyaz Khan has kept Ustad Sharafat Hussain Khan for

playing tanpura along with him. This is how the journey of music started for Ustad Sharafat Hussain Khan. All the genres of classical music like Dhrupad, Dhamar, Khayal, Tappa, Thumri etc. He was mastered by him. He constantly applied the phrases of raga appropriately and from his early childhood he tried to maintain the clarity of raga and this thing was evidently present in his gayanshaili. His second phase of learning started from Ustad Ata Hussain Khan, who was a deserving disciple of Ustad Faiyaz Khan, right after the death of the latter.

When he was the age of thirty, he used to perform in all big musical concerts of India. At that time, there was not a single famous musical concert without the performance of Ustad Sharafat Hussain Khan. According to the tradition of Agra gharana he used start gayan with Nom tom alap, alapchari, which is a very essential feature of Agra gharana was well maintained by him in his performances. He had an immensely powerful voice, even in some events he sang without any kind of sound system in front of hundreds of audiences. He had immense respect for tune and he was perfect in laya. It was almost his habit to play with laya. Those who accompanied him with Tabla, all of them were maestros of the prevalent time like – Pandit Kishan Maharaj Ji, Keramatullah Khan Sahib, Mahapurushar Mishra Ji etc. He not only learnt music for himself rather he also passed on this music to the next generation by teaching music to students and disciples. Later on, in Saptak Academy of Ahmadabad with the inspiration of Nandan Mehta he started teaching students with utmost care.

Ustad Sharafat Hussain Khan was such a personality that along with that good performer he was also a fantastic guru and a revered man in the society. Following his trend many students continued the gharana tradition and some important names in that category are – Shaukat Hussain Khan(son), Purnima Sen(disciple) etc. His contribution in Indian classical music is immense. He has provided many bandish or Chiz to Indian music which proved hugely beneficial to the students and learners of gharna tradition. Many of his composed bandish is sung in his gharana and along with that various artist from other gharans also perform them. The qualities required for being a good singer, he had all of them and at the same time he was an extraordinarily talented composer also. After analysing many of his bandish, it can be understood that without having expertise on wordings and its feel or sentiment no one can become a brilliant bageyakar. In many of his bandish his pen name "Prem Rang" has been used and that is evidential. He has composed many bandish on different raga. He has also tried to sing in many uncommon taal. He himself composed various taal. He composed bandish in Raga Multani in keyed ki sawari with fourteen matra tala.

"Jogunion ko jane sohi mane
Murakh keya pehchan e Prem piya ratanpiya jaise mahaguniyanko
Prem ranga das bhaio he kaparata guman".

He has awarded both publicly and privately in various places of India for his tremendous contribution to Indian music. One of the prime important

incidents of his life was in All Bengal Musical Conference at Kolkata, all Indian musical maestros came like Hafiz Ali Khan and Bade Ghulam Ali Khan and he was conferred the appellation of "**Rising of the Sun**". Apart from that he was also awarded with **Padmashri** by Govt. of India, Sangeet Natak Academy and many more like this.

Lastly, it can be said that he will be always in the heart of millions for his personality and contribution to the overall growth of Indian music. He will always be an inspiration for millions. In his short span of 55 years of life, whatever he has done will always be remembered. There was never an iota of pride in his character. That is the reason his singing and performance was filled with simplicity and he was continued with this till his last day. It is not that people Agra gharana remember him but people from other gharana also equally remember him with dignity and respect. He is paid tribute through his compositions till date. Apart from that he is going to be an idol and inspiration for the new generation of music students and learners. His contribution will shine like a bright star for the admirers of Indian classical music forever.

References

1 Haldankar,B (2001).Aesthetics of Agra Gharana and Jaipur Traditions.Volume1,Page96 -99,Popular Prakashan Mumbai,ISBN-81-7154-685-4

2 Biswarup,B(2002).Agra Gharana –Raga gayan ke Khetre mainAgra gharana ki samagra bisheshatao ke parjyalochan.Volume1,Page66-67,Anup Printing Shap Khairagarh

3 Ghosh,T.(2008)Pran Priya Ustad Vilayat Hussain Khan His life contribution to the World Music.Volume1,Page144,Atlantic New Publishers Delhi,ISBN 978-81-269-0855-4

4 Khan, Hussain Shaukat. About Ustad Sharafat Hussain Khan. Interview .2017.

5 Khan, Waseem Ahmed .About Ustad Sharafat Hussain Khan. Interview.2017.

6 https://www.telegraphindia.com/opinion/living-memories-and-a-father-s-voice/cid/1440689

7 ' https://en.wikipedia.org/wiki Sharafat_Hussain_Khan

विद्याधरी बाई : तुम्हारी आवाज़ में तुम्हारी जड़े हैं।

डॉ. उषा आलोक दुबे
सहायक प्राध्यापक – हिन्दी विभाग
एम. डी. महाविद्यालय, परेल, महाराष्ट्र

डॉ. मनीष कुमार मिश्रा
सहायक प्राध्यापक – हिन्दी विभाग
के.एम.अग्रवाल महाविद्यालय, कल्याण, महाराष्ट्र

सारांश

ठुमरी की अन्य गायिकाओं की ही तरह विद्याधरी बाई के जीवन से जुड़ी हुई अधिकांश बातें अज्ञात ही हैं। बिखरे हुए रूप में जो थोड़ी बहुत सामग्री मिलती भी है, उसकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। ऐसे में जो सूचनाएँ हमें तर्क संगत लगीं उन्हें एक-एक कड़ी के रूप में जोड़ते हुए हम कुछ बुनियादी बातों को इस शोधपत्र के रूप में प्रस्तुत कर सके। बहुत संभव है कि विद्याधरी बाई के जीवन से संबंधित बहुत से रंग, कुछ मौसम हमसे छूट गए हों। उनके गायन और सांगीतिक पक्ष पर भी हम बात नहीं करते क्योंकि वह हमारा विषय नहीं है। भूले बिसरे इतिहास को समेटने की दृष्टि से हम थोड़ा सकारात्मक अतिक्रमण संगीत के क्षेत्र में ज़रूर कर रहे हैं।

बीज शब्द

ठुमरी, बनारस, तवायफ़, संगीत साधना, विद्याधरी, कोठे का संगीत, उपशास्त्रीय गायन

विद्याधरी बाई के जन्म के संदर्भ में सन 1874 एवं 1881 इन दोनों वर्षों के संदर्भ मिलते हैं। आप की मृत्यु सोमवार, 10 मई 1971 को बनारस के 'मुक्ति भवन' में हुई। कई जगह मृत्यु के समय इनकी मृत्यु 103 वर्ष बतायी गई है। अगर मृत्यु के समय इनकी उम्र 103 वर्ष मानी जाय तो इस हिसाब से इनके जन्म की उपर्युक्त दोनों तिथियाँ गलत साबित होती हैं, और इनका जन्म वर्ष 1868 के आस-पास बनता बनता है। लेकिन व्यापक रूप से सन 1874 को ही इनका जन्म माना जाता है। यह ठीक भी है क्योंकि ये गौहर जान की समकालीन थीं और गौहर का जन्म वर्ष 1873 में है। आप का जन्म बनारस के निकट चंदोली के एक गाँव 'जसुरी' में हुआ। यह गाँव चंदोली जिला मुख्यालय के दक्षिण में स्थित है। चंदौली वर्ष 1997 में वाराणसी जनपद से अलग कर के नया जनपद बना। आप के पिता का नाम बुझावन राय एवं माता का नाम भुट्टी या मट्टा देवी था। आप के दादा पुरषोत्तम राय स्वयं बड़े संगीत साधक थे। आप के छोटे भाई का नाम सरयू राय और भतीजे का नाम भगवती राय था। भगवती राय अब इस दुनियाँ में नहीं हैं।

विद्याधरी बाई ने संगीत की शिक्षा रामसुमेर उर्फ़ सुमेरु उस्ताद, रामसेवक जी, दरभंगा राज दरबार के उस्ताद खाँ साहब, नसीर खाँ और बशीर खाँ से प्राप्त की। ब्रिटिश शासन के दौरान तत्कालीन बंगाल सूबे के 18 सर्किल के हज़ारों गांव दरभंगा

नरेश के शासन में थे। राज्य की शासन व्यवस्था देखने के लिए हजारों अधिकारी बहाल थे। भारत के रजवाड़ों में दरभंगा राज का अपना खास ही स्थान रहा है। दरभंगा नरेश कामेश्वर सिंह को अंग्रेज शासकों ने 'महाराजाधिराज' की उपाधि दी थी। दरभंगा महाराज संगीत और अन्य ललित कलाओं के बहुत बड़े संरक्षक थे। 18वीं सदी से ही दरभंगा हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत का बड़ा केंद्र बन गया था। उस्ताद बिस्मिल्ला खान, गौहर जान, पंडित रामचतुर मल्लिक, पंडित रामेश्वर पाठक इस दरबार से जुड़े हुए थे। इस दरबार में उस्ताद खाँ साहब की बहुत इज्जत थी। विद्याधरी बाई को उस्ताद खाँ साहब, नसीर खाँ और बशीर खाँ साहब से जुड़े रहने का बहुत फ़ायदा हुआ।

पिता की मृत्यु के बाद विद्याधरी बाई अपनी माँ के साथ बनारस आ गईं और यहाँ पंडित दरगाही मिश्र एवं पंडित मिठाई लाल से भी शिक्षा ग्रहण की। गोस्वामी दामोदरलाल से आप ने 'कामसूत्र' की भी शिक्षा ली थी। सन 1987-88 तक 13-14 वर्ष की आयु में आप ने संगीत की अपनी बुनियादी शिक्षा पूरी कर ली थी। बनारस के दालमंडी इलाके में जहां आज 'नारायण दास की कोठी' है, वहीं विद्याधरी बाई का आवास था। कुछ स्थानों पर संदर्भ मिलता है कि बनारस के सूत टोला में रहनेवाले खेड़ावाल गुजराती ब्राह्मण दुर्गा शंकर जोशी आप के संरक्षक थे। यद्यपि प्रामाणिक रूप से यह नाम स्वीकार करने के लिए कोई ठोस स्थितियाँ हमारे पास नहीं रहीं। दुर्गा शंकर जोशी पेशे से एक जौहरी थे। बताते हैं कि आप के जड़ाऊ गहने और कपड़े दुर्गा शंकर जोशी बड़े मन से तैयार करवाते। इसके पीछे मामला सिर्फ़ विद्याधरी बाई के प्रति प्रेम का नहीं अपितु व्यापार की सूझबूझ भी थी।

बड़ी-बड़ी रियासतों में जब विद्याधरी बाई संगीत की प्रस्तुतियों के लिए जाती तो इनके पूरे व्यक्तित्व से राजघरानों एवं जमीदारों के परिवार की स्त्रियाँ प्रभावित होती। इनका पहनावा, इनके गहने, सब कुछ एक 'फ़ैशन आइकॉन' जैसा होता। स्त्रियाँ बड़ी उत्सुकता से उनके 'फ़ैशन डिज़ाइनर' का नाम पता जानना चाहती। इस तरह इनके 'फ़ैशन डिज़ाइनर' भी राजे-रजवाड़ों से सौदा पाकर मालामाल हो जाते। यह बात सिर्फ़ विद्याधरी बाई ही नहीं अपितु सभी बड़ी नामचीन तवायफ़ों के साथ था। इन सभी के कपड़े, गहने यहाँ तक कि इनकी जूतियाँ बनानेवाले व्यापारी भी इन बड़ी फ़नकाराओं को अपने 'ब्रांड की मॉडल' के रूप में इस्तमाल करते थे। गौहर जान इसी संदर्भ में अपने समय की सबसे महंगी और 'स्टायलिश' मॉडल कही जा सकती हैं। अपनी हर रिकार्डिंग में नए कपड़े और गहने पहन के जाने के पीछे सिर्फ़ शौख और शोख़ी नहीं अपितु उनके बहाने अपनी भी 'ब्रांड इमेज' बनाये रखने की बात थी। सन 1902 में उन्हें ग्रामोंफोन रिकार्डिंग कंपनी 3000 रुपये 'प्रति टाइटल' अगर देने को तैयार होती है तो इसके पीछे एक बड़ा कारण बाजार में गौहर जान की 'मार्केट वैल्यू' और 'ब्रांड इमेज' थी। 'प्रति टाइटल' किसी भी रिकार्डिंग कंपनी ने इतनी बड़ी रकम 30-40 के दशक में भी किसी अन्य गायिका को नहीं दिया। कलकत्ता, बनारस और बलरामपुर में कई महफ़िलों में विद्याधरी बाई इन्हीं गौहर जान के साथ प्रस्तुति की बात अमृतलाल नागर के साथ बातचीत के दौरान स्वीकार करती हैं।

इन बड़ी गायिकाओं को 'स्टेटस सिम्बल' ऐसे ही नहीं कहा जाता था। ये बड़ी-बड़ी नामचीन तवायफें अपने समय के 'मनोरंजन' एवं 'व्यावसायिक विज्ञापन' उद्योग की धुरी मानी जा सकती हैं। ये अपने आप में पूरा एक 'संस्थान' हुआ करती थी। इनकी बदौलत सैकड़ों परिवारों को रोज़गार उपलब्ध होता। ये अनायास नहीं था कि लखनऊ और बनारस की तवायफ़ें अपने समय में सबसे अधिक इनकम टैक्स भरने वाले लोगों की फेहरिश्त में शामिल थीं। ये अपने समय के फ़ैशनपरस्त एवं धनी समाज के बीच बड़े सम्मान और आदर का जीवन जीती थीं। बनारस की जनसंख्या सन 1857 से सन 1947 के बीच लगभग 02 से 02.5 लाख की थी। जिसमें व्यापारी वर्ग करीब सात से आठ हज़ार की जनसंख्या में था। इन व्यापारियों में महंगे कपड़े, गहने और सौंदर्य प्रसाधनों का बड़ा

व्यापार परोक्ष – अपरोक्ष रूप से इन नामचीन तवायफ़ों के माध्यम से ही होता था।

काशी नरेश ईश्वरी नारायण सिंह भी विद्याधरी बाई पर विशेष कृपा रखते थे। काशी नरेश ने आप को अपनी दरबारी गायिका के रूप में नियुक्त किया था। बड़ी मलका जान, गौहर जान, सरस्वती बाई, वज़ीर जान, राजेश्वरी बाई, टॉमी बाई, शिव कुँवर, अच्छन बाई, काशी बाई, कमलेश्वरी बाई, हुस्ना बाई, चन्द्रा बाई, रसूलन बाई, सिद्धेश्वरी बाई इत्यादि आप की समकालीन थीं। इन सभी को आप ने देखा और सुना। 'चन्द्रा बाई' को आप अपने खानदान की कहती थी। विद्याधरी बाई ने अपने समय की तमाम बड़ी-छोटी गायिकाओं को प्रभावित किया। सिद्धेश्वरी बाई पर आप का विशेष स्नेह था। बड़ी मौसी राजेश्वरी बाई से जब सिद्धेश्वरी देवी की अनबन हुई थी तो लाखों की संपत्ति छोड़ उन्हें अपना ठौर-ठिकाना बदलना पड़ा था। ये उनके लिए बड़े कष्ट भरे दिन थे। ऐसे में जब वे विद्याधरी बाई के पास सहायता माँगने गईं तो विद्याधरी बाई ने एक माँ की तरह उन पर ममता लुटाई और हर संभव मदद प्रदान की। यहाँ तक कि किसी महफ़िल में प्रस्तुति देने के लिए उन्हें अपना पेशवाज़ भी दिया। सिद्धेश्वरी बाई, विद्याधरी बाई का माँ की तरह सम्मान करती। विद्याधरी बाई के बारे में वैसे भी कहा जाता है कि वे बड़ी मृदु स्वभाव की शालीन महिला थीं। भजनों के गायन में आप की विशेष रुचि थी। टप्पा, ठुमरी, दादरा, चैती, होरी समेत पूरबी अंग की तमाम गायन विधाओं में आप की प्रस्तुति उत्कृष्ट मानी जाती थी।

जिन रियासतों की महफ़िलों में आप नियमित रूप से संगीत की प्रस्तुतियों के लिए जाती रहती थीं उनमें पंजाब, पेशावर, पटियाला, ढाका, रतलाम, दरभंगा, मुज़, इंदौर, रामपुर और जांवरा रियासतें प्रमुख थीं। उस समय भारतीय उपमहाद्वीप की अधिकांश रियासतों में एक कोकिल कंठी गायिका के रूप में आप का दबदबा था। जिन गीतों को आप ने प्रमुखता से गया उनमें चौंक पड़ी मैं तो पिया के जगाये, सांची कहो मोसे बतिया, मुरली वालो श्याम, अरमान रह न जाये, मैं ना जाऊँ नदिया किनारे, बजाई बांसुरिया नंदलाला, कौन गली गयो श्याम इत्यादि गीत प्रमुख थे। जयदेव की अष्टपदी और गीत गोविंद के पदों को रागों में पिरोकर गाने के लिए विद्याधरी बाई विशेष रूप से जानी जाती थीं। पंजाबी, मराठी, बंगाली और गुजराती समेत आप आठ से दस भाषाओं में गीत प्रस्तुत करती थीं। अपने कई गीत वे स्वयं लिखती व उन्हें स्वरबद्ध करती। गेहुएँ रंग और मझौले कद की बड़ी-बड़ी आखों वाली दुबली पतली छरहरे बदन की विद्याधरी बाई का व्यक्तित्व चुंबकीय था। लोग उन्हें महफ़िलों का रोशनदान कहते थे। प्रख्यात गायिका अंजनी बाई मालपेकर कहा करती थी कि ' पुरानों में विद्याधरी ने ठुमरी की दुनिया पर राज किया।

अपने संरक्षक दुर्गा शंकर जोशी एवं भाई के देहांत के बाद विद्याधरी बाई सन 1934-35 के आस-पास अपने पैतृक निवास चंदोली के गाँव 'जसुरी' आकर रहने लगती हैं। इस बात का आधार यह है कि नागर जी सन 1938 तक लगातार बनारस जाने की बात करते हैं। यहीं उन्हें सिद्धेश्वरी बाई से पता चलता है कि विद्याधरी बाई दस- पंद्रह वर्षों से अपने गाँव में रह रही हैं। इसी आधार पर हमने अनुमान लगाया कि सन 1935 के आस-पास उम्र के 60-65 बसंत पूरे करने के बाद वे गाँव आ गई होंगी। यहाँ उनका उस जमाने में दो मंज़िला मकान था। बाग-बगीचा था। बगीचे की सिचाई के लिए उनका बनवाया एक कुआं आज भी मौजूद है। हिन्दी के जानेमाने कथाकार अमृतलाल नागर अपनी किताब 'ये कोठेवालियाँ' में सिद्धेश्वरी देवी के साथ विद्याधरी बाई से मिलने 'जसुरी' गाँव जाने का जिक्र करते हैं।

विद्याधरी बाई उनसे कहती भी हैं कि सब को रिझा चुकी अब मेरे ईश्वर रीझ जायें तो जीवन सफल हो। विद्या दान को श्रेष्ठ दान मानते हुए वे गाँव के कुछ बच्चों को संगीत की शिक्षा भी देती थीं। आजादी के मतवाले सिपाहियों की मदद का आरोप उनपर हमेशा लगता रहा। बनारस में उनके

कोठे पर अंग्रेजों द्वारा लगातार छापे भी मारे गए लेकिन कभी कोई सबूत मिला नहीं। जब वे अपने गाँव रहने आ गईं तब भी उनके निवास पर आजादी के मतवालों को शरण देने की बात कही जाती रही है। सन 1920-22 में असहयोग आंदोलन के दौरान महात्मा गाँधी ने विद्याधरी बाई से स्वयं अपने आयोजनों में आज़ादी के गीत गाने, उन्हें रचने और दूसरों को भी इसके लिए प्रेरित करने की बात कही थी। विद्याधरी बाई ने ऐसा किया भी। इतना ही नहीं अपितु उन्होने विदेशी कपड़े भी पहनने छोड़ दिए थे। वे अपने लिखे निम्नलिखित गीत की चर्चा अमृतलाल नागर जी को लिखे पत्र में करती हैं।

'चुन चुन के फूल ले लो अरमान रह न जाए
ये हिन्द का बगीचा गुलज़ार रह न जाए।

ये वो चमन नहीं है लेने से वो उजाड़
उल्फत का जिसमें कुछ भी एहसान रह ना जाए
भर दो जवान बन्दों जेलों में चाहे भर दो
माता पे कोई होता कुर्बान रह न जाए
छल को फरेब से तुम भारत का माल लूटो
इसके लिए यहाँ कोई सामान रह न जाए।

चुन चुन के फूल ले लो अरमान रह न जाए
ये हिन्द का बगीचा गुलज़ार रह न जाए

भारत न रह सकेगा हरगिज़ गुलामखाऩा
आज़ाद होगा होगा आया है वो ज़माना
खून खौलने लगा है अब हिंदुस्तानियों का
कर देंगे ज़ालिमों का बंद बस जुर्म ढाना
कौमी तिरंगे झंडे पे जान निसार उनकी
हिन्दू मसीह मुस्लिम गाते हैं ये तराना
परवाह अब किसे है इस जेल को दमन की
इक खेल हो रहा है फांसी पे झूल जाना
भारत वतन हमारा भारत के हम है बच्चे
माता के वास्ते है मंज़ूर सिर कटाना

चुन चुन के फूल ले लो अरमान रह न जाए
ये हिन्द का बगीचा गुलज़ार रह न जाए।'

विद्याधरी बाई, काशी।

ऐसे कई अन्य गीत भी उन्होने लिखे थे। शोभा मुदगल के वर्ष 2008 में आए एलबम 'स्वाधीनता समर गीत' में यह गीत शामिल है। इसे संगीत शोभा मुदगल के पति अनीस प्रधान ने दिया है। गाँधी जी की प्रेरणा से ही बनारस में 'तवायफ़ सभा' हुई जिसकी अध्यक्ष हुस्ना बाई थी। इस आयोजन की पूरी व्यवस्था विद्याधरी बाई ने ही की थी। इस सभा में ही तवायफ़ों से सोने की जगह लोहे के गहने पहनने की अपील की गई, जो कि गुलामी का प्रतीक माना जाय। स्वाधीनता आंदोलन के लिए चंदा भी जमा किया गया जिसे गाँधी जी ने लेने से इनकार कर दिया था। गाँधी जी का मानना था कि जब तक तवायफ़ें अपने व्यवसाय को छोड़ नहीं देती तब तक उनसे चंदा लेना या काँग्रेस की सदस्य बनाना ठीक नहीं होगा।

अपनी संपादकीय में गाँधी जी साफ लिखते हैं कि, **"**I am firmly of opinion that, so long as they continue the life of shame, it is wrong to accept donation or services from them or to elect them as delegates or to encourage them to become members of the congress

'यह संपादकीय गाँधी जी ने जून 1925 में 'यंग इंडिया' के लिए लिखते हैं। इस संपादकीय में उन्होने विस्तार से तवायफ़ों से संबन्धित चर्चा की है। ऐसा करने के पीछे एक दूसरा कारण यह भी था कि आंदोलन में पहले से जुड़ी भद्र महिलाएं इन तवायफ़ों को अपने पास देखना भी नहीं चाहती थीं। यही हाल मध्यम वर्गीय महिलाओं का भी था, जिनकी संख्या अधिक थी।

विद्याधरी बाई के विवाह की चर्चा कहीं नहीं मिलती। कई जगह उन्हें अविवाहित ही बताया गया है। लेकिन अमृतलाल नागर जी से बात-चीत के दौरान वे अपनी बेटी और उसकी शादी कराने का जिक्र करती हैं। वे कहती हैं कि, 'मेरी लड़की की

भी शादी हो गई। तभी कर दी थी, क्योंकि हमारे ही टाईम से यह उपद्रव दुनियाँ में शुरू हो गया था और अब तो जो हो रहा है उसे देख ही रहे हैं। मैं अपनी लड़की को सिखाती, अपनी गद्दी का ख़याल करती तो खराबी आती। मैं तो सब को यही सलाह देती हूँ कि शादी कर दो। (ये कोठेवालियाँ – अमृतलाल नागर, पृष्ठ क्रमांक – 153)'' इससे यह स्पष्ट है कि उनकी एक बेटी थी। बहुत संभव है यह बेटी उनकी और उनके संरक्षक रहे जोशी जी की हो। हालांकि इस संदर्भ में कहीं और कुछ पढ़ने को नहीं मिलता। संदर्भ मिलते हैं कि सूत टोला में रहनेवाले खेड़ावाल गुजराती ब्राह्मण दुर्गा शंकर जोशी जो कि विद्याधरी बाई के संरक्षक थे, उनकी मृत्यु के बाद उनके परिवार जनों ने विद्याधरी बाई पर 'अमानत में खयानत' संबंधी आरोप लगते हुए मुकदमा कर दिया था। यह मुकदमा बाद में दुर्गा शंकर जोशी के बेटे द्वारा दिये बयान के बाद ख़ारिज हुआ। उन्होने विद्याधरी बाई के पक्ष में बयान दिया था।

ऑल इंडिया रेडियो के लिए कार्यक्रम विद्याधरी बाई अपने गाँव में रहते हुए भी देती रहती थीं। उनके भतीजे अपने एक पुराने साक्षात्कार में बता चुके हैं कि ऑल इंडिया रेडियो की गाड़ी आती, उनका गाना रिकार्ड कर ले जाती। जिसे बाद में रेडियो पर प्रसारित होने पर सुना जाता। देश भक्ति से जुड़े विद्याधरी बाई एवं हुस्ना बाई के कुछ गीतों की रेकार्डिंग हुई ज़रूर थी लेकिन वर्तमान में उसकी कोई डिस्क उपलब्ध नहीं है। ग्रामोफोन के रिकार्ड संबंधी दस्तावेज़ भी ऐसे नहीं मिले जिसमे विद्याधरी बाई की रिकार्डिंग की विधिवत सूचना हो। कुछ रिकार्डिंग यूट्यूब पर ऐसी ज़रूर हैं जहां हुस्ना बाई और विद्याधरी बाई दोनों हैं। देश भक्ति के तराने गाने वाली तवायफ़ों में कलकत्ता की इंदु बाला भी प्रमुख थीं। इंदु बाला गौहर जान की शिष्या थी। इनका गाया गीत 'प्यारा वतन हमारा' बड़ा ही लोकप्रिय हुआ था। इतना तो स्पष्ट है कि आजादी की लड़ाई में विद्याधरी बाई का अपना विशेष योगदान रहा है।

विद्याधरी बाई की मृत्यु सोमवार, 10 मई 1971 को बनारस के 'मुक्ति भवन' में हुई थी। इस मुक्ति भवन का सन 1908 में निर्माण बनारस के गोदोलिया इलाके में कराया गया था। जीवन के अंतिम दिनों में लोग यहां मोक्ष प्राप्त करने के लिए आते हैं। हिंदू मानते हैं कि वाराणसी में मर कर वो जीवन मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाएंगे यानि उन्हें मोक्ष मिल जाएगा। यहाँ आने वाले लोग लगभग इस अवस्था में लाये ही जाते हैं जब वे किसी भी क्षण देह त्याग दें। यहां यह शर्त होती है कि जो व्यक्ति मोक्ष की कामना के साथ यहाँ लाया गया है उसके साथ सेवा के लिए उनके परिजन भी अवश्य रुकें। मोक्ष की कामना के साथ यहां पर अधिकतम 15 दिनों तक रुका जा सकता है। कहते हैं कि विद्याधरी बाई जिस दिन यहाँ पहुंची उसकी अगली सुबह ही एक दम भोर में उनकी मृत्यु हो गई। सन 1956 के बाद यहाँ आने वाले लोगों का विवरण रजिस्टर में दर्ज है। इस तरह बनारस की कोकिल कंठी गायिका माँ गंगा की गोंद में हमेशा के लिए सो गई। लेकिन कुछ स्थानों पर चर्चा मिलती है कि विद्याधरी बाई अपने अंतिम दिनों में दिल्ली आ गई थीं और अंतिम साँस तक यहीं रहीं।

The oxford Encyclopaedia of the music of India, Vol. 3, sangeet Mahabhari पृष्ठ संख्या 1127 के अनुसार श्रीमान के.डी. बृहस्पति विद्याधरी बाई से मिलने उनके गाँव सन 1961 गए और अपनी पत्नी सुलोचना को संगीत सिखाने के संदर्भ में दिल्ली आने का निमंत्रण दिया। जिसे विद्याधरी बाई ने स्वीकार कर लिया और अपने अंतिम दिनों तक वहीं रहीं। जो लिखा गया है वो मूल रूप से यह है कि, " In 1961 when musicologist K. D. Brihaspati met her, she was living in a village called 'jasuri' as a recluse he invited her to Delhi with a request to give some music lessons to his wife sulochna. She agreed and lived in Delhi till her last days."

लेकिन सन 1961 में किसी को संगीत सिखाने के लिए दिल्ली जाने वाली बात अनुचित जान पड़ती है। सन 1961 में विद्याधरी बाई की उम्र 80-85 के बीच होगी। ऐसे में घर परिवार के लोगों को छोड़ दिल्ली जाने की बात व्यावहारिक नहीं लगती।

ठुमरी की अन्य गायिकाओं की ही तरह विद्याधरी बाई के जीवन से जुड़ी हुई अधिकांश बातें अज्ञात ही हैं। बिखरे हुए रूप में जो थोड़ी बहुत सामग्री मिलती भी है, उसकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। ऐसे में जो सूचनाएँ हमें तर्क संगत लगीं उन्हें एक-एक कड़ी के रूप में जोड़ते हुए हम कुछ बुनियादी बातों को इस शोधपत्र के रूप में प्रस्तुत कर सके। बहुत संभव है कि विद्याधरी बाई के जीवन से संबंधित बहुत से रंग, कुछ मौसम हमसे छूट गए हों। उनके गायन और सांगीतिक पक्ष पर भी हम बात नहीं करते क्योंकि वह हमारा विषय नहीं है। भूले बिसरे इतिहास को समेटने की दृष्टि से हम थोड़ा सकारात्मक अतिक्रमण संगीत के क्षेत्र में ज़रूर कर रहे हैं। विद्याधरी बाई की आवाज़ में ही उनकी जड़ों के निशान मिलेंगे। आने वाली पीढ़ियाँ इस संगीत साधिका को लेकर सक्रिय अकादमिक हस्तक्षेप कर सकें उसी कड़ी में हमारा यह विनम्र प्रयास इस आलेख के रूप में आप के सामने है।

संदर्भ सूची :

1. ये कोठेवालियाँ – अमृतलाल नागर। लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद। संस्करण 2008।
2. बनारसी ठुमरी की परंपरा में ठुमरी गायिकाओं की चुनौतियाँ एवं उपलब्धियां (19वीं-20वीं सदी) – डॉ. ज्योति सिन्हा, भारतीय उच्च अध्ययन केंद्र, शिमला। प्रथम संस्करण वर्ष 2019।
3. महफ़िल – गजेन्द्र नारायण सिंह। बिहार ग्रंथ अकादमी पटना। संस्करण 2002।
4. https://www.bbc.com/hindi/india-37661820
5. **http://103.35.120.216/bbc-hindi-news/gauhar-jaan-118062700018_1.html**
6. **https://www.jagran.com/uttar-pradesh/chandauli-yadshhari-bai-chr39-s-songs-stirring-enthusiasm-in-revolutionaries-18290910.html**
7. **https://www.youtube.com/watch?v=_ig58.**
8. **http://jhumritalaiya.com/vidyadhari-had-sung-the-first-mujra-of-patriotism/**

दिनेश कुमार शुक्ल की कविताओं में चित्रित ग्राम्य-बोध

डॉ. चंद्रकान्त सिंह

सहायक आचार्य (हिन्दी)
हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला

सारांश

प्रस्तुत आलेख में समकालीन हिंदी कविता के सशक्त हस्ताक्षर दिनेश कुमार शुक्ल की कविताओं में अभिव्यक्त गँवई-चेतना के अध्ययन का प्रयास किया गया है। दिनेश कुमार शुक्ल अपनी कविताओं के द्वारा प्रकृति एवं मनुष्य के सहजीवन की अद्भुत आपसदारी रचते हैं। उनकी कविताओं में लोक अपनी ठसक के साथ अभिव्यक्त होता है, प्रकृति के साथ कदम कदम पर कवि का जुड़ाव दिखता है। यही नहीं उनकी कविताएँ किसानी संघर्ष को दिखाने के साथ किसानी जीवन की मस्ती, आह्लादकता और प्रेम को भी दर्शाती हैं। इन कविताओं की सबसे बड़ी खूबी इनका जीवन-केन्द्रित होना है यही कारण है कि विपुलता, व्यापकता एवं एकतानता इन कविताओं का केन्द्रीय स्वर है।

वैश्वीकरण की आहट ने गाँवों को बदल कर रख दिया है; कवि ने अपनी कविताओं में जिस ग्राम्य-जीवन को दर्शाया है वह परिवर्तित है। संस्कृति का विघटन भी दिनेश जी की कविताओं में दिखता है किन्तु किसानों के अदम्य साहस, दृढ़ व्यक्तित्व एवं जीवन के प्रति स्वीकार-बोध ने कविता को जड़ एवं तापहीन बनने से बचाया है। पूँजी के अथाह प्रसार एवं बाजारवाद की भौतिक चकाचौंध से दिनेश कुमार शुक्ल की कवितायें न केवल टकराती हैं बल्कि बाजारवाद का विकल्प भी प्रस्तुत करने का प्रयास करती हैं। पूँजी के वीभत्स रूप और किसानों के प्रति दमनतंत्र को भी दिनेश कुमार शुक्ल की कविताएँ बखूबी समझती हैं यही कारण है कि इन कविताओं में आर्तनाद है, पीड़ा है और अतीत को सहेजने का बोध भी है। लोक-संवेदना के विरूपित सच को दर्शाने के साथ-साथ दिनेश कुमार शुक्ल की कवितायें बाजार के वास्तविक चरित्र को खोलने का कार्य करती हैं। ग्राम्य जीवन की अनगढ़ता, तनाव एवं विषमता इन कविताओं में दिखती है किन्तु इसके साथ मनुष्य की जीवटता, संघर्ष और प्रतिरोध की बानगी भी इन कविताओं का मूल रूप है जिसे कवि ने शब्दबद्ध किया है।

प्रस्तुत आलेख में ग्राम्य जीवन की सहकारिता, सहयोग-भावना, मैत्री आदि को दर्शाने के साथ भाषिक स्तर पर हुए परिवर्तनों को भी देखने-समझने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द

लोक-संसक्ति, वैश्वीकरण, ग्रामीण-बोध, लोक-माटी, जीजिविषा-शक्ति

दिनेश कुमार शुक्ल की कविताओं का अपना लोक है जिसमें समकालीन विसंगतियों के साथ लोक-संसक्ति का बोध है। उनकी कविताएँ दूर से ही पहचान में आने वाली हैं जिनमें परिवेश की तीक्ष्णता, यथार्थ की जीवटता के साथ समय के सत्य को कहने-सुनने अपना ही ढंग है। यह कहा जा सकता है कि कवि ने युगीन समस्याओं की ओर संकेतों में बात करते हुए एक विशेष मुहावरा विकसित किया है जिसमें ज़मीनी सच्चाई है। उनकी कविताओं को सामान्य व्यक्ति की जबांदानी या हलफनामा कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। वैश्वीकरण के बाद जिस तेजी से बाजारवाद की आँधी ने समूचे विश्व को आलोड़ित किया, उसका विषम रूप अपनी विकरालता के साथ उनकी कविताओं में स्पष्ट है। खेतों के संकट, आर्थिक बदहाली, किसानों की दयनीय स्थिति, लोक-माटी के महत्त्व आदि को उनकी कविताएँ विविध दृश्यावलियों के साथ उकेरती हैं। उनको पढ़ते हुए सदैव लोक-मन एवं लोक-ठसक बनी रहती है जिससे कविता के मर्म एवं संवेदना की व्यापकता एक अपूर्व हस्ताक्षर पाठक के मन-मस्तिष्क पर छोड़ जाती है। श्रमरत दुनिया जो सदैव हमारी आँखों के सामने अपने होने को चरितार्थ करती है और पार्श्व में कहीं छिप जाती है उसकी वास्तविक छवि कवि के यहाँ मिलती है। कई बार अबूझ परछाईयाँ, विषम संघर्षों से जूझती-लड़ती हुई नई पीढ़ियाँ समय के वक्ष पर नया बिम्ब गढ़ती हैं किन्तु उसकी अनदेखी हो जाती है या जानबूझकर उन्हें अनदेखा कर दिया जाता है। उनकी गंध-उष्मा को कवि न केवल अनुभूत करते हैं बल्कि उसे जीते हुए अदम्य विश्वास भी अर्जित करते हैं। एक तरह से कहा जा सकता है कि कवि ने पूरी त्वरा के साथ किसानी-जीवन एवं अनुभव को पकड़ा है। ग्रामीण परिवेश जिसने कवि को आकर दिया, भराव दिया, जिस हवा ने और माटी ने कवि के मानस को बनाया, उन सबकी उपस्थिति पूरेपन के साथ उनकी कविताओं में है। एक-एक भाव को उतारती हुई, श्रम-सीकर के अन्तः सम्बन्ध को उघाड़ती हुई उनकी कविता लोक-मन का अपूर्व विस्तार है।

अपनी धमनियों में प्रवाहित ग्राम्य-बोध को कवि दिनेश कुमार शुक्ल ने कुछ इस तरह व्यक्त किया है कि कविता केवल उमंग और उल्लास के गीत नहीं रचती प्रत्युत रोते-कलपते हुए चित्त के आर्तनाद को भी व्यक्त करती है। उनके यहाँ थकान-उदासी, मस्ती-आह्लाद के बिम्ब गुँथे हुए हैं जिन्हें समग्रता में देखने की आवश्यकता है। वे सतत एक पैराडॉक्स रचते हैं। उनकी कविताएँ साहस के उस संघर्षधर्मी टेक का ध्वनन हैं जिसके सहारे किसान पहाड़ जैसे दुख को न केवल चूर्णित करता है बल्कि दृढ़ता एवं संबल के साथ एक नए प्रतिमान का रचाव भी करता है। कवि को पूरा विश्वास है कि कोदों, सावाँ, तीसी जैसे विस्मृत हो चुके बीज आज के समय की आवश्यकता हैं ; इन बीजों में धरती के सौन्दर्य की स्फुरणा तो है ही साथ ही विषमता एवं बोझिलता से उबरने की अपूर्व शक्ति भी है, यही कारण है कि कवि ने धरती को पुनः उर्वर बनाने हेतु, जन-मन को धैर्य प्रदान करने हेतु हाशिए के जीवन को अपरिहार्य माना है। कविता पर बात करते हुए वे कहते हैं -

केवल लय ही नहीं
बहुत कुछ आने वाला है कविता में

कविता में ही नहीं
थकी हारी दुनिया के चप्पे-चप्पे में
चट्टानें फोड़-फोड़कर
कोदों,सावाँ,तीसी जैसे भूले बिसरे
और उपेक्षित जीवन के अगणित अंकुर जगने वाले हैं [1]

आज के सुविधाभोगी समाज को अतिशय विनम्र शैली में उनकी कविताएँ लोक की उपादेयता का मर्म समझाती हैं। विपन्न का आहार कहे जाने वाले मोटे अनाजों द्वारा कवि ने टाट पर चिथड़े में गुजर-बसर करने वाले समाज की जीजिविषा-शक्ति को भी थाहा एवं परखा है। ग्राम्य-जीवन एक रेखीय नहीं होता, सदा झंझावातों एवं संघर्षों की पदचाप में उसका स्वरूप खिलता है। हाड़-गलाकर खुद को

होम कर देने वाले ग्राम्य-समाज की प्रकृति के साथ जो जीवंत आपसदारी है, वह कवि के यहाँ स्पष्ट दिखती है। प्रकृति एवं पुरूष की अपूर्व साझेदारी जिसमें एक साथ सुखी एवं दुखी होने का बोध है, एक साथ हँसने एवं रोने का बोध है। ऐसा कभी नहीं लगता कि किसान का दुःख अलग है और प्रकृति उससे निःसंग है बल्कि पारस्परिक विनिमय का, एक तानता में विन्यस्त होने का जो बोध है उसे कवि ने जटिलता एवं सूक्ष्मता की सभी तहों के साथ रचा है।

'बिटिया का झूला' कविता झूला झूलती हुई बिटिया की स्वाधीनता का सूचक है जिसके लिए कवि ने 'कल-कल पानी' जैसे शब्द का प्रयोग किया है। यह कविता बालमन की स्वातंत्र्य अभिव्यक्ति है, घरों में बेटियों के जन्म के बाद जो बे-नूरी और हताशा दिखती है उसे कविता चुनौती देती है। बेटी के जन्म के साथ पलने वाली अभिशाप की छाया को कवि ने ध्वस्त भी किया है साथ ही यह संकेतित किया है कि दहेज की क्रूर विभीषिका के लिए अब समाज में कोई जगह नहीं। अब गाँवों में एक नया समाज रचा जा रहा है जो बेटियों का समाज है जिसमें स्वतंत्रता, सद्भाव एवं मैत्री के बीज हैं, उस लोक की सजलता के हस्ताक्षर हैं बेटियों की हास-परिहास जहाँ बेटी कुल की मरजाद है, जहाँ बेटी पौरूख से चिंता-अगिन को विनष्ट कर डालती हुई पूरे परिवार की आधारशिला है । झूला झूलती हुई लड़की के माता-पिता को प्रतीकित कर कवि ने खुशरंग ग्रामीण समाज की झाँकी प्रस्तुत की है, जहाँ बेटी सदानीरा नदी की तरह निर्बंध एवं स्वाधीन है –

अंबर-अंबर धरती डोले
सागर डोले पानी
नीम की डाल हिंडोला डोले
झूले बिटिया रानी

निसिदिन समय समुदंर गरजे
मात-पिता की चिंता
चिंता-अगिन बुझाती बिटिया
हँसती कल-कल पानी 2

'वर्षा-विगत' कविता में तरोई के फूल को आधार बनाकर कवि ने नश्वर- सौन्दर्य को चित्रित किया है। प्रस्तुत एवं लभ्य-जगत के सौन्दर्य का सब अवगाहन करते हैं, उसकी ओर सबकी दृष्टि लगी रहती है किन्तु नाशमान जगत के प्रति किसी का एकटक ध्यान नहीं जाता। मृत्यु के स्मरण एवं विनष्ट होने के बोध मात्र से ही मनुष्य के मन में विशद कम्पन एवं विषाद की छाया प्रकट हो जाती है। कवि दिनेश कुमार शुक्ल राग एवं मूर्तता को शब्दों के सहारे टाँकते ही हैं साथ ही साथ विराग एवं विदा वेला को भी रमणीयता एवं तत्परता के साथ प्रस्तुत करते हैं। दिलचस्प है कि गुलाब, चंपा, गेंदा, कमल आदि फूलों के सौन्दर्य लिखने की बजाय कवि ने तरोई की लता पर लिखा। किसानी-जीवन से रस ग्रहण करते हुए उस फूल पर लिखा जो कृषक संस्कृति का केंद्र है जिसकी ओर सबकी दृष्टि नहीं जो रहकर भी सदैव ओझल है, जैसे देह के बीच मृत्यु पलती है किन्तु रह जाती है सदा ही अदेखी और लंबित। अपनी चार पंक्तियों में कवि ने सम्पूर्ण गँवई-चेतना के ज्वार को बिंब के सहारे प्रकट किया है जो दर्शनीय है -

विदा की बेला
अकेला
और अंतिम
फूल फूला
चटक पीला ष्ठ

आ गये खंजन
तरोई की लता
अब जा रही है 3

दिनेश कुमार शुक्ल जी कविताओं में मोहक रंग भर नहीं भरते बल्कि खेती के बदलते स्वरूप, गाँवों की टूटन और शहरों की ओर लोगों के अजस्र पलायन को भी दर्शाते हैं यही कारण है कि कविता में लोक के छीजने एवं समाप्त होने का

बोध अधिक है। प्राकृतिक दृश्यों के साथ जिस तरह का अमानवीय-व्यवहार लोगों का है उस ओर भी कवि की चिंता दिखती है। उन्मुक्त प्रसार एवं फैलाव में असभ्यता के प्रसार एवं नदियों को दूषित करने की संकीर्ण मानसिकता के प्रति भी कवि ने खुलकर बात की है जिसे देखा जाना चाहिए। वे स्पष्ट कहते हैं -

पानी के नाम पर
जहर बहता है
अब नदी के
नाम पर सिर्फ नाबदान है
गाँव के ज्यादातर किसान
अब भूमिहीन
रिक्शा चलाते हैं शहर में
और गाँव शहर की मलिन बस्ती बन
आ गया है
नगर-पालिका की विकास-सीमा में 4

'सब गए समेट' कविता में कवि ने तात्कालिक दयनीयता को व्यक्त किया है जहाँ किसान अकेला, अवश एवं पराजित है। मौसम की मार के कारण लगातार पड़ रहे सूखे से जिस अनिष्टता का बोध होता है वह कवि की कविता में बार-बार आया है। जड़ता एवं नैराश्य के धुंधलके को कवि ने वाणी दिया है। ऐसे कुसमय में जब नदियों में जल का अभाव है, खेतों की उर्वरता में कमी है, किसान आर्थिक संकट से जूझता है जीवन के उस हार को विवशता की कुहरिल मार को कवि ने शब्दशः कविता में उतारा है -

सूखी नदिया बलुअर खेत
आँख किरकिरी मुँह में रेत
कहो फलाने कैसी पाती
पाई जो तुम भये अचेत 5

किसानों के ऊपर गहराने वाले दुखों की लम्बी फेहरिस्त है जिनसे टूटते-लड़ते हुए किसान पग-पग पर हारता-जीतता है। इस हार एवं जीत से भरे हुए अनगिन पहलुओं और दृश्यों को कवि ने एक लम्बी कथा के तौर पर व्यक्त किया है। यह अकारण नहीं कि कवि के एक प्रमुख काव्य- संग्रह का नाम ही 'कथा कहो कविता है'। आज कविता के समक्ष बड़े प्रश्न हैं जो सीधे- सरल नहीं प्रत्युत चुनौतियों से भरे हुए विराटता लिए हैं, जिसके समाधान खोजता हुआ किसान किसान आत्महत्या करता है, चुप्पी और मौन के बीच एक गहरा हाहाकार कब कैसे लुप्त हो जाता है इस पर कहीं कोई चर्चा नहीं होती इसका कहीं कोई सम्यक समाधान नहीं मिलता। ऐसे में यह कविता एक गहरा व्यंग्य मालूम पड़ती है जिसके सहारे कवि अपने समय की भयावहता को चित्रित करना चाहा है :

बजता है अर्धरात्रि का प्रहर
और रोती है पुक्कां फाड़कर
राज्यलक्ष्मी श्मसान में-
तब थपकाना शुरू करती हैं
अदृश्य समुद्र की निराकार लहरें
चिड़ियों के भेस धर कर बैठी आत्माओं को
ऐसे में अचानक ही
रात को भी आ जाती है
पहली गहरी झपकी ... 6

हम जानते हैं कि किसान की आजीविका का सहारा खेती ही है। छोटे-मोटे सपने जो किसान देखता है वह खेती के सहारे ही पूरे होते हैं। 'कदंब की डाल' कविता में कवि ने एक किसान-मन में पल रहे इन्द्रधनुषीय सपने को दिखाया है। एक तरह से कहा जा सकता है कि 'कदंब की डाल' कविता सपनों की कविता है जिसमें नन्हे सपनों की लम्बी फेहरिस्त है। फसल के कटने पर साहूकार के यहाँ से पत्नी के कंगन छुड़ाने से लेकर सबको नये कपड़े सिलवाने, माँ को काशी-प्रयाग ले जाने की कामना भोला किसान-मन ही कर सकता है जिसे कविता में कवि ने दर्ज किया है। चूँकि किसान की कमाई बादलों के ऊपर निर्भर करती है, इसलिए कई बार किसान के सपने छली बादलों के कारण बौने-अधमरे रह जाते हैं जिनमें सिवाय अवसाद,

वेदना,कातरता के कुछ नहीं होता :

हमने सोचा था अबकी फसल जो कटी
जाके कंगन तुम्हारे छुड़ा लाऊँगा
और कपड़े नये सबको सिलवाऊँगा
माँ को काशी प्रयाग करा लाऊँगा
और छप्पर नया घर पे डलवाऊँगा

लेकिन बादल जो आये तो अफसर बने
जीप पर तन के आये औ चलते बने
उनके बँगलों में फूहड़ चमन है खिला
आग में भुन रहा है कि सारा जिला
आप कीजेगा जाकर के किससे गिला
बेरुखी का बड़ा लम्बा है सिलसिला 7

दिनेश कुमार शुक्ल ग्रामीण संवेदना एक-एक दृश्य को कविता में उतारते हैं। उनकी कविता केवल यथार्थ का प्रतिबिम्बन मात्र नहीं हैं बल्कि इनमें जटिल सवालों के समाधान खोजने और जीवन को पूरी जीवटता- ईमानदारी से उतारने का बोध भी है। यही कारण है कि कविताएँ अनुभव की ज़मीन से उपजी हैं जिनमें अनुभवपरकता है, खेती-किसानी के संकट हैं जिन्हें दूर करने की तरकीबें और समाधान भी हैं। आशा एवं दुराशा के बीच कविता की भाषा-शक्ति कहीं नहीं टूटती। हर संभव कवि ने भाषा एवं लय की एकतानता को साधा है। सिद्ध साहित्य की 'संधा-भाषा' की तर्ज़ पर कवि ने 'संझा-भाषा' नामक कविता लिखी है जिसमें लोक का ग्राम्य- धरातल उभरता है। संझा-भाषा' कविता ग्रामीण संझौती को दिखाने वाली है जिसमें ग्रामीण बिम्बों की अतिशय भरमार है । भात-रोटी, झाड़ी-झुरमुट, मनियर-फनियर जैसे शब्दों द्वारा कवि ने कविता का जो कलेवर तैयार किया है वह अनूठा एवं विशेष है। इस कविता में कवि ने सूखी गंगा से लेकर धन्ना सेठ जैसे प्रतीकों का प्रयोग किया है। ये प्रतीक किसान और साहूकार की विकासमान अवस्था के सूचक हैं जिनमें ग्रामीण परिवेश पूरेपन के साथ प्रकट होता है :

मनियर परबत फनियर नाग
झुटपुट संझा दीपक राग
दीपक-राग अन्धेरा गावै
सूरज-चन्दा-नखत बुझावै

झाड़ी-झुरमुट बेर-कुबेर
रही टिटिहरी सबको टेर
रहो ढूंढते देर सबेर
पा जाओगे सूखे बेर 8

'पहाड़ की रेल' कविता की भाषा कितनी सुंदर है। कवि ने पहाड़ पर चलती हुई रेल की खूबसूरती को दखिाया है। इस कविता में किस्से से भरी हुई गुफा की चर्चा है जो कविता की लोक-संवेदना और उसकी भाषा को एकमेव कर देती है। मैदानी समाज के अपने मुहावरे, अपनी लोक-कथाएँ हैं,किन्तु पहाड़ी ग्राम्य-जीवन भी कुछ कम नहीं। अपनी कविताओं में कवि ने पहाड़ी ग्रामीण- समाज को रीति-रिवाजों, परंपराओं के साथ व्यक्त किया है :

कू-कू-छिक्-छिक्

भीग रहा है लोहा पानी बरस रहा है
कू-कू छिक्-छिक्!

जिस पहाड़ पर ये गाड़ी चढ़ने वाली है
उसके भीतर एक गुफा है
जिसमें किस्से भरे हुए हैं
कू-कू छिक् छिक् 9

दिनेश कुमार शुक्ल की कविता की भाषा में जो ग्रामीण संवेदना है, उसकी टोन लयात्मक है, जिसका कारण है किसान-बोध। किसान जीवन की परम्परा श्रम की परंपरा है जिसमें राग एवं श्रम की अद्भुत पच्चीकारी है। कई बार कविता खुलती चलती है जिसे पढ़कर लगता है जैसे किसानी- गीत उसकी टेक के साथ चल रहे हों। इस राग के साथ उभरते हैं कई देशज स्वर जो कविता की पूर्ण निर्मिति करते हैं।

कई ऐसे शब्द जो लोक के शब्द हैं जो आमतौर पर नहीं सुने जाते या कह लें कि जिनका प्रयोग और प्रभाव कम होता जा रहा है उन्हें सृजनात्मकता के साथ खड़ा करने का दायित्व-बोध कवि ने बखूबी निभाया है। उदाहरण के तौर पर 'भूल भुलैया- 2' कविता को लिया जा सकता है जो रामलाल नामक किसान को संबोधित है जिसमें कवि ने पाले से ग्रस्त गेहूँ की फसल की खस्ता हालत को बयाँ किया है। जवास के पौधों की दारुण अवस्था के बीच उग आये 'दुधी घास' के पौधों के कारण जीवन का अन्तर्विरोध इस कविता में उभरा है। शासन की जगह 'सासन' एवं पेशकार की जगह 'पेसकार' जैसे शब्दों ने कविता में लोक-पक्ष को उभारा है :

नब्बन की बगीची में
बसे हैं बरमकरस
सो बीच दुपहरी
यहाँ अँधियारा गया बस
उजियारे का सासन
न किसू ठाँव चले हैं
उजियारे पै अँधियारा
सनातन से पले हैं
-सो सुनो रामलाल 10

'शहर किनारे गाँव रे', 'अकाल कुसम', 'सावन', 'राग-बिलावल' जैसी कविताओं में ग्रामीण भाषा की छौंक है जिसे कवि ने कविता में विन्यस्त किया है। कविता के कथ्य के साथ बदलते हुए भाषा-मिजाज़ में गँवई सौन्दर्य-बोध है जो कवि की कविता को कालजयी बनाता है। कवि को पढ़ते हुए कह सकते हैं कि उनकी कविताओं में हिन्दी पट्टी के किसान हैं जो जाड़ा-गर्मी सहते हैं, धूप-बताश सहते हैं किन्तु हार न मानते हुए एक नई इबारत रचते हैं जिसमें दायित्व-बोध, ईमानदारी, शालीनता के विशिष्ट रूप हैं इन्हें जब तक समझा नहीं जाएगा मेहनतकशों के जीवन का पूरा चित्र नहीं प्रकट होगा। कवि दिनेश कुमार शुक्ल की कविता संघर्षधर्मी किसानों की व्यथा-कथा है, उनके मौन एहसासों की वाणी है, उनके खेत-खलिहानों की विषम अवस्था का प्रकटीकरण है जिसे समझे जाने की आवश्यकता है। एक तरह से कहा जा सकता है कि दिनेश कुमार शुक्ल अपनी कविताओं में लोक-चेतना का संवहन करते हैं, उनकी कविताई का अर्थ गहरा है जिसे लोक-रंग के साथ ही हृदयंगम किया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची –

1. दिनेश कुमार शुक्ल, 'ललमुनिया की दुनिया', संस्करण 2008, पृष्ठ संख्या - 15
2. दिनेश कुमार शुक्ल, 'ललमुनिया की दुनिया', संस्करण 2008, पृष्ठ संख्या - 21
3. दिनेश कुमार शुक्ल, 'ललमुनिया की दुनिया', संस्करण 2008, पृष्ठ संख्या - 31
4. दिनेश कुमार शुक्ल, 'समय-चक्र', संस्करण 1997, पृष्ठ संख्या -53
5. दिनेश कुमार शुक्ल, 'नया अनहद', संस्करण 2001, पृष्ठ संख्या -47
6. दिनेश कुमार शुक्ल, 'नया अनहद', संस्करण 2001,पृष्ठ संख्या -48
7. दिनेश कुमार शुक्ल, 'समय चक्र', संस्करण 1997, पृष्ठ संख्या -109
8. दिनेश कुमार शुक्ल, 'नया अनहद', संस्करण 2001,पृष्ठ संख्या -50
9. दिनेश कुमार शुक्ल, 'नया अनहद', संस्करण 2001,पृष्ठ संख्या -50
10. दिनेश कुमार शुक्ल, 'समय चक्र', संस्करण 1997, पृष्ठ संख्या -42

साहित्यिकी

दो पाटन के बीच

प्रो० (डॉ०) छाया सिन्हा

हिन्दी विभागाध्यक्ष पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय
पटना, बिहार

शोभा आँगन में बैठी लालटेन पोछ रही थी। ऊपर से काली हो गयी बाती को गोल काटते हुए उसके मन में अनेक प्रकार के भाव उमड़-घुमड़ रहे थे – 'कहाँ का देलन बाबू बियाह, टूवर-टापर लइका से, ऊहो पलटन में, हमेशा जीउ टँगाइले रहेला। एक बेर जालन, ता कवनो भरोसा ना कि फेन भेंटो होई कि ना। बाकिर आपन हिया के पीर केकरा से कह सकतानी।'

उसके मन में आया कि चुपचाप अपने मायके बहियार चली जाय। लेकिन .....। भाई तो मेरे हीरा हैं, पर भौजाई? क्या यह बात उन्हें अच्छी लगेगी? वैसे तो आज तक उन्होंने घर में कभी कलह नहीं पसारा; पर तब की बात और थी। अब तो मैं ब्याहता हूँ। वैसे भउजी तो हमेशा भैया के साथ नौकरी पर ही रहती हैं। कभी-कभार ही उनका आना होता है। दारोगा की नौकरी, भैया को छुट्टी ही कहाँ मिलती है! लेकिन गाँव-घर के लोग क्या सोचेंगे? तरह-तरह की कानाफूसी शुरू हो जाएगी। अच्छा, हे पहाड़ी बाबा, कुछ ऐसा हुआ तो देखा जाएगा।

शोभा ने लालटेन की बाती को उकसाते हुए धीरे से अपनी जेठानी को कहा – 'ए दीदी, एगो बात कहीं.....?' लीलावती रात्रि के भोजन के लिए सब्जी काट रही थी। शोभा की बात सुनकर उसने अपने हाथ रोक दिये – 'का हो शोभा, का कहत बाडू?' शोभा – 'मन घबड़ाता दीदी, कहीं बेमार ना पड़ जाई। ओहिजो तऽ हमार ईहों के पलटने में बानी, भइयाजी के ऊहे हालत बा। रउवा अकेले का-का करब? बाबू अकेलहीं बाड़न, छोटका भाई - बबुआ ता पटने पढ़ाई में डूबल रहेलन, कहाँ आ पावेलन। बाकिर तेलिया डाक्टर नगीचे रहेलन। बोलवला पर दउरल आ जालन। उन्हकर बोलिये से आधा बेमारी दूर हो जा ला दीदी।' शोभा की बात सुनकर लीलावती की छाती पर धक् से लगा।

लीलावती शोभावती की जेठानी थी। शोभा के पति रमाकान्त सेना में सूबेदार थे। जेठ उमाकान्त चार-पाँच साल पहले कुट्टी काटने के क्रम में अपना बायाँ हाथ गँवा चुके थे। हाथ क्या कटा, उमाकान्त का पूरा मनोबल ही टूट गया। फिर क्या, खेती-बाड़ी सब बँटाईदार के भरोसे, जो दे दें। किसी तरह साल भर का अनाज निकल पाता है। ऊपरी खर्चों के लिए रमाकान्त का ही भरोसा है। बड़की ननद कटेसर में ब्याही थीं।

देवर रजनीकान्त रमाकान्त के भरोसे ही आरा में पढ़ाई कर रहे हैं। एकमात्र कमासुत होने के कारण सबलोग रमाकान्त की बड़ी इज्जत करते हैं। रमाकान्त को भी अपने परिवार से बहुत लगाव है। शोभावती भी जब से इस घर में आयी है, इन बातों को लेकर उसने न तो पति से कोई नाराजगी जतायी, न ही लोगों के इज्जत-मान में उसकी ओर से कोई कमी हुई। इसी से शोभा न केवल अपने घर बल्कि अड़ोस-पड़ोस की औरतों की भी प्यारी हो गयी थी।

पर विधि का विधान कहिये या माँ-बाप की देखभाल का अभाव और स्वास्थ्य सेवाओं की घोर

कमी के कारण शोभा का मोटा-ताजा पहिलौंठ बेटा छः माह भी न टिक सका, चल बसा। बेटा क्या गया, शोभा रह-रहकर मारे घबराहट के अजीब-अजीब-सी हरकतें करने लगती। कभी घर से बाहर भागने लगती, कभी सर पटक-पटक कर रोने लगती .....।

उमाकान्त के घर के पिछवाड़े गुल्ली भगत से सटे मड़ई में एक बैरागिन रहती थी। यह बात सभी जानते थे कि बैरागिन डाइन है। बड़ी गोतनी लीलावती के मन में यह बात बैठ गयी कि हो न हो वही डाइन लग गयी है शोभा के पीछे। उसे भूत-प्रेत का भय भी सताने लगा। फिर क्या था, उसने अपनी बुद्धि और शक्ति भर कोई उपाय न छोड़ा। गण्डे-ताबीज भी आये, झाड़-फूँक भी हुई, मनौतियाँ भी मानी गयीं। समय के साथ शोभा की हालत में सुधार तो हुआ किन्तु पिछले साल रमाकान्त जब छुट्टियाँ बिताकर चले गये, तब पता चला कि शोभा के पाँव भारी हैं। कोख में संतान क्या आयी, शोभा को तो जैसे जेल हो गया। बाहर तो बाहर, घर के आँगन में भी निकलना मुश्किल। लीलावती हर वक्त संशकित भाव से उसपर नजर रखती। पूरे घर का भार उसने अपने कंधों पर उठा लिया। मजाल कि शोभा सर भी तोड़ दे। लेकिन होनी को कौन टाल सकता है! दूसरी संतान भी जनमते मर गयी। प्रसुता शोभा के करूण क्रन्दन से आकाश थर्रा उठा। लीलावती को तो जैसे साँप सूँघ गया। कैसे बचाऊँ इसको, कहाँ लेकर जाऊँ? यहाँ रखना तो खतरे से खाली नहीं है। डर और वहम का आलम यह था कि लीलावती को कई बार घर के विभिन्न हिस्सों में भूत-प्रेत की छाया दिखने लगी। मारे भय के वह चीख उठती। शोभा तो पहले से ही हताशा में थी। जेठानी के इस आशंकित हृदय ने उस पर भी गहरा असर डाला।

शोभा फिर बोली –'ए दीदी, बोलीं ना, रउवा के कह तानी?'

लीलावती की अपनी कोई सन्तान न थी, न होने की उम्मीद थी। शोभा के आने से थोड़ी रौनक आयी थी, वह भी छिनी जा रही थी। बुझी आवाज में उसने कहा –'काहे हो, हमनी से कवनो कमी रह गइल का हो, जे नइहर जाए के बात कह तारू? ए बबी, बियाह के बाद ससुरारे आपन घर होला। धीरज धरा, सभे ठीक हो जाई। तोहार बाबू जी के बोलवा देत बानी, भेंट कर लीहा, मन बदल जाई।'

शोभावती ने साड़ी की कोर से लोर पोंछ लिये, कुछ बोली नहीं। लालटेन उठाकर बाहरी चौखट से लगे तख्त पर रख दिया। चौके में ढिबरी जलायी और रोटी के लिए आटा गूँधने बैठ गयी। उसके मन में आँधी उठ चुकी थी - ना, यहाँ नहीं रहेगी, बहियारा ही चली जाएगी, बाबू की सेवा करेगी और घर की भी देखभाल कर लेगी। कम-से-कम भूत-प्रेत का फसाद तो नहीं होगा। नरसिंह बाबा के सामने कौन भूत टिकेगा, जहूर मियाँ एक बार कलमा पढ़ देंगे तो डाइन-भूतिन की आँखें फूट जाएँगी, मुँह से खून बकोरने लगेंगी। अपने बगीचे के विशाल छतनार पेड़-आम, बड़हर, कटहर, जामुन, दरवाजे पर लगे सहजन और गूलर, कुएँ के पास खड़े-ताड़ के वृक्ष - सब उसकी कल्पनाओं में हाथ हिलाने लगे मानो उसे बड़े लाड़ से बुला रहे हों। उसकी आँखों से नींद उड़ चुकी थी। जैसे-जैसे रात बीत रही थी, उसके मन में बहियारा चले जाने का विचार और दृढ़ होता जा रहा था।

'एगो आउर पूड़ी ले लीं बाबू' - कहते हुए लीलावती थाली में पूरी डालने लगी।

'ना-ना बबी,गरमी के दिन शुरू हो गइल बा, ढेर ना खाए के' - बाबू ने लोटा हाथ में उठा लिया। हाथ-मुँह धोकर चौकी पर बैठे ही थे कि लीलावती चाय लेकर आ गयी।

लीलावती – 'एगो बात कहीं बाबू?'

बाबू – 'हाँ-हाँ बबी बोला।'

लीलावती – 'कहतानी नू कि .....' वह हिचकिचा गयी।

बाबू – 'का बात हा बेटी बोला, तोहरो बापे नू ईइं। कवनो सिकाएत बा का हमार शोभा से?'

लीलावती - 'ना-ना बाबू' - उसने अपने दाँतों से अपनी जीभ दबा ली – 'शोभा से हमनी के कवनो सिकाएत नइखे। जहिया से अइली, घर अँजोर हो गइल। बाकिर का कहीं ए बाबू, औरत के सबसे बड़ा सुख ता ओकर संताने नू होला। हमरा ता ई सुख नाहियें मिलल, ऊपर से शोभो के दू-दू गो बच्चा बिला गइलन सा । एही शोक में रह-रह के जब ऊ भोकार पार के रोवे लागेली ता करेजा फाट जाला। ए बाबू, ऊ कुछ दिन खातिर रउवा साथे बहियारा जाइल चाहत बाड़ी।

बाबू की आँखे फटी-की-फटी रह गयीं। 'अरे, ई का भइल? तनी खबरो ना देलू लोग' - उनकी आँखों से झर-झर आँसू गिरने लगे। फिर अपने को संयत कर बोले – 'ई कवन बात बा बबी, बियाह देनी ता का हा, बेटी ता हमरे नू हा, पराया नइखे हमरा खातिर। हम शोभा के अबहियें ले जाइब, देरी ना।' बाबू ने देखा, बैल पानी पी चुके थे। उन्होंने कहा – 'ए हो गड़िवान बड़ी घाम बा, तनी एगो ओहार डाल दा बैलगाड़ी पा। बबुनी चलिहें साथे।'

शोभा भीतर से सब सुन रही थी। कलेजा धड़क रहा था उसका - क्या बोलेंगे बाबू? कहीं ले जाने में आनाकानी करने लगेंगे तो क्या इज्जत रहेगी उसकी। लेकिन बाबू की बातें सुनकर उसका भय जाता रहा; उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। भागी हुई आँगन में गयी, अपने कपड़े उतारे और आनन-फानन में अपना सामान तैयार कर लिया।

'ए शोभा, जा बबी, बाबू अबहियें ले जाए के कहत बाड़न। जा, मन बदल जाई ता हम बोलवा लेब। रजनीकांत आवते बाड़न, ले अइहें तोहरा के' - बाहर चौखट पर खड़ी लीलावती की भर्रायी आवाज जब उमाकान्त के कानों में पड़ी तो वे बिल्कुल असहज होकर जोर-जोर से खाँसने लगे। उनके माथे पर बल पड़ गये- 'क्यों भेज रही है लीलावती शोभा को? कितना ख्याल रखती है हमारा। क्या कहेंगे लोग कि कोख का नुकसान क्या हुआ, ससुराल वालों ने मायके भेज दिया; कितनी बदनामी होगी!'

लीलावती पति की मनोभावनाओं को ताड़ गयी। उसने उनके कान में जाने क्या समझाया कि वे आगे कुछ बोल न सके।

शोभा ने जेठ-जेठानी के पैर छुए। लीलावती ने गीली आँखों से शोभा को विदा किया।

बैलगाड़ी झटके से आगे बढ़ गयी। शोभा ने अपने आपको संभाला, फिर बगल में सामान के साथ रखे एक थैले पर उसकी नजर गयी। 'यह क्या है?' - उसने थैले को खोलकर देखा - आहि ओ दादा, इतना ठेकुआ-खुरमा कब बनाया दीदी ने? अच्छा-अच्छा, बाबू के पहुँचते बसमतिया हलुआइन को खबर कर दी होगी उन्होंने। बड़ी होशियार और मयार हैं - लीलावती दीदी के प्रति उसका प्रेम उमड़ पड़ा। मन ही मन उसने कहा - 'हाँ, स्वभाव तो ठीक ही है उनका। गोतने वाली गोतनी तो नहीं ही हैं। - उसके होंठो पर संतोष की मुस्कान तैर गयी।

पूरे चार साल बाद शोभा अपने मायके जा रही है। गर्द भरे रास्ते परिचित तो हैं, पर बदले-बदले से लग रहे हैं। घरों के सामने बड़े-बड़े बखार खड़े हैं। गेहूँ की हाल ही में कटाई हुई है।

'अपने बखार तो पुराने हो गये होंगे, मैं जब आयी थी तभी कमजोर हो गए थे, चूहे घुस जाते थे उनमें। अच्छा बहियारा पहुँचते ही बँसवारी से बाँस कटवाँऊगी। उनकी गट्ठरों को दियारा के पास छोटकी धार में डलवा दूँगी। तीनों ओर से बालू जमा होने के कारण वहाँ पानी का बहाव बहुत कम रहता है। जल में पड़े-पड़े कुछ दिनों में नरम हो जाएँगे। तब हिरवा डोम को बुलवाकर बखार बुनवाऊँगी, खूब बड़े-बड़े, ऊँचे-ऊँचे। विचारों की उमड़-घुमड़ के बीच उसने आँखें उपर उठायी। कच्ची सड़क के दोनों ओर आम के पेड़ टिकोलों से लदे हुए, अहा! बड़हर के पीले-पीले फूल ऊपर की फुनगियों पर लटके मोटे-मोटे जुआए सहजन!! शोभा ने सोचा अपने आम भी तो ऐसे ही लदे होंगे। हिंगरासन महाराज मचान पर बैठकर बगइचा अगोर रहे होंगे। मुझे देखते ही भीतर से झकोरा जाएँगे; तरबूजों को बालू में छिपाने लगेंगे। धड़का मार देगा उनको,

बबुनी आ गयीं, अब सब पर नजर रखेंगी।

शोभावती जब मायके पहुँची, दोपहर हो चुकी थी। पहुँचते ही उसने हाथ पैर धोये और बाबू के लिए लोटा भर पानी लेकर बाहर दौड़ी। बाबू ने कहा – 'शोभा बेटी, भीतरा गुड़धनियाँ होखी, खाके पानी पी ला। फुलेना बहू के खबर भेजले बानी, आवते होखिहें, तूँ आराम करा।'

'काहे बाबू, हम खाना ना बना लेब? ई सभ काहे के कइला हा? खैर .....' - उसने आगे कुछ न कहा और भीतर चली गयी। सबसे पहले उसने उस कमरे में प्रवेश किया जहाँ विवाहपूर्व वह रहा करती थी। नरसिंह बाबा के स्थान पर उसने माथा टेका – 'हे नरसिंघ बाबा, नइहर से ससुरार ले सभके आबाद रखिहा।'

'बबुनी का आइल बानी?' -अरे, ये तो फुलेना भउजी की आवाज है। जल्दी से अपने कपड़े ठीक-ठाक कर वह बाहर निकल आयी और भउजी के गले लगकर खूब रोयी।

फुलेना बहू – 'बबुनी बढ़ियाँ कइनी जो तनी चल अइनीं। चाचीजी के ता हमनी के इयादे नइखे, दरोगाइन दिदियाजी बाहरे रहतानी। ए बबुनी, बिन घरनी घर भूत के डेरा। दुअरे ता बुझाता कि भूत लोटता। रउवा लोग के ना रहला से हमनियों के आवाजाही कमे रहेला। कभी काल चिट्ठी पत्री लिखवावे आ जाइला चाचाजी भीरी। बड़ी करेजा फाट जाला, इन्हकर हालत देख के । तेतरी कुम्हइन घर के काम तड़तड़ कर देवेले, बाकिर ढन-ढन घर में अकेले-अकेले चाचाजी पर का बीतत होई, ई समझहीं के बात बा। केकरा से आपन दुख कहस?

उसने आँगन से लकड़ी बटोरकर चूल्हा जला दिया और चारो ओर देखकर बोली – 'बाकिर एगो बात कहीं बबुनी? कहतो तो डरे लागता, लेकिन कहलो जरूरी बा। कभी काल चाचाजी दारू पी ले तानी। फगुआ के पहिले इहाँ क रामबिरिक्ष के भट्ठी के सामने पी के गिरल रहीं। ऊ ता राउर भइया देखलन, ता कइसे-कइसे उठा-पठा के सइकिल पा ले अइलन।'

शोभा को तो लगा कि जैसे वह भँवर में घूम रही हो, उसकी आँखे फटी की फटी रह गयी, मारे शर्म के पूरे शरीर में चीटिंयाँ रेंगने लगीं – 'का कहा तानी भउजी, बाबू आउर दारू!!! कुछ देर के लिए तो वह एकदम सन्नाटे में आ गयी। 'अकेलापन जो ना करावे अच्छा ..... अब यह सब नहीं होगा', वह बुदबुदायी।

साँझ हो चली थी। आँगन धुलवा कर उसने खाट डाल दी। उसकी यादों में अपना भरा-पूरा घर बाइस्कोप की भाँति घूमने लगा। भाई को तो उसने देखा ही नहीं था, लेकिन बाबू के अलावा भइया, भउजी, छोटका भाई - बबुआ, बड़की माई, बड़का बाबू और उनके बच्चों ने उसे इतना लाड़ दिया कि कभी लगा ही नहीं कि वह बिना माई की है। यही वो घर है जहाँ बाजार से लठ्ठो, निमकी, तेलहा जलेबी वगैरह लाकर सब बड़े परात में एक साथ बैठकर खाते थे। हँसी-ठिठोली, गाना-बजाना सब चलता था। हमलोग सब मिलकर गाते तो बड़की माई का ढोलक खुद-ब-खुद शुरू हो जाता।

बाहर चौकी खिसकते वह समझ गयी कि बाबू दालान में आ चुके हैं। उसने उठकर आवाज दी – 'अँगना धोअवले बानी बाबू, आवऽ ना एहिजे बइठा।'

'बबी हो, तूँ सूतज्ञ, थाकल होखबू। तेतरी ना अइली हा?' - बाबू ने पूछा।

शोभा बोली – 'आइल रही बाबू, बरतन-बासन का के, लीप-पोत के गइली। खाना हम बना लिहनी। तूँ आवा ना बइठा ।

बेटी की जिद के आगे बाबू की एक न चली।

शोभा –'ए बाबू कबो हसन आवेलन कि ना? कतना लड़त रही उन्हकर मेहरारू। बकरीद के पहिले दो कहाँ जाकिर उन्हकर मुरगा चोरा लेलन। कतना गरियवले रही मुँह चीर-चीर के। हाँथ ता अइसन नचावस कि बाप हो बाप। आ पाछे ऊ के मुरूगवा उन्हके खटिया के नीचे सूतल मिलल। बड़ी तमासा भइल रहे।'- शोभा की बात सुनकर

बाबू के चेहरे पर मुस्कान की एक हल्की रेखा तैर गयी। बोले – 'बड़ी-बड़ी तमासा अबहियों होला। हें-हें ..... सुद्धू घरे के हाल सुनबू ता कहबू।'

शोभा – 'का भइल हा बाबू?'

बाबू – 'अरे, का कहीं, तेरूस सुद्धू कुम्हार अपना मेहरारू के मरला के आठे महीना बाद दोसर बियाह का लेलन। लेकिन उन्हकर लइकन के ई बियाह बरदास ना भइल। ओहनी के कलकान से नएकी बहुत परेसान रहे लागल। अब देखा, पर साल सुद्धू आपन बड़का बेटा के बियाह ठनलन। तिलक के दिनवाँ बड़ी धुमधाम भइल। लड़की वाला कुल सामान के साथे पाँच हजार रूपइयो चढ़लवन सा। अरे राम, हेने सुद्धू के दुआरे भोज-भात होता, ओने नएकी ऊ कुल रूपइया आ लड्डू के झाँपी उठाके दो केने चल गइल। जब ई बात पता चलल ता नएकी बहुते खोजाइल, बाकिर आज ले ओकर थाह पता ना मिलल।'

शोभा के दाँत हल्के ऊँचे थे। उसने बहुत कोशिश की कि होंठो को दबा कर वह अपनी हँसी रोक ले, पर ऐसा हो न सका। वह खिलखिलाकर हँस पड़ी।

इसी प्रकार बतियाते-हँसते बाप-बेटी ने भोजन किया।

'बिछौना लगा ला बेटी, सन्दूक में सभ होई। काल्ह तनी भोरहीं उठ जइहा, पहाड़ी बाबा के पहाड़ चढ़ाइब। हमार लछिमी नू आइल बाड़ू।'- कहते हुए बाबू दालान की ओर बढ़ गये।

रात्रि का अन्धकार घना होता जा रहा था। सूबेदार रमाकान्त अपनी यूनिट के सामने लेटे हुए थे। चारों ओर से विशाल-विशाल वृक्ष अपनी मस्ती में बल खा रहे थे। उनके बीच-बीच से कभी दायें और कभी बायें से चाँद झाँक-झाँक जाता था। अचानक रमाकान्त को लगा कि यह चाँद नहीं, शोभा का मुखड़ा है जो पेड़ों की ओट से लुक-छिपकर पूछ रहा हो- 'कल आइयेगा जनाब?' शोभा की याद जैसे हजार-हजार हरसिंगार की सुगंध लेकर आयी हो। उनका मन मस्त हो गया। हृदय में एक विचित्र टीस सी उठी।

किसी तरह मन को काबू में करते हुए उन्होंने अपने आपको समझाया –'रजनीकान्त की पढ़ाई के अंतिम दो वर्ष हैं। पढाई खत्म करके कहीं नौकरी पर लग जाएगा तो मैं भी निश्चिंत होकर कहीं ऐसी पोस्टिंग करा लूँगा जहाँ शोभा के साथ हँसी-खुशी अपनी गृहस्थी बसा सकूँ ..... हँसमुख शोभा की मीठी बोली और उसके हाथों का खाना ..... स्मरणमात्र से उनके मुँह में पानी भर आया।

'अबे दूलीचंद।' - उन्होंने आवाज लगायी।

'साब' - दूलीचन्द हाजिर हो गया।

रमाकान्त – 'खनगाँव ही घर है न तेरा? कब से छुट्टी पर जा रहे हो? ..... अच्छा कैन्टीन से एक सिलाई मशीन खरीद कर दूँ तो ले जा सकोगे? रजनीकान्त की चिट्ठी आयी थी। तेरी सूबेदारनी अभी अपने मायके बहियारा में ही है। पिछली बार जब घर गया था तो उसके मन में सिलाई मशीन की बड़ी इच्छा थी, कुछ काटना-सिलना जानती है।'

दूलीचन्द – 'सूबेदार साब, फौजी आदमी हूँ। बड़े-बड़े टैंक उठाकर पाकिस्तान फेंक दूँ, सिलाई मशीन क्या चीज है; जरूर ले जाऊँगा। उन्हें देकर ही अपने घर जाऊँगा।'

समय का पहिया खिसकता जा रहा था और उसी के साथ शोभा ने पूरे घर की कमान सम्भाल ली थी। मर्दानी घर में जहाँ रूचिकर भोजन के लाले थे, वहाँ बड़ी, तिलौरी और पापड़ की बहार आ गयी। पनँचरा देकर कलकतिया चाय फुलमतिया से कैसे झटकते हैं, कोई शोभा से सीखे। हँसी-ठिठोली में तो ऐसी माहिर कि प्रायः सभी घरों की हमउम्र औरतें दुपहरिया होते उसके सहन में जमा हो जातीं। हँसी खेल में ही शोभा किसी से हल्दी पिसवाती, किसी से ढेंकी पर मिर्चा कुटवाती, कोई गढ़ी से तरकारी तोड़ देती तो कोई उसके सूखे कपड़े तह कर देती।

आषाढ़ की तपती दोपहरी। दूर-दूर तक घने बादलों का कहीं नामोनिशान नहीं। रूई के फाहे जैसे सफेद बादल भला क्या बरसेंगे! बाबू आम का हिसाब करने भोर ही भोर बगइचा में चले गये।

शोभा ने दालान का दरवाजा अन्दर से बन्द कर लिया। आज उसका जी अच्छा नहीं था। 'पिया परदेस में ही बस गये हैं। औरत के दिल पर क्या गुजरता है, कौन समझाये उन्हें।' - उसका मन कसमसा गया। दो-चार औरतें साँकल बजाकर चली गयीं, पर आज मंडली जमाने की उसकी इच्छा ही न हुई।

'खोलीं बबुनी, केंवड़िया खोलीं -'

'अरे, ये तो भीखू हरवाह की आवाज है। इस भरी दोपहरी में मुझे अकेला जानकर क्या करने आया है?'-उसका जी धड़क गया। ना-ना, कहीं बाबू ने आम तो नहीं भेजे है? उसने किवाड़ के फाँफर से झाँककर देखा। भीखू हरवाह के साथ एक लम्बा सजीला मोछइल जवान हाथ में सामान लिये खड़ा था।

'कौन है यह ?'

'खोलीं ना बबुनी, पहुना पेठवले बानी सामान, ले लींहीं।' - भीखू ने फिर आवाज दी।

पहुना!! ..... उसके तन में झुरझुरी सी उठ गयी। उन्हें भला मेरी याद कैसे आ गयी? कैसे हैं वो? उसके रोम-रोम में बिजली की तेजी समा गयीं; माथे पर आँचल रखा और धड़ से किवाड़ खोल दी।

'राम-राम सूबेदारनी जी, सूबेदार साब ने एक सिलाई मशीन भेजी है, आपके लिए। यहीं खनगाँव का रहने वाला हूँ। सोचा, आपका सामान आपको सुपुर्द करता चलूँ' - जवान ने कहा।

'सूबेदारनी' - यह शब्द सुनते ही शोभा का चेहरा गर्व और शर्म से लाल हो गया। कहना चाहती थी कि रूकिये, कुछ जलपान करके जाइये, लेकिन जड़ता ऐसी कि कुछ कह ही न पायी। वह अपरिचित आदमी कब चला गया, पता भी न चला।

सिलाई मशीन क्या आयी, औरतों के बीच शोभा की पूछ और बढ़ गयी।

मुस्लिम टोले मे ईद की गहमा-गहमी। लोगों का उल्लास देखते बनता था। क्या बच्चे, क्या जवान और क्या बूढ़े - सब अपनी तैयारी जल्दी-से-जल्दी पूरी कर लेना चाहते थे ..... कि सुबह-सुबह ही अदीब की अम्मी शोभा के दालान पर पहुँच गयी, बड़े अदब से शोभा को बुलाया और बोलीं – 'ए बबुनी, तनी अदीब के अब्बू के एगो लुंगी सी देब?..... तुरते नमाज खातिर जाए के बा। ए बेटा जरूरी बा। काल्हे रात अदीब कलकत्ता से लेके आइल हा। ना ता हमार कहाँ औकाद रहे कि लुँगी किनाइत।'

शोभा ने तनिक देर न की और बोली – 'चलावा भउजी हैण्डिल, तुरते सिया जाला।'

सिली लुंगी लेकर गदगद भाव से अदीब की अम्मी ने शोभा को देखा - एक विचित्र आभार-स्नेह उनकी आँखों से टपक रहे थे। वे झटपट अपने घर की ओर लपकीं।

सूर्यदेव के चेहरे पर थकान साफ झलक रही थी। वे धीरे-धीरे अपने बिछौने की ओर बढ़ रहे थे। मुरली नीम के दातुन तोड़ रहा था, पर मन तो उसका पानीकल की ओर गिरती फटी तिलंगी पर अटका था। वह बार-बार ललचायी आँखों से उधर देख लेता था। नीचे खड़ी शोभा ने मीठी डाँट लगायी – 'काहे रे मुरलिया, काहे पढ़ाई छोड़ देले रे भकचोन्हर। ना पढ़बे ता घाँस काटबे का?'

मुरली – 'ए दिदिया, देखा ना पिछवा के ठाढ़ बा?' शोभा का ध्यान बँट गया। उसने पीछे घूमकर देखा, इधर मुरलिया पेड़ से कूदकर रफूचक्कर।

'ए बबुनी, उर्मिलवा के बियाह हा, नौ गो बाँस चाहीं; तनी मालिक से कहके दिवा दिहतीं ता हमरा आफियत हो जाइत'- पीछे खड़ी उर्मिला की माँ बोलीं।

'ए भउजी, तूहूँ का बात कहतारू। उर्मिलवा हमारी बहीन ना हा का? एह में बाबू से पूछे के का बा हो? उहाँ के मना थोड़े करब। गाँव-घर के बेटी ता सभके बेटी होले, जा कटवा ला बाँस। लइक़ी ता चिरईं हा। कब खोंता बदला जाला, पतो ना चले।' उसे अपनी विदाई याद आ गयी। कितने लम्बे घूँघट में पसीने से लथपथ वह धनुपरा पहुँची थी। कब वह पराया लगने वाला घर, अपरिचित से लोग अपने हो गये, पता भी नहीं चला। उसे अपनी

ससुराल की याद आ गयी। कितने भले लोग हैं। देवर रजनीकान्त भी कम मजाकिया नहीं हैं। उनकी जिन्दादिली और चुहलबाजी की याद आते ही उसके होंठो पर हँसी तैर गयी। अरे, तबकी होली में जब आये थे, आँगन में ही होरहा लगाने लगे थे। वह सामने से निकली तो कहने लगे – 'का तीन हाँथ के घूघ कढ़ले बानी भउजी, तनी माडर्न बनीं, माडर्न। लींही, खाईं होरहा। मुँहवा करिया ना हो जाई, गोर बानी ना गोरे रहब।' लीलावती दीदी दाल दल रही थीं। जैलसार का गीत उनके कोकिल कंठ से कितना सुहाना लग रहा था – 'ए सासु ननदिया बिरही बोलेली, केकर कमइया खइबू हो राम .....।'

होरहा की आग देखकर वे रजनीकान्त से झल्लाकर बोलीं – 'बड़ा उत्पात करतानी जी। होरहवा दुअरे ना लागित? लीपल-पोतल अँगना घिना दिहनी।'

रजनीकान्त ने अपनी शोभा भउजी के ओर आँख मारते हुए कहा था –'बड़की भउजी बुढ़ा गइली, एहीसे जब ना तब टरटरात रहतारी। जन चिन्ता करीं भउजी, छोटकी भउजी अभी एकदम टाँठ-एस्मार्ट बाड़ी, सभ साफ-सूफ का दीहें। आई हेने होरहा खाईं, माने एही घरी ढेर जाँत चलता।'

'ए फूआजी, ए फूआजी'- सुनरी दरवाजा खटखटा रही थी। मधुर स्मृतियों में खोयी शोभा अचकचा गयी; भीतर से ही पूछा – 'का हा रे, ई भरल दुपहरिया में कहँवाँ घूमतारे रे? सुनरी ने आँख नचाई – 'अब हई देखीं; का दो घूमतानी? माई पुछववलस हीया कि एह घरी घाट खाली होई, चलब मछरी मारे?'

शोभा के चेहरे पर युवा चपलता विचित्र चमक के साथ छलक गयी। लेकिन घर किस पर छोड़े? बीसू साह के खेत की रजिस्ट्री है। बाबू तो गवाह बनकर आरा गये हैं। उसने कहा – 'जाए के मन ता बड़ले बा रे, बाकिर घरवा के अगोरी? माई से कह दीहे, ना जइहें फूआजी, घरे केहू नइखे।'

'ए बबी, ए बबी .....' सुनरी माँ पुकार रही थीं। उसने दरवाजा खोल दिया – 'का हा भउजी? सोन में चुभकी लगावल आ मछरी मारल केकरा ना आच्छा लागी, बाकिर का करीं, बाबू नइखन नू घरे।'

सुनरी माँ बोलीं – 'चलीं बबी, बउकी के बोला देले बानी, गूँग ह ता का हा, ओकरा रहते मजाल बा कि केहू एगो खरिको तूड़ लेवे।'

बउकी आँ ऊँ आँ करते पहुँच ही गयी। अपना डण्डा खम्भे से लगाकर उसने जाने का इशारा किया। अब क्या था, शोभा के तो जैसे दो नहीं, चार पंख जम गये। जल्दी-जल्दी बाबू का एक झीना अँगोछा और तसली में सनलाइट साबुन लेकर भउजी के साथ निकल पड़ी। दोनों एक-दूसरे से हँसी मजाक करती अड़ार से नीचे उतर गयीं। धार पर पहुँचकर शोभा ने साबुन मल-मलकर खूब नहाया और तब दोनों मिलकर मछली मारने लगीं। लेकिन बड़ी मछली तो अँगोछे में फँसती ही न थी, बहुत मशक्कत से दोनों ने सेर भर पोठिया का जुगाड़ किया।

शोभा बोली – 'ए भउजी, रउवे ले जाइब, मछरिये केतना बाड़ी सा। ओइसे भी हम मछरी ना खाइले बाकि फँसावे में बड़ा मजा आवेला। आ बाबू भी माई के मुवते ई कुल छोड़ दिहलन। हमरा घरे तीसर के बा?'

सुनरी माँ – 'ई का कहतानी जी, सोन किनार के बेटी, आ मछरी ना खाइले!!'

शोभा – 'खात रहीं भउजी, बाकिर एक बेर के बात हा कि बड़का भइया के परिवार आइल रहे। बड़ी भारी रोहू हम अँगनवा में बइठ के काटत रहीं। जसहीं ओकर पेट काटके लेदरी गुदरी निकाले लगनी, ओकरा से आदमी के एगो अंगुरी निकलल। जीउ अइसन डेराइल कि हम चिचियाए लगनी। भइया दउरल अइलन आ कुल मछरिया बिगवा दिहलन। तबे से हम मछरी ना खाइले।'

शोभा की तसली में सारी मछलियों को रखकर सुनरी माँ ने अँगोछे से उसका मुँह बाँध दिया और दोनों अड़ार पर चढ़ने लगी। शोभा के बाल बहुत घने और घुटनों तक लम्बे थे। अपने बालों को झटका दे-देकर सुखाने का प्रयास कर रही थी और

धीरे-धीरे कुछ गुनगुना भी रही थी।

सहसा सुनरी माँ ठिठक गयी उसने शोभा को रहस्यमयी दृष्टि से ऊपर से नीचे तक देखा और बोली – 'ए बबुनी, एगो बात पूछीं?'

शोभा – 'का हा भउजी, पूछीं ना, काहे ना पूछब?

सुनरी माँ – 'आईं ना झलास के ओटवा बइठल जाव घाम बा जी।'

दोनों झमाठ झलास के नीचे छाँह में जा बैठीं। सुनरी माँ आँखे नीची किये तसली पर के अँगोछे की ढीली पड़ गयी गाँठ को कसने लगी। इधर शोभा की उत्सुकता बढ़ती जा रही थी – 'का कहतानी भउजी? कतना तसली बान्हब, बोलीं ना।'

सुनरी माँ – 'कहतानी बबी कि पहुना कबो खत-खबर भेजेले कि ना? कुछो खर्चा पानी?'

शोभा को तो जैसे पाला मार गया। भरियल आवाज में उसने कहा-'एगो सिलाई मशीन भेजले रहीं, ओकरा बाद से तऽ कवनो खोज-खबर नइखे। ओइसे उहाँ के छोट भाई के पढ़ाव तानी आ धनुपरो के खर्चा मोटा-मोटी चलावहीं के पड़ेला एही से .....।'

सुनरी माँ – 'ए बबुनी, रउआ सुरूए से सिधुआ हईं, किछु कल-छल ना जानिला, बाकिर सउँसे गाँव-जवार में हल्ला बा कि शोभाउती के दुलहा ना पूछेले। एही से मालिक बहियारा लेके चल अइनी।'

'..... ना पूछेले' ..... शोभा को लगा जैसे उसके कान पर किसी ने झन्नाटेदार तमाचा मारा हो। वह एकदम सन्न रह गयी। मारे शंका के अब उसके पैर उठ ही नहीं रहे थे। सुनरी माँ असली मछली का शिकार कर चुकी थी। बुझी आवाज में शोभा ने कहा – 'भउजी, रउवा जाईं, लइका खोजत होंइहें सऽ, हमार केसिया अभी पूरा सूखल नइखे, तनी सुखा लीं।'

सुनरी माँ के जाने के बाद उसने सोनबाबा की ओर कातर दृष्टि से देखा। उस वक्त बाबा उस श्रान्त-क्लान्त तपस्वी से लग रहे थे जो थककर भी हार नहीं मानता, अपने साधना-पथ पर निरन्तर बढ़ता रहता है। आस्था की अजब आँधी उठी। उसने सोनबाबा से गिड़गिड़ाकर कहा – 'हे सोनबाबा, हो पहाड़ से गंगासागर ले घूमेलऽ, तनी हमरा मालिक के बोला द ना। ई भउजी के बात पतियावे जोग नइखे। हइसे केहू पर अछरंग लगावल जाला? पियरी चढ़ाइव, सोनबाबा, बोला दऽ ना हमरा मालिक के' - उसकी आँखों से ढर-ढर आँसू झड़ रहे थे।

वह अनमनी-सी जैसे-तैसे घर पहुँची तो बउकी दाँत-निपोड़े उसका इन्तजार कर रही थी। उसने अन्दर जाकर देखा तो कटोरे में कुछ गुड़पुए बचे थे जो उसने सुबह बाबू को बना कर दिये थे। दो पुए और एक सकोरा पानी लेकर वह बाहर आयी, बउकी को दिया और बोली – 'पानी पीलऽ, आ अपना घरे चल जा।'

पुए खाकर बउकी को ऐसा आनन्द आया जैसे उसे उदवन्तनगर की बेलगरामी मिल गयी हो। पानी पीकर आँ-ऊँ करती वह अपने घर की ओर भागी।

सुनरी माँ एक ही कुटनी थी। उसने शोभा से जो कनफुसकी की, उससे उसका चित्त बहुत अशान्त रहने लगा। भउजी कहानेवाली उस औरत ने उसके हृदय के निर्मल जल में शक की सड़ी मछली जो डाल दी थी।

नरहीं चाँदी की कला समिति जेवार भर में मशहूर थी। जेठ की एकादशी से पूर्णिमा तक लगातार गाने-बजाने, मसखरी, नाटक-नौटंकी के कार्यक्रम चलते रहते। नरहीं के मुखिया बाबू रामसिंहासन सिंह बड़े कलाप्रेमी थे। चैत नवमी बाद ही चन्दे की उगाही शुरू हो जाती। अठन्नी से कम की राशि स्वीकार ही नहीं होती थी, ज्यादा चाहे जितना दीजिए। मुखियाजी भी इस आयोजन पर दिल खोलकर खर्च करते। चाँदी चौक से नरहीं गाँव की ओर जाने वाले रास्ते के किनारे बड़ा-सा मंच बनता; कनात के साथ शामियाना तनता। सामने दायें-बायें दस-बीस कुर्सियाँ लग जातीं जिनपर जेवार भर के प्रतिष्ठित लोग मुखिया के साथ बैठकर गौरवान्वित महसूस करते। बाकी लोग दरी पर ही आसन जमाते। आगे बैठने के लालच में शाम से ही लोग जगह छेंकने लगते। जेठ की तपिश और

उमस को देखते हुए मुखियाजी बीच-बीच में लोगों पर केवड़ा जल और गुलाब जल का छिड़काव करवाते रहते।

मंच सज चुका है, मण्डली गा रही है। बिदेसिया का वह प्रसंग चल रहा है जहाँ प्यारी सुन्दरी की बेचैनी देखकर बटोही रो पड़ता है। रात्रि के अन्धकार में आवाज साफ गूँज रही है-

ताकऽतानी चारू ओर पिया आके करऽ सोर।
लवटो अभागिन के भगिया ए बलमुआ।।
कहत भिखारी नाई आस नइखे एको पाई।
हमरा से होखे के दीदार ए बलमुआ।।

अचानक शोभा को लगा कि उसकी खाट हिल रही है, आँखों के आगे अँधेरा-सा छा गया। वह हड़बड़ाकर उठ गयी - 'आइ हो दादा, ई मुँहझउँसा हमरे होनी उचारता का? ए माई, सरग चल गइले, तोर अँखिया तेज होई। तनी देख ना माई केने बाड़न? रच्छा करिहे माई, रच्छा करिहे।'

अकथ व्यथा, विचित्र बेचैनी, रात आँखों में ही कट गयी। पौ फटने के पहले ही शोभा ने खाट छोड़ दी। चिड़ियों को दाना दिया, फिर स्नान करके आदित बाबा को जल चढ़ाया और लग गयी घर के काम-धंधे में। लेकिन नींद उड़ने और चिन्ता-नागिन के बार-बार डँसने से अजीब सी उथल-पुथल, उसका मन एकदम उचाट-वावला हुआ जाता था। कभी तेल के छींटे गाल पर पड़ते तो कभी आटा गीला हो जाता। मन को किसी तरह खींच-खींचकर काम कर रही थी। अनमनी सी खाने बैठी तो देखा दाल में नमक तो जहर हो गया है। लेकिन बाबू तो कुछ नहीं बोले, चुपचाप खाकर चले गये! ..... 'बाबू' वह रूआँसी हो गयी।

'ना, मेरी पीड़ा बाबु तक न पहुँचे, इसका ख्याल रखूँगी'- उसने सोचा। भाँड़ में देखा तो छोटकी मसुरी पसेरी भर से कम न थी। उसने थोड़ी मसुरी भिंगो दी। आज बाबू के लिए वह कचरी और हलवा बनाएगी।

'शोभा, अरे कतना नीमन कचरी बनवले बाड़ू बाची, एकदम झूर-झूर। आ हलुआ, वाह रे वाह, ई नू कहाला हलुआ। तूँहूँ ले आवऽ, खालऽ हमरा संगे' - बाबू तृप्त होकर बोले।

शोभा फूली न समायी और इठलाती हुई कचरी-हलवा लाने अन्दर चली गयी कि तभी दरवाजे पर हाथ में सूटकेस लिए एक छरहरे जवान ने बाबू के पैर छुए – 'रमाकान्त हईं, चीन्हतानी?' बाबू एकदम हड़बड़ा गये। 'अरे पाहुन!'- खुशी के मारे उनके होंठ फड़कने लगे।

'ए शोभा, ए शोभा, देखऽ के आइल बाड़न' - उन्होंने जोर से आवाज दी।

शोभा विचित्र उलझन में पड़ गयी कि इस वक्त दरवाजे पर कौन आ गया। उसने चौखट पर से झाँककर देखा – 'अरे ये तो मेरे मालिक हैं! कतना दुबरा गये हैं! वह दौड़ी हुई अपने कमरे में गयी। आईने में जल्दी-जल्दी अपने आपको सँवारा और लजाती हुई बाहर आ गयी – 'रउवा? कइसे-कइसे? कवनो खबरों ना दिहनी।'

रमाकान्त – 'हाँ, क्या करूँ? फौजी आदमी हूँ, छुट्टी ही कहाँ मिलती है? तुझे लेने आया हूँ।'

'लेने आया हूँ!! कहाँ ले जायेंगे?? बहियारा से धनुपरा और धनुपरा से बहियारा के बीच ही उसकी अब तक की जिन्दगी कटी थी। बाहर जाने की बात से ही वह सिहर गयी। खैर, अब तो मालिक जो कहेंगे, वही करना है' - उसने सोचा।

वह आँगन की ओर दौड़ी और पिछले दरवाजे से मटरू को आवाज दी। मटरूआ रेडियो पर मस्त-मगन गाना सुन रहा था। उसने कोई प्रतिक्रिया ही नहीं दी। गुस्से में शोभा ने धड़ाक से पीछे का पूरा दरवाजा खोल दिया और मटरूआ के कान खींचकर बोली – 'बहिर भइल बाड़े का रे? सुनात नइखे? ले हई पैसा, गनौरी हलुआई के दोकान से आध सेर पूड़ी ले आव, आ सुन तियना लिहल मत भुलइहे, ना तऽ तोर माई के बनावे पड़ी। तोर भाई साहेब आइल बाड़े! जो-जो, धउग के जो। मटरू की माँ खपड़ों के लिए मिट्टी गूँध रही थी, बीच-बीच में कंकड़ भी छाँटती जा रही थी। शोभा के पति के आगमन की बात सुनकर उसकी बाँछें खिल

गयी। बोली – 'ए बबुनी, पहुना आइल बानी, तऽ हम ना नश्ता बना देतीं? ई हलवाई घरे से काहे के मँगववनी हाँ जी, बोलीं त?'

लेकिन 'भाई साहेब' शब्द मटरूआ के कान में जैसे ही पड़ा, अब तो उसको न जाते देर, न आते देर। फट से लाकर उसने लाल कपड़े से ढँकी हुई पितरिया थाली पकड़ा दी।

'रजनीकान्त की पढ़ाई पूरी हो गयी। अब वह बक्सर के भूमिहार स्कूल में टीचर हो गया है। बाबूजी, अब मेरी एक बड़ी जवाबदेही खत्म हो गयी। इसलिए अब अपनी देहरादून पोस्टिंग करा ली है, फैमिली क्वार्टर भी मिल गया है। यहाँ से सुबह ही निकलना चाहता हूँ। परेव होते कटेसर जाना है। दूरी तो कुछ नहीं है, रास्ता भी ठीक ही है, पर नाव से जाना चाहता है क्योंकि ..... क्योंकि शोभा को तो जीप में घुमरी आती है' - उसने मुस्कुराकर शोभा की ओर देखा।

'अरे भाई, कितना याद है इन्हें। कुछ भी तो नहीं भूले हैं' - शोभा के अंग-प्रत्यंग में रोमांच हो गया। वह लोटे में जल लिये वहीं ठिठककर सारी बातें सुन रही थी। उसका दिल धक-धक करने लगा।' मालिक के साथ रहना तो ठीक ही है, लेकिन बाबू?' ..... वह एकदम घबरा गयी।

रमाकान्त फिर कहने लगे - 'कटेसर में बड़की भगिनी की कातिक में शादी है। अब इतनी जल्दी तो नहीं आ पाऊँगा, लेकिन सोच रहा हूँ कि परेव से तिलक के बरतन खरीदकर कटेसर पहुँचा दूँ। दिदिया और उसके परिवार से भेंट मुलाकात भी हो जाएगी। मैं मरद आदमी, बरतन-बासन क्या जानूँ? शोभा साथ रहेगी तो ठीक से देख सुनकर खरीदारी होगी।'

बाबू – 'ए पाहुन, ठीक बा, बाकिर पहिल बेर शोभा रउवा साथे जा तारी तऽ तनी हम पंडित के बोला के जतरा-पतरा देखवा लेल चाहत बानी।'

रमाकान्त – 'अरे ये सब रहने दीजिए बाबूजी साइत से सुतार भला। मेरी छुट्टी खत्म हो रही है। अगर पंडितजी ने कुछ आयँ-बायँ कह दिया तो कहाँ से लाऊँगा छुट्टी, इसलिए सुबह ही निकल जाने दीजिए।'

बाबू – 'अच्छा-अच्छा ठीक बा।' उन्होंने पुकारा – 'ए बिरजू, तनी सोहराई मल्लाह के जाके कह दऽ भोरहीं ऊ आपन नाव घाट पऽ लगा दीहें। बबी आ पहुना के परेव पहुँचावे के बा।'

खा-पीकर जब रमाकान्त और शोभा बाबू के पास बैठे तो बाबू ने भर्रायी आवाज में कहा – 'ए शोभा, दही जमा दऽ, जतरा पऽ दही जरूरी हऽ। आ हई लऽ, अपने से खोंइछा लगा लीहऽ। माई नइखी तऽ का हऽ, आपन सुभ अपने मनावल जाला' बाबू ने धोती के फेंटे से ग्यारह रूपये निकालकर शोभा के हाथ में रख दिये। शोभा रोने लगी – 'कइसे रहबऽ बाबू तूँ अकेले? बबुआ के बियाह कऽ दऽ अब। एगो बेकत आ जाईं, तऽ अँगना उजियार हो जाई।'

बाबू ने बात बदली – 'कपड़ा-लत्ता तऽ ना किनाइल रे, का करीं?

शोभा – 'ना बाबू, कपड़ा के फेर में का बाड़ऽ? बड़की भउजी एगो नीमन चुनरी दे गइल रहीं, हम पहिननी कहाँ? पहिन लेब ऊहे, तूँ चिन्ता मत करऽ।'

फिर शोभा रात्रि विश्राम के लिए अपने पति के संग अन्दर चली गयी। फूस की छप्पर से नीम की झूमती पत्तियों के बीच लुकते-छिपते चाँद पर उसकी नजर पड़ गयी। उसे लगा जैसे आज उससे शीतल प्रकाश नहीं महुए का रस टपक रहा हो। बूढ़े तारे मानो इस जुगल जोड़ी को निहारना तो चाहते हैं' पर मारे संकोच और लेहाज के वे अपनी आँखे इधर-उधर मोड़ रहे हैं।

ग् ग् ग् ग् ग्

भोर होते-होते गनौरी बहू तेलहा जलेबी परात में भरकर पहुँच गयीं। शोभा बबी को लेने पहुना आये हैं, यह खबर रातोंरात गाँव भर में फैल गयी।

सोहराई मल्लाह ने सलाम किया – 'मालिक नइया लाग गइल बीया घाटे। किछु सामान होखे तऽ दीहीं, लाद दीं।'

शोभा ने बड़की भउजी की दी हुई लाल चुनरी पहन ली थी। माँग में टह-टह सिन्दूर, बड़ी

सी लाल टिकुली - शोभा की शोभा तो देखते ही बनती थी।

गनौरी बहू ने दही और जलेबी पहुना और शोभा के सामने रख दिये – 'तनीं मुँह जुठिया लीं लोग ..... जाईं बबी, सुखी रहीं, अपना बाग-बगइचा में रजे-गजे रहीं। 'भउजी' - शोभा रो रही थी – 'हमार बाबू के देखत रहब।'

पाहुन ने हाथ-मुँह धोकर रूमाल से हाथ पोंछा और बोले – 'अब चलता हूँ देर हो जाएगी, फिर रात को पटना में ट्रेन भी पकड़नी है।'

अब तक गाँव की कई महिलाएँ जुट गयी थीं। 'तनी गोड़वा रंग दऽ हो, बबुई जात बाड़ी' - पार्वती चाची बोलीं और फफककर रो पड़ीं। घर में माई ना भउजाई - फुलेना बहू की छाती कचोट गयी, दौड़कर भीतर से आलता ले आयी। शोभा के पाँवों में उसे लगाकर उसकी माँग में चौड़ा सिन्दूर भर दिया। सिसकी भरती शोभा ने छिपुली की ओर इशारा किया जिसमें चावल, हल्दी, दूब और बाबू के दिए ग्यारह रूपये रखे थे। उर्मिला की माँ ने आगे बढ़कर खोंइचा लगाया और फिर शोभा के आँचल से दो-चार दाने निकालकर छिपुली में रख लिये और बोलीं - 'एहिजो अन्न धन लछिमी बनल रहे। ए बबी छोटका बबुआजी के अब बियाह होखो। आइब जरूर बबी बियाह में।'

घर की चौखट से बाहर आते ही शोभा वहाँ मौजूद महिलाओं के गले लग-लगकर रोयी। फिर बाबू के गले लगते ही उसके आँसुओं का बाँध टूट पड़ा। वह पुक्का फाड़कर रोने लगी। रो तो बाबू भी रहे थे, पर अपने को सम्भालकर बोले – 'जा शोभा, जिनिगी भर तऽ तपस्ये कइनी, अब केतना दिन बा? ईहो कट जाई। अचानक उन्हें कुछ याद आया। शिवनाथ के बेटे के ब्याह में उन्हें एक पीली धोती मिली थी। जल्दी से उन्होंने सन्दूक खोला और वह पीली धोती पाहुन के कन्धे पर रख दी – 'एतना जल्दी जा तानी, इस कुछ करियो ना सकनी। अच्छा, पाछे मनीआडर लगा देब।'-बाबू बोले।

बालू से लंगर उठते नाव तेज हिचकोले खाकर नदी के प्रवाह में आगे बढ़ गयी, शायद किसी पत्थर से टकरा गयी थी। सोन किनारे की शोभावती ने तो झट से नाव का मुरेठा पकड़ लिया, पर रमाकान्त इसके अभ्यस्त न थे, गिरते-गिरते बचे। उन्होंने अपना माल-असबाब देखा। शोभा अब भी सिसक रही थी और दूर होते जा रहे अपने घर के छप्पर पर लगे महावीरी झंडे को कातर भाव से निहार रही थी, निहोरा कर रही थी अपने घर की सलामती के लिए। इसी रामनवमी में तो उसने बाबू से जिद करके खूब बड़ी धाजा मँगवायी थी। 'बाबू' ..... एक अजीब तड़प ने उसके भीतर तूफान मचा दिया।

रमाकान्त ने बड़े स्नेह से उसका हाथ पकड़ लिया – 'क्यों रोती है, आज तो हमारी खुशी का दिन है। अब हम साथ होंगे, हमारी फूल-फुलवारी होगी। इतने दिन तेरे बिन कैसे कटे हैं, मैं ही जानता हूँ ..... ।'

रमाकान्त के होंठ काँप रहे थे। एक गहरी साँस लेकर वे फिर बोले – 'तू अपने बाबू के लिए रो रही है न, तो मेरी ओर से बेफिकर रह। जब चाहे तू उन्हें अपने घर बुला सकती है, टिकट मैं बनवा दूँगा।'

लज्जा, प्रीत और अचरज के मिले-जुले भाव से शोभा ने अपने पति की ओर देखा – 'कितना गलत सोचने लगी थी मैं। ये तो अभी भी वही देवता है।'

'ए जी राउर धोतिया?' - शोभा ने चिहाकर पूछा। रमाकान्त ने अपने कन्धे पर हाथ फेरा। अरे, धोती क्या हो गयी! नाव के भीतर झाँका, फिर दोनों नदी की धार में धोती ढूँढ़ने लगे।

स्मृतियों की बिजली कौंधी-झलास का झुरमुट ..... वह सोनबाबा से निहोरा कर रही है – 'हे सोनबाबा, हमारा मालिक के बोला दऽ - पियरी चढ़ाइब तोहरा के .....'

सोन की लहरों ने पीली धोती ओढ़ ली थी - वह मुस्कुरायी।

नन्द चतुर्वेदी की रचनाओं में सामाजिक संदर्भ

संगीता भारद्वाज
शोधार्थी, हिन्दी-विभाग, माधव विश्वविद्यालय, राजस्थान

डॉ. विदुषी आमेटा
सह आचार्य एवं शोध निर्देशक, हिन्दी-विभाग

सारांश

साहित्य व समाज का पारस्परिक अन्तर्संबंध है। साहित्य में समाज का चित्रण प्राचीनकाल से होता आया है। साहित्य में समाज का चित्रण मानवतावाद का पोषक है। एक साहित्यकार अपने परिवेश और संस्कृति का चित्रण कर अपने साहित्य का सृजन लोक निर्मित करता है। वैदिक काल से तात्कालीन समाज का चित्रण साहित्य में होता आया है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल व आधुनिक काल में समाज का यथोचित चित्रण होता रहा है। राजस्थान क्षेत्र के सुप्रसिद्ध रचनाकार नंद चतुर्वेदी की कविताओं में समाज की परिस्थितियाँ प्रत्यक्ष होती है। प्रस्तुत शोध पत्र में नंद बाबू की रचनाओं में अभिव्यक्त समाज का विश्लेषण किया गया है।

बीज शब्द
साहित्य, समाज, नंद चतुर्वेदी, संस्कृति

साहित्य समाज का दर्पण है। एक साहित्यकार समाज की वास्तविक तस्वीर को सदैव अपने साहित्य में उतारता रहा है। साहित्य मानव जीवन तथा समाज का ही एक अंग है। मनुष्य एवं साहित्य परस्पर मिलकर समाज की रचना करते हैं। इस प्रकार साहित्य का समाज और मानव जीवन से संबंध अभिन्न है। समाज और जीवन दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं। आदिकाल के वैदिक ग्रंथों व उपनिषदों से लेकर वर्तमान साहित्य ने मनुष्य जीवन को सदैव ही प्रभावित किया है। मनुष्य की अभिव्यक्ति का साधन उसकी भाषा होती है। जिस देश-जाति की जो भाषा होती है, वहाँ के कवि, साहित्यकार अथवा रचनाकार उसमें ही अपनी अभिव्यक्ति करते हैं। भाषा और संस्कृति की यह अभिव्यक्ति उसके साहित्य में झलकती है। अन्य शब्दों में कहे तो, किसी भी काल के साहित्य के अध्ययन से हम तत्कालीन मानव जीवन के रहन-सहन व अन्य गतिविधियों का सहज ही अध्ययन कर सकते हैं या उसके विषय में संपूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। एक अच्छा साहित्य मानव जीवन के उत्थान व चारित्रिक विकास में सदैव सहायक होता है।

साहित्य ने मनुष्य की विचारधारा को एक नई दिशा प्रदान की है। दूसरे शब्दों में, मनुष्य की विचारधारा परिवर्तित करने के लिए साहित्य का आश्रय लेना पड़ता है। आधुनिक युग के मानव जीवन व उनसे संबंधित दिनचर्या को तो हम स्वयं अनुभव कर सकते हैं परंतु यदि हमें प्राचीन काल के

जीवन के बारे में अपनी जिज्ञासा को पूर्ण करना है तो हमें तत्कालीन साहित्य का ही सहारा लेना पड़ता है। वैदिक काल में भारतीय सभ्यता अत्यंत उन्नत थी। हम तत्कालीन साहित्य के माध्यम से मानव जीवन संबंधी समस्त जानकारी प्राप्त कर सकते हैं तथा उन जीवन मूल्यों का अध्ययन कर सकते हैं, जिन्हें आत्मसात करके तत्कालीन समाज उन्नत बना।

जीवन और साहित्य का अटूट संबंध है। साहित्यकार अपने जीवन में जो दुरूख, अवसाद, कटुता, स्नेह, प्रेम, वात्सल्य, दया आदि का अनुभव करता है, उन्हीं अनुभवों को वह साहित्य में उतारता है। इसके अतिरिक्त जो कुछ भी देश में घटित होता है जिस प्रकार का वातावरण उसे देखने को मिलता है, उस वातावरण का प्रभाव अवश्य ही उसके साहित्य में प्रकाशित होता है। साहित्य से व्यक्ति का मस्तिष्क मजबूत होता है, साथ ही वह उन नैतिक गुणों को भी जीवन में उतार सकता है, जो उसे महानता की ओर ले जाते हैं। यह साहित्य की ही अद्भुत व महान शक्ति है जिससे समय-समय पर मनुष्य के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन देखने को मिलते हैं।

साहित्य का मानव समाज से सीधा संबंध है। दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं। उत्तम साहित्य जीवन के शाश्वत मूल्यों और जीवन चरित्र के निर्माण हेतु आवश्यक तत्वों को समाज को प्रदान करता है। साहित्य समाज में व्याप्त कुरीतियों जैसे अनैतिकता, व्यभिचार, अराजकता आदि को उजागर करता है। वास्तविक रूप में साहित्य समाज का ही प्रतिबिंब है। वह जनमानस के अनुभवों व संवेदनाओं को प्रकट करता है। एक साहित्यकार की दृष्टि सदैव समाज की तत्कालीन परिस्थितियाँ पार करती हुई उन परिस्थितियों को आधार बनाकर अपने साहित्य के सृजन की ओर उन्मुख रहती हैं। साहित्यकार के इसी दृष्टिकोण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि साहित्य समाज का महत्वपूर्ण अंग हैं। साहित्य से ही मनुष्यों के मिलन से सभ्य समाज का निर्माण होता हैं।1

इस तरह समाज व मनुष्य जीवन परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं, एक के बिना दूसरे का अस्तित्व संभव नहीं हैं। प्राचीन काल के आदि साहित्य वेद, गीता,उपनिषद आदि से लेकर आज का क्षेत्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय साहित्य, समाज पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालता है। एक अच्छा साहित्य मनुष्य जीवन तथा समाज की उन्नति, उत्थान तथा सुचरित्र के निर्माण में सहायक होता है। मानव मस्तिष्क की परिपक्वता तथा विचारों के प्रस्फुटन में साहित्य का बड़ा महत्व होता है। आदर्शवादी गुणों के उद्भव एवं चरित्र में उसके प्रयोग की प्रेरणा साहित्य ही प्रदान करता है। इसकी अद्भुत शक्ति का प्रयोग कई इतिहास प्रसिद्ध हस्तियों ने किया, जिसके कारण आज हम उन्हें महापुरुषों के रूप में याद करते हैं।2

कवि नंद चतुर्वेदी का जन्म वैशाख सुदी पंचमी, 21 अप्रैल, 1923 को गाँव रावजी का पीपल्या, झालावाड़ (स्वतंत्रता पूर्व मेवाड, राजस्थान वर्तमान मध्यप्रदेश जिला-मनासा) में हुआ। इनके पिता का नाम श्री सुदर्शनलाल चतुर्वेदी था। 25 दिसम्बर 2014 को राजस्थान प्रदेश में निवास करने वाले हिन्दी के महान साहित्यकार का निधन हो गया।3

झालावाड़ के राजसी कवि दरबार में लगभग बाल्यावस्था में नंद जी ने अपनी साहित्य-यात्रा की शुरुआत ब्रजभाषा की परम्परागत समस्या पूर्तिनुमा कविता से की थी, अपने पहले दरबारी काव्यपाठ के अवसर का बड़ा ही मनोरंजक वर्णन एकाधिक बार किया है। उन्होंने अपनी निधन के छह घंटे पूर्व भी एक कविता लिखी। यह उनके लेखन के प्रति प्रेम और प्रतिबद्धता को दर्शाता है। 92 वर्ष तक दशकों की लंबी लेखन यात्रा में नंद जी ने परम्परा से लेकर आधुनिकता के कई पड़ावों पर कलम चलाई और अपने लक्ष्यों को पूर्ण किया।

वरिष्ठ समालोचक हेतु भारद्वाज ने उनके व्यक्तित्व के संबंध में लिखा है- 'मुझे यहाँ जिन लोगों का असीम स्नेह मिला, उनमें एक नाम नंद चतुर्वेदी का है, जो आयु में मुझसे काफी बडे थे, बौद्धिक दृष्टि से बहुत प्रबुद्ध और सम्पन्न, राजनीतिक दृष्टि से बहुत प्रखर और सक्रिय, वैदुष्य की दृष्टि से बहुत बड़े ज्ञानी और विभिन्न अनुशासनों के भण्ड़ार, बड़े से बड़े जनसमूह को अपनी वाणी के रस से मोहित करने वाले, समर्थ कवि और गद्यकार, कुशल संपादक और चतुर वार्ताकार, बतरस के धनी और तीक्ष्ण व्यंग्य बाणों का तूणीर भरे हुए।'4

नंद जी ने अपने कृतित्व में जहाँ प्रच्छन्न रूप से लेखन परम्परा को ताकत बनाया है, तो वही भाषा, मुहावरे और कथ्य में समकालीन नयेपन को स्वीकारने का साहस भी जुटाया है। ब्रजभाषा में कविता लेखन के दौर के उनके अनेक साथी कवि थे, पर ऐसे कितने हैं, जो अपने समय के साथ उस तरह बदले, जैसी नंद बाबू की कविता। आमफहम शब्दों के अलावा कहीं-कहीं संस्कृतनिष्ठ शब्दों से भी उन्होंने अपनी कविता काया को रोमांचक बनाया। जैसे-

इस शोकार्त प्रलय की घड़ी में
हम छोड़े नहीं
सुख की तृष्णा5

उनकी कविता में राजस्थान के आम और आदिवासी लोकजन की आवाज कुछ इस तरह मुखर हुई है कि आप उनकी कविता में जन के दुखों और त्रासदियों का पूरा काव्यात्मक इतिहास पढ़ सकते हैं। वे समाजवादी विचारधारा के सबसे सशक्त कवि थे और सत्ता के तमाम केन्द्रों से हमेशा उनका बैर ही रहा। अपनी ओजस्वी वाणी में वे सदा जनाकांक्षाओं के साथ रहे, न कि किसी राजनेता के साथ रहे। उनकी कविता सत्ता प्रतिष्ठानों से टकराती रही है। 'उत्सव का निर्मम समय', 'यह समय मामूली नहीं', 'ईमानदार दुनिया के लिए', 'वे सोये तो नहीं होंगे' और जहाँ उजाले की एक रेखा खिंची है' कविता संग्रहों में उनकी कविताएं इस विशाल गणतंत्र के दुखों को स्पष्ट करती हैं। वे जनता की वेदना को पूरी तिक्तता और व्यंग्य-विनोद के साथ एकाकार हो जाता है।

नंद बाबू एक कवि के साथ ही बहुत अच्छे गद्यकार भी थे। 'शब्द संसार की यायावरी' और 'अतीत राग' जैसे रचना संकलन और पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित उनके बेहद पठनीय और विचारणीय लेख इसके उदाहरण है। विशेष रूप से 'अतीत राग' में संकलित उनके संस्मरण हमें उस दौर में ले जाते हैं, जब इस देश में प्रजातंत्र को फैलते देखना चाहता हूँ और इसलिए यह भी चाहता हूँ कि आंतरिक सुरक्षा कानून उन लोगों की तालाबंदी न करें जिनके पास मनुष्य की यातना की कविता करने का बुनियादी अधिकार है। सभी आयुवर्ग के लेखकों में लोकप्रिय नंद बाबू बेहद आत्मीयता से हर किसी को अपना बना लेते थे।

एक कवि के रूप में नंदबाबू की दृष्टि प्रगतिकामी और वैश्विक थी। समता उनकी मूल प्रतिज्ञा थी और क्रूरता उनकी काव्य कला का बीज शब्दों और समाजवादी विचारधारा के रूप में उन्होंने सचेत वरण किया और इसमें कभी कोई विचलन नहीं आने दिया। उनकी काव्यभाषा जनाभिमुखी किंतु संस्कारित है। उनकी कविताएं विशिष्ट विलासी कला प्रेमियों को नहीं, संस्कारशील आमजन को संबोधित हैं। उनकी सोच में आत्मा-परमात्मा के लफड़े नहीं, अभिव्यक्ति में हम्द या नात नहीं, आवाज में संकट की गुहार और अतीत के नॉस्टेल्जिया भी नहीं, आशा के प्रदीप हैं।

कवि नंद चतुर्वेदी निहायत जिंदादिल इंसान थे। उनमें से जीवंतता की किरणें फूटती थीं, पिछले न जाने कितने वर्षों से वह राजस्थान के साहित्यिक परिदृश्य पर एक जीवंत उपस्थिति थे। नंद बाबू अपने वक्त की समस्याओं और चेतावनियों के प्रति सदैव सचेत रहते थे। किसी सुगंध-वृक्ष की तरह वहाँ ऋतुओं की याद का संसार है, इतिहास के खंडहर हैं, समय के विद्रूप, शोक और अवसाद की छायाएँ, पुराने लोग और खो चुकी जगहें हैं, कहीं-कहीं व्यंग्य-बाण हैं, दुर्घटनाएं हैं, उल्लास और उत्सवधर्मिता भी है। 'सब मिलाकर वह कविता अनजाने या अदृश्य के मुकाबले आज और अभी के जीवन की कविता है- जिसके सारे दृश्य और आमफहम चरित्र परिचित हैं, पर कवि के भीतर का यह रेखांकन कई आकर्षक काव्यात्क चेष्टाओं से भरा है। परिचित आसपास के दृश्यों में समृति की छाया भी यहाँ है और बेहतर भविष्य की आकांक्षा भी- निरा समकालिक समय या दुर्दांत वर्तमान तो है ही, इस तरह वह तीनों कालों की कविता बन जाती है। कविताओं में उनकी यह कोशिश 'उत्सव के निर्मम समय में' ऐसे 'ईमानदार दुनिया के लिए' आगे देखने और चलने की कोशिश थी। वह जानते थे- 'यह समय मामूली नहीं' इसलिए उनकी कविता सदा वहाँ जाने की कोशिश होती थी, जहाँ 'उजाले की एक रेखा खिंची है' जिंदगी से उन्होंने कहा था- 'गा मेरी जिंदगी, कुछ गा!' कविता के माध्यम से ही वह आम लोगों के बारे में सही अनुमान लगा

सकते थे- 'वे सोये तो नहीं होंगे!' यह 'आशा के बलवती होने' का एक निष्कंप भरोसा था।

'यह हमारा समय' पुस्तक में उन्होंने प्रखरता से वर्ण-व्यवस्था, स्त्री'शक्ति, महिला-स्वातंत्र्य, दलित-प्रश्नों, समाजवाद, शिक्षा, धर्म, हिंसा, बाजारवाद, हिंदी, संचार-साधनों, पत्रकारिता, मीडिया, भारतीयता आदि गंभीर विषयों पर एक गहरी अंतदृष्टि से विचार किया है। 'यह हमारा समय' की भूमिका में नंद जी ने लिखा था- ''गद्य लेखन के बारे में मैं यह कहना आवश्यक समझता हूँ कि यह 'स्वतः-स्फूर्त' सर्जना नहीं है, यह अपने बाहरी दबावों की निष्पत्ति है और एक सुतार्किक निष्कर्ष तक पहुँचती यात्रा है लेकिन यह कहना उचित नहीं है कि गद्य लेखन 'दोयम दर्जे' की साधना है। अब कविता-भाषा का गद्य-रूप लेना, भाषा की शक्ति का विस्तार और काव्य-भाषा के वर्चस्व की प्रचलित रूढ़ियों को अस्वीकार करना भी कहा जायेगा।''6 इस पुस्तक में उनके अनुसार कई विषयों पर लिखे आलेख हैं, जिनमें समय के दबावों, उनको समता और स्वतंत्रता के वृहत्तर उद्देश्यों में बदलने वाले आंदोलनों की चर्चा है। मीरां के काव्य और जीवन के विषय में समीक्षा करते हुए उन्होंने इसका व्यावहारिक स्वरूप भी लिखा है- ''प्रायः हम जीवन की रोशनी में कविता की व्याख्या करते हैं। लेकिन मीरां की कविता इस अर्थ में महत्त्वपूर्ण है कि उससे जीवन भी व्याख्यायित होता है। मीरां की कविता उसके निष्कलुष, निभ॰क, निष्कपट मन के समाज के साथ रहती है।''7

कविवर नन्द चतुर्वेदी हिन्दी साहित्य जगत के ख्यात साहित्यकारों में हैं। कविवर द्वारा हिन्दी साहित्य की पद्य एवं गद्य दोनों ही विधा में लेखन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। नन्द चतुर्वेदीजी ने अपना लेखन कार्य ब्रजभाषा में कविता लिख कर प्रारम्भ किया। नन्द चतुर्वेदी को उत्कृष्ट कविता लेखन के लिए पहला पुरस्कार मात्र बारह वर्ष की आयु में ही प्राप्त हो गया था। बारह वर्ष की आयु बालक की अबोध अवस्था होती है ऐसे में नन्द चतुर्वेदी जी को कविता लेखन के लिए पुरस्कार प्राप्त होना सभी को आश्चर्यचकित करता है । नन्द चतुर्वेदी की रचनाओं में राष्ट्र की स्वाधीनता और सामाजिक-आर्थिक गैर-बराबरियों को रेखांकित करते हुए घनाक्षरी, सवैया, पद, दोहा पदों में रचनाएँ प्राप्त होती है। वही दूसरी ओर हिन्दी (खड़ी बोली) में चतुष्पदियों, गीत से लगाकर अतुकान्त-आधुनिक कविताओं का सृजन करने का गौरव भी इन्हें प्राप्त हुआ है।8

अपने साहित्य जीवन में नन्द बाबू ने सम्पादक तथा लेखक दोनों भूमिका को जिया है। नन्द बाबू द्वारा 'मीराँ संचयन', 'सप्तकिरण', 'राजस्थान के कवि' (भाग 1), 'इस बार' (अध्यापकों का कविता संग्रह), 'जयहिन्द' (समाजवादी साप्ताहिक) से लेकर 'जनमन', 'जन-शिक्षण', 'मधुमती' तथा चिन्तन-प्रधान साहित्यिक पत्रिका 'बिन्दु' का सम्पादन। माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की उच्च कक्षाओं के लिए कहानी तथा गद्य की अन्य विधाओं का संग्रह सम्पादन का कार्य किया। राजस्थान साहित्य अकादमी के लिए प्रान्त के प्रख्यात रचनाकारों पर 'मोनोग्राफ' लेखन का कार्य का किया है। कवि नन्द चुतर्वेदी समाजवादी विचारधारा के सबसे सशक्त कवि थे और सत्ता के तमाम केंद्रों से हमेशा उनका बैर ही रहा है। वे महात्मा गाँधी तथा राम मनोहर लोहिया की विचारधारा को जीवन भर मानने वाले व्यक्तियों में से एक थे। नन्द बाबू सदैव कई मुद्दों पर साफगोई से राय रखते थे उदाहरण के रूप में देखे तो वे अक्सर अपने साक्षात्कार में कहते थे कि राजस्थान के हिन्दी लेखकों को वह सम्मान और प्रतिष्ठा नहीं मिली जिसके वे हक़दार थे।

नन्द चतुर्वेदी द्वारा 'सामाजिक यथार्थ और कविता' विषय पर लम्बी तथा सार्थक बातचीत की गयी। इस साक्षात्कार में नन्द बाबू ने एक प्रश्न के उत्तर में कहा कि समाजवादी सोच से जुड़ने की पृष्ठभूमि कविता ही है। उनके अनुसार कोई भी कवि अथवा लेखक यथास्थिति के साथ जुड़ नहीं सकता है। संवाद और बहस कवि नन्द चतुर्वेदी जी के सोच का मूल सार रहा है। वे स्वतंत्रता तथा समता के पक्षधर रहे है। नन्द चतुर्वेदी जी अपने चिंरतन मूल्यों की रक्षा के लिए सदैव परिसंवादों, कवि सम्मेलनों और गोष्ठियों के द्वारा अपनी बात करते थे । इसी कारण इन्हें संवाद प्रेमी भी कहा जाता है। अपनी ओजस्वी वाणी से वे सदा जनाकांक्षाओं के साथ रहे, न कि किसी राजनेता के साथ रहे। उनकी

कविता सदैव सत्ता के प्रतिष्ठानों से टकराती रही है। उनकी कविता में राजस्थान के आम और आदिवासी लोकजन की आवाज मुखर हुई है।

जीवन में परिवर्तनगामी परिस्थितियों को नंद बाबू स्वीकार करते हैं, परन्तु विलुप्ति और लोप की बातों को लेकर प्रत्येक साहित्यकार विचलित होता है। नंद जी इस विचलन को निम्न प्रकार से अभिव्यकत करते हैं-

यह किताब जैसी भी बनी हो
जिस किसी भी भाषा में लिखि गयी हो
लेकिन जब कभी पढ़ी जाएगी
बहुत कुछ विलुप्त हो जाएगा।9

नंद चतुर्वेदी परम्परा और आधुनिकता के विभिन्न प्रश्नों की बहस को जानते-समझते अनिर्णय की दोषपूर्ण अवस्था पर चिंता व्यक्त करते प्रतीत होते है। कवि का मंतव्य है कि किसी प्रश्न पर विवाद या चर्चा की स्थिति बनने पर समाधान होना चाहिए, निरन्तर अनिर्णय की स्थिति ठीक नहीं है। इसका संबंध में उनकी चिंता स्पष्ट है-

बार-बार हम समय को दोष दें
म्लान चित्त बहस करें
निर्णय निकाले कि कुछ होगा नहीं।10

सामाजिक सरोकारों से उनकी लेखकीय प्रतिबद्धता सदैव जुड़ी रही है। समाज में व्याप्त समस्याओं को उन्होनें अपनी कविताओं में स्पष्ट किया है। भूख, निर्धनता और सती प्रथा जैसी बाल और महिला समस्याओं पर केन्द्रित उनकी रचना निम्न प्रकार है-

यही गाड़ दिये जाएंगे
भूखे बच्चे
यहीं जला दी जाएंगी,
ढोल पीट-पीट कर तरुणियाँ11

नन्द चतुर्वेदी जी जीवन को अन्य नाम गतिशीलता देते है । यह गतिशीलता विचारों के रूप में जन्म लेकर जीवन को गति प्रदान करती है। विचारों की जननी मनुष्य की अभिव्यक्ति ही होती हैं । नन्द चतुर्वेदी जी की काव्य की भाषा में आदेश तथा सांद्रता अधिक है ।

वर्तमान साहित्य न केवल अपने समय के हालातों को अगली पीढ़ी के लिए इतिहास को कलमबद्ध करने की भूमिका निभाता हैं, बल्कि अपने काल के समाज की आवश्यकताओं तथा तत्कालीन समस्याओं के प्रति उनकी भूमिका को भी स्पष्ट कर कर्तव्यपालन के लिए प्रेरित करताहैं ।

कविवर नन्द चतुर्वेदी जी के अनुसार अच्छा साहित्य समाज में आदर्श प्रस्तुत करता है तथा मनुष्य को प्रगति की ओर ले जाता हैं । उनके अनुसार साहित्यकार की अभिव्यक्ति एक कुशल चित्रकार की भाँति होती है जो समाज के विभिन्न रंगों के माध्यम से अपनी कविताओं में उसकी तस्वीरें प्रस्तुत करता है अर्थात् साहित्यावलोकन से ही समाज के विभिन्न रंगों की पहचान की जा सकती है । वर्तमान समय में जबकि बहुत से लोग साहित्य से अपना नाता तोड़ चुके हैं, सामाजिक अराजकता बढ़ी है । इसे ध्यान में रखकर हमें लोगों की साहित्य के प्रति बढ़ती अरुचि के निराकरण का प्रयास करना चाहिए ।

संदर्भ सूची

1. नलिन विलोचन शर्मा, साहित्य का इतिहास दर्शन, राष्ट्रभाषा परिषद, बिहार, पटना
2. नामवर सिंह, इतिहास और आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
3. नन्द चतुर्वेदी, यह समय हमारा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
4. संपादकीय, शब्दों के पंखों पर रोशनी की किरण, अक्सर, पृ. 3
5. नंद चतुर्वेदी- संकल्प, उत्सव का निर्मम समय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 16
6. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
7. नंद चतुर्वेदी, मीरां संचयन, वाणी प्रकाशन
8. नंद चतुर्वेदी, यह समय हमारा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
9. नंद चतुर्वेदी- किताब, उत्सव का निर्मम समय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 15
10. नंद चतुर्वेदी- संकल्प, उत्सव का निर्मम समय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 16
11. वही

Poetry in the Time of Terror: the Uneasy Homeland in Contemporary Anglophone Poetry of Assam

Dr. Dharmendra Baruah

Assistant Professor of English
Tezpur College

Abstract

This paper examines how contemporary Anglophone poetry of Assam responds to the violence and terror that continue to overshadow the socio-political and quotidian landscapes of the entire northeast region by looking at select poems of Uddipana Goswami, an emerging Anglophone poet of Assam, from her poetry-collection We Called the River Red: Poetry from a Violent Homeland (2010). It explores how Goswami's poems not only engage with the dilemmas and paradoxes that haunt people of Assam and the northeast trapped in the quagmire of (counter)-violent for most of India's postcolonial history. The paper argues that emerging Anglophone poetry of Assam derives from not only a deep sense of obligation to the homeland, but from a far deeper commitment to tenets self-reflexivity and soul-searching. As the poems under review illustrates, this body of poetry, does not remain satisfied with re-constructing the unsettling aftermath of terror and violence and seek to transform the ways these are negotiated in a troubled homeland.

Keywords:
Assam, Anglophone, Poetry, Terror

Poetry in the Time of Terror: the Uneasy Homeland in Contemporary Anglophone Poetry of Assam

This paper examines how contemporary Anglophone poetry of Assam responds to the violence and terror that continue to overshadow the socio-political and quotidian landscapes of the entire northeast region by looking at select poems of Uddipana Goswami, an emerging Anglophone poet of Assam, from her poetry-collection *We called the River Red: Poetry from a Violent Homeland* (2010). It explores how her poetry not only engage with the dilemmas and paradoxes that haunt people not only in Assam but the entire northeast trapped

in the quagmire of (counter)-violent for most of India's postcolonial history. The paper argues that emerging Anglophone poetry of Assam derives from not only a deep sense of obligation to the homeland, but from a far deeper commitment to tenets self-reflexivity and soul-searching. As the poems under review illustrates, this body of poetry, does not remain satisfied with re-constructing the unsettling aftermath of terror and violence and seek to transform the ways these are negotiated in the northeast.

In his short but brilliantly written article "Poetry in the Time of Terror" Robin S. Ngangom, one of the prominent Anglophone poets of northeast India notes the thematic and expressive discreteness that marks the poetry emerging from the northeast as a whole. As literature born out of an environment of disruption and upheavals, poetry of the northeast bears an unmistakable sense of crisis and loss. Apart from other kinds of losses, Ngangom cites the loss of a long-lived epistemic heritage as the greatest casualty of the postcolonial history of (counter)-violence that the region has been. He writes, "That well-meaning world is no longer recognizable now; the sacred landmarks have disappeared long since-only dim memories remain as mute reminders of that sacred past (168)." Quite understandably, as literature that springs from the "cruel contradictions of the land" (168), northeast poetry is pervaded by a sense of crisis and irreparable loss. It is not unusual that apart from loss, longing and memory emerges as important ideas in it, endowing poetry with an unmistakable note of restlessness and unease. In fact, the aesthetic and political appeal of this body of poetry recognized as northeast Anglophone poetry largely comes from the way they capture the helplessness and ambiguity that prevails in the region. Apart from memory and nostalgia, another important attribute of poetry of the northeast is the centrality of oral/folk tradition (170) in it. This reliance on orality or oral traditions in contemporary Anglophone poetry of the northeast is prompted less by aesthetic considerations and more by the need to create a distinctive model/space of its own. As Ngangom pertinently points out, this centrality of folklore in northeast Anglophone poetry is conscious move for claiming a certain kind of literary-creative authenticity or agency. One can say, the fusion of the poetic and the folkloric in this poetry endows their poetic locale with a strong and deep sense of situatedness and authenticity.

Robin Ngangom in his discussion brings to focus some of the other vital but underexplored dimensions of contemporary Anglophone poetry of the northeast. He notes how unlike elsewhere, poetry for a northeaster poet is more of an existential urgency than an undemanding aesthetic exercise. It becomes a means to unburden oneself from trauma of living constantly under the shadow of violence and terror. Ngangom's words convincingly captures this role of poetry as an existential exigency. He writes:

Poetry became an outlet for pent-up feelings and desires, where I can bare myself without actually being demonstrative. Poetry, therefore, has remained an underground exercise with

me. It perhaps began as a dialogue with the self, and has become an illegitimate affair of the heart, because I believe in the poetry of 'feeling', which can be shared, not cerebral, intellectual poetry which is inaccessible, and which leaves the reader outside the poet's insulated world. I suppose I've always tried in a naive way to invite the reader into my small world. Perhaps I've written poems because I've felt this desperate need to be understood, and to be accepted. (171)

These words illustrate the existential urgency that drive and dominate Anglophone poetry of postcolonial northeast. Quite reasonably, this body of poetry is viewed as the 'poetry of survival' or 'the poetry of witness' (Ngangom 172). Ngangom writes, "A friend told me of how they've been honing 'the poetry of survival' with guns pressed at both your temples: the gun of revolution and the gun of the state. Hardly anyone writes romantic verse or talks about disturbing sexuality because they are absorbed in writing the poetry of survival (172). The views of Temsula Ao, another prominent Anglophone literary voice of the northeast further illustrate this point by highlighting the role of literature as memory. Introducing her writings as a resistance to disruption and amnesia, Ao reiterates the obligations one feels as a writer from a troubled war-zone such as postcolonial northeast India:

Some of them no say that it does not matter, in the same way that some people now say that the holocaust never happened. When these people say that 'it does not matter', they mean that there is an inherent callousness in the human mind that tends to ignore injustice and inhumanity as long as it does not touch one directly. (2006: ix)

Interestingly, she highlights the role that writers and writings can play in resisting the volatility and gaps of collective memory, or so to say— a mindless and hypocritical distancing from one's own collective past and memory.

The paradoxes one encounters while living in a conflict-zone are too insistent a reality to overlook, making it obligatory for the poet to bear witness to history and reality and to construct a model of poetry that can convincingly capture these nuanced and shaded realities. One immediate response to this crisis is to shift towards a form of realism which is extreme (172) and to a great extent, appalling. The predominance of violent images such as bullets, bloodshed in contemporary northeast poetry illustrates this. However, recent poets have significantly moved away from this hackneyed and overdone register of extreme realism towards newer poetic forms and figures that can engage with the experience of crisis. It explains the almost regular (re)-shaping of contemporary Anglophone poetry of the region into hybrid fusions of apparently incompatible forms such as 'extreme realism,' 'parody,' 'absurdity', and the 'surreal' along with the folkloric. It will not be unjustified to say that the apparent thematic and expressive inconsistencies of contemporary northeast poetry in English is a response to the contradictions and paradoxes that constantly haunts the northeastern subject. From another perspective, this adaptability of northeast English poetry significantly helps in looking at issues such as violence, conflict

and suffering from new perspectives leading to a new understanding of violence and trauma as a 'multi-layered and pervasive reality' (Martinez 209).

The more Anglophone poetry of the northeast continues to "mirror the body and the mind of the times" (Ngangom 172), the more it becomes an imperative to re-align itself to these emerging and evolving realities. It is against this backdrop that an attempt has been made in this paper to examine the thematic and expressive discreetness of recent Anglophone poetry from Assam. It is also important to admit that in view of spatial constraints, the present paper limits its discussion to only one emerging poet from the state of Assam, namely, Uddipana Goswami. An avid scholar of Peace and Conflict studies and a journalist with a strong feminist tilt Goswami has reckonable first-hand experience of the conflict situation in Assam. With a series of impressive books such as *The Politics of Ethnicity in Assam* (2014), *No Ghosts in this City* (2014), *Where We Come From, Where We Go: Tales from the Seven Sisters* (2015) Goswami has already made her presence felt in the horizon of Anglophone literature from the northeast. So far Goswami has two poetry collections to her credit, namely- *We called the River Red: Poetry from a Violent Homeland* (2010), and *Green Tin Trunk* (2014). Interestingly, her poems craftily interweave the personal, the political, the cultural and the historical into brilliantly composed poetic-political narratives. They rely on an easy trade-off between the personal and the political; the folkloric and the mythical and are marked by an unmistakable note of troubled sadness or unease. What is more important is the originality and unusualness that marks the poet's handling of difficult issues/ experiences of a troubled homeland. The subsequent discussion will illustrate this point further.

Goswami's poem 'Bohag Mathu Eti Ritu Nohoi,' translated as 'Bohag is not merely a season' touchingly re-produces the contradictions, conflicts and dilemmas of a violent homeland such as the northeast. From her home in exile she writes:

It is Bihu back home
Perhaps there is *bohag* in the air (16)

Bihu is not only the most rejoiced national festival of the poet's homeland but is central to Assamese life and subjectivity. In other words, with important cultural and symbolic import, Bihu has evolved into one of the foremost identity-markers of the Assamese people over time. However, for the poet, Bihu is not an occasion to rejoice, but a moment of restlessness, unease and apprehension. She writes:

Perhaps death.
Perhaps *dhol-pepa-gagana* sound
Perhaps bullets
Perhaps the *kapou* is in bloom
Perhaps blood.
…bullet, blood and death, death, blood and blood: that's all there is. Perhaps I am better away; or perhaps, better home…
But it is Bihu today
Back home,
And I am away. (16)

This poem brilliantly captures the mood of crisis and conflict that

predominate the poet's homeland. At a time when the clamour of gunshots silences the music of dhol, pepa and gagana and the smell of human blood pervade the air, instead of kapou flower, the poet is unsure whether it is better to return home or to be in exile. The dilemma is left unresolved to reiterate the perplexity and ambiguity that underpin the entire poem.

The crisis and uncertainties shrouding the homeland is poignantly captured in another poem 'Personal/ political', where the poet undoes the false binary of the personal and the political.

To me it is personal That there are bomb blasts in my city everyday That it is a gamble of five minutes To decide whether my father lives or dies His limbs torn from his body

His skin burnt, his flesh roasted (51)

These lines effectively echo the ironies of the times as well as highlight the way distinction between the personal and public becomes meaningless in a climate of terror and unease that prevails in the poet's homeland. The sense of perplexity or ambiguity is reiterated further when the poet writes:

Yes, to me it is personal
That people who claim to be the keepers
Of my nation, my people and the revolution
Killed them all.

While the poem ends on an unmistakable note of disappointment and frustration, it does not fail to foreground the contradictions inherent in the rhetoric and reality of (counter)-violence/conflict. It is the self-defeating facets of the so-called project of nation-building, that is— the perversion of the so called rebellion into brutal acts of fraticide— that leave the poet unsettled and uneased.

The poem 'Laughing, Bombing' poignantly recreates not only the scenes of horror such as bomb-blasts and its aftershocks but also foreground the predicament of the common man left with no other choice but to transform into mute sufferers. The poem begins thus:

They have their favourite bombing spots
(Now don't ask me who *they* are –
Some say the insurgents
Some say anti-insurgents
Doesn't matter who does it
Bombs are bombs
They make a lot of noise when they explode.) (48)

These lines are followed by a long list of bombing sites and glimpses of people's reaction to blasts.

And every time a bomb goes off there
A joke follows. (48)

But this self-imposed and pretended sense of indifference proves to be too fleeting to postpone encountering disturbing questions. In a subtle move, a subsequent stanza juxtaposes the reaction of her mother in the 80s when the sound of blasts and news of death brought tears to people's eyes:

We used to cry in the 80s when
we heard about
People being killed, or our boys being tortured.

The poet, in a markedly sarcastic tone confronts the mother:

So, were those not violent times, Ma?
Why then did we black out our

houses every evening

And had stones pelted on our windows

… if that was non-violence why did we fear? (49)

These lines derives from the poet's unbiased and in-depth understanding of violence and its multiple implications. It is important to note the way they foreground the callousness and bias that mark popular responses to terror and acts of violence. Uneased by the casual and lopsided attitude of people towards terror and terror-victims the poet asks:

Did they laugh when we died, and we learnt from them?

Is laughing the only way to live with bombs? (49)

What unsettles the poet is the opportunistic and self-distancing moves people make when it comes to responding to acts of violence and terror. The concluding lines of the poem reiterate her attempt to resist the complacence and indifference that mark usual responses to terror.

We all fear, but we also laugh

Till somebody close dies and then we cry.

Some write stark poetry about children bombed

Or metaphoric ones about rivers of blood

Some live, some die, many cry

And always, bombs keep making a lot of noise. (50)

Thus, in a brilliantly interweaved fusion of extreme realism, irony, and poetic sarcasm Uddipana Goswami's poetry re-constructs the dislocations, disruptions and dilemmas that continue to overshadow landscapes in the northeast. What is more important is the honest and unpretentious way these poems brings to the centre these important but uneasy questions and contradictions that are never addressed in mainstream Anglophone poetry. In fact, the larger creative-critical appeal of these poems comes from this unassuming and unpretentious engagement with the realities of the poet's homeland.

Notes:

Bohag: Spring season

Bihu: Assamese national festival, celebrated in spring

Dhol-pepa-gagana: indigenous Assamese musical instruments

Kapou: orchid, endemic to Assam

References:

Ao, Temsula. *These Hills Called Home: Stories from a War Zone*. New Delhi: Zubaan, 2006.

Martinez, A., & Rubenstein, R. (2016). The Truth of Fiction: Literature as a Source of Insight into Social Conflict and Its Resolution. International Journal of Conflict Engagement and Resolution, 4(2), 208-224. Retrieved June 17, 2021, from https://www.jstor.org/stable/26928702

Ngangom, R. (2005). Poetry in the Time of Terror. Indian Literature, 49(3 (227)), 168-174. Retrieved June 18, 2021, from http://www.jstor.org/stable/23341046

Goswami, Uddipana. (2010). *We called the River Red: Poetry from a Violent Homeland*. New Delhi: Authorspress, 2010

'धरती धन न अपना' उपन्यास में दलित चेतना

डॉ. जी. वसन्ती

असिस्टेण्ट प्रोफेसर-हिन्दी
सविता विश्वविद्यालय चेन्नई

सारांश

दलित साहित्य का एकमात्र लक्ष्य साहित्य और समाज में समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व आदि जनतांत्रिक और जनवादी मूल्यों की स्थापना करना है। दलित साहित्य इस दिशा में अग्रसर है। समकालीन साहित्यकार जगदीश चन्द्र जी ने अपने उपन्यास 'धरती धन न अपना' में सामाजिक मान्यताओं के चक्कर में फँसे हुए भारतीय दलितों के जीवन पर प्रकाश डालने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। इसमें लेखक ने दलितों के सामाजिक यथार्थ को बड़ी खूबसूरती से प्रस्तुत किया है। उपन्यासकार ने अपनी समाजार्थिक समझ को अपनी पीड़ा व समझ के साथ समेटकर इन हरिजनों को दी जा रही यंत्रणाओं को 'धरती धन न अपना' में सृजनात्मक लय प्रदान की है। लेखक ने मूल रूप से दलितों के सामाजिक वैषम्य की स्थिति को प्रमुख रखा है। पंजाबी अंचल को केन्द्र बनाकर लेखक ने एक गाँव के माध्यम से समूचे पंजाब के दलितों की समस्याओं को चित्रित करने का प्रयास किया है। इस उपन्यास में प्रथम बार समाज की सर्वाधिक उपेक्षित जाति, अस्पृश्य चमारों की व्यथा और दमित प्रताड़ित स्थिति को निरूपित किया है।

बीज शब्द

दलित साहित्य, जगदीशचंद्र, दलित चेतना : आर्थिक परिप्रेक्ष्य, सामाजिक परिप्रेक्ष्य

हम विश्व के सबसे बड़े लोकतन्त्र देश में रह रहे हैं, विशेष रूप से भारत के लोकतन्त्र की ऐसी स्थिति हैं। जिसमें हाशिए पर पड़ा समाज का दलित शोषित समाज धीरे-धीरे केन्द्र में आता चला जा रहा है। इसलिए दलितोत्थान या दलित चेतना वर्तमान समय में मुहावरा बन गई हैं। साहित्य में भी दलित चेतना का अलग से चलन हो गया है। किसी भी श्रेष्ठ साहित्य का एक मापदण्ड यह भी हो गया है कि वह लेखक दलितोत्थान के प्रति कितना सजग है। यद्यपि दलित साहित्य के नाम पर कुछ अलगावपंथी साहित्यिक आन्दोलन भी चल निकले हैं। जिनके विषय में पूर्ण सहमति नहीं बन पाई हैं।

यह सर्वविदित है कि साहित्य में प्राचीन काल से आज तक दलितों की अस्मिता एवं स्वाभिमान को कोई महत्व नहीं दिया गया। साहित्य और भाषा दोनों में ही दलितों का शोषण होता रहा है। विज्ञान की उन्नती तभी सम्भव है, जब विज्ञान का मार्ग प्रदर्शन साहित्य करे और वह साहित्य दलित साहित्य ही हो सकता है जो जन साधारण में विवेक जागृत करता है और दलितों में चेतना का संचार करता है।

समकालीन दलित साहित्य में जगदीश चन्द्र कृत 'धरती धन न अपना' अव्वल दर्ज की रचना है। 'धरती धन न अपना' में जगदीश चन्द्र ने जिस उपन्यास-त्रयी की रचना की है, वह हिन्दी उपन्यास व समूचे भारतीय साहित्य में लम्बे समय तक सार्थक रचना के रूप में जानी जाती रहेगी। इस कथा-त्रयी में जगदीश चन्द्र ने भारतीय समाज के उस उपेक्षित वर्ग का अत्यंत यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है, जो इस समय राजनैतिक क्षेत्र में भी चर्चित है व साहित्य में भी। उसे दलित साहित्य के अंतर्गत नये ढंग से परिभाषित किया जा रहा है। इन चर्चाओं से भारतीय समाज के इस सर्वाधिक उत्पीड़ित वर्ग की जीवन परिस्थितियाँ तो भले ही अभी बहुत अधिक न बदली हों, लेकिन साहित्य व अन्य माध्यमों से अनके जीवन पर समाज का ध्यान केंद्रित करने के जो प्रयास आरंभ हुए हैं, उसमें आने वाले दशकों में उनके उत्पीड़िन की मौजूदा क्रूरता को जारी रख पाना उनके उत्पीड़को के लिए मुश्किल अवश्य हो जाएगा।

'धरती धन न अपना' की कथा:

सन् 1972 में प्रकाशित 'धरती धन न अपना' उसका दूसरा उपन्यास है। यह जगदीश चन्द्र की सृजनात्मक को शिखर तक पहुँचाने वाला उपन्यास है। यह पंजाब के एक छोटे से गाँव घोडेवा़हा को केन्द्र बनाकर लिया गया है। इसके माध्यम से लेखक ने संपूर्ण भारतीय गाँवों के शोषित पीड़ित हरिजनों के यातना पूर्ण जीवन को चित्रित करने का प्रयास किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पचास वर्ष बाद भी भारतीय गाँवों की स्थिति सुधरी नहीं। वहाँ के हरिजन पशुवत जीवन बिता रहे हैं। वे ज़मींदार की संपत्ति हैं, गुलाम हैं। जिस भूमि पर वे रहते हैं जिस ज़मीन को वे जोतते हैं, उन पर भी उनका कोई अधिकार नहीं। यद्यपि लेखक ने इस उपन्यास में पंजाब के उस छोटे से अँचल को केन्द्र बनाया है तथापि इसका असली मकसद् पूरे भारतीय गाँवों में युगों युगों से वर्तमान शोषण व्यवस्था के विकराल रूप को देखा भी है।

उपन्यास का नायक काली छः वर्ष तक शहर में रहकर गाँव वापस आता है। वह जाति से चमार है। वह जगह के बदलाव से अवगत है। गाँव आकर वह अपने लोगों की स्थिति को सुधारना चाहता है। पहले वह गाँव की अनैतिकताओं के विरुद्ध लड़ता है। पर सामन्तवादी शोषक शक्तियों के शिकंजे में पड़कर पूर्ण टूट जाता है। चमारों का जीवन जितना नारकीय है उसका सही दस्तावेज प्रस्तुत करने वाला उपन्यास है- धरती धन न अपना।

यह उपन्यास रूसी, जर्मन, उर्दू, पंजाबी जैसी भाषाओं में भी अनुवादित हुआ है। एक विद्वान ने इस उपन्यास के सम्बन्ध में कहा है, ''जगदीश चन्द्र ने धरती धन न अपना'' में रेणु की नहीं ग्राम केन्द्र उपन्यासों की प्रेमचंद की इसी यथार्थवादी परम्परा को ही विकसित किया है, उसे और भी शक्ति सम्पन्नता के साथ आगे के रचनाकारों के लिए चुनौती फेंकी है।''1

''धरती धन न अपना' में चित्रित दलित चेतना: आर्थिक परिप्रेक्ष्य में दलित चेतना:

दलितों का प्रश्न केवल सामाजिक नहीं है, वह आर्थिक भी है। उनके आर्थिक पक्ष को कभी नकारा नहीं जा सकता। आज जो दलितों पर अत्याचार होते हैं उनका प्रमुख कारण है आर्थिक दुर्बलता। जीने के लिए अहँ की हिफाजत करने वाले वर्ग पर उन्हें निर्भर रहना पड़ता है। आज के दलित भूमिहीन हैं, खेत मजदूर हैं। उनका स्वयं का व्यवसाय नहीं है।

उपन्यास का आरम्भ उपन्यास के केन्द्रीय चरित्र काली के गाँव लौटने से होता है। गाँव में जीविका के सशक्त साधन न पाकर काली होशियारपुर के गाँव घोड़ेवाहा से कानपुर चला गया। छः वर्ष बाद एक नई चेतना लेकर वह गाँव वापिस आता है और पाता है कि आर्थिक और सामाजिक तौर पर गाँव आज भी उतना ही पिछड़ा हुआ है जितना पहले था। गाँव की दमनकारी स्थितियाँ उसे उदास

कर देती है। क्षण भर के लिए घर लौटने पर अफसोस होने लगता है। यद्यपि उसकी चेतना वर्ग सचेत सर्वहारा की चेतना नहीं है तथापि अपने गाँव के अन्य भूमिहीन खेत मजदूरों से वह कहीं अधिक सजग है।

काली गाँव में पक्का घर बनाना चाहता है इसके लिए वह छूज्जूशाह से उधार माँगने जाता है और कहता है ''मेरे पास दो ढाई सौ होगा, अगर सौ डेढ़ सौ और मिल जाए तो काम हो सकता है''2 यह बात सुनकर छूज्जू शाह सोच में पड़ जाता है कुछ देर हाँ ना में उलझा हुआ छज्जू शाह कहता है, ''जमानत के लायक चीज है? कोई जेवर.....?''3

जब काली जमानत के तौर पर मकान की जमीन रखने के लिए तैयार हो जाता है तो छज्जू शाह काली को बताता है, ''कालीदास जिस जमीन की तुम बात कर रहे हो वह जमीन भी तुम्हारी नहीं है। वह शामलाट (गाँव के जमींदारों की सांझी जमीन) जमीन है। जब तक तू या तेरे वारिस उत्तराधिकारी इस गाँव में रहेंगे, जमीन का टुकड़ा, रिहायष का वह टुकड़ा, तुम्हारा है। बाद में उसका मालिक गाँव होगा, वह तेरी मालकियती जमीन नहीं है। यह, मौरूसी जमीन है''4 अर्थ शास्त्र के एक अध्यापक ने इस तथ्य की पुष्टि की है। 1960 तक इन क्षेत्रों में यह स्थिति बरकरार थी। उस समय के आसपास भूमिहीन मज़दूरों से कुछ भुगतान लेकर उन्हें इस जमीन के सामान्य अधिकार दिये गए।

गाँव में गरीबी का प्रकोप इतना बढ़ गया है कि इन दलितों के घर में रोटी के लाले पड़े हुए है। प्रीतो के घर में खाने के लिए रोटी तक नहीं है। बच्चे भूख से तड़प रहे हैं। जिस भी बर्तन को देखती है वह खाली है। हालत यहाँ तक बिगड़ जाती है कि घर के बर्तन तक नौबत आ जाता है। क्रोध से देगचा पटकती हुई प्रीतो कहती है, ''बेच दो इसे, हमें कौन सी खीर पकानी है।''5

आर्थिक शोषण की आड़ में औरतों का शोषण भी देखने को मिलता है। छुआछूत मानने वाले स्वर्ण पुरूष जो दिन के उजाले में दलितों का छुआ पानी भी नहीं पीते, दलित स्त्री के शरीर को हथियाने में कोई गुरेज नहीं करते और औरत भी अपने घर में पड़े बच्चों का पेट भरने के लिए अपने आपको स्वर्णों के हवाले करने के लिए मजबूर हो जाती है। इस तरह दलित स्त्री का संघर्ष दोहरा तेहरा हो जाता है। वह एक ओर तो पुरुष सत्ता की तो दूसरी ओर जाति व्यवस्था की शिकार बनती है। ऐसी स्थिति इस उपन्यास में लच्छो की होती है जो कुछ गेहूँ के सिट्टे (बालियाँ) पाने के लिए अपने आपको चैधरी हरदेव के हवाले कर देती है। वापिस जाते वक्त पास सिट्टे नहीं होते क्योंकि उसे चैधरानी रखवा लेती है। इज़्ज़त गँवाने के बदले अगर हाथ आती हैं तो सिर्फ बची हुई बासी रोटियाँ । स्पष्ट है कि इस अमानवीय स्थिति का मूल कारण आर्थिक विपन्नता है।

सदियों से दलित पूँजीजीपतियों का शिकार होते आए हैं। चैधरियों और जमींदारों के खेतों और घरों में काम करते हैं। इनके बिना जमींदारों का गुजारा नहीं हो सकता किन्तु कभी भी वह इन दलितों को पूरी मज़दूरी नहीं देते। इनके दिनों दिन बढ़ते शोषण का मुख्य कारण दलितों का चुप रहना है। जब चैधरी गुस्से से भड़ककर कहता है-''अगर किसी फसल का नुकसान किया तो सारी चमादड़ी को जमीन पर उल्टा बिछवाकर पिटवाऊँगा।''6 ऐसी गाली गलोच सुनने पर भी सब चुप रहते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पंजाब का ग्रामीण जीवन मुख्यतः साहूकार और दलितों में बँटा हुआ है, दोनों के पारस्परिक संबंध सामान्यतः अर्थ पर ही निर्भर करते हैं। ग्रामीण जीवन में शोषण करना, जमीन के लिए कट मरना, आर्थिक तंगी के कारण जीवन भर साहूकार की जूठन और दया पर निर्भर रहना आदि विवशतायें होती हैं। स्पष्ट है कि लेखक ने 'धरती धन न अपना' उपन्यास में आर्थिक शोषण और उसके विरूद्ध आवाज़ को प्रस्तुत किया है।

'सामाजिक परिप्रेक्ष्य में दलित चेतनाः

जगदीश चन्द्र जी ने अपने उपन्यास 'धरती धन न अपना' में सामाजिक मान्यताओं के चक्कर में फँसे हुए भारतीय दलितों के जीवन पर प्रकाश

डालने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। इसमें लेखक ने दलितों के सामाजिक यथार्थ को बड़ी खूबसूरती से प्रस्तुत किया है उपन्यासकार ने अपनी समाजार्थिक समझ को अपनी पीड़ा व समझ के साथ मिलकर इन हरिजनों को दी जा रही यंत्रणाओं को 'धरती धन न अपना' में सृजनात्मक लय प्रदान की है। लेखक ने इस उपन्यास में जिस सामाजिक यथार्थ का वर्णन किया है वह पूर्व 1960 के दिनों का यथार्थ है।

आलोच्य उपन्यास में धर्म समाज में फैली धार्मिक अनैतिकता देखने को मिलती है। ''जाति कर्म से नहीं, जन्म से बनती है''7 यह विश्वास आज के तकनीकी युग में लोगों के मन में दृढ़ हो चुका है। सदियों से चला आ रहा यह विचार आज भी लोगों के मन में समाया हुआ है। पिछले कुछ दशक से भारत के विभिन्न प्रांतों और इलाकों में धर्म परिवर्तन की दर बढ़ रही है।

सारे चमारों के जीवन को सुधारने और बचाने का दावा करने वाला पादरी अचिन्तारात वास्तव में चमारों की मजबूरियों और कमजोरियों का फायदा उठाते हैं। पादरी इनके साथ बहुत ही दयापूर्ण व्यवहार करता है, वह हमेशा चमारों की हर तरह की सेवा के लिए उपस्थित है। एक ओर वह इनका उद्धार करने के लिए हर तरह का प्रयास करते हैं पर इन सब के पीछे का लक्ष्य चमारों का धर्मान्तरण ही है।

हिन्दू समाज की इस प्रकार की अनेक रूढ़ियों और अनैतिकताओं ने धर्मान्तरण को तेज़ी प्रदान की। ''मेरे दादा हिन्दु थे। मुझे याद है कि जब वे मरे तो पिता को कितनी परेषानी हुई थी और कितना खर्च हुआ था। मेरे पिता जी इन्हीं बातों से तंग आकर यीसू मसीह की षरण में आकर ईसाई बन गए थे।''8 पादरी अचिन्तारात का यह कथन धार्मिक रूढ़ियों एवं अंध विश्वासों के विरूद्ध आवाज़ उठाने की आवश्यकता को हमारे सामने प्रस्तुत करता है।

इस उपन्यास की सशक्त नारी पात्र है ज्ञानो। उसमें आत्मविश्वास और खुद्दारी कूट-कूट कर भरी है। वह तेज और तरार है। क्या मजाल है कि कोई नवयुवक उसे छेड़ने का साहस कर सके। वह भी चैधरियों के विरूद्ध आवाज़ उठाती है। वह काली के दृढ़ एवं विद्रोही व्यक्तित्व पर आकर्षित हो जाती है और उसे हर मौके पर धैर्य और प्रेरणा प्रदान करती रहती है।

चमारों का खोखला रूढ़िग्रस्त समाज काली और ज्ञानो के प्रेम को स्वीकार नहीं कर सकता। ग्रामीण विश्वास के अनुसार एक ही मुहल्ले के स्त्री-पुरूषों के बीच शादी मना है। इस नाते वे भी बहन हैं। धीरे-धीरे काली और ज्ञानो के बीच दूरी कम होती गई। ज्ञानो गर्भवती हो गई। ज्ञानो की माँ को जब यह बात पता चलती है तो वह सिर पीट लेती है। उसे पता है कि ज्ञानो के गर्भ में काली का अंश पल रहा है।

वह इस मामले में जितना सोचती है उतना ही भय महसूस करती है, ''कई बार उसके मन में विचार आता है कि उसका विवाह काली के साथ कर दे लेकिन यह सोचते ही वह सिहर उठती है कि अपने ही गाँव, अपने ही मुहल्ले, अपनी ही गली और अपने ही गोत्र के लड़के से कैसे विवाह कर सकती है। ऐसा आज तक कभी नहीं हुआ है। मुहल्ले वाले यह सुनते ही उसे कच्चा खा जायेंगे और उन्हें इलाके में तो क्या श्मशान भूमि में भी जगह न मिलेगी।''9 इस प्रकार समाज के डर से वह पीछे हट जाती है और ज्ञानो को संखियाँ खिलाकर उसे मार डालती है। इधर ज्ञानो को मौत होती है तो उधर काली गाँव छोड़कर चला जाता है।

इस उपन्यास में प्रथम बार समाज की सर्वाधिक उपेक्षित जाति, अस्पृश्य चमारों की व्यथा और दमित, प्रताड़ित स्थिति को निरूपित किया है। इस कथा का मूल केन्द्र दलित और उनकी समस्यायें हैं। लेखक के पास एक अनुभवशील अपनी स्वच्छंद दृष्टि है, जिसके माध्यम से उसने वहाँ के लोगों के जीवन उनकी समस्याओं और उनके सम्बन्धों की व्याख्या, अभिव्यक्ति भी जागरूकता से की है।

'राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में दलित चेतनाः

जगदीश चन्द्र जी ने अपने उपन्यास 'धरती

धन न अपना' के द्वारा व्यक्त किया है कि जो राजनीति अपने रूपायन के पीछे मनुष्य की भलाई को लक्षित करती थी, उन्हें किस प्रकार राजनीतिक नेताओं ने भ्रष्ट कर डाला है और उसे संकुचित कर दिया है। मनुष्य की भलाई करने वाली राजनीति विभिन्न दलों में संकुचित हो गई है और समाज सेवा के नाम पर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रही है। राजनीति के इस भ्रष्ट रूप का वर्णन लेखक ने व्यंग्यात्मक रूप से किया है, उन्होंने राजनीति के विभिन्न पहलुओं को हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

लेखक ने कामरेड टहल सिंह और बिशनदास के माध्यम से आज के राजनीतिक नेताओं की वास्तविक मानसिकता और शोषक नीति को स्पष्ट किया है।

डॉ. बिशनदास उपन्यास में क्रान्ति का ठेकेदार बनकर आता है। वह काली की नई समझ और विद्रोही प्रकृति से बहुत प्रभावित हो जाता है। वह चाहता है कि दलित शोषण के विरूद्ध विद्रोह करें, उसके अनुसार गरीबी दूर करने का एक ही तरीका है और वह है, ''इन्कलाब, प्रोलतारी इन्कलाब जो अमीर और गरीब को बराबर कर देता है।''10

उपन्यास में दलित के शोषण के विरूद्ध उठी आवाज़ काली की है। काली का कथन, ''चौधरी, मैं किसी की थाली में नहीं खाता। इसलिए छेद करने का सवाल ही नहीं उठता।''11 यह दलितों के शोषण के विरूद्ध उठी पहली आवाज़ है, जिसे बिशनदास पहचान जाता है। वह हमेशा काली के सामने बड़ी-बड़ी बातें करता है। इस लिए वह काली में विद्रोह की भावना भरते हुए कहता है, ''गरीबी आदमी का ज़मीर खत्म कर देती है। गरीबी दूर करने का एक ही रास्ता है और वह है इन्कलाब प्रोलतारी इन्कलाब।''12 गाँव की राजनीति के बारे में समझाता हुआ डाक्टर कहता है, ''तुम बहुत देर के बाद गाँव आए हो तुम्हें यहाँ कि पोलिटिक्स का पता नहीं है।'' इस तरह बातों की बातों में वह काली को राजनीति की ओर आकर्षित करता है।

काली जब शहर से आया मनीआर्डर लेने जाता है तो मुँशी के द्वारा पूरे पैसे न दिए जाने पर काली और मुंशी में बहस हो जाती है। यह सब देखकर डाक्टर बिशनदास यहाँ भी अपने सिद्धान्त झाड़ने से बाज नहीं आता और काली से कहता है, ''जिस तरह बड़ी मछली को खाती है उसी तरह बड़ा तबका छोटे तबके को एक्सपलायट करता है। यानि उसकी मेहनत का फल उसे नहीं खाने देता, बल्कि खुद खा जाता है। इसी से क्लास स्ट्रगल पैदा होता है, लेकिन मार्क्सवाद इन्कलाब से यह तबका खत्म हो जायेगा और प्रोलातारिया का बोलबाला होगा।''13 उपन्यास में प्रस्तुत कम्युनिस्ट चरित्र यथार्थ को समझने वाला होने की बजाय दिया स्वपनकारी व हवाई चरित्र है। डॉ. बिशनदास ऐसा ही किताबी कामरेड है। जब चमारों और दलितों का संघर्ष शुरू होता है तो वह प्रसन्न होता है। उसे यह 1905 की रूसी क्रान्ति की शुरूआत लगती है। जिसके बाद 1917 में बोलशेविक क्रान्ति हुई थी।

इस उत्साह में वह काली जैसे दलित कार्यकर्त्ताओं जो कि चमार प्रतिशोध की आत्मा है व कम्युनिस्ट हमदर्दी की मीटिंग बुलाता है। मीटिंग में डॉ. बिशनदास व कामरेड टहल सिंह हड़ताली मज़दूरों की सहायता के साधनों पर विचार करने की बजाय ट्राटस्की या गैर ट्राटस्की लाइन पर झगड़ते हैं। बिशनदास काली से कहता है, ''इन्कलाब आयोग ज़रूर और पूँजीपतियों, जागीरदारों और उनके समर्थकों को खत्म कर देगा। उनका नाम-निषान मिटा देगा। फिर हर आदमी आज़ाद होगा। कोई चैधरी नहीं रहेगा और कोई काम नहीं होगा। गरीब और अमीर का पुर्क मिट जाएगा। पैदावार के संसाधन सांझी मलकियत होंगे। हर आदमी अपनी नौफीत के मुताबिक काम करेगा और अपने खर्च के मुताबिक पैसा लेगा।''14 इसी सपने को साकार बनाने के लिए वह चमारों के वर्ग संघर्ष का नेतृत्व पार्टी के हाथों में सौंपना चाहता है।

निष्कर्ष:

इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि काली विषम सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक परिस्थितियों के उत्पीड़न का शिकार चरित्र है, लेकिन उसका मानवीय

सारतत्व इन विषम परिस्थितियों के प्रतिरोध में है। विषम परिस्थितियों व काली के इनके प्रतिरोध के घात-प्रतिघात से ही पूरा उपन्यास परिचालित है।

इसी घात-प्रतिघात से ब्रिटिश इंडिया और स्वतंत्र भारत की सामाजिक-राजनैतिक-आर्थिक व्यवस्था भी अपने सहज रूप से उघड़ती चली आयी है और लेखक को कहीं भी व्यवस्था पर अपनी ओर से टिप्पणी करने या उसकी व्याख्या करने की ज़रूरत नहीं पड़ती। दलित केवल अछूत है ऐसा नहीं है। वह गरीब भी है उसकी अस्पृश्यता समाप्त होनी चाहिए। केवल छूआछूत समाप्त होने से दलितों की गुलामी नष्ट नहीं होती इसके लिए वर्ग संघर्ष करना आवश्यक है।

आर्थिक शोषण की आड़ में औरतों का शोषण भी देखने को मिलता है। छुआछूत मानने वाले स्वर्ण पुरूष जो दिन के उजाले में दलितों का छुआ पानी भी नहीं पीते दलित स्त्री के शरीर को हथियाने में कोई गुरेज नहीं करते और औरत भी अपने घर में पड़े बच्चों का पेट भरने के लिए अपने आपको स्वर्णों के हवाले करने के लिए मजबूर हो जाती है।

सदियों से दलित पूँजीपतियों का शिकार होते आए हैं चैधरियों और ज़मींदारों के खेतें और घरों में काम करते हैं। इनके बिना ज़मींदारों का गुजारा नहीं हो सकता किन्तु कभी भी वह इन दलितों को पूरी मज़दूरी नहीं देते। इनके दिनों दिन बढ़ते शोषण का मुख्य कारण दलितों का चुप रहना है। ग्रामीण जीवन में शोषण करना, ज़मीन के लिए कट मरना, आर्थिक तंगी के कारण जीवन भर साहूकार की जूठन और दया पर निर्भर रहना आदि विवशतायें होती हैं। स्पष्ट है कि लेखक ने 'धरती धन न अपना' उपन्यास में आर्थिक शोषण और उसके विरूद्ध आवाज़ को प्रस्तुत किया है।

समाज में फैले अंध विश्वास और रूढ़ियाँ दलितों के शोषण का एक बहुत बड़ा कारण है। काली की चाची बीमार पड़ जाती है तो लोग सही इलाज के बदले में जादू टोना करवाते हैं। चाची के इलाज के लिए झाड-फूँक करने वाले रक्खे को बुलाया जाता है। इस प्रकार जगदीश चन्द्र जी ने अपने इस उपन्यास 'धरती धन न अपना' में दलित समाज में फैली अनैतिकता, अंधविश्वास, अधर्म और नारी के शोषण का वर्णन किया है।

इस कथा का मूल केन्द्र दलित और उनकी समस्याएँ हैं। लेखक के पास एक अनुभवशील अपनी स्वच्छंद दृष्टि है, जिसके माध्यम से उसने वहाँ के लोगों के जीवन उनकी समस्याओं और उनके सम्बन्धों की व्याख्या, अभिव्यक्ति भी जागरूकता से की है।

स्पष्ट है कि जगदीश चन्द्र ने अपना पूरा ध्यान दलित समस्या पर केंद्रित किया है उसके विरूद्ध आवाज़ को प्रस्तुत किया है।

संदर्भ ग्रंथः

1 शिव कुमार मिश्रः जगदीश चन्द्र के उपन्यास साहित्य में शोषित एवं दलित चेतना पृ.20
2. जगदीश चन्द्र 'धरती धन न अपना' पृ.54
3. जगदीश चन्द्र 'धरती धन न अपना' पृ.55
4. जगदीश जगदीष चन्द्र 'धरती धन न अपना' पृ.55
5. जगदीश चन्द्र 'धरती धन न अपना' पृ.99
6. जगदीश चन्द्र 'धरती धन न अपना' पृ.46
7. स. राजकिशोर 'हरिजन से दलित' पृ.143
8. जगदीश चन्द्र 'धरती धन न अपना' पृ.130
9. जगदीश चन्द्र 'धरती धन न अपना' पृ.172
10. जगदीश चन्द्र 'धरती धन न अपना' पृ.154
11. जगदीश चन्द्र 'धरती धन न अपना' पृ.69
12. जगदीश चन्द्र 'धरती धन न अपना' पृ.112
13. जगदीश चन्द्र 'धरती धन न अपना' पृ.112
14. जगदीश चन्द्र 'धरती धन न अपना' पृ.207

महिला कथाकारों की कहानियों में स्त्री-विर्मश का स्वरूप

डॉ0 अजय सिंह यादव

असिस्टेण्ट प्रोफेसर-हिन्दी
राजकीय महाविद्यालय देवगनपुरा, महोबा

एक समय था जब स्त्रियाँ घर की चहारदीवारी के भीतर कढ़ाई-बुनाई वगैरह में व्यस्त रहकर या घरेलू कार्यों को करते हुए अपना समय और जीवन व्यतीत करती थीं। लेकिन आज स्थिति बिल्कुल भिन्न है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार तथा आधुनिक भाव बोध से स्त्री की सोच, विचारधारा ही नहीं बदली, बल्कि उसके हाथ में झाड़ू-बेलन के स्थान पर कलम है। आज महिला लेखन के बढ़ते दायरे नें कविता, कहानी, यात्रा-वृतान्त, डायरी, संस्मरण, आत्मकथा- अनेक विधाओं में अपना सफल हस्तक्षेप किया है। हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेमचन्द की उपस्थिति के बाद परिदृश्य बदला। प्रेमचन्द की आखिरी दौर की यथार्थवादी चेतना नें हिन्दी कथा साहित्य को गहरे तक प्रभावित किया। उनकी कहानियों, उपन्यासों के पात्र विशेषकर नायक- नायिका जैसे मुख्य पात्र, समाज के हाशिए पर ढकेल दिए गए लोग हैं। प्रेमचन्द ने नायकत्व का समाजशास्त्र बदल दिया। उनके केन्द्रीय पात्र मुख्यतः दलित, किसान और स्त्रियाँ हैं। हिन्दी कथा-साहित्य का, समाज के सबसे कमजोर, उपेक्षित और शोषित वर्ग से बुनियादी रिश्ता है। नामवर सिंह इस रिश्ते पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं- ''इसी समाज के अन्तर्गत नए नारी आदर्श और नारी की स्वधीनता से उपन्यास गहराई से जुड़ा हुआ था। ..... स्वयं अपनी अर्न्तुवस्तु में नारी की वेदना, पीड़ा और करूणा के साथ उपन्यास का गहरा सम्बन्ध है। मैं फिर कहूँ कि मध्यवर्ग से ही इस उपन्यास का कोई लेना देना नहीं है। ..... भारतीय उपन्यास को परिभाषित करने के मूल में एक तो वह किसान जो उपेक्षित, पीड़ित है, जिसे साहित्य में स्थान ही नहीं मिला था, पहली बार नायक बना। हीरो बना। दूसरी ओर वह नारी जो हाशिए पर थी, उपन्यास विधा में समस्त संवेदनाओं का केन्द्र बनी। इन दोनों के साथ भारतीय उपन्यास नें अपना रूप प्राप्त किया।''1 यह जितना उपन्यास के बारे में सही है, उतना ही कहानियों के लिए भी। यही कारण है कि हिन्दी कहानी में स्त्री संवेदना की सघन अभिव्यक्ति तब भी दिखाई देती है, जब स्त्री मुक्ति का कोई शक्तिशाली आंदालेन मौजूद नहीं था। सैद्धान्तिक स्तर पर लेखक, लेखक होता है- उसमें जाति या लिंग भेद उचित नहीं किन्तु अनुभूति की विशिष्टता में, कथ्य के चुनाव, दृष्टि, मानसिक संस्कार, पूर्वग्रह और सरोकार आदि सभी स्तरों पर जाति, वर्ग, लिंग की निर्णायक और महत्वपूर्ण भूमिका होती है- ''इसका तत्कालीन सम्बन्ध अपने-अपने अनुभव वृत्तों से जुड़ाव तो है ही, किन्तु इसका मुख्य और महत्वपूर्ण आधार सामाजिक-सांस्कृतिक वितान में उन दोनों का एक ऐसे स्थल पर स्थित होना है, जहाँ से परिवेश की प्राथमिकताएँ भिन्न-भिन्न, दबाव और तनाव के केन्द्र अलग-अलग, स्वीकृति के स्थल और संस्कार अलग,

अधिकारों-कर्तव्यों का विधान अलग, परिणाम में व्यक्तित्व की बुनावट अलग-अलग और अन्ततः तो जहाँ पहुँचना है उसका संघर्ष भी जुदा-जुदा। पुरूष स्वीकृति है, स्त्री स्वीकृति के लिए लड़ रही है।''2

स्त्री-विमर्श और स्त्री जीवन के यथार्थ को उद्घाटित करने वाली महिला रचनाकारों नें बड़ी शिद्दत से स्त्री के, पारिवारिक, सामाजिक और दैहिक शोषण को व्यक्त या चित्रित किया है। इससे शक्ति पाकर स्त्री ने अपने दोयम दर्जे की स्थिति को नकारा है और अपने शोषण के विरूद्ध आवाज उठाना शुरू किया है। उसने स्त्री की अनकही पीड़ा, उसकी संघर्ष चेतना और स्त्री द्वारा अपनी लड़ाई आप लड़ने का आख्यान प्रस्तुत किया है। महिला लेखन कोई चुनौती न होकर एक सामाजिक प्राणी की हैसियत से स्त्री के मानवीय अधिकारों की सम्पूर्ण माँग करने वाला साहित्य है- ''महिला लेखन का मानना है कि अपनी-अपनी आधी दुनियाँ में विभाजित प्रतिद्वन्दी ही जीते हैं, परिवार, समाज, राष्ट्र और संस्कृति का निर्माण करने वाले नागरिक नहीं। मानवीय संस्कृति के निर्माता और संवाहक परस्पर कटकर नहीं रह सकते। समन्वय और संवाद उनकी मानवीय अस्मिता की पहली शर्त है। असहमतियाँ, मतभेद, आपत्तियाँ और विवाद जीवन्तता की निशानियाँ हैं। जिन्हें मिल-बैठकर संवाद और सौमनस्य के सहारे सुलझाया जा सकता है। इसी से चिन्तन गहन और अनेक आयामी होता है।''3

कथा-लेखन में बीसवीं शती बड़े अंतर्विरोधों की सदी रही है। स्त्री को लेकर यह सदी सबसे ज्यादा दुविधाग्रस्त, असहाय और संतप्त रही है। महिला कथाकारों द्वारा स्त्री विषयों पर लिखी गयीं कहानियाँ स्त्री अनुभव की कहानियॉ हैं। देश, समाज, समय और परिस्थितियों की भिन्नताओं के बावजूद हर जगह स्त्री वही है और सुख-दुख को महसूस करता उसका मन भी एक ही है। स्त्री कथाकारों द्वारा दैनिक जीवन के तल्ख अनुभवों, सरकारी नीतियों, कानूनों, दावों, नारों की पोल खोलने वाली कहानियॉ लगातार लिखी जा रही है। मैत्रेयी पुष्पा की कहानी ''फैसला'' ऐसी ही एक कहानी है जो पुरूष सत्ता का कथनी और करनी की पोल खोलती है। बात-बात पर महिला अधिकारों की दुहाई देने वाला पुरूष वर्ग, महिला प्रधान के अधिकारों में न केवल उसके पति या परिवार के मुखिया का हस्तक्षेप सहर्ष स्वीकार करते हैं, बल्कि 'प्रधान पति' जैसे नये नामकरण को सामाजिक मान्यता भी दे दी गयी है। स्त्री के प्रधान बनने से घर-परिवार की इज्जत तो बढ़ जाती है लेकिन पंचायत में न्याय दिलाने से, पंचो के बीच में जाकर फैसला सुनाने से इज्जत को बट्टा लगता है। तभी से रनवीर बसुमती को समझाता है- ''पंचायती चबूतरे पर बैठी तुम शोभा देती हो। लाज-लिहाज मत उतारो! कुल-परम्परा का ख्याल भी नहीं रहा तुम्हे? औरत की गरिमा आड़-मर्यादा से ही है। फिर तुम क्या जानो गाँव में कैसे-कैसे धूर्त हैं।'' धूर्तता भरा बयान, औरों को धूर्त बताकर औरत की हिम्मत को पस्त कर रहा था। लेकिन कहानी में निचले तबके की पात्र ईसुरिया चराती तो बकरी है लेकिन जमाने के बारे में पूरी खबर रखती है। तभी तो वह मुखर होकर कहती है- ''ऐ सब जनी सुनो, सुन लो कान खोलकर! बराबरी का जमाना आ गया। अब ठठरी बाँधे मरद माराकूटी करें, गारी-गरौज दें, मायके न भेजें, पीहर से रूपइया पइसा मगवावें, क्या कहते हैं कि दायजे के पीछे सतावें तो बैन-सूधी चली जाना बसुमती के ढ़िग, लिखवा देना कागद, करवा देना नठुओं को जेहल।''4 मैत्रेयी पुष्पा की बड़ी विशेषता है कि वह अपने पात्रों के मनोभावों को ऐसी सूक्ष्मता से पकड़ती हैं कि भाव पाठक के सामने साकार हो उठते हैं। ज्यों-ज्यों स्त्री अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो रही है त्यों-त्यों विकसित होती राजनीतिक चेतना के कारण न सिर्फ पंचायतों में, बल्कि संसद तक में बैठने-बोलने का अधिकार प्राप्त कर चुकी हैं। अपने भले-बुरे की समझ उसे आ गयी है। आंचलिकता के रंग में रँगी 'फैसला' में ग्रामीण विसंगतियों तथा त्रासद स्थितियों को भोगती 'हरदेई' का मार्मिक चित्रण हुआ है। कहानी पाठक के मन-मस्तिष्क पर चरित्रों की गहरी छाप छोड़ती बहुत-कुछ सोचने पर विवश करती है।

बार-बार मरती हुई चेतना और सहमती हुई अस्मिता के खिलाफ 'फैसला' की बसुमती का उठ खड़ा होना आकस्मिक नहीं है। जो किर्चे बसुमती की आत्मा में चुभ गयी थीं, उसके आखिरी निर्णय से कम जरूर हुई होंगी।

साहित्य का वर्तमान समाज से हमेशा सीधा और इकहरा सम्बन्ध नहीं होता है। कभी वह व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाता है, कभी उसका प्रतिरोध करता है। कभी गूँगी प्रजा की वकालत करता है- ''किसी भी व्यवस्था का शिकार और वाहक होना व्यक्ति के लिए सुभीते की चीज है। सुरक्षा कवच अपने आप मिल जाता है उसे। बड़ी बात है व्यवस्था के दमनकारी स्वरूप को समझना और उसके खिलाफ आवाज उठाना।''5 स्त्री-साहित्य की भाषा में जिन वैचारिक संघर्षों की अभिव्यक्ति हुई है वे यह साबित करते हैं कि स्त्री सरोकार के मुद्दे मात्र वैचारिकता और स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के पर्याय नहीं हैं। आज की नारी आधुनिक चेतना सम्पन्न और जागरूक नारी है। अब ब्रम्हा तथा पुरूषों की कल्पना से निर्मित नारी नहीं है। वह पुरूष के सम्मुख आत्म-समर्पण करती, रोती-कलपती पीड़ित स्त्री नहीं बल्कि अपने वजूद के लिए संकल्पबद्ध है। समकालीन महिला कथाकारों की रचनाओं में जहाँ एक तरफ पुरूष वर्चस्व को तोड़ती स्त्री-चेतना की अभिव्यक्ति है, वहीं पुरूष के पारम्परिक दृष्टिकोण, व्यक्तिगत अहं, उसकी अमानवीयता, मानसिक शोषण की स्थितियों के विरूद्ध तीव्र प्रतिक्रिया दिखायी देती है। नमिता सिंह की कहानी 'गणित' अन्याय और शोषण के विरूद्ध परम्परा को तोड़ती उठ खड़ी हुई स्त्री की कहानी है। ''रामलाल स्नेह और प्रेम की भाषा से दूर एक यांत्रिक पुरूष है। उसके लिए लुगाई का आना घाटे का सौदा नही है। आने वाली पूरा काम संभाल लेगी। खाना पकाने से लेकर बर्तन सफाई तक। न तनख्वाह की चिकचिक और न काम की झिक-झिक। सिर्फ खाना और कपड़ा तक मामला रहेगा। औरत से जो बाकी आराम होते हैं सो अलग।''6 यह हित की बात सिर्फ 'गणित' के रामलाल की नही, बल्कि सभी पुरूषों को समझ आती है। उसका गणित तो तब गड़बड़ाता है जब कोई स्त्री अपनी मेहनत का मुआवजा उसके आर्थिक लाभ से अधिकारपूर्वक, झटक कर ले लेती है। नमिता जी ने रामलाल की पत्नी द्वारा डण्डे को आग के हवाले कर मानो पुरूष-अहंकार को ही जला दिया। औरत अपना आत्मसम्मान रो गिड़गिड़ा कर नहीं बल्कि सर उठाकर ही पा सकती है। पुरूष वादी सोच से निर्मित स्त्री की दैहिक शुचिता का मानदण्ड कुछ ऐसा है, जिसमें स्त्री-देह प्रमुख है, स्त्री का व्यक्तित्व गौड़। स्त्री चाहे कितनी ही बहादुर, ईमानदार, सुशील, विदुषी क्यों न हो, सब व्यर्थ हो जाता है, यदि देह की शुचिता पर आँच आ जाये। देह तो पुरूष की भी होती है पर न वह मैली होती है न अपवित्र। चित्रा मुद्गल की कहानी 'प्रेतयोनि' देह शुचिता को मूल्य के रूप में देखने, स्त्री-जीवन को कमतर आँकने की कहानी है। जिस कार्य के लिए स्त्री जिम्मेदार नहीं है, उसका दोष भी उसी के कन्धों पर डाल दिया जाता है। कहानी की पात्र अनीता के सभी सद्गुण इस यौन-शुचिता के सामने व्यर्थ सिद्ध होते हैं। अपने सगे-परिजनों की अवहेलना से अनीता के मन में आत्महत्या जैसे विचार भी आने लगते हैं। ''बाबूजी कुशल अहेरी की भाँति शुचिता-नैतिकता का ताना-बाना बुनने में लगे थे। बेटी की भर जाने वाली शारीरिक चोट को सहलाने के बजाय उसे मानसिक आघात पहुँचा रहे थे। मनुष्य का असली चरित्र और सम्बन्धों की असली परख ऐसे ही क्षणों में होती है। मुक्तिपथ पर चलने की शिक्षा देने वाले बाबूजी आज कौन सी शिक्षा दे रहे थे।'' सिमोन द बोउवार ने ऐसी ही मध्यवर्ग और उच्चवर्ग की स्त्रियों के बारे में लिखा है- ''हम यह भी नहीं कह सकते हैं कि मुक्तिपथ पर चलने वाली स्त्रियाँ गलत हैं और न यह कि अपने इस नए क्षेत्र में वे संतुष्ट हैं। मैं तो यह कहूँगी कि आज की स्त्री बीच की स्थिति में है। पुरूष से आर्थिक रूप से आजाद ये स्त्रियाँ अब भी मानसिक, सामाजिक या नैतिक स्थितियों में पुरूष के बराबर नही हैं। जिस

प्रकार वे अपने व्यवहार में नियोजित और प्रतिबद्ध होती है, उसका संदर्भ उसके जीवनगत दृष्टिकोण से तय होता है।''7 समकालीन लेखिकाओं द्वारा रचित कहानियों के अध्ययन से इसकी पुष्टि होती है कि आज स्त्री आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो रही है। इसके बावजूद पितृसत्तात्मक व्यवस्था में अपनी विशिष्ट पहचान बनाने में तमाम कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है क्योंकि समाज, संस्कृति, राजनीति और धर्म के मानदण्ड पुरूष प्रधान है- ''हमें यह नही समझ लेना चाहिए कि केवल आर्थिक स्थिति बदलने से ही स्त्री की स्थिति में पूरा परिवर्तन आ जायेगा। यद्यपि मानव विकास में आर्थिक व्यवस्था एक आधारभूत तत्व है। जो व्यक्ति का नियन्ता है। किन्तु इसके बावजूद नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि व्यवस्थाओं में भी परिवर्तन की पूरी जरूरत है जिसको बदले बिना कोई नयी स्त्री का अर्विभाव सम्भव नही है।''8

आज की स्त्री परम्परा और समाज के द्वन्द्व के बीच अपनी अस्मिता, पहचान और सामाजिक स्वीकृति के लिए निरन्तर संघर्ष कर रही है। जया जादवानी की कहानी 'कयामत का दिन उर्फ कब्र के बाहर' की सुमिता नागपाल परिवार के पिंजरे को तोड़कर, खुलकर जीने की चाह में ज्यों ही सड़क पर आती है, लोग उसकी शिनाख्त एक देह के रूप में करने लगते हैं। उसकी देह का मोल-तोल शुरू हो जाता है। वह थाने में पुलिस से कहती है- मेरा नाम है सुमिता नागपाल। नागपाल परिवार की बहू हूँ। मैं एक दिन अपने तरीके से बिना किसी डर, संकोच या दबाव, बिना किसी जिम्मेवारी के जीने के लिए निकली थी, पर पाया कि इस दुनिया को हमने अपने हाथों से इतना तबाह कर दिया है कि अब यह दुनिया इस काबिल नही है कि कोई यहाँ मनुष्य बनकर एक दिन भी जी सके।'' स्त्री-मुक्ति आंदोलन के प्रभाव स्वरूप स्त्रियों में नयी चेतना का विकास हुआ है। परन्तु यह विकास अभी तक स्त्री चेतना के धरातल तक ही सीमित है, सामाजिक स्तर पर पितृसत्ता अभी भी प्रभावी है। आधुनिक साहित्य में कृष्णा सोबती अपने विशिष्ट लेखन के लिए चर्चित हैं। 'डार से बिछुड़ी हुई' से लेकर 'सूरजमुखी अंधेरे के' तक एक से एक सधी हुई कथाकृतियाँ अपने शिल्प और बनावट में अनुभूति और अभिव्यक्ति के धरातल पर अत्यन्त जीवन्तता के साथ रची गयी हैं। अपने समकालीन कथा लेखिकाओं में कृष्णा सोबती नें सबसे ज्यादा स्वातंत्र्य और नैतिक उन्मुक्तता के साथ पाठक को प्रभावित और प्रेरित किया है जो अपने और समाज के प्रति सजग, सचेत और चैतन्य हैं। 'आजादी शम्मो जान की' उनकी ऐसी ही एक कहानी है जो कथा-उपकरणों के न्यून प्रयोग के बावजूद स्त्री-स्वातंत्र्य के स्वर को सशक्तता से उभारती है और पाठक के भीतर एक गहरी टीस छोड़ जाती है।

हिन्दी कथा क्षेत्र में नासिरा शर्मा का नाम बड़ा है। मुस्लिम समाज की स्त्रियों की कथा-व्यथा नासिरा जी की कलम से निकलकर इतनी हृदयस्पर्शी हो जाती है कि पाठक के हृदय पर अमिट छाप छोड़ती है। उनकी कहानी 'मेरा घर कहाँ हैं' के अन्त में कथा-नायिका का यह कथन न केवल पुरूष समाज पर व्यंग्य है, वरन औरत जात की लाचारी को भी रेखांकित करता है- ''इस दुनियाँ के हर कोने पर मर्द खड़ा मिलेगा, कभी प्रेमी के रूप में तो कभी बलात्कारी के रूप में। मगर जो पति ढूँढने निकलो तो एक भी कायदे का आदमी नजर नही आयेगा।'' लेखिका का सधा हुआ व्यंग्य न सिर्फ पुरूष समाज पर बल्कि निकाह और तलाक के उस अधिकार पर भी है जिसे पाकर वह शक्तिशाली ही नही अत्याचारी भी बना हुआ है। उनकी 'दूसरा ताजमहल', 'नयी हुकूमत', 'संगसार', 'सरहद के इस पार', 'इन्सानी नस्ल' आदि कहानियों में नासिरा जी समूची भारतीय सामाजिक संरचना के साथ स्त्री-पात्रों का सृजन जीवंतता से करती हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क ने नासिरा जी के कथा-लेखन पर टिप्पणी करते हुए लिखा है- ''नासिरा शर्मा में कथा कहने की जन्मजात प्रतिभा दिखायी देती है। उनके पास अनुभवों की कोई कमी नही है, अनुभूतियों का

भण्डार हैं वे। शैली बहुत रवाँ-दवाँ, भाषा सरल, सुलभ प्रवाहमान है। उसमें काव्य का रस है।''9 स्त्री की भी अपनी संस्कृति है, अपना इतिहास है, जीवन और परम्परा है जो पुरूष से भिन्न है। मन्नू भण्डारी की 'कील और कसक' ऐसी एक कहानी है जो 'स्त्री भी स्त्री की शोषक होती है', इस विचार को बल प्रदान करती हुई दिखायी देती है। लेकिन जब गम्भीरतापूर्वक इसका विश्लेषण करेंगे तो इसके पीछे के कारण संस्कारगत पुरूषवादी अवधारणाओं में ही निहित दिखाई देगें। हुकुमत दर हुकुमत स्वीकार करना स्त्री की नियति है। गलती उसकी हो या न हो सजा की हकदार वही होती है- ''मर्द रिश्ता बनाता है मगर औरत उसे निभाती है, क्योंकि सृष्टि के इस खेल की सूत्रधार तो औरत है। मर्द तोता चश्म होते हैं। उनके प्यार-मोहब्बत की उम्र बहुत छोटी होती है।''10 मृदुला गर्ग की कहानी 'मीरा नाची' लड़के-लड़कियों के प्रति भेदभाव को रेखांकित करती है। बचपन से ही लड़कियों के प्रति घटने वाली घटनाएँ, सामाजिक आचरण आदि उनके बालमनोविज्ञान को इस कदर प्रभावित करता है कि अवशता, असहायता, लिंगबोध, हीनताबोध जैसी व्यक्तित्व सम्बन्धी विद्रूपताएँ उनके पूरे जीवन में संस्कारजन्य व्यवहार के रूप में प्रकट होती हैं, जिसे पुरूष समाज प्रमाणस्वरूप उपस्थित कर स्त्री को दूसरे दर्जे का ठहराने का प्रयास करता है। मृदुला गर्ग स्त्री के सवालों को मात्र उसकी व्यक्तिगत आजादी के लिबास में नही ढूँढती बल्कि पूरे समाज की विसंगतियों और विद्रूपताओं के साथ स्वायत्त अस्मिता के प्रश्न को उठाती हैं। कहानी की मीरा इसी घर, परिवार व समाज द्वारा अपने प्रति किए गये बर्ताव के कारण ही सोचती है- ''उसका क्या है, लड़का है, चाहे कुर्सी पर बैठकर पढ़े, चाहे छत पर नाचकर पतंग लड़ाये। अपनी मर्जी का मालिक है। न डाँट फटकार, न कोसने, न अच्छे लड़के की प्रतीक्षा में जेल की कैद। लड़की सोचती है, भाई जिन्दा रहता तो हम मिलकर पतंग उड़ाते। पर क्या पता, वह उड़ाता और मैं इसी तरह ..... ।''11 अवचेतन में कश्मकश, द्वन्द्व उसे मुक्ति के लिए प्रेरित करता है। तभी तो वह कहती है- 'इस घर से निकलूँगी, तभी मुक्ति मिलेगी।' मुक्ति की यह तलाश स्त्री अस्मिता की पैनी होती धार, की पहचान है।

स्त्री विमर्शवादी दृष्टि से ममता कालिया की कहानियाँ स्त्री के प्रति अपनी संवेदनशीलता और बेबाक विचारशीलता के साथ उपस्थित होती है। डॉ0 रोहिणी अग्रवाल ममता कालिया के बारे में लिखती हैं- ''ममता कालिया पितृसत्तात्मक व्यवस्था की साजिशों को समझती है, इसलिए 'बोलने वाली औरत' कहानी में वे पाठक तक अपने इस विचार को पहुँचा देना चाहती हैं कि घर-गृहस्थी की सलामती के लिए बेशक 'दीपशिखा' की तरह मधुर-मधुर जलकर अपने को होम कर देने वाली स्त्री अनिवार्य है, लेकिन वास्तव में जब तक दीपशिखा 'अग्निशिखा' बनकर अपने अधिकारों और गरिमा के लिए संघर्षपूर्ण लड़ाई नहीं लड़ेगी, तब तक पारिवारिक मर्यादा की आड़ में स्त्रियों का तिल-तिल कर जलना-मिटना जारी रहेगा।''12 भारतीय समाज में स्त्री होना, कलंक के समान है। पुत्री का धरती पर आते ही उसे अवमानना, उपेक्षा, अपमान का जहर दिया जाने लगता है। स्त्री जीवन की इस नियति को ममता कालिया अपनी कहानियों का विषय बनाती है। ममता कालिया पितृसत्तात्मक सामाजिक ढाँचे से टकराने के लिए व्यंग्य का आश्रय लेती हैं। उन्हें मालूम है कि परिवार की प्रभुत्वशाली ताकतों के प्रति खुशामद और समर्पण का भाव स्त्री के जीवन में क्लेश और हिंसा की स्थितियों में कमी ला सकता है। नायिका शिखा चकित है कि उसकी समवयस्काएँ कैसे संतोष से लबालब भर 'मेरा परिवार महान' राग अलाप सकती है। दीपशिखा इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि मूक आज्ञाकारिता से स्त्रियाँ अपने सतीत्व और निष्ठा को प्रमाणित करती चलती हैं और परिवार संस्था की यांत्रिक व्यवस्था का एक बेजान पुर्जा बनकर, पुराने पुर्जे को रिप्लेस करती चलती हैं। ममता कालिया जानती हैं कि भारतीय परिवारों की संरचना के केन्द्र में स्त्री ही है किन्तु घर के हर महत्वपूर्ण फैसले में वह परिधि पर ढकेल दी

जाती है। घर से बाहर के मामले की तो उसे भनक भी नही लगती। भारतीय पुरूष विवाहोपरान्त स्त्री को गान्धारी रूप में ही देखना चाहता है जो जानबूझ कर न सिर्फ अन्धी बनी रहे, बल्कि गूँगी और बहरी भी। ममता कालिया की कहानियों की शिखा जैसी स्त्री पात्र, समझौता किए बिना तर्क और न्याय को जीवन का लक्ष्य बनाती है, यद्यपि इस राह में उन्हें संघर्ष के अनेक थपेड़े सहने पड़ते हैं किन्तु वह मुक्ति का मार्ग ही चुनती हैं। डॉ0 लालसा यादव लिखती हैं- ''उनकी रचनाओं में कलावादी कसीदाकारी न होकर जीवनवादी यथार्थ का सौन्दर्यबोध जुड़ा होता है। इनकी रचना ने अपने समय और समाज को पुर्नपरिभाषित करने का सृजनात्मक जोखिम हर कहानी में उठाया है। कभी वे समूचे परिवेश में नया सरोकार ढूढ़ती हैं तो कभी वे वर्तमान परिवेश में, नयी नारी की अस्मिता और संघर्ष को शब्द देती हैं।''13

प्रभा खेतान की कहानियाँ भारतीय स्त्री का सजीव चित्र उपस्थित करती हैं। वह लिखती हैं कि माँ के गर्भ से ही स्त्री को अस्वीकृति मिलने लगती है। नाभि टटोलकर, चेहरा निरखकर, खट्टा या मीठा पूँछकर, उल्टियाँ जल्दी शुरू हुईं या देर से आदि जाँच परखकर, परिवार की और समाज की बड़ी-बूढ़ी औरतें यह ऐलान कर देती हैं कि बेटे की माँ बनेगी या बेटी की .....। बेटे का आना ही परिवार की खुशियों में बरक्कत लाना होता है। बेटी के आने पर तो गम ही आता है, कारण कुछ भी हो, उत्पीड़न स्त्री ही झेलती है। मुखर स्त्रीवादी कथा लेखिका मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानियाँ इस धारणा को दृढ़ करती हैं कि बलात्कार की संस्कृति के सहारे पितृसत्ता अजर-अमर नजर आती है। समाज और परिवार की खोखली नींव और नैतिकता के छद्म आवरण को अनावृत्त करती उनकी कहानी 'फांस' पिता द्वारा पुत्री के बलकृत होने और इस अपमान-अपराध से समाज में बहिष्कृत होने का दारूण यथार्थ रचती है। दरअसल स्त्री-विमर्श पितृसत्ता के विरूद्ध स्त्री के स्वत्व, अस्मिता और स्वाधीनता के दावे की वैचारिकी है। इस वैचारिकी का एक हिस्सा, हिन्दी कथा के सन्दर्भ में ज्यादा बड़ा और व्यापक भी- पितृसत्ता के अन्यायों, उत्पीड़नों और हथकण्डों की पहचान तथा कहीं उसकी पीड़ा का हाहाकार तो कहीं उसके विरूद्ध अभियोग है तो दूसरा हिस्सा अपने स्वायत्त अस्तित्व को परिभाषित करने की, पंखों की, उड़ान की आकांक्षा। इस दिशा में महाश्वेता देवी एक मील का पत्थर है जो सामाजिक सरोकारों से गहरे जोड़ने वाली कथाकार हैं। समय की सुईयाँ भले ही आगे बढ़ रही हों लेकिन जड़ रूढ़ियों और अन्धविश्वासों से घिरा हमारा समाज आज भी कैसे मूखर्तापूर्ण तर्क गढ़ता है, इसी तथ्य को बयां करती है उनकी कहानी 'बांयेन'। बांयेन और डायन का अन्तर यह है कि- ''अगर किसी का डायन धर ले तो जलाकर मार देते हैं पर बांयेन धरने पर उसे जिन्दा रखना होता है।''14 खुद पति नें ढोल पीटकर अपनी पत्नी चण्डी को बांयेन घोषित कर दिया। सभी मानवीय अधिकारों से वंचित कर उसे गाँव से बाहर कर दिया गया किन्तु चण्डी के भीतर की ममता मरती नहीं बल्कि और बलवती हो उठती है। जिस अन्धविश्वासी समाज ने उससे मनुष्य (औरत) होने का हक छीन लिया था, उसी समाज की रक्षा के लिए अपने प्राणों की न्यौछावर कर देती है। एक धरातल पर स्त्री, जीवन स्थितियों के दबाव में घर की देहरी के बाहर आयी जरूर है पर रूढ़ियों से चला आ रहा स्त्री-पुरूष सम्बन्धों का सौन्दर्यशास्त्र भौतिक धरातल पर भले ही परिवर्तित दिखाई दे, किन्तु आध्यात्मिक स्वरूप वैसा ही है- ''दरअसल हमारा मध्यवर्गीय समाज घोर वर्जनाओं, अंधविश्वासों और रूढ़ियों का पोषक है। खासकर स्त्रियों के प्रति बहुत ही कुण्ठित, रूढ़ और रहस्यवादी है।''15

आजादी के इतने वर्षों बाद भी स्त्री, अशिक्षा, तिरस्कार और चाल-चलन की शुचिता की सूली पर चढ़ी हुई जिंदगी की भीख माँग रही है। तकनीक और कम्प्यूटर के इस युग में भी वह वही सब पढ़े-पढ़ाये जाने या करने के लिए विवश

है, जिन्हें अब तक के इतिहासकार और कथा-लेखक केवल पुरूष संदर्भ में देखने के अभ्यस्त रहे हैं। जीवन के यथार्थ को केवल पुरूष दृष्टि से देखना ज्ञान की प्रणाली को सीमित करता है तथा दूसरे सारे अनुभवों के सार तत्व के रूप में दर्शन की किसी खास प्रणाली को स्थापित करता है। इन्हीं खास सामाजिक- धार्मिक दर्शनों से इतर कथालेखिकाएँ जब अपने अनुभवों को कलमबद्ध करने लगीं तो कभी परिवार आड़े आता है, कभी पितृसत्ता। परिवार और पितृसत्तात्मक समाज उसकी पहचान के प्रति मुखर हो जाते हैं। राजेन्द्र यादव लिखते हैं- ''वह हर घर में चेखव की डार्लिंग है। वह हर उस पहचानहीन पहाड़ी नौकर की तरह है जिसका नाम बहादुर होता है।''16

स्त्री-विमर्श अब एक परिपक्व वैचारिकी का रूप ले चुका है और ज्ञान के अनेक अनुशासनों में अभिव्यक्त हो रहा है। स्त्री-विमर्श एक सिद्धान्त नही, सिद्धान्त गढ़ने वाली दृष्टि है। दृष्टि जो दर्शन की सूत्रधार है। स्त्री-दृष्टि के रचे हुए दर्शन भी पितृसत्ता के रचे हुए अनुशासनों के मूल में उतरने, उनसे लोहा लेने, अपने हाशियेकरण को निरस्त करने की प्रतिकारजनित यात्राएँ हैं। इस यात्रा में बंग महिला राजेन्द्र बाला घोष से लेकर अल्पना मिश्र तक तथा उससे आगे अनवरत कहानियों के ऐसे पड़ाव हैं जो स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के बीच अलगाव, अपरिचय एवं परायेपन के फैले उजाड़ और बंजरपना का न केवल जायजा लेती हैं अपितु स्त्री मन के गहरे अँधेरे, मनोजगत की संरचनाओं और उसे बीमार बना देने वाली स्थितियों की पड़ताल करती हैं जो आगे जारी है।

संदर्भ ग्रन्थः-

1- प्रेमचन्द और भारतीय समाज, संपादक- आशीष त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 64-65

2- अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य, संपादक- राजेन्द्र यादव, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 283

3- भूमण्डलीकरणः पितृसत्ता के नये आयाम, संपादक- राजेन्द्र यादव- अर्चना वर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 170

4- स्त्री विमर्श की कहानियाँ, संपादक- डॉ0 लालसा यादव, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ 102-103

5- हंस (पत्रिका), मार्च 2001, पृष्ठ- 179

6- स्त्री विमर्श की कहानियाँ, संपादक- डॉ0 लालसा यादव, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ- 142

7- सीमोन द बोउवार- स्त्री उपेक्षिता, अनुवाद- प्रभा खेतान, पृष्ठ- 319

8- वही, पृष्ठ- 243

9- भूमिका, स्त्री विमर्श की कहानियाँ, संपादक- डॉ0 लालसा यादव, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ 37

10- भूमिका, औरत अस्तित्व और अस्मिता-महिला लेखन का समाजशास्त्रीय अध्ययन, संपादक- अरविन्द जैन, पृष्ठ- 10

11- स्त्री विमर्श की कहानियाँ, संपादक- डॉ0 लालसा यादव, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ- 81

12- महिला लेखन के सौ वर्षः 20वीं सदी गद्य साहित्य, संपादक- ममता कालिया, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ- 48

13- स्त्री विमर्श की कहानियाँ, संपादक- डॉ0 लालसा यादव, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ- 41

14- वही, पृष्ठ- 228

15- स्त्री और नैतिकता, संपादक- गीताश्री-रमणिका गुप्ता, पृष्ठ- 82

16- भूमिका, कथा जगत की बागी मुस्लिम औरतें, संपादक- राजेन्द्र यादव, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ-12

प्रो. सोमा बंधोपाध्याय की कहानी 'इति कवि कथा' की समीक्षा

डॉ. अभिषेक मिश्र

असिस्टेण्ट प्रोफेसर- हिंदी विभाग,
जननायक चन्द्रशेखर विश्वविद्यालय बालिया उत्तरप्रदेश

सोमा बंधोपाध्याय की कहानी 'इति कवि कथा' कालिदास की कथा है कथा ऐतिहासिक होने के साथ-साथ आज के वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप उतनी ही खरी उतरती है जितनी की मोहन राकेश का नाटक 'आषाढ़ का एक दिन'। लेखिका ने कथा को उसी ऐतिहासिक ताने-बाने में गढ़ा है जितना कि राकेश ने 'आषाढ़ का एक दिन'।

मोहन राकेश का नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' कालिदास के राज कवि और राजा बनने के पूर्व की कथा है, जहाँ वह अपने पैतृक ग्राम में अपने कवि कर्म को पुष्पित और पल्लवित करता है और इस कार्य में उसकी प्रेयसी मल्लिका अपने सहयोग और प्रेम से कालिदास की रचनाओं या कवि कर्म में उत्कृष्टता लाती है। जबकि सोमा बंधोपाध्याय की कहानी कालिदास के राजप्रसाद के चले जाने की कथा है। राकेश जी के नाटक में कालिदास अपने कवि कर्म से प्रतिष्ठित होकर अपने कवि धर्म का राज्याश्रयी सुखों के साथ समझौता करके अपनी कवित्व क्षमता को पेशेवर बना देता है, कहने का तात्पर्य है कि शुद्ध रूप से सत्ता के साथ सामंजस्य स्थापित करके अपने कवि धर्म को उसके अनुकूल बना लेता है, जो उस समय की परिस्थितियों के अनुरूप लड़ता लड़ाता आगे बढ़ता है और अपनी प्रेरणा शक्ति (मल्लिका) को भूल जाता है लेकिन सोमा बंधोपाध्याय ने अपनी कहानी में कालिदास के बाद की कहानी को उकेरित किया कि सत्ता सुखों के चले जाने के बाद कवि की स्थिति और मनोदशा का चित्रण किया है जैसे कि 'राजाश्रयी कवियों के युग का अब अवसान हो चुका है। अब न वह राजकीय सम्मान है और न ही ऐश्वर्य का वैभव। ऐसे में एक प्रौढ़ कवि उद्देश्यहीन यहाँ-वहाँ भटक रहे हैं। आज ऐसा कोई मित्र नहीं रह गया है जो इन्हें दुर्दिन में आश्रय दे। कभी-कभी हिमालय पर्वत की तलहटी में बसे उस छोटे से गाँव की याद बरबस आ जाती है जो कभी उनका अपना हुआ करता था। कदम उस ओर चल पड़ने को तैयार हो जाते। कवि आहत दृष्टि से उनके गमन पथ को निहारते रहते। फिर दीर्घ विश्वास लेकर अपने भाग्य की भीषण विडंबना को स्वीकारते हुए आगे बढ़ते जाते हैं।''[1]

लेखिका का उक्त कथन अपने जीवन में की गई गलतियों के प्रति सजग करना है। कहानी में रचनाकार पश्चाताप की अग्नि में जलकर अपने को लज्जित महसूस करता है और पुनः अपनी पूर्व जन्मभूमि या कवि कर्म भूमि जाने का साहस नहीं कर पाता है। उसके राज्याश्रय से विघटित होने से कवि कर्म के सहयोगी भी अलग हो गये हैं। सोमा बंधोपाध्याय ने अपनी इस कहानी में वर्तमान से रचना कर रहे वर्ग को सजग करते हुए यह बतलाने का सहज प्रयास किया है कि कवि धर्म सत्ता के हाँ

में हाँ मिलाने से नहीं चल सकता क्योंकि सत्ता परिवर्तन के साथ-साथ सम्मान और संसाधन भी उसी त्वरित गति से चली जायेगी जिस गति से कालिदास की चली गई।

सोमा बंधोपाध्याय जी ने इस कवि कथा के माध्यम से यह बतलाने का प्रयास किया है कि रचनाकार कालजयी तभी हो सकता है जब वह सत्ता के आश्रय से मुक्त होकर लोक कल्याण के लिए काव्य का सृजन करें, इसलिए लेखिका ने कवि को राजाश्रय से अलग एक संत स्वभाव की तरह जीवन जीने की सलाह दी हैं। क्योंकि एक रचनाकार सुखों के लोभ में रचना नहीं कर सकता। एक कालजयी रचनाकार बनने के लिए जन-जन की उष्मित व्यथा को अपने लेखन धर्म के माध्यम से शीतलता प्रदान करना लेखिका का लक्ष्य है इसलिए लेखिका का कालिदास उज्जैन से सिंहल तक की यात्रा एक भिक्षुक संत की तरह करता है और बिना किसी प्रलोभन और लोभ के अपनी रचनाधर्मिता को सर्वोपरि मानता है क्योंकि इसी लोभ ने उसके कवित्व शक्ति को नष्ट कर दिया। लेखिका का कालिदास सजगता से अपने कवि धर्म को अपना लक्ष्य मानता हुआ आगे बढ़ता है। लेखिका ने अपनी कथा में यह बताया कि उज्जयिनी के राजा ने राजकवि से विभूषित करके कवि को उपहारस्वरूप स्वर्ण दवात और कलम दिया था। सब कुछ चले जाने के उपरांत भी रचनाकार इन दो वस्तुओं का परित्याग नहीं करता। इसका कारण है कि कलम-दवात रचनाकार की रचनाधर्मिता का महत्वपूर्ण और अनिवार्य अंग है। इससे विदित होता है कि रचनाकार असल में वही है जो सबकुछ लुप्त हो जाने या नष्ट हो जाने के उपरांत भी अपने कवि धर्म का परित्याग नहीं करता है। उदाहरण के तौर पर लेखिका ने प्रतीकात्मक रूप से आज के कवि कर्म कर रहे जन के प्रति सजगता लाने की पहल करती हुई हमारा ध्यान केंद्रीत करते हुए ऐतिहासिक पात्र कालिदास को काल्पनिक चरित्र के रूप में गढ़ा है।

जो कि 'आषाढ़ का एक दिन' के नायक कालिदास की अधूरी कथा को पूर्ण करने और वर्तमान रचनाकार के पेशेवर वृत्ति के कारण उसके टूँटे आत्मविश्वास और सम्मान को पुनर्जीवित करने का एक अद्भुत प्रयास है जो लेखिका की कल्पना शक्ति के कारण संभव हो सका है।

लेखिका ने कवि के जीवन प्रसंगों को जीवित करने के लिए इतिहास और कल्पना के अद्भुत मेल से कवि के जीवन में घटित हो रही घटनाओं का उल्लेख किया कि कैसे कवि आतिथ्य जीवन जी कर अपने सहृदय व्यक्तित्व को जीवित रखते हुए मानवीय संवेदनाओं की नब्ज पर अंगुलियाँ रखता है क्योंकि रचनाधर्म संवेदनाओं से इतर नहीं किया जा सकता है इसका सबसे अच्छा उदाहरण लेखिका ने अपनी कथा में रमणी की व्यग्रता और आतिथ्य कवि की सजगता के प्रसंग को उठाया है कि कैसे रमणी अपने अधूरे श्लोक को लेकर चिंतित रहती है और कैसे कवि की संवेदना उसकी व्याकुलता से जुड़ जाती है। इन प्रसंगों के माध्यम से लेखिका ने वर्तमान समय के रचनाकारों में जो एक मानवीय संवेदनाओं के प्रति संकुचित और बंधित दृष्टि दिखलाई पड़ रही है जिसके कारण उनके भीतर सम्मान, सत्ता, सुख, लोलुपता, अर्थ जैसे तत्वों का समावेश हो गया है, वह मुखर न होकर अंतर्मुखी साहित्यकार होकर मानवीय संवेदनाओं से दूर चला गया है जो उसके मुखर रचनाधर्म की सबसे बड़ी बाधा है इसलिए लेखिका का ऐतिहासिक पात्र कालिदास बिना किसी लोभ, यश के, रमणी के अधूरे छंद को पूर्ण कर देता है जो यह बतलाती है कि केवल अपने लाभ हेतु कवि कर्म करना साहित्य की सच्ची सेवा नहीं हो सकती। इसके लिए जन-जीवन की समस्याओं का समाधान करना अर्थात जन कल्याण के लिए कवि कर्म करना असल कवि धर्म है।

यहाँ रमणी के श्लोक को पूर्ण करने का प्रतीकात्मक अर्थ रचनाधर्म के माध्यम से समाज में व्याप्त विषमताओं, विसंगतियों और समस्याओं का

समाधान करना है। यहाँ कवि की उपस्थिति समाज में अभिभावकत्व की कमी को पूर्ण करती हुई दृष्टगत होती है।

लेखिका की कथा आगे बढ़ती हैं कि रमणी उस अधूरे श्लोक को एक योग्य कवि के माध्यम से पूर्ण करती है और उसका पाठ एक राजसभा में करती है। लेकिन रमणी की पात्रता उस महान श्लोक से संलग्न नहीं हो पाती और उसके कवित्व धर्म पर प्रश्न खड़ा होता है।

जैसे कि सोमा बंधोपाध्याय ने अपनी कहानी में आए प्रसंगों को शब्दों के माध्यम से उकेरित किया है, उदाहरणार्थ 'रमणी धीरे-धीरे अपने सुमधुर कंठ से काव्य का पाठ करने लगी। सभाकक्ष बिल्कुल निस्तब्ध! श्लोक के एक-एक शब्द नहीं जैसे वीणा के तारों का झंकार था तो क्या यह रमणी ही होगी इस वर्ण की राजकवयित्री? उपस्थित सबके मन में चरम उत्सुकता विराज रही थी। राजा की घोषणा के लिए सभी प्रतीक्षा कर रहे थे। तभी राजा सिंहासन त्यागकर उठ खड़े हुए और उत्तेजित स्वर में बोले। देवी यह किसकी रचना है सत्य कहिये। क्या वास्तव में यह श्लोक आपने रचा है।''[2] लेखिका ने इस प्रसंग में यह बतलाने की कोशिश की है कि एक सहृदय कवि की वाणी ब्रह्मस्वरूप शब्दों का विधान करती है अर्थात एक सहृदय रचनाकार की रचना को एक सहृदय सुधी पाठक भली-भांति समझ सकता है। लेखिका का प्रसंग यह है कि आज का अध्ययन और अध्यापन करता वर्ग साहित्यिक पिष्टपेषण से बचे, नहीं तो कहानी की पात्रा रत्नमाला की तरह लज्जित होना पड़ेगा अर्थात किसी को पिष्टपेषित करके रचना धर्म को कालजयी नहीं बनाया जा सकता। कहने का मतलब है कि अपनी प्रतिभा अभ्यास और चराचर जगत के अध्ययन से कवि कर्म सफल हो सकता है न कि साहित्यिक चोरी से। लेखिका ने वर्तमान समय में पिष्टपेषित साहित्यिक फूहड़पन, हठधर्मिता को अपना लक्ष्य बनाकर उसे चोटिल करने का प्रयास किया है। लेखिका ने अपनी कई महत्वपूर्ण विचारों को इस ऐतिहासिक कथा के माध्यम से रखने का प्रयास किया है जो आज के समय में तर्कपूर्ण और न्यायसंगत ठहरता है।

कथा क्रम आगे बढ़ता है और देखते हैं कि राजा रत्नमाला के वाचित श्लोक के असल कवि को पहचान जाता है और उनसे मिलने हेतु उस रमणी के घर की ओर प्रस्थान करता है जैसा कि कथा में वर्णित है कि ''यह सुनकर सिंहल राज के मन की अधीरता कई गुणा बढ़ गई। उन्होंने कहा प्रतिहारी सर्वप्रथम नगर द्वार बंद कर दो। मैं आज कवि सम्राट के दर्शन कर पुनः धन्य हो जाऊँगा। वह मुझे पुनः छोड़कर न चले जाएँ। महामंत्री आप शीघ्र कवि को सम्मानित करने की सारी तैयारियाँ शुरू कर दीजिए। मैं स्वयं जा रहा हूँ ले आने के लिए। अगले एक वर्ष क्यों भारत के सर्वकालीन श्रेष्ठ कवि को मैं कई वर्षों तक यहाँ से जाने नहीं दूँगा। सिंहल राज का कंठ भावावेग से थरथरा रहा था। आज सिंहल और सिंहलवासी दोनों धन्य होगें यह सोचते हुए रत्नमाला को साथ लेकर रथ पे चढ़कर वे उसकी अतिथिशाला में पहुँचे।''[3]

उक्त प्रसंग में पाते हैं कि उस समय में सत्ता और कवि धर्म का संबंध किस तरह का था? सत्ता का साहित्य से संबंध हम भली-भांति देख सकते हैं। प्राचीन समय में कवियों का राजा के प्रति और राजा का कवियों के प्रति सम्मान दिखता था। इसे साहित्येतिहास में भी देख सकते हैं। इससे विदित होता है कि साहित्य को संरक्षण प्रदान करने का कार्य सत्ता बखूबी करता है।

सत्ता के इस सुख से लाभान्वित होकर साहित्य पूर्णतः आश्रित न हो, आश्रित होने से ही रचनाधर्मिता में अवसरवादिता, फूहड़पन आदि का समावेश हो जाता है।

रचना का मूल धर्म मानव धर्म है, मानवीय संवेदनाओं का समावेश करना ही रचना की सार्थकता है। लेखिका की मंशा है कि रचना, रचनाकार का

संबंध सत्ता के लोभ की उपज के शब्दों से उत्पन्न नहीं होना चाहिए। अर्थात इस कथा में सत्ता रचनाकार से संबंध जोड़ने हेतु आगे बढ़ता है। लेखिका ने इन प्रश्?नों का उत्तर पाठकों पर छोड़ दिया कि आज के रचनाकार 'आषाढ़ का एक दिन' का कालिदास बनना चाहते हैं या 'इति कवि कथा' का कालिदास।

संदर्भ सूची

1.बंधोपाध्याय, सोमा, 'कथानक', 'कहानियों पर विशेषांक' संपादक, अनुज, कथानक, वर्ष 2018, कहानियों पर विशेषांक, पृष्ठ – 5

2.वही, पृष्ठ - 65

3.वही, पृष्ठ - 66

A Jungian Approach to Ben Okri's *Starbook*

Anusha A

Assistant Professor
School of Arts, Humanities and Social Sciences
REVA University, Bangalore.

Abstract

Literature being a creation of the author cannot be devoid of the author's psyche. Psychoanalytical criticism in literature claims that literary texts like dreams can express the conscious and unconscious mind of the author. The work of the author often reveals the desires, opinions and beliefs of the author through direct and symbolic narrations. Interpretation and analysis of the author's work at times helps the reader decipher or unravel the author's unconscious. This paper aims at understanding the psyche of the author by analysing and interpreting the text by employing Jung's psychoanalytic framework. This paper also makes an attempt in identifying the Jungian concepts embedded within the text.

Keyword:
Psychoanalysis, dream, symbols, unconscious, Individuation.

This paper explores Ben Okri's *Starbook* through a Jungian spectacle, with particular focus on dream analysis, interpretation and the concept of individuation. Previous researchers have dealt with considerable aspects of the novel, Ezekwesili Chinyere Chinedu (2019) has analysed the ideology and pursuit of desire through the characters of the novel. Rosemary Gray in the year 2007 has explored the concept of Ben Okri's reality by dint of the story and the story as a paradise of a tribe's culture and tradition that has been lost and regained.

Mariaconcetta Constantini's(2015) article has scrutinised the novel as a historical narration using myth and fable. However, the area of psychoanalysis has been left unexplored with respect to Okri's novel *Starbook*. This paper aims at bridging the gap mentioned by

analysing and scrutinising certain instances in the text through Jung's theoretical framework. The paper identifies certain concepts of Jung in the text such as the properties of dreams and the process of individuation. The paper also employs the method that Jung rendered to be effective to analyse selected dreams of the characters in the novel through which the author's unconscious is traced.

Ben Okri was born in Nigeria and was brought up in England during his young days. He realised the importance and reality of his culture in his youth and most of his works remain as a prominent record of the Nigerian culture and his beliefs. His style of writing is often considered to be a part of the genre of magical realism or fantasy, which Okri doesn't seem to agree with. Okri considers his works to be a part of reality or spirituality. Okri vehemently asserts that reality in the African continent is so intense and immense that it is often mistaken for fantasy. Okri in one of his interviews firmly asserts the reality in his novels and beliefs, "I grew up in a tradition where there are simply more dimensions to reality: legends and myths and ancestors and spirits and death. You can't use Jane Austen to speak about African reality. Which brings the question: what is reality? Everyone's reality is different. For different perceptions of reality we need a different language."(Brooks, 2017). Ben Okri's reality was rooted in his tradition and was different from the majority; his books reflect the reality of his tradition that he believed in. The concept of Okri's reality has been explored in detail by Rosemary Gray. This paper concentrates on implementing a Jungian approach to the incidents and dreams presented in Ben Okri's novel titled *Starbook*.

Dreams stem from the unconscious mind of the individual. According to Jung, dreams are not only about the memories or desires of a person but they are also capable of revealing answers, foreseeing incidents and healing oneself. Psychoanalysis or the interpretation of an individual's dream is highly subjective and cannot be done without an idea or glimpse into the experience that the person has undergone. The personal background details of the person are very vital to proceed with the interpretation of their dream. Jung in his work titled *Nature of Dreams* calls this type of approach in deciphering the meaning behind the dream of a person as 'taking-up the context', "I have developed a procedure which I call 'taking up the context.' This consists in making sure that every shade of the meaning which each salient feature of the dream has for the dreamer is determined by the associations of the dreamer himself."(C. Jung, 2011, p. 60). This method also makes it clear that every dream should be deciphered in association with the dreamer.

Dreams, according to Jung, are an important tool that the psyche uses to communicate with the individual. Dreams oftentimes are exorbitantly symbolic, Jung(2013) in his book titled *Man and His symbols* has explained that human beings are capable of producing symbols unconsciously and spontaneously in their dreams. Symbols are the most prominent medium through which an individual

expresses oneself in their dreams. Some symbols might contain universal features, whereas the rest cannot be understood or interpreted without a profound insight of the experiences of the individual. Ben Okri has used dreams as an important tool with which the protagonist unravels, understands and becomes a part of the spiritual realm. There are several characters in the novel who have revelations through their dreams. The masters in the novel have a strong spiritual connection and a good ability of interpreting their dreams, for they knew that dreams were a symbolic form of revelation which is of great importance.

Certain dreams in the novel also hold a mirror to the author's psyche. The masters in the novel dreamt of a mighty golden heron, which was attacked by the white herons. The golden heron's children were scattered in several places and most of them died while the golden heron lay half dead for centuries on the river bank.

And the children scattered in the world did not return home. They did not remember their mother. And many of them were ashamed that the dying bird on the riverbank was thought of as their mother, and they denied her. Some of her children even mocked at her and laughed at her in their new lands. And the golden sunbird, with the help of heaven and by its own great powers of healing, made itself well in the course of time…she became the saviour of the race of birds on earth (Okri, 2017, p. 139).

The children of the golden heron did not realise their connection with the golden heron and mocked it. After years the bird kingdom realized that the death of the golden heron is the death of the entire bird kingdom, meanwhile the children of the golden heron rediscovered their roots and went back to their mother, which made the golden heron heal magically in a magnificent way and save the bird kingdom. The dream of the master in the novel, which is the actual creation of Ben Okri, has a lot of associations and connections to his life. Treating this dream as that of the author's with the help of Jung's taking-up-the context method has paved the way for few interpretations.

The dream mentioned in the paragraph above gives a glimpse into the psyche of the author. There are few possible interpretations of the dream with reference to the incidents in the life of the author. The golden heron might represent the rich Nigerian heritage that the author was born in, whereas the white herons might represent the colonisers who colonised the race and culture of the author and the children of the golden heron might represent the author and others from the culture who are scattered in different countries and have lost the roots of their culture, engulfed in the western concept of modernity. The realization of the bird kingdom might represent the realisation and return of the author to his culture. Ben Okri was raised in a western world away from his land and it took him a while to realize and return to his rich culture. This dream might be a symbolic recreation of a phase of the author's life. This dream also hints the colonisation of the mind of the natives by the whites, which has disconnected them from their roots.

Ben Okri does not accept his novels to be a part of magical realism, he considers it to rather be a part of spiritual realism. The golden heron can also stand as a symbol that represents the author and the reality in his culture and the white herons might represent the criticizers and the criticisms that the author has been facing with reference to his novels and his cultural beliefs. And the return might represent the prophecy of a day when the citicisers might understand the author's culture and that everyone belongs to it through the realisation of the collective knowledge one has within. This interpretation also shares the idea of Jung's Collective Unconscious which states that the entire human race has a collective unconscious, because everyone can be traced back to one ancestor. This dream might be pointing towards the realising or the awakening of the collective unconscious and the concept that everyone can be trailed back to the same ancestor and the same culture, which in turn might lead to the awareness of the reality in the culture and ultimately the return to the culture.

The novel *Starbook* uses dream as an important channel through which messages and prophecies are delivered. According to Jung, dreams can be "a spontaneous self-portrayal, in symbolic form, of the actual situation in the unconscious''. The dreams recurrently act as a bridge that connects the conscious and the unconscious. Dr. Joseph Murphy(2014) in his book The Power of Your Subconscious Mind has mentioned that "THE POWER of your subconscious is enormous. It inspires you, it guides you, and it reveals to you names, facts and scenes from the storehouse of memory…Your subconscious mind controls all the vital processes and functions of your body and knows the answer to all the problems."(p. 33). When a person searches for an answer with his conscious mind, the answer often comes from the unconscious mind through dreams and other symbolic forms, from which the person can decipher the answers with a little bit of thought applied to the dream. The unconscious provides the answer from the experience of the collective knowledge, which has the answer for every search.

The entire novel is like a dream of the author that is filled with symbols and messages from his subconscious. Most of the incidents in the novel also share the Jungian ideologies. The King in the novel Star book has a dream where he is guided by a soothsayer:

'How do you know this?' asked the king.

'I was directed to tell you this in the dream.'

'Who told you in your dream?'

'You told me in my dream,' said the soothsayer. (Okri, 2017, p. 251)

A Jungian approach to understand the dream mentioned above reveals the connection between the conscious and the unconscious mind. Though the unconscious and the subconscious are not easily accessible to the conscious, they are indubitably connected and the conscious has a lot of influence over the unconscious. This dream is a representation of the unconscious bringing the answer that the conscious mind has been searching for, through the dream of

a person.

The maiden's father in the novel *Starbook* states that "Your questions and all the questions you will ever ask were answered before you were born, my child. All you have to do is remember, or return"(Okri, 2017, p. 115), he has also mentioned that most of the remembrance and the creation of the tribe were often through their dreams. This former passage from the text stands as a representation for the concept of Jung's Collective Unconscious, which he describes as "an universal datum meaning that every human being is endowed with this psychic archetype-layer since his/her birth. One cannot acquire this strata by education or other conscious efforts because it is innate."(2016) in his work titled *The Collective Unconscious.*

There are several instances in the novel *Starbook* which puts forth Jung's concept of Collective unconsciousness. "the wisest of the universe are here for you in that clear voice within. All guidance you will ever need is within you"(Okri, 2017, p. 352), the preceding words are the advice of the king to his son, the king speaks about the intuition within an individual. This intuition and the voice within are very much the collective unconscious that Jung has spoken about. The collective unconscious has all the answers within, since it is the collective knowledge of all humankind that has been passed on to an individual genetically.

The novel *Starbook* also provides the dream occurrences a therapeutic healing capacity, which Sigmund Freud and Jung strongly believed to be an important aspect of psychoanalysis. Jung often considered dreams as a compensation from the unconscious to the conscious self. "The primary function of dreaming, according to Jung, is psychological compensation. Dreams help maintain a healthy, dynamic balance between consciousness and unconsciousness" (Bulkeley, 2020). Ben Okri in his novel *StarBook* has encompassed the compensatory function of dreams through the prince's dream "Often, in a dream, in death, he found his life's true happiness…"(Okri, 2017, p. 267).The prince's dream has a compensatory role from his unconscious that balances the psyche of the prince and guides him towards his destiny. This compensation helps maintaining the balance in the psyche of an individual and at times helps an individual get rid of their metal blockage which leads to the healing of the mind which in turn cures the ailments in the body that are caused due to such mental blockages.

Healing is considered as one among the main functions of the tribe. The artistic tribe made people think through their arts, they expressed through their arts and shattered people's spirits by revelation through arts. They portrayed the revelation of their dream through their artworks. They also healed people through arts. Healing was a vital element for the artistic tribe without which they grew much sicker. The healing often meant the healing of the soul, this type of healing happened through several other means too. One among such ways was the healing of the soul through dreams. The novel *Starbook* registers such healings in the lives of the prince and the maiden. "And then the maiden was gone from his

dream. In the morning he miraculously recovered from death and opened his eyes" (Okri, 2017, p. 258). The preceding lines explain the healing that the prince receives through his dream. The dream has healed the prince by removing the mental blocks that has been the cause for his illness. The process of this healing is particularly similar to the process which Dr. Brian Weiss (2001) speaks about in his book *Through Time into Healing*, where he cures his patients from their illness or helps them overcome their trauma by removing their mental block through hypnotherapy. According to Dr. Brian Weiss recalling one's memory from the unconscious to the conscious through one's dream can reveal answers or help them understand their self better in a way that removes the mental block which remains as a hindrance for the mental and the physical health.

Another main component of Jungian psychology that we find in the novel is the concept of Individuation. Jung's analytical psychology centers down to the individuation process, which can also be called as the realisation of one's self. Okri's *Starbook* also has individuation as the destiny of his characters. Every dream, experience and revelation in the novel guides the characters into an inward journey into their minds that leads them towards self-realisation. The lack of the process of individuation in individuals is the conflict that weaves the story and the resolution is the prince and the maiden experiencing individuation. The central objectivity of the story seems to coincide with Jung's idea of the central purpose of human life which he calls Individuation. Jung has analysed occult symbols and religious symbolic practices as the dramatization of the individuation process which is very essential for a human life, "When the Christian faith speaks of salvation through Christ it is referring to the individuation process (salvation) and an image of wholeness or self. This individuation process is ritually dramatized by the catholic mass"(Hyde et al., 2015, p. 123).

The novel speaks a lot about the loss of central necessity among its tribes and its people "Every land and every tribe is guided by its secret necessity, its most essential truth…But sometimes a people forget who they are, and lose their secret necessity, and start, slowly, to become strangers to themselves without knowing it."(Okri, 2017, p. 141). The central necessity in the lines above is the realisation of one's self, which is called individuation in other words. The novel proceeds from the conflict with the search for individuation, without which life becomes meaningless for the protagonist and for the special tribes in the story. "But to forget who we are and not to know it is an accursed thing"(Okri, 2017, p. 142), the lack of individuation has been portrayed as a terrible thing to happen for an individual. The dreams and the other experiences of the characters have helped them connect with their unconscious and start the process of individuation, which is considered as the central purpose of life.

The entire novel in a way reflects the author's life in search of individuation, which Jung believes to be the purpose of life. There have been several hints throughout the novel that project the novel to be a part of the author's psyche. Certain

symbolic dreams in the text when interpreted with Jung's psychoanalytic method made it easy to trace it back to the author's psyche. The novel in several instances through dream references and symbols has also described Okri's concept of reality which the mainstream might not understand. just like the prince in the story not being understood by others. The prince in the story in several dimensions portrays the faith, beliefs and opinions of Ben Okri; and the evolutionary process that his life has gone through and the search that his life is moving towards. The instances in the novel have led the protagonist towards self-realisation, which comes under Jung's concept of Individuation.

Works Cited:

Brooks, Z. (2017, February 6). Magic Realism: The Famished Road by Ben Okri. *Magic Realism*. https://magic-realism-books.blogspot.com/2017/02/the-famished-road-by-ben-okri.html

Bulkeley, K. (2020). Jung's Theory of Dreams: A Reappraisal. *Psychology Today*. https://www.psychologytoday.com/us/blog/dreaming-in-the-digital-age/202003/jung-s-theory-dreams-reappraisal-0

Chinedu, E. C. (2019). Ideology and the Pursuit of Desire in Ben Okri's Starbook. *International Journal of Applied Linguistics and English Literature*, *8*(3), 1–4. https://doi.org/10.7575/aiac.ijalel.v.8n.3p.1

Hyde, M., McGuinness, M., & Pugh, O. (2015). *Jung: A graphic guide.*

Jung, C. (2011). *Dreams.* Princeton University Press,.

Jung, C. (2016, October 31). *Carl Jung "the Collective Unconscious" Free Essay Example*. StudyMoose. https://studymoose.com/carl-jung-the-collective-unconscious-essay

Jung, C. G., Henderson, J. L., & Franz, M.-L. von, Jaff??, Aniela, Jacobi, Jolande. (2013). *Man and his symbols.*

Costantini,M. (2015). Transcending Historical Violence: Uses of Myth and Fable in Ben Okri's Starbook. *Callaloo*, *38*(5), 1118–1134.

Murphy, J. (n.d.). *The Power of Your Subconscious Mind*. Embassy Book Distributors.

Okri, B. (2017). *Starbook.* Rider.

Weiss, B. L. (2001). *Through time into healing: How past life regression therapy can heal mind, body and soul.* Piatkus.

प्रकीर्णक

भारतीय संगीत की सार्वभौमिकता

डॉ. यक्षिता भट्ट

असिस्टेंट प्रोफेसर
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

सारांश

संगीत सार्वभौमिक है क्योंकि संगीत हर जगह व्याप्त है अगर सूक्ष्म रूप में देखें तो संगीत क्या है? संगीत वास्तविक रूप में एक ध्वनि है जिसमें नियमितता और स्थिरता आ जाने के कारण वह मनुष्य के मन को अच्छी लगती है। सुखदायी होती है और उसे सुनकर व्यक्ति आनंदित होता है।

संगीत सार्वभौमिक इसलिए भी है क्योंकि संगीत में प्रयुक्त काव्य किसी भी भाषा (उर्दू, फारसी, अरबी, हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी, गुजराती, राजस्थानी) में निबद्ध हो किन्तु वह रचना संगीत के मूल तत्व लय, ताल और स्वर का इनका गढ़ा हुआ रूप ही होती है और स्वर, लय और ताल का सामंजस्य जिस भी संगीत रचना में होगा मानव मन को प्रभावित आनंदित करेगा ही। यह अवश्य संभव है कि शुब्द भले ही समझ ना आये किन्तु भाव से भावों का सम्प्रेषण संगीत द्वारा बहुत आसानी से हो जाता है और मनुष्य क्योंकि भावनाशील प्राणी है भावनाओं से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। यही कारण है कि गुजरात का लोकसंगीत राजस्थान में और राजस्थान का लोकगीत अन्य प्रांतों में भी गाया, बजाया और पंसद किया जाता है।

अगर संगीत के लिए भाषा की सीमा एवं प्रतिबंध होते तो संगीत का सार्वभौमिक होना संभव न हो पाता। किन्तु संगीत तो सर्वकालिक है युगों से चली आ रही कला है। कभी नष्ट ना होने वाली भाषा है इसलिए संगीत को भाव संप्रेषित करने वाली एक भाषा ही समझा जाना चाहिए।

बीज शब्द

संगीत, सार्वभौमिक, विश्वव्यापी, अंतर्राष्ट्रीय, देशकाल

संगीत का इतिहास बहुत प्राचीन है। यदि संगीत शब्द के अर्थ की बात की जाए तो संगीत एक कला है जिसमें मानव अपने भावों को दूसरे व्यक्ति के समक्ष गायन, वादन एवं नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत करता है। संगीत की परिभाषा शास्त्रों में इस प्रकार दी गई है -

गीतं वाद्यं व नृत्यं च त्रयं संगीतमुच्यते।
नारदेन कृतं शास्त्रं मकरदव्यमुतमम्।।

Sangeet is a Technical term used for vocal and instrumental Music along with the art fo dancing. These three fine arts are closely connected with another in such a way that it is a almost imposible to separate**[1]

अर्थात् गायन, वादन एवं नृत्य तीनों कलाएँ आपस में संबंधित है और तीनों को अलग नहीं किया जा सकता और तीनों कलाओं के समूह को

ही संगीत कहते हैं।

संगीत शब्द दो शब्दों के संयोग से बना है। सम ़गीत अर्थात् सम्यक ़गीतम् का अर्थ हुआ ध्यान से गाया गया गीत। ललित कलाओं में संगीत को सर्वोत्तम कला स्वीकार किया गया है। इसका मुख्य कारण है कि सभी ललित कलाओं में कुछ न कुछ संसाधनों की आवश्यकता होती है किन्तु संगीत एक मात्र ऐसी कला है जिसका संबंध मनुष्य के अंतरमन में उत्पन्न होने वाली भावनाओं से है और संगीत मनुष्य के हृदय में तरह-तरह की उठने वाली भावनाओं को वश में करके प्रभु भक्ति की ओर प्रेरित करती है। संगीत अन्य कलाओं से इसलिए भी श्रेष्ठ है चूँकि यह कला मनुष्य के हृदय में छुपे हुए सुंदर तत्वों (भावों) को उभारने में दूसरी कलाओं से अधिक सफल होती है। संगीतकार या कलाकार जब अपने मनोभावों को उपयुक्त राग, स्वर, लय ताल शैली का प्रयोग कर सुंदर ढंग से प्रस्तुत करता है तो यह प्रदर्शन की कला ही संगीत कहलाती है। दूसरे अर्थों में हम यूँ कह सकते हैं कि भावों को संप्रेषित करने की कला ही संगीत कहलाती है। माध्यम भले ही कुछ भी (गायन, वादन अथवा नृत्य) हो किन्तु भावों को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाने में संगीत की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

संगीत एक ऐसा सशक्त माध्यम है जिसे न केवल संप्रेषण संभव है बल्कि सद्भावना एवं सद्वृत्ति को भी प्रोत्साहन मिलता है। मानव होने के नाते प्रत्येक मानव के अपने-अपने कर्तव्य व दायित्व होते हैं जिनका निर्वहन कर वह व्यक्ति न केवल स्वयं जीवन-यापन करता है बल्कि समाज के हित में भी कल्याणकारी कार्य करता है। ऐसा कदापि आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति जो संगीत से लाभान्वित होना चाहता है वह संगीत की शिक्षा ले या ले रहा हो या प्राप्त कर चुका हो। मानव-संगीत श्रवण मात्र से संगीत के महत्व को और शक्तियों को अर्पित कर सकता है। संगीत एक ऐसी कला है जिसे बरतने और श्रवण दोनों से ही इसके प्रभाव को महसूस किया जा सकता है। उदाहरण के लिए जैसे फिल्मों में प्रयुक्त संगीत या भजन कीर्तन आदि को सुनकर सभी व्यक्ति को आनंद एवं आत्मिक शांति का अनुभव होता है। चाहे वह व्यक्ति संगीत का ज्ञान या संगीत की शिक्षा से अनभिज्ञ हो। इसका कारण यह है कि संगीत कला का संबंध भावनाओं से है और भावनाएँ प्रत्येक व्यक्ति में नीहित होती हैं। वह किसी के समक्ष भावनाओं को उजागर करे यह आवश्यक नहीं है। किन्तु मनुष्य में सदैव भाव जन्म लेते रहते हैं और उचित परिस्थिति या परिवेश पाकर वे प्रकट हो जाते हैं। जैसे कोई व्यक्ति मंदिर में जाए जहाँ भजन कीर्तन हो रहा हो तो संगीत के माध्यम से व्यक्ति में नीहित भक्ति का भाव उजागर होता है प्रकट हो जाता है और वह मंदिर या घर में होने वाले भजन कीर्तन में ना केवल हिस्सा लेता है बल्कि आनंद का अनुभव भी करता है। साथ ही साथ वह भजन के माध्यम से होने वाला संगीत व्यक्ति के अंतरमन को आह्लादित कर देता है।

संगीत की प्रकृति प्रोत्साहन तथा बढ़ावा देने की होती है जैसे कोई व्यक्ति यदि बहुत ज्यादा भावुक हो रहा है तो जब वह कोई करूण रस से संबंधित संगीत सुनता है तो संगीत सुनते ही व्यक्ति की आँखों से आँसु बहने लगते हैं ऐसा कदापि आवश्यक नहीं की अश्रु सिर्फ दुःखी होने पर ही निकलते हैं अपितु जब मनुष्य बहुत खुश होता है और उल्लास और उमंग एवं शृंगार राग का संगीत सुनता है, तो भी उसके आँख से अश्रु गिरने लगते हैं। ऐसा होने का कारण यह है कि संगीत नकारात्मक विचारों को हटाकर मनुष्य की एकाग्रशक्ति को बढ़ाता है। जिससे वह सब कुछ भूलकर संगीत के वास्तविक आनंद को ग्रहण कर पाता है। उक्त उदाहरण का अर्थ यह हुआ कि संगीत कला मानव के प्रत्येक भाव को प्रकट करने में सक्षम है।

ये तो बात हुई संगीत के प्रभाव की अब अगर मैं बात करूँ कि क्या संगीत सबको प्रभावित करता है या क्या संगीत सार्वभौमिक है?

तो मेरे विचार में संगीत कला कुछ अपवादों

को छोड़कर सभी को प्रभावित करती है। व्यक्ति किसी भी आयु, वर्ण, लिंग, वर्ग, का हो संगीत की शक्ति और प्रभाव से अछूता नहीं रहता। संगीत की उपयोगिता, महत्व सभी के लिए है और इसका प्रभाव भी सभी पर पड़ता है। संगीत एक प्रकार का योग है जो शरीर व मस्तिष्क को राहत प्रदान कर सही रूप में कार्य करने के लिए तैयार करता है। मनुष्य किसी भी प्रांत में रहता हो, किसी भी जाति का हो संगीत हर रूप में उस पर प्रभाव डालता है। संक्षपे में कहूँ तो संगीत शरीर को स्वस्थ बनाये रखने में मदद करता है अब चाहे व्यक्ति कोई भी हो संगीत के प्रभाव से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। इसीलिए संगीत को सार्वभौमिक कहा गया है।

संगीत को सार्वभौमिक इसलिए भी समझना चाहिए क्योंकि संगीत हर जगह व्याप्त है अगर सूक्ष्म रूप में देखें तो संगीत क्या है? संगीत वास्तविक रूप में एक ध्वनि है जिसमें नियमितता और स्थिरता आ जाने के कारण वह मनुष्य के मन को अच्छी लगती है। सुखदायी होती है और उसे सुनकर व्यक्ति आनंदित होता है।

संगीत सार्वभौमिक इसलिए भी है क्योंकि संगीत में प्रयुक्त काव्य किसी भी भाषा (उर्दू, फारसी, अरबी, हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी, गुजराती, राजस्थानी) में निबद्ध हो किन्तु वह रचना संगीत के मूल तत्व लय, ताल और स्वर का इनका गढ़ा हुआ रूप ही होती है और स्वर, लय और ताल का सामंजस्य जिस भी संगीत रचना में होगा मानव मन को प्रभावित आनंदित करेगा ही। यह अवश्य संभव है कि शुब्द भले ही समझ ना आये किन्तु भाव से भावों का सम्प्रेषण संगीत द्वारा बहुत आसानी से हो जाता है और मनुष्य क्योंकि भावनाशील प्राणी है भावनाओं से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। यही कारण है कि गुजरात का लोकसंगीत राजस्थान में और राजस्थान का लोकगीत अन्य प्रांतों में भी गाया, बजाया और पंसद किया जाता है।

अगर संगीत के लिए भाषा की सीमा एवं प्रतिबंध होते तो संगीत का सार्वभौमिक होना संभव न हो पाता। किन्तु संगीत तो सर्वकालिक है युगों से चली आ रही कला है। कभी नष्ट ना होने वाली भाषा है इसलिए संगीत को भाव संप्रेषित करने वाली एक भाषा ही समझा जाना चाहिए।

संगीत को भाषा कहने से मेरा तात्पर्य है कि जब व्यक्ति अपने भावों को गाकर किसी वाद्य को बजाकर अथवा नृत्य द्वारा प्रदर्शित करें तो निश्चित रूप से यह भाषा ही है या संगीत को भाषा ही समझना चाहिए।

ज्ञानीकारण कारण कोई भी प्रांत कोई भी देश हो किसी भी जाति के लोग हो संगीत उनके जीवन का अभिन्न अंग होता है और एक जगह का संगीत दुनिया के किसी भी कोने में गाया बजाया या सुना जाए उसके प्रभाव अधिकांशतः समान होते हैं। इसी कारण भारत वर्ष की सारी सभ्यताओं में संगीत का बढ़ा ही महत्व रहा है। धार्मिक एंव सामाजिक परम्पराओं, रीतिरिवाजों में संगीत का प्रचलन प्राचीन काल से होता आया है और अगे भी होता रहेगा। तो अगर कहा जाए की संगीत भारतीय संस्कृति को पोषित पल्लवित करने में बहुत महत्पवूर्ण भूमिका निभाता है किसी भी एक देश का संगीत एक देश तक सीमित रहे ऐसा नहीं होता। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में सांस्कृतिक सम्बन्ध सर्वाधिक महत्पवूर्ण है। राजनैतिक महत्व तो अपने में वैभवशाली है ही, परन्तु उसका संबंध मस्तिष्क से है जबकि सांस्कृतिक संबंधों की नींव भावुकता पर आधारित है। हमारे देश के सांस्कृतिक अग्रदूत कविवर रवीन्द्र नाथ ने साहित्य एवं संगीत, दोनों पक्षों का समन्वय किया है। उनका प्रभाव आज भी न केवल स्थायी है बल्कि दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। पाश्चात्य देशों में भी इनकी शतवार्षिकी धमू-धाम से मनाई जाती है। उनकी साहित्यिक कृतियों को नृत्य नाटिकाओं को देश-विदेशों में सराहा गया। इससे हमारे देश के संगीत व साहित्य का विदेशों में बहुत सम्मान मिला।

उपर्युक्त तथ्य इस बात का प्रमाण है कि भारतीय संगीत में सार्वभौमिकता का गुण विद्यमान है। संक्षेप में यदि कहा जाए कि संगीत एक सार्वभौमिक भाषा है जिसमें व्यक्ति गायन वादन या नृत्य द्वारा अपने भावों को प्रदर्शित करते हैं तथा संगीत ऐसी सुखद

ध्वनि है जो न केवल भारत में बल्कि पूरे विश्व में एक समान महत्व रखती है। भारतीय संगीत का पारंपरिक स्वरूप पूरे युग में जीवंत है। यह संपूर्ण विश्वव्यापी है। भारतीय संगीत अपनी अलग पहचान अवश्य रखता है किन्तु यह भी सत्य है कि देशकाल परिस्थिति के प्रभाव से यह अछूता नहीं है। यही कारण है कि भारतीय संगीत में परिवर्तन होते आए हैं और भारतीय संगीत सभी के साथ एकीकरण से पीछे नहीं रहा है। भारतीय संगीत पर अफगानी संगीत, फारसी संगीत, रूसी संगीत और पाश्चात्य संगीत का प्रभाव भी है और इन संगीत पर भारतीय संगीत का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। समाज में कलाओं का लेन-देन समन्वय चलता रहता है, चलता रहेगा इसलिए हम कह सकते हैं कि भारतीय संगीत सार्वभौमिक कला है।

संदर्भ ग्रंथ

1. मिश्रा, रूचि, (2014), 'भारतीय संगीत शास्त्र के विविध आयाम', नई दिल्लीः कनिष्क पब्लिशर्स
2. गुप्ता, डॉ. रूचि (2006), 'भारतीय संस्कृति शाश्वत जीवन दृष्टि एवं संगीता' नई दिल्लीः कनिष्क पब्लिशर्स
3 कौर, डॉ. भगवन्त (2002), प्रथम संस्करण 'परम्परागत हिन्दुस्तानी सैद्धान्तिक संगीत', नई दिल्लीः, कनिष्क पब्लिशर्स
4. डॉ. असित कुमार (1992), प्रथम संस्करण ' हिन्दुस्तानी संगीतः परिवर्तनशीलता', नई दिल्लीः शारदा पब्लिशंस

Corporate Communication for Corporate Reputation Management

Dr. Divya Kumari K P

Assistant Professor
Department of Media Studies
School of Arts, Humanities and Social Science,
REVA University, Bengaluru

Abstract

Corporate reputation is established in order to achieve resounding success in business management regardless of time and space. Organizational reputation is a prominent factor associated with the sustainability of organization's credibility, utility and reputation. Modern corporate houses have understood the need and importance of reputation management on the basis of worthy contributions for the welfare and development of society. It is a collective endeavor of corporate leaders, professionals and employees. Corporate houses undertake series of image building and reputation management endeavors in the age of competitive business management. Public service advertising, publicity campaigns and propaganda services are undertaken by the corporate houses to gain identity in the corporate environment in modern times. The corporate reputation management endeavors and communication strategies for reputation management are emphasized in this paper on the basis of qualitative research methodology.

Key words:

Corporate house, Corporate Communication, Corporate Reputation, management

Corporate Reputation Management Endeavors

Organizational reputation is measured in terms of several factors such as sound management, good governance, social commitment, employees' welfare, customer satisfaction and community service. Organizations practically remain at the receiving end and strive for reputation building constantly.

The stakeholders of organizational management are the competent authorities to judge the reputation of modern organizations. Organizational reputation is primarily decided by the integrity of

the institution and quality of services rendered by the institutions. It is evident that corporate houses primarily depend on the delivery of quality – oriented and community – specific services for reputation management.

Corporate houses undertake series of reputation management activities which include corporate philanthropy, corporate communication, corporate advertising and so on. Corporate advertising campaigns based on certain healthy parameters and practices boost the reputation of corporate houses (Mohamad et.al, 2007:13). Reputation of the organizations is indeed a source of competitive advantage based on organizational commitment and delivery of competitive goods and services.

Strategic management of corporate affairs and creative corporate communication facilitate better reputation management in modern institutions (Griffin, 2008:09). Appropriate organizational management and communication strategies enhance the company's good reputation. Corporate reputation is achieved on the basis of leadership commitment, management quality, organizational ethics and socially responsible delivery system are the pre-requisites to corporate reputation management.

There are perceptual definitions (focus on defining corporate reputation from stakeholder's viewpoints), aggregate definitions (collective perspective based on the perceptions of all stakeholder groups), comparative definitions (comparing reputation to other competitors in the market), positive or negative definitions (positive or negative perceptions) and temporal definitions (time-specific reputations) which are basic ingrediands of corporate reputation.

The basic elements to corporate reputation include - brand reputation, institutional reputation and stakeholder reputation. Corporate leaders are primarily responsible for preparing grounds for adequate reputation management. Better financial performance, delivery of need-based services, adoption of CSR approaches and maintenance of customer loyalty contribute decisively for positive corporate image building and reputation management.

Modern corporate houses primarily depend on the active participation and support of good partners and other stakeholders to deliver the goods and services for better reputation building (Coombs et.al, 2011:04). Basically corporate reputation also matters from the point of view of an organizations' income generating opportunities. Reputed corporate houses command respect from the stakeholders by using a combination of corporate values and approaches. Corporate reputation has become the thrust area of organizational management which creates intangible assets for maintaining and enhancing firms' competitiveness. Corporate reputation reflects a relative assessment by stakeholders who make the destiny of corporate houses in modern times.

The concept of corporate social responsibility has gained importance from corporate reputation management point of view. Delivery of CSR specific services naturally enhances corporate reputation. Corporate reputation has become a key contributor to an organization's success

is the basis of sound organizational management. Modern organizations use a variety of managerial approaches and communication campaigns to boost their reputation.

Corporate houses manage their reputation on the basis of delivery of socially beneficial and environment friendly goods and services. Reputation building endeavors are consciously undertaken by modern corporate houses in the age of competitive business management (Kumar, 2016:12). Corporate houses have realized the importance of corporate reputation management through delivery of constructive and people-friendly services.

A holistic and consistent approach for defining and measuring corporate reputation is crucial for reputation management in corporate houses. The social media revolution has contributed immensely for effective management of marketing operations and reputation management activities. Deeper understanding of contingencies and moderators is crucial for effective sustenance of corporate reputation in macro business environment. Reputed companies command respect from the customers and other sections of society.

Corporate leaders are responsible for adoption of innovative and sustainable approaches to management in order to sustain corporate reputation. A consistent reputation management plan is crucial for the enhancement of corporate reputation. Innovative tools, technologies and measures are vital for sustainable corporate reputation. Corporate reputation is created on the basis of healthy mixture of profit motives and service motives (Ajder and Ross, 2019:01). Corporate leaders need strategic approaches to reputation management in modern times to achieve optimum success. The new economic environment specifically demands sound corporate reputation management approaches and service patterns.

Corporate reputation management figures prominently in management research in the new millennium. Scholars have examined the various factors associated with corporate reputation management (Veh et. al, 2019:18). Good concepts and approaches are the prerequisites to corporate reputation management in the present competitive business environment.

Employees require adequate motivation from the corporate leaders to assume the role of committed corporate ambassadors for corporate reputation management. The employees need better protective and promotional measures since they play a crucial role in the production of people-friendly goods and services in modern times. Corporate houses are required to lay emphasis on organizational, managerial and employee-related aspects of reputation management (Waeraas and Dahle, 2020:20).

Brand management is an important component of corporate reputation management since the customer loyalty is based upon brand management. Product quality, employee relations, customer loyalty, pro-social services and sustainable development approaches contribute immensely towards corporate reputation management regardless of space in the present times.

There is a significant association

between reputation management and sustainable development initiatives launched by the corporate houses (Kashinath, 2020:10). The future agenda for corporate houses must deal with adoption of best practices in the management of organizational affairs and corporate communication tasks. Corporate houses gain immense reputation on the basis of implementation of pro-social welfare measures and demonstration of absolute corporate social responsibility.

Corporate Communication Strategies for Reputation Management

Corporate communication serves are responsible for the establishment and maintenance of the reputation of modern corporate houses. Modern corporate houses adopt advanced strategies and practices to build and sustain corporate reputation which fetches multifaceted dividends to the corporate houses. Innovative, creative and advanced corporate communication strategies are utilized for the purpose of corporate reputation management. Corporate communication is practiced to project a professional corporate image through different communication channels. The advanced communication technologies including ICTs and social media have become relevant sources of corporate communication.

Corporate communicators are employed to enhance the brand knowledge and brand performance in a dynamic and complex marketing environment. Modern corporate houses have invested on corporate communication management and developed the communication system on the basis of competent professionals and advanced communication resources.

Corporate houses utilize publicity, advertising and marketing communication activities to build reputation (Balmer and Wilson, 1998:02). Corporate communication comes to the rescue of corporate leaders in times of crisis management. Corporate branding requires a holistic approach to corporate communication for reputation management (Gotsi and Wilson, 2001:08).

Corporate communication is practiced on the basis of corporate culture, corporate values and corporate priorities in modern times. It is also a strategic tool of management which supports value creation and contributes to corporate reputation. It basically contains certain communicative approaches to corporate reputation management (Belasen 2007:03). Corporate leaders and communicators are responsible for designing and implementing appropriate corporate communication strategies for better reputation management.

The corporate houses deliver the goods and services to satisfy the increasing needs of the various stakeholders. Corporate communication is necessary to enhance the reputation of corporate houses on the basis of creative campaigns and approaches. Effective corporate communication and advertising campaigns make a lot of difference in the management of corporate communication (Trayner and Research, 2012:17). Modern corporate houses have enhanced the confidence, goodwill and support of the various stakeholders by utilizing the

services of competent and creative corporate communicators.

Empirical studies have revealed statistically significant association between the corporate communication and reputation (Go³ebiewska, 2014:07). Effective corporate communication matters most from the point of view of corporate reputation management. Legitimacy and transparency are the core issues of reputation management which are focused in the corporate communications.

Seller reputation has a substantial immediate return in the modern marketing environment. Corporate communicators are responsible for delivering the goods which illustrate the dynamic effects of reputation (Fan et. al, 2016:06). Corporate communication has become an important tool of brand management and reputation management in modern times. Corporate communication is the principal means of generating the goodwill and support of the people about the significant organizational developments and contributions.

The corporate leaders, key executives and communicators are responsible for evolving communication strategies for reputation management (Kumar, 2016:12). Corporate reputation is an intangible value of modern organizations which strive for competitive advantages through corporate communication management. The social media have enriched the process of corporate communication which is guided by the top management of the organization (Dimitrova, 2016:05).

Corporate communication basically includes public relations, media relations, events management and other reputation building endeavors. Reputation and trustworthiness are crucial values to build and sustain institutional reputation. Corporate communicators meticulously use several communication sources and resources to sustain the reputation of corporate houses.

Corporate leaders are responsible for building corporate reputation by undertaking series of activities in consultation with the experts in order to win over the various stakeholders (Kaul and Chaudhri, 2018:11). Corporate leaders, service providers, corporate communicators and researchers are responsible for the management of reputation centered communication campaigns in modern organizations.

Corporate reputation is measured on the basis of the contributions of corporate houses for the development of society and economy. Corporate communication is consciously managed by the professionals in order to achieve optimum success in reputation management (Ajder and Ross, 2019:01). Corporate reputation is built through conscious application of public relations tools and strategies in modern organizations. The customers and other stakeholders can understand the social utility and relevance of the goods and services delivered by the corporate houses through various communication platforms.

Corporate reputation is undoubtedly an intangible asset of modern corporate houses. Corporate communicators are responsible for managing the reputation of their organization through series of

healthy campaigns. Corporate communication practically includes public relations which are widely used as an effective instrument of reputation management in major multi-national corporations. Modern corporate houses are focusing on reputation management endeavors. Corporate communication and reputation management have significant association in modern corporate environment. Effective corporate communication for reputation management is seldom questioned in the present times.

Modern corporate houses use social media and other digital resources to earn reputation in modern times. The CSR specific programmes and communication campaigns have a bearing on corporate reputation (Vogler and Eisenegger, 2020:19). The stakeholders of organizational development are competent enough to understand the performance of the corporate houses in the digital age. Corporate communication is a never ending exercise which enhances the reputation of modern corporate houses in times of peace and crisis.

Corporate communication strategies are designed and adopted to enhance the organizational brand and to manage reputation which are the major concerns of contemporary business management. Advanced models are designed by the experts in reputation management to promote business and increase effectiveness of communication strategies by reforming internal and external environment (Nzioki et. al, 2021:14). The stakeholders of business management are conscious of the quality of goods and services and corporate communication strategies adopted by the modern organizations. The corporate leaders should utilize the services of experts and implement the programs which are user-friendly in modern times.

Strategic communication management is ostensibly undertaken by the modern corporate houses under different titles and functions. Corporate reputation is the prerequisite to competitive business management in the new corporate culture and environment. Corporate houses have understood the need for broadening strategic communication to boost corporate reputation. Communication and management specialists are called upon to evolve appropriate strategies for effective and sustainable corporate reputation. Internal and external communications are practiced under the rubric of social marketing and reputation management in modern corporate houses.

A critical marketing task for the sustainability of modern businesses is to focus on the organization's reputation as an intangible asset of the organization. The stakeholders of business management have attached significance to corporate reputation built by modern organizations through effective business management and corporate communication strategies. Corporate leaders are responsible for building corporate reputation to develop positive stakeholders' attitude towards the organizations through systematic approaches to reputation management (Stravinskiene et. al, 2021:15). Corporate leaders have invariably realized the need to invest in building a corporate

communications team responsible for reputation management endeavors.

Conclusion

Corporate communication is practiced in modern corporate houses to enhance corporate image, identity and reputation which constitute the corporate capital in the modern age of competitive management. Corporate communicators are responsible for improving the brand's reach and success through adoption of appropriate corporate communication and reputation management strategies. Corporate reputation is built and sustained over a period of time on the basis of delivery of quality oriented goods and services and brand management communication exercises. Corporate reputation affects the attitudes and behaviors of various stakeholders including customers in modern society. Corporate communication has emerged as a leading organizational management function. It demands skilled, resourceful and competent corporate communicators and reputation managers in the new corporate environment.

References

1.Ajder**,** Milorad and Trent Ross (2019) Corporate Reputation: The Key Questions Answered, Ipsos, February, www.ipsos.com

2.Balmer, J. M. T. and Wilson, A. (1998) Corporate Identity: There is More to it Than Meets the Eye, *International Studies of Management & Organization*, 28(3): 12-31.

3.Belasen, Alan, T. (2007) The Theory and Practice of Corporate Communication: A Competing Values Perspective, Sage Publications, C.A.

4.Coombs, W., Timothy and Sherry, J., Holladay (2011) Managing Corporate Social Responsibility: A Communication Approach, Wiley-Blackwell.

5.Dimitrova, Yanica (2016) Communication strategies for reputation management of the company, August, Research Gate, www.researchgate.net

6.Fan, Ying., Jiandong Ju and Mo Xiao (2016) Reputation Premium and Reputation Management: Evidence from the Largest e-Commerce Platform in China, Tsinghua University, China.

7.Go³ebiewska, Blajer, Anna (2014) Corporate Reputation and Economic Performance: the Evidence from Poland, *Economics and Sociology*, 7(3):194-207.

8.Gotsi, Manto and Alan, M. Wilson (2001) Corporate Reputation: Seeking a Definition, *Corporate Communication: An International Journal*, 6(1): 24-30.

9.Griffin, Andrew (2008) New Strategies for Reputation Management: Gaining Control of Issues, Crises and CSR, London and Philadelphia, Kogan Page.

10. Kashinath, Sanjaykumar I (2020) The Study of Community Relations System, Process and Practices of Modern Corporate Houses in Karnataka and Maharashtra States, Unpublished Ph.D Thesis, Gulbarga University, Karnataka, India.

11. Kaul**,** Asha and Vidhi Chaudhri (2018) Corporate Communication through Social Media: Strategies for Managing Reputation, *The Journal for Decision Makers*, 43(3) 171–174, www.journals.sagepub.com

12. Kumar, Dileep. M (2016) Communication Strategies for Corporate Reputation Management: A Study in Karnataka State, Unpublished Ph.d Thesis, University of Mysore, Karnataka State, India.

13. Mohamad, Bahtiar, Hassan Abu Bakar and Nik Adzrieman Abdul Rahman (2007) Relationship between Corporate Identity and Corporate Reputation: A Case of a Malaysian Higher Education Sector, *Journal Management Pemasaran*, 2(2): 81-89.

14. Nzioki, Donatta Muthikwa., Wilson Ugangu and Idah Muchunku (2021) Evaluating

Quality of Communication Strategies Relating to Management of Corporate Reputation, Research Paper, Multimedia University of Kenya, www.webcache.googleusercontent.com

15. Stravinskiene, Jurgita., Migle Matuleviciene and Rimante Hopeniene (2021) Impact of Corporate Reputation Dimensions on Consumer Trust, Engineering Economics, 32(2), www.webcache.googleusercontent.com
16. Szwajca, Danuta (2017) The Role of Social Media in Corporate Reputation Management – The Results of the Polish Enterprises, Foundations of Management, 9: 162-174, www.content.sciendo.com
17. Trayner, Graeme and Brunswick Research (2012) Emblems and Shortcuts: Rethinking Corporate Reputation Research, Paper Presented at the Annual Market Research Society Conference.
18. Veh, Annika ., Markus Göbel and Rick Vogel (2019) Corporate reputation in management research: a review of the literature and assessment of the concept, *Business Research*, 12(2):315–353, www.link.springer.com
19. Vogler, Daniel and Mark Eisenegger (2020) CSR Communication, Corporate Reputation, and the Role of the News Media as an Agenda-Setter in the Digital Age, Business and Society, June 08, www.journals.sagepub.com
20. Waeraas, Arild and Dag Yngve Dahle (2020) When reputation management is people management: Implications for employee voice, European Management Journal, 38(2): 277-287, www.sciencedirect.com

INFLUENCE OF EVOLVING TECHNOLOGY AND MEDIA ON CARNATIC MUSIC

Dr. H.G. Amrutha Varshini
Guest Faculty (music)
Bangalore University, Bangalore

Abstract:

Carnatic Music is a widely accepted and renowned genre today across the globe. The music of the South of India has undergone various transformation to reach its present glory. Two of the important aspects of this transformation are the role of technology and the part played by the media in propagating this art form. Though the subject is not new and has been discussed earlier, a new angle of study is introduced every time depending on an individual's perception. This paper explores the role of Technology as a major influence in music education, enhancement of quality in music concerts, the part played by the Media in propagation of the Art. This paper also describes some of the dis-advantages of the use of technology.

Keywords:

Technology, Media, Music education, Concerts, Online education

Music Concerts:

One of the major advancements in the concert repertoire since the early part of the 19th century is the introduction of Sound reinforcement system which comprises of Microphone, Amplifiers, Signal processors and loud speakers to Indian Music. In 1902, the microphone made its entry to the Indian music system. Until then, the singers used to train their voices in such a manner that their voice used to be loud and clear in order to reach audience who were seated in the far end of the auditoriums or Durbar's. In fact it is believed that many male musicians used to increase their pitch/ Shruti in order to sound loud which had the disadvantage of straining their vocal chords[1]. After the advent of Microphone, the focus was more on the technique to amplify the voice where the singer need not sing in full throated fashion or modify the pitch. This in a way works both as an advantage as well as dis-advantage. Advantage for the vocalists is, there will be less strain on the vocal chords. For instrument

players this is a big boon as the natural tone of the instrument when played will be heard loud enough by a larger audience.

The dis-advantage of the microphone particularly for Vocalists is that sometimes the need to use ones full vocal potential is compromised. . "According to many present-day musicians, the microphone has produced a general change in the vocal and instrumental aesthetics of Carnatic music. They have noted that the microphone has obviated the need for singers to project their voices, so that an earlier 'shouting' open-mouthed style has been replaced by the 'crooning' style, which involve singing with closed mouth, almost like humming."[2]States Amanda. But majorly, the introduction of Microphone is a boon to Indian music as it has wider reach

Another important feature seen in the concert today is the acoustically designed concert halls where minute care is taken to eliminate echo or reverberations. The amplifiers and loudspeakers take the music as far as possible. Similarly there are gadgets to equalise the sounds, for instance there are equipment's called Equaliser and compressors which help to control the bass and treble and to control signal peaks in concert halls today for a better and enjoyable experience.

Music Recordings:

When we hear the recording of yesteryear maestros on a CD or in the digital form, we are taken back to that era of music and the music lingers in our thoughts and mind. Such good fortune is possible only due to the technological advancements. The first recording experiment dates back to 1877 when the famous scientist Thomas Alva Edison invented the Phonograph or Scott's *Phonautograph* of 1857 to record and reproduce[3]. From then on, there have been various innovations and advancement in this genre of reproduction of sounds, right from the acoustics, Magnetic, electric to the present day Digital era. Let us not go into details about the advancements in this particular technology however it is important to highlight the humongous advantages this technology has to offer the musical fraternity.

It is a known fact that recordings of some of the illustrious performers this country has witnessed are known to younger generations of today solely because of the availability of their recordings. The invention of Gramophone by Emile Berliner in 1887 revolutionised the world of audio recording[4]. It is believed that many female musicians with strict traditional background are the first ones to record on the gramophone discs. As stated in the Archives of Indian Music:

In due course these were converted into cassettes, Compact discs and the current digital technology has become a trend setter in documenting all the valuable works of illustrious musicians of the country. These recordings act as a major reference material for young and old alike. Today if a student need to listen to a composition or learn about the various techniques employed in creative music, these recordings are the ready reckoners.

In the arena of Sound engineering, we have witnessed trend setting changes. The artists unlike olden days are relatively

at ease as compared to the olden recording systems. The "Edit" mode in the recording world is a boon as the artist need not go back to the beginning if there is a need to correct one segment, these are taken care using software's which ease the work for both the technician as well as the artists. Such is the advancement we are witnessing in the technological world.

Music education;

Technology has played a major role in bringing music education to one's house. Today, in the busy paced life, with traffic packed roads, time is of major significance. When it comes to learning classical music, nothing can equate the age old Guru-Sishya Parampara or learning under the able guidance of a Guru. However, the advent of internet based learning or classes conducted through Skype / BOTIM / Zoom work as a great resource to many who want to learn music at their convenience. These courses are designed specifically for working people, or who reside abroad. Today this is one of the most popular platform for learning music as there are many advantages associated with such programmes. Some of them are listed below:

- Learning at home at a convenient timing suited for both the student as well as the teacher
- One on one classes/ individual attention/Live video sessions
- Easier to share lessons / notations
- Great tool for group discussions on Musicology and related subject.
- Instrumentalists as well as dancers have adapted to online teaching

During pandemic times, the online learning paved way for continuity in any stream of education. As all of us are aware, schools, colleges, universities have resorted to online education world-wide. Music and performing arts is no exception. In fact, it has proved to be more advantageous for many students who had to compulsorily return to their home towns in the pandemic situation, for such students and also to comply with the social distancing norms, online classes were a boon. Though the common network issues are part and parcel of the process, but the larger picture is achieved in sustenance of the education itself. For example, at the university level, there is more concentration towards creative music like Raga Alapana, Neraval, Kalpana Svara and the complex Raga Tana Pallavi. At one point of time, this was thought impossible to be imparted online, but this can be effectively conducted today due to the advancement in technology.

Some of the drawbacks of online classes are:

- Bandwidth or Network issues- this may cause delays in imparting lessons
- The voice quality may be unclear due to poor network connection
- Lack of personal touch. For instance, if the student goes wrong in putting Tala, a teacher cannot physically correct. One has to learn by observation
- Because of non-personal touch, there is a fear of degradation in the quality of music. Especially the application of Gamaka-s, understanding nuances etc., the

degradation in quality is possible.

- Some platforms have a time limit for their free versions, for instance, the free version of Zoom has only 40 minutes after which the participant need to re-join the session which causes delay and breaks the continuity. Similarly CISCO Webex and Google meet have one hour limit. Not everyone will want to subscribe so there is a disadvantage.

Negative Impact of Technology

- It is a known fact that there is a Guru- Sishya parampara which has upheld the tradition of imparting lessons to the seeker on a personal basis. Due to the availability of innumerable, easily available resource on the internet, has technology broken the pedagogical bond between Guru-Sishya? There is also fear in the degradation of quality. Many youngsters today do not have the clarity as to what to choose and what not to from these resources! In the process of achieving instant glory we are seeing an upsurge in youngsters uploading their music by learning from an available recording and it is a pity some do not even realise if they are going wrong in their handling of that raga grammatically. This is the result of learning without understanding the nuances. So the need to learn under a Guru is of utmost importance.
- Although technology has eased the learning process, especially for art form like music, the usage of technology has made the seeker so much dependent on the very technology itself. Hence making the seeker complacent. In olden days, the students of music were not allowed to even write notations for the krti-s or any musical form taught to them by their Gurus, they had to simply remember what had been imparted by sheer memory and understand the composition based on the grammar of the Raga. They had to perfect the sangati's by practising many times before bringing it to a form. This quality made them stronger in many aspects; for example, they would have learnt the respective composition thoroughly and for life. Also to be noted is that in earlier days, a sishya in a Gurukula atmosphere learnt a lot by listening to practise sessions of the Guru. One on one sessions between a Guru and a Sishya was rarely heard of! Today, this quality is not to be seen at all as students are literally dependent on voice recorders/ voice recording apps (which are available for free) or recording facilities available in platforms like Skype/Zoom etc. which makes learning anywhere-anytime at the same time complacent. I have witnessed many students who want the recordings of that particular lesson immediately after a session, but how many listen to them is a question! By doing this, are we not weakening the capacity to memorise and learn the composition without the aid of

recorders? Though many claim that these gadgets help to lessen the confusion and aid in faster learning, but on a serious thought is such dependency on gadgets really healthy? Is it not lessening the natural grasping ability of a human? Can this help build real good quality future Carnatic musicians? The answer to this depend on how much time and energy the teacher and the student are willing to dedicate.

Following are some thoughts by which technology can be used to enhance the learning and teaching process in a positive way.

- In a particular class / session, it is the duty of the teacher to teach the lesson thoroughly and make corrections then and there so that the student is clear with his/her understanding. After such a process, if the recording of the same is given as a reference, then the quality might not be compromised!
- Repeated revisions of the composition and encouraging the students to sing manodharma sangita for the same in the presence of the teacher would help in enhancement of quality.
- Students should be encouraged to listen to more music/ concerts to broaden their horizon.
- Students should be encouraged to ask questions on anything related to the subject that way the understanding of the subject scientifically and logically will take place instead of just browsing the internet for information

Learning Tools:

Learning is a continuous process. When one has everything in a touch of the screen, there is no limit to imbibe new knowledge. With the advancements of technology, today's musicians have also started using them to transfer their knowledge through the medium of YouTube channels. One has to just subscribe to the channel of their interest and there is so much to learn and enjoy this art form. Renowned Guru, Sangitakalacharya Smt.Seetha Rajan of Chennai has started something called a music exploration series where she talks and demonstrates on allied ragas which is available in their YouTube channel for free. In the realm of Talas, the world Konnakol Academy has uploaded number of videos to facilitate learners to understand the nuances of rhythm. By subscribing to their videos, we get regular updates as and when a new video is uploaded by the channel.

There are many Application's today which also facilitate easy learning. The age old shruti box was replaced by Radel's electronic Tanpura. Today there are many Shruti or pitch related App's such as Tanpura Droid, Bhima Tanpura, itanpura etc. which can be downloaded in your phone or Tab. This is easy to carry around as well. The introduction of Bluetooth speakers is another great invention. Similarly, voice recorders, metronomes, which regulates the rhythm in a systematic manner are also available as an App today. Likewise today WhatsApp is an easiest way to share

audios, videos, music lessons, concert pamphlets etc. In the context of musicology as well, there are many websites where old and rare books are digitised and uploaded for the benefit of the public. There are many online journals available (Sangeet Natak Academy journal, The Journal of the madras Music Academy, etc.) similarly we have many dedicated websites for music research (Shodhganga.inflibnet). These help music students and researchers in a great way.

The role of Social Media in the propagation of Carnatic Music:

Electronic media is a great blessing as it will reach a wider audience without any barriers. Today whatever information one seek is available on your fingertips. That is the beauty of modern technology. Social media is one such platform where relevant information is passed on to millions in a matter of seconds, be it information on various concerts updates, or live streams/webcasts. This has proved to be an effective medium to propagate the art form. Similarly domestic media where people can browse information sitting at home like Television, Radio, You tube channel etc. also play a major role in the propagation and growth of the Art. The radio is one of the oldest medium which has played a major role in propagation of varied forms of music. We have a wide variety of both national and regional channel which aims in sustaining people's interest in music. Bengaluru All Indian radio's dedicated classical music channel "Amrutavarshini.100.1FM" which is on the verge of becoming obsolete broadcasted many informative programmes such as *Amrutha Gurukula (*teaching sessions by reputed artist*)*, *Amrutha Kalasha* etc. All India radio and Doordarshan broadcasts programmes of graded artists on a regular basis which has wider audience.

Today, web portals like Shaale.com, parivadini.com, webcasts live concerts from Bengaluru and Chennai in their own/ YouTube channel. This act as a godsend to people situated in different parts of the world where they can sit and enjoy their favourite music in the comfort of their homes. Recently, The Madras Music Academy webcasted their whole academic session in the You Tube which was a great learning experience. But if people opt for this option then there is the fear of lack of audience in the respective venues which is a disrespect to the artists. So people should use this facility with responsibility and awareness. Nothing can beat attending a 'Live' concert or a Lecture Demonstration.

Facebook is another popular medium to webcast live/ premiered performances. Artistes of repute chat with their *Rasika's* by answering all their queries sitting at home. This was unimaginable say 10 years ago. Today this is the most sought after platform to notify upcoming events, short video clips comprising krti-s/ Talas/ fliers for a special concert and so on. Discussions on musicology, or even general topics pertaining to music is seen in these groups. Likewise the internet is full of information (both wanted and unwanted). Such developments are encouraging many youngsters to take up this art form quite seriously.

Conclusion:

Technology has become an indispensable part of our day to day life. The advancements of Technology definitely has enhanced the quality and essence of music however the traditional methods should not be replaced or compromised. The complete benefit and fruits of technology in the field of music can only be experienced only if used in the right way, right amount and the right intent. There is no standard measures that defines what is right! The discretion to understand what is right is a very subjective thing and can only be realised by one's own experience and maturity.

References:

(Endnotes)

1 Krishna, T.M, A southern music the Karnatic Story, Harper Collins, 2013

2 Weidman, Amanda J Singing The Classical, Voicing The Modern, Pg. 92, Duke university Press, 2006

3 https://www.britannica.com/biography/Thomas-Edison

4 https://artsandculture.google.com/exhibit/pioneering-musicians-women-superstars-of-the-early-gramophone-era-archive-of-indian-music

www.musicresearch.net

संगीत सीखने में वातावरण (परिवेश) एवं वंशानुक्रम (आनुवांशिकता) का प्रभाव

डॉ. ऐश्वर्या भट्ट
असिस्टेंट प्रोफेसर, संगीत विभाग
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

सारांश

नादाधीनम् जगतः अर्थात् जगत (ब्रह्माण्ड) नाद के अधीन है। सृष्टि की उत्पत्ति ओम (ध्वनि) से है और संगीत का मूलकारक ध्वनि ही तो है, सम्पूर्ण चराचर जब नाद के आश्रित है तो पंच तत्वों से निर्मित मानक काया इससे अछूती कैसे रह सकती है।

बीज शब्द

परिवेश,अनुवांशिकता, अनुरंजन, सशक्त, मनोवैज्ञानिक

''भारतीय जनजीवन के अनुरंजन के सशक्त पक्ष के रूप में संगीत की मान्यता रही है। इसे जीवनोपयोगी कला और परलोक की पूर्णांगनी साधना के रूप में भी इंगित किया गया है।''[1]

भारतीय शास्त्रीय संगीत में वंशानुक्रम तथा वातावरण का महत्त्वपूर्ण योगदान है। वंशानुक्रम तथा वातावरण के द्वारा ही भारतीय शास्त्रीय संगीत की पैतृक सम्पत्ति आज तक सुरक्षित है।

वातावरण (परिवेश) का शाब्दिक अर्थ पर्यावरण आस पड़ोस का वातावरण-वस्तुओं से है। परिवेश का मनोवैज्ञानिक अर्थ है एक प्राणी के शरीर से बाहर की सब दिशाएँ जो उसको प्रभावित करने की क्षमता रखती है।

संगीत सीखने में वातावरण (परिवेश) एवं वंशानुक्रम (आनुवांशिकता) का प्रभाव नादाधीनम् जगतः अर्थात् जगत (ब्रह्माण्ड) नाद के अधीन है। सृष्टि की उत्पत्ति ओम (ध्वनि) से है और संगीत का मूलकारक ध्वनि ही तो है, सम्पूर्ण चराचर जब नाद के आश्रित है तो पंच तत्वों से निर्मित मानक काया इससे अछूती कैसे रह सकती है।

''भारतीय जनजीवन के अनुरंजन के सशक्त पक्ष के रूप में संगीत की मान्यता रही है। इसे जीवनोपयोगी कला और परलोक की पूर्णांगनी साधना के रूप में भी इंगित किया गया है।''[1]

भारतीय शास्त्रीय संगीत में वंशानुक्रम तथा वातावरण का महत्त्वपूर्ण योगदान है। वंशानुक्रम तथा वातावरण के द्वारा ही भारतीय शास्त्रीय संगीत की पैतृक सम्पत्ति आज तक सुरक्षित है।

''वंशानुक्रम (आनुवांशिकता) शब्द का मनोवैज्ञानिक शब्दावली में अर्थ है - जो कुछ माता-पिता से सन्तान को पित्रों के माध्यम से जैविक रूप में मिलता है।''[2]

''वंशानुक्रम आनुवांशिकता मे उन सब शारीरिक और मानसिक विशेषताओं का समावेश होता है, जो व्यक्ति को अपने माता-पिता से वंश परम्परा से प्राप्त होती है। ये विशेषताएं पित्रों की जिन्स के द्वारा मिलती है।''[3]

प्रत्येक व्यक्ति अपना जीवन एक सूक्ष्म निषिक्त कोशिका के रूप में आरम्भ करता है।

उसको एक वाहकाणु माता से मिलता है और पिता से। इस प्रकार प्रत्येक लक्षण का एक जोडा वाहकाणु जीव को अपने माता-पिता से प्राप्त होता है। वास्तव में इसी को आनुवांशिकता कहते है। जब यह दोनों वाहकाणु एक तरह के होते है तो शिशु में वही शारीरिक और मानसिक गुण आ जाते है। परन्तु यदि ये दोनों पृथक्-पृथक् हुए तो इनमें से जो वाहकोण प्रबल होगा उसी का गुण बच्चे में आ जाएगा।

जिस परिवार में माता-पिता या दोनों वास्तव में संगीतकार होंगे, उनकी सन्तान संगीतकार न बनना चाहे तो भी वह सुरीली अवश्य ही होगी और उसमें सांगीतिक गुण होंगे। इसी प्रकार अन्य कलाओं में भी वंशानुक्रम का प्रभाव होगा।

किसी भी कला के अध्ययन व अध्यापन में वंशानुक्रम का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। महाभारत में अर्जुन द्वारा सुभद्रा को चक्रव्यूह की रचना सुनना और गर्भस्थ शिशु अभिमन्यु द्वारा वह सीखना किवदन्ती लगता था किन्तु वैज्ञानिकों ने भी सिद्ध कर दिया है कि गर्भवती माता जिस किसी वातावरणस में रहती है उसका प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर होता है। चित्रकार माँ का शिशु चित्रकार, संगीत कलाकार माँ का शिशु कलाकार जन्मतः अपने संस्कार लेकर आते है और यदि उचित वातावरण मिले तो वे संस्कार पल्लवित हो जाते है । छोटी-छोटी बातें जिन्हें दूसरों को समझने में बहुत अधिक समय लग जाता है वे तुरन्त सीख जाते है।

वातावरण (परिवेश) का शाब्दिक अर्थ पर्यावरण आस पड़ोस का वातावरण-वस्तुओं से है। परिवेश का मनोवैज्ञानिक अर्थ है एक प्राणी के शरीर से बाहर की सब दिशाएँ जो उसको प्रभावित करने की क्षमता रखती है।

मनुष्य पर उसके परिवेश का बड़ा प्रभाव पड़ता है। परिवेश का यह उसके जन्म से लेकर मृत्यु तक चलता है। मनुष्य को बहुत से गुण वंशानुक्रम द्वारा बीज रूप में अपने माता-पिता से प्राप्त होते है परन्तु बीज सभी परिस्थितियों में एक सा फलीभूत नहीं होता। अगर एक अच्छी किस्म के बीज को हम उपजाऊ जमीन में बोये जहाँ उसको पानी खाद उसकी देखरेख उपयुक्त मात्रा में प्राप्त हो, तो वह बीज फलीभूत होकर अच्छा फल देगा और अगर इसी बीज को किसी पथरीली जगह में बीजें और उपयुक्त वातावरण न प्रदान करें, तो बीज फूटेगा भी नहीं ठीक इसी प्रकार अगर एक बच्चा आनुवांशिकता द्वारा प्राप्त संगीत के सभी गुणों को लेकर पैदा हुआ हो परन्तु उसे अगर पर्याप्त संगीतमय वातावरण न प्राप्त हो तो वह एक अच्छा गायक या वादक नहीं बन सकता।

सीखने की प्रक्रिया में वातावरण एवं वंशानुक्रम, गुणा हो जाते है अर्थात् वह क्रिया दुगुना असर डालती है। संगीत सीखने की प्रक्रिया में निम्न तत्व काम करते हैं -

- ऽ मनोवैज्ञानिक तत्त्व
- ऽ शारीरिक तत्त्व
- ऽ वातावरण सम्बन्धी तत्त्व

मनोवैज्ञानिक तत्त्व प्रेरणा संगीत सीखने में सहायक होती है। किसी व्यक्ति विशेष का गायन सुना या वादन सुना और मन मस्तिष्क पर उसकी ऐसी छाप लगी कि चल दिये उसी के पास सीखने या किसी अच्छे गुरू की तलाश में।

शारीरिक तत्त्व, संवेदना, देखना, सुनना, सूंघना, स्वाद लेना तथा स्पर्श संवेदना इन पांच प्रकारों में श्रवण संवेदना सीखने की प्रथम सीढ़ी है अतः संगीत सीखने वाले के कान व श्रवण संवेदना तीव्र होनी आवश्यक है। अंधे व्यक्ति की श्रवण संवेदना अत्यन्त तीव्र होती है अतः उसे स्वर ज्ञान शीघ्र व श्रेष्ठ होता है। शारीरिक तत्त्व का मुख्य तत्त्व जो शारीरिक अवस्था को स्थिर करते है वह आयु और परिपक्वता है। बालक परिपक्व होने पर ही सीख सकता है किन्तु अधिक आयु होने पर सीखने की शक्ति कम हो जाती है साथ ही साथ हाथ एवं पैर के रख-रखाव में भी परेशानी आती है।

वातावरण बच्चों को सीखने में बहुत मदद करता है, वातावरण में व्याप्त गीत संगीत बच्चों में

स्वाभाविक रूप से याद हो जाते है। परिवेश में यदि संगीत का माहौल है तो जाने अनजाने उनमें वे सब बातें विकसित हो जाती है। टी.वी., इन्टरनेट, मोबाईल फोन, ऑनलाइन प्रोग्राम, ऑनलाइन क्लासिस के कारण आजकल छोटे-छोटे बच्चे बहुत अच्छा फिल्मी नृत्य, फिल्मी गीत गाते है।

इसके अलावा उच्च तापमान व अधिक नमी भी आजकल के बच्चों की कार्य शक्ति को कम कर रही है। कार्ल ई. सीशोर ने अपनी पुस्तक 'साइकोलॉजी ऑफ म्यूजिक' में विद्यार्थियों को संगीत सीखने के 12 नियम बताये है। इनमें कुछ नियम जैसे - अपने रूचि के क्षेत्र को चुनना, सीखने का दृढ़ संकल्प, प्रथम प्रभाव पर विश्वास करना, क्रमबद्ध विचार करके सीखना।

किन्तु ये सब बातें अन्य विषयों पर भी लागू होती है। संगीत सीखने में विशेष रूप से अनुकरण निरीक्षण सूझ एवं प्रयास का महत्त्व है।

अनुकरण, सीखने की एक प्रक्रिया है जिसमें सीखने वाला दूसरों की क्रियाओं को गौर से देखता है और तदनुरूप करने की कोशिश करता है। घर के वातावरण में बच्चे जैसे देखते सुनते है वैसा ही आचरण करते है। अध्यापक के बच्चे घर में अध्यापक-अध्यापक बनकर खेलते है। माता-पिता जैसा बच्चों से व्यवहार करते है। बच्चे अपने खिलौनों से वैसा ही व्यवहार करते है। संगीतकार के घर में प्रायः संगीत बैठके होती रहती है, परस्पर चर्चा चलती रहती है। विद्यार्थी सीखने आते है तो परिवार के बच्चों में वे संस्कार स्वतः ही पल्लवित हो जाते है। विद्यालय में विद्यार्थी अपने शिक्षक का अनुकरण करते है, स्वर लगाने का ढंग, वाद्य की बैठक, अंगुलियों का संचालन, गत बजाना या बंदिश गाना। शिक्षक राग सिखाना प्रारम्भ करता है तो राग के बारे में थोडा समझता है कि राग में स्वर किस प्रकार लगते है चलन कैसा है, किस स्वर पर न्यास है, किस पर मींड लेना है आदि सभी बातें विद्यार्थी शिक्षक के अनुकरण से ही सीखता है।

निरीक्षण वस्तुतः प्रत्यक्षीकरण ही है यह विधि जीवन पर्यन्त चलती है, प्रसिद्ध कलाकार बनने के बाद भी व्यक्ति अपने गायन वादन में सुधार लाता रहता है।

सूझ द्वारा मिश्र रागों को सीखते समय विशेष सूझ की आवश्यकता होती है।

पूरिया कल्याण मिश्र राग है इसमें पूरिया कहाँ है, कल्याण कहाँ है तथा पूरिया कल्याण का स्वरूप क्या है यह विशेष सूझ रखने पर ही समझ आयेगा।

बच्चों के किसी विषय में योग्य होने में वातावरण तथा वंश परम्परा दोनों का ही महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। दोनों ही बच्चों के शारीरिक और मानसिक विकास पर प्रभाव डालते है। वुडवर्थ के अनुसार मनुष्य के जीवन और विकास को प्रभावित करने वाली प्रत्येक बात वंश परम्परा और वातावरण के क्षेत्र में आ जाती है परन्तु ये बातें इतने गहन रूप में संयुक्त होती है कि प्रायः वंश परम्परा और वातावरण के प्रभावों में अन्तर करना कठिन हो जाता है।

दोनों एक दूसरे के पूरक है वंशानुक्रम बीज है और परिवेश (वातावरण) उस बीज के विकास की परिस्थितियाँ।

सन्दर्भ ग्रन्थः

1- गोयल विजयलक्ष्मी, सांगीतिक योग्यता में वंषानुक्रम एवं वातावरण का योगदान, पृष्ठ सं. 1, सुभद्रा पब्लिषर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।

2- मिश्रा अरूण (2002), भारतीय कंठ संगीत और वाद्य संगीत, पृष्ठ सं. 168, 170, कनिष्का पब्लिषर्स, डिस्ट्रीठयूटर्स; नई दिल्ली।

Bharatanatyam and its multifaceted approach: Cultural Creative Thoughts through Bharatanatyam in Diaspora

Dr. Uppari Himabindu

Assistant Professor
Sri Padmavati Mahila Visvavidyalayam (Women's University),
Tirupati, Andhra Pradesh.

Abstract

The Bharatanatyam revival movement spread to the world, carrying with it connotations of both a classical and global reformation. Bharatanatyam word was transformed from the local specification into one of the national relevance for the nationalist movement was equally concerned with establishing a global identity which crossed regional, ethnic, and religious boundaries, as it was in promoting a sense of pride in classical traditions. Bharatanatyam is a resolutely global form. It has circulated internationally at least since 1838. The existence of art form in the Diaspora has taken different shapes and transformations. The art form being initiated for multi-cultural activities in order to apply different issues and contexts through Bharatanatyam describes the level of understanding of this art form in a vital way.

Key Words

Bharatanatyam, Diaspora, Culture, Creativity, United Kingdom, Devadasi,

Bharatanatyam as a traditional dance form itself gave birth to different dimensions in Diaspora. Such as Bharatanatyam as a: Traditional dance form, Educational medium, Creative body movement, Therapy & Kinesthetic medium. 'Bharatanatyam in a way as a tool becomes a medium to prevent racism and create awareness of other cultures, in the field of education. The present paper would through light on "Bharatanatyam as an educational tool in Diaspora", in the United Kingdom.

• Cultural Creative Thoughts through Bharatanatyam in Diaspora:

Bharatanatyam is a resolutely global form. It has circulated internationally at least since 1838. O Shea says South Asian dance has had a long history in the United

Kingdom, there; too, it experienced both a surge and a streamlining in the 1970s.

Diaspora is the term often used today to describe practically any population which is considered "transnational"- that is, which has originated in a land, other than which it currently resides, and whose social, economic, and political networks across the borders of nations, states or across the globe. The rebirth of the notion of Diaspora has stemmed from academics using it to characterize transnational ethnic groups and from intellectuals, activists, and the population who have found in the expression a positive way of constituting a 'hybrid' cultural and political identity. The term "Dispersion" is a translation of the Greek word "Diaspora", is referring to the scattering and resettlement of Jews outside of the land of Israel from 6th century B.C, when they were exiled to Babylonia, until the present time.

In 1938, the Devadasis of Pondicherry danced before the audience in London and Paris. This was one of, if not the first international appearance of Sadir, Bharatanatyam's predecessor. The subsequent process through which performers and promoters refigured South Indian solo dance as Bharatanatyam was international in scope and influence. Once the dance became established as a concert practice rather than court, ritual, and salon form, its travels accelerated. Thus, Bharatanatyam is itself in Diaspora as well as being an important practice for South Asian diasporic communities.

The transformations that Bharatanatyam underwent in the revival also placed it within a global dance milieu. Bharatanatyam also entered the urban concert stage following a long period of Western fascination with "the East" and with India in particular. This preoccupation found its expression in dance practice when, for instance, European promoters sponsored performances by the Devadasis of Pondicherry in London and Paris in 1838. In the late nineteenth century, European and North American choreographers offered their own interpretations of "Eastern" themes through, for example, the Orientalist ballet La bayadere, which claimed to depict the life of an Indian temple dancer, a tradition that pre-modernist interpretive dancers such as Ruth St. Denis[1] then brought forward into the twentieth century.

This Oriental's fascination focused not only on Indians generally but also on its dance forms. This interest subsequently fueled the Bharatanatyam revival. Ruth St. Denis performed Nautch Dances in India in 1926 and raised the interest of her urban, middle-class audiences as to the nature of the dances Ragini Devi, born Esther Sherman, began her career as a St. Denis-style "oriental" dancer but relocated to India in 1930 to train in classical Indian forms; she spent the following years performing and lecturing on the merits of India's traditional dances and participated in the Music Academy's 1933 conference. The ballerina and choreographer Anna Pavlova created a series of "Oriental" themed dances and subsequently traveled to India to find the dances on which her sketches were based.

Pre-modern and early modern dancers

alongside ballet revivalists such as Pavlova reclaimed dance that was maligned in Europe, as in India, as idle entertainment associated with prostitution. Bharatanatyam dancers, like Western dance modernists, strove to validate dance, describing it as a "high," autonomous art that expressed creativity and engaged with serious intellectual and philosophical concerns. Dancers in India, as in the West, validated their performance practice by emphasizing the originality of their work while also drawing on historical sources for their inquiries.

The period of transition known as the Bharatanatyam revival was informed by international interest, some of which came from Diasporic dancers and some from European and North American performers interested in Indian arts. Locally based Indian dancers also came to India's classical dance traditions from their experiences overseas. For instance, Uday Shankar, India's first modern choreographer, 'discovered' Indian dance while living abroad.

Bharatanatyam's international circulation accelerated in the post-revival period as dancers brought new choreography as well as pedagogy to locations such as the United Kingdom, Canada, and the United States. One of the first, and most successful, choreographers to establish Bharatanatyam in the United Kingdom was Ram Gopal. Gopal was a key figure of the revival that drew international attention to the dance form. Gopal's choreography was based around the repertoire and movement vocabulary of Bharatanatyam and other Indian classical forms. Like Uday Shankar, Gopal sought out connections with ballet, collaborating with Alicia Markova, one of the most prominent ballerinas of his time. In contrast to how South Asian dance has been received abroad subsequently, Gopal's choreography played to a sell-out audience in London's popular West End theaters.

Classical ance form Bharatanatyam was displayed as an Indian national form in the international cultural exchange programs that India negotiated with the West in the 1960s. T.Balasaraswathi (1918-1984), who belonged to the hereditary traditions of temple and court dancing, and Rukmini Devi Arundale (1904-1986), the celebrated nonhereditary revivalist of twentieth-century Bharatanatyam, were allegorized as the foremost dancers, feted with numerous national awards, and presented as hereditary and nonhereditary traditional dancers on the international stage of the 1960s (Meduri 2004: 11-29; O'Shea 2007). These two dancers inspired a new generation of Bharatanatyam dancers and constituted new local/global networks of communication and exchange between India and the West in the 1980s.

Bharatanatyam in Diaspora – implies the scope of Bharatanatyam, the performance, practice, and the perception takes a whole new dimension when it comes to presenting it in the United Kingdom. The very initial stage of the cultural identity of India and Indian arts in the United Kingdom took place due to the migration of people and their cultures. The existence of art form in the Diaspora has taken different shapes and transformations.

The art form being initiated for multi-cultural activities in order to apply different issues and contexts through Bharatanatyam describes the level of understanding of this art form in a vital way. There is a considerable wavelength of understanding to include an art form like Bharatanatyam and giving a scope of multidimensional approach which indirectly implies to the nation's welfare. Thus it becomes a key reason for targeting the United Kingdom as the area of study.

Enormous opportunities provided by the government in order to make this art form a medium has been sufficiently utilized and appropriately made it reach to the citizens by the artists is the remarkable quality which has been observed in the United Kingdom.

As a "language," it found many uses in drug education or in resettling refugees; it was offered as senior citizens physical therapy and abused women's emotional therapy, unsurprisingly, then, it surfaced as a mudra or mandala for a Western contemporary choreographer, or its music, digitally manipulated, created a "new" sound, providing differentiation in a crowded Contemporary Dance marketplace.

Bharatanatyam is a magnificent tool to center human beings, to give them an inner sense of being, and to teach focus, poise, discipline, and the integration of different arts. There are pioneers of different kind-first-generation teachers of Bharatanatyam in the diaspora who work with what are called "extensions of tradition," creating dance dramas and new thematic work using only the classical Indian dance vocabulary. To date, there are nearly 300 Bharatanatyam teachers across the United Kingdom. Students today, in India and the diaspora, learn Bharatanatyam as an extra-curricular activity along with other interests such as piano or soccer. Twenty-first-century fast-paced lives do not lend themselves to the kind of immersion in the study of Bharatanatyam as in a hurry to inculcate as much Indian culture via Bharatanatyam in their impressionable youngsters via weekly Bharatanatyam class with the goal to have an arangetram before their daughters leave for college.

Bharatanatyam today is an overdetermined entity that carries cultural and political meanings beyond the technical parameters of a dance style.

Bharatanatyam as a traditional dance form itself gave birth to different dimensions in Diaspora. Such as Bharatanatyam as a

- Traditional dance form
- Educational medium
- Creative body movement
- Therapy
- Kinesthetic medium

Bharatanatyam transcends national and cultural boundaries yet remains resolutely tied to them. It circulates globally but operates as a symbol of the exotic. Performers put forth contrasting versions of the dance form in performance, even while some still describe it as part of a fixed, unbroken tradition. Dancers and promoters present the practices as high art and performers struggle to ensure that Western contemporary dance form makes room for it on the global stage. It offers a means of identity production for Diasporic

communities, who then take the opportunity it provides to refigure the dance form and to query their social, cultural, and political situation.

In Britain today this claim plays itself out in a perceived split between traditional/classical Bharatanatyam and innovative/contemporary Bharatanatyam work. This exclusive dichotomy is one of the major constitutive elements in discourses on Bharatanatyam in Britain. The former carries the weight of its unitary Indian tradition and is supposedly 'authentic' but locked in its heritage, while the latter supposedly breaks free from tradition allowing the dancer creatively and individual freedom. The latter is also more fundable.

Therefore through certain performances witnessed, as specific cases to understand how the above-mentioned aspects are happening through the individual choreographic skills, presentation skills, through patterns in presenting this art form in different contexts.

Therefore the mentioned dimensions of 'Bharatanatyam in Diaspora' were categorized respectively as the identity of certain eminent artists. Like Pushkala Gopalan known for Bharatanatyam in a traditional dance form approach, Bisakha Sarkar and Shanta Rao known for the Educational medium approach, Bisakha Sarkar also known for Creative Body movement, Anusha Subramanyam known for Therapy approach, and Shobana Jeyasingh known for Kinesthetic medium approach. These observations of the Bharatanatyam art form is being presented as a multidimensional approach that falls in the periodical time of the research study is set in.

There are artists of the new age who are equally enthusiastic to carry forward the art form with their excellent creative abilities.

Education:

The art form being initiated for multi-cultural activities in order to apply different issues and context through Bharatanatyam describes the level of understanding this art form in a vital way 'Bharatanatyam in a way as a tool becomes a medium to prevent racism and create awareness of other cultures, in the field of education.

Bharatanatyam in a way is survival to the artists in the United Kingdom and the education workshops related to this art form becomes a medium to prevent racism and create awareness of other cultures. The United Kingdom is a multi-cultural country. In most of the schools, they conduct multicultural week, i.e. introducing different countries' cultures to the children through workshops. Multicultural education activities started around the 1980s were many initiatives to promote racial harmony. The formal education sector took it up seriously to deliver multicultural education. It was developed in a big way to address racism and making children to be aware of other cultures and respect them. So this multicultural education activity was taken as a tool to prevent racism. The British government arts council has striving hard to bring arts into the life of children introducing dance, music, storytelling,

etc., at a very young age. This provides the children aware of their own culture within this global mix.

Community:

Through this art form to different communities it opens a new way of relating with their own community as well as other communities (most of the Tamil Temples and community centers in the United Kingdom have become great promoters of the Bharatanatyam), Communities can be mutually engaged across institutional boundaries developing joint enterprise and shared repertoire, forming trans-institutional communities of practice. Classical Bharatanatyam dancing and religious classes in temples to help second-generation members acquire a partially Indian identity, Bharatanatyam art form is an effective tool in not only passing on the traditional art for to the own communities but it also helps in reaching different communities and therefore creating a human wellbeing.

Experiments:

Jayalakshmi Eswar is a veteran in Bharatanatyam dancer, in her article 'Contemporary moves', she says classical dance forms have rich grammar and technique so there is always scope for experimenting. Traditional dance was based on mythological form, but now it is contemporary. So by maintaining the old aesthetics of classical richness, the boundary of experimentation is unlimited".

There is an another quote by Saffron (INDIA LINK A ESTABLISHED NETWORK) which says while these experiments are opening the door to new audiences they have still not entered the mainstream. On one hand Pundits feel these innovations take away the purity of classical form. On the other hand contemporary has taken its own definition in the present world.

Conclusion:

Innovation and variation themselves are not bad. The problem is when inappropriate innovations are claimed to be consistent with, or part of, an existing tradition. Artists have diverse motivations, and their performances provide different experiences. To capitalize on the reputation of Bharatanatyam for classicism and artistry, instead of letting their innovations stand on their own merits, most artists claim to be standard bearers of the same classical dance tradition. This confuses audiences, and discredits the art itself.

Mutual respect and friendship can provide the ideal environment for growing up into a peaceful world. Every individual has a responsibility to make this dream come true.

Références:

·Naseem Khan, Chitra Sundaram, Gnnie Wollaston and Piali Ray. "Moving Margins: South Asian Dance In The UK." *Natya Kala Conference 2002*, Feb 2001.

·Mythili Kumar. "How Bharatanatyam plays an important role in fulfilling the cultural needs, Bharatanatyam-Random Thoughts."

·Ann David. "Negotiating Natyam." Academi's one day conference at the Linbury Studio, Royal Opera House, London, held on Sunday October 2005.

·Radhika.P and Sadananda Sahoo. "Globalization, Diaspora&the Cultural landscape: The case of Bharatanatyam in the

Diaspora." *Nartanam, A Quarterly Journal of Indian Dance,* Vol.1, Jan-Mar 2004, 15-35p.

·Anita Ratnam. "Observations about Diaspora." Nitya Sammelan June 2000: May 5-7, Durban, South Africa.

·Andree Grau. "South Asian Dance in Britain: Negotiating Cultural Identity through Dance." July 1999-July 2001.

·Janet O'Shea. "Bharatanatyam in Diaspora." *Nartanam,* Oct 2010-Dec 2010, Vol.X.No.4.

·Janet O'Shea. *At Home in the World of Bharatanatyam on the Global Stage.* USA, 2007. Wesleyan University Press, Middletown, Connecticut.

·Davesh Soneji. *Bharatanatyam A Reader.* New Delhi, 2010. Published in India by Oxford University Press

RELEVANCE OF GURU-SHISHYA PARAMPARA IN RECOGNISING CREATIVE CITIES OF MUSIC WITHIN INDIA

Ms. Anupama Sharma
Assistant Professor,
Dept. of Public Administration,
Sri Guru Gobind Singh College, Chandigarh

Mr. Abhishek Sarta
Assistant Professor,
Dept. of Public Administration,
Sri Guru Gobind Singh College, Chandigarh

Abstract

Education of music and other art forms within India since ancient times follows the Guru-Shishya Parampara. In this parampara each student is taught by giving personal attention. In this system the Guru teaches their disciples under stringent environment where each disciple has to follow proper rules of riyaz. Guru-Shishya Parampara has placed a significant in recognising Creative Cities of Music within India. UNESCO in 2004 launched UNESCO Creative Cities Network (UCCN). The aim of creating this network was to connect those cities within the world that have identified creativity as one of the strategic factor for sustainable urban development. The cities are selected under this network if it covers one of the seven creative fields (Media Arts, Film, Design, Crafts and Folk Arts, Gastronomy, Music and Literature). Guru-Shishya Parampara has resulted in promoting and preserving our rich culture of music and also helped in transferring the knowledge to the younger generation of our country. This research paper is based on theoretical work both quantitative and qualitative. The theoretical data will be compiled from various sources like books, journals (national and international), various government websites and UNESCO documents.

Keywords

Guru-Shishya Parampara, Gurukulam System, UNESCO, Creative Cities, Music

Guru Shishya Parampara or Gurukul system is not a new concept. It can be traced since Treta Yug, during the times of Ramayana. Lord Rama went to his Gurukul to learn kshtriya vidya from his Guru Rishi Vishwamitra. Then in Draupar Yug, Lord Krishna went to his Guru Rishi Sandipani. In the Indian continent Guru and his/her Shishya shares a special bonding or relationship. Here, it is

believed that Guru is the one who acts as a medium who shows path to achieve the ultimate goal which is set by the Shishya. The Guru-Shishya collaboration touches deepness when Shishya surrenders to the teachings of the Guru. Real teaching takes place when the Shishya or Disciple has disciplined himself and is tuned to the wavelength of the Guru.

The Guru-Shishya relationship is just like a divine bond which holds both spiritual and religious significance in our country. Guru-Shishya Parampara phrase has been taken from Sanskrit language in which Shishya is the 'student of the guru' and Parampara is 'a continuous succession'. This shows that the lineage is simple passing on the wisdom and knowledge from a succession of the Gurus to their Shishyas. Guru-Shishya Parampara is been seen in the process of learning Indian Classical Music within India. In the world of Indian Classical Music, the place of the Guru hold all importance. It can summarised in the following couplet:

"Guru Brahma, Guru Vishnu, Guru Devo, Maheshwarah, Guru Saakshat Parabrahma, Tasmay Shree Guruve Namah ||"

It has been that Guru-Shishya Parampara is being followed not only today but it was also found in the ancient period also in the field of music education. During Vedic times the music education was given by the Gurus orally to their Shishyas which was known as Gurumukh.

The relationship between Guru and Shishya depends on complete trust which is borne out of complete surrender of the Shishya to the universal glory of the art which is possessed by the Guru. To the Shishya, Guru symbolises whole of art, while to the Gurus, Shishya implies the continuity of the art form. The importance of Guru-Shishya Parampara is also being recognised by the United Nations Educational, Scientific and Cultural Organisation (UNESCO) as it became one of the parameters in declaring Varanasi and Chennai, two cities of India as the Creative cities of Music under the United Nations Creative Network (UCCN). This UCCN was launched by UNESCO in 2004.

This research paper is based on theoretical work both quantitative and qualitative. The theoretical data will be compiled from various sources like books, journals (national and international), various government websites and UNESCO documents. It is divided into five broad headings. Heading I includes introduction, heading II includes relevance of Guru-Shishya Parampara, heading III deals with Creative Cities of Music, heading IV deals with the conclusion and the last heading is references.

RELEVANCE OF GURU SHISHYA PARAMPARA

Education of music and other art forms within India since ancient times follows the Guru-Shishya Parampara. In this parampara each student is taught by giving personal attention. In this system the Guru teaches their disciples under stringent environment where each disciple has to follow proper rules of riyaz. Shishya has to learn by heart all the lessons given by the Guru. It is universally accepted fact that knowledge of music can only be gained through direct contact with the Guru because

music is a practical subject and most of the theoretical portions of it like bandish, notations etc. can be understood only after practical knowledge. This tradition of Guru-Shishya Parampara restores the sense of belongingness towards his/her Guru and treats the Guru as God. Shishya spends entire duration of education at the abode of the Guru till he attains the perfection in the art form which is taught by the Guru. The Parampara defines Guru as the supreme power and the Shishya has to show eternal respect to his Guru. Today also many renowned national and international artists continue to keep their identities attached with the Guru. The Gurus in India are not like the Western Gurus who only teach music. Here, Gurus not only teach music but are also involved in the overall development of the Shishya as the Guru provides guidance in every aspect of life.

Advantages of Guru-Shishya Parampara

There are various advantages of the Guru-Shishya Paramapara. Some of them are mentioned below:

- One of the greatest advantages of the Guru-Shishya Parampara is that Gurus have vast knowledge and they know how to teach the most arduous lessons to the Shishya in the easiest way.
- In this Parampara, Shishya are taught with patience, and it provides a platform where they learn the skills of the art form in a perfect way.
- Shishya imbibe a particular style from the Guru and becomes efficient in that style.
- In this Parampara, Shishya are trained so well that they have full authority in their art form.
- Shishya are taught in a stringent environment where they learn to respect the Guru, learn the good points of the attitude and riyaz in discipline.
- In this Parampara, Shishya are taught face-to-face and orally which ultimately helps them to learn exact style of the Gurus.
- The Shishya are provided with the atmosphere which ensures that they come out as an artist.

In Indian music, the Guru-Shishya relationship is more than teaching a style, techniques or aesthetics of music. They sheer an essence of bond and hard work. Respecting this relationship, the Shankar Mahadevan Academy has introduced Gurukripa Awards which distinguishes the enormous contributions of the Gurus who have endeavoured over the years to produce the next generation of brilliant musicians.

CREATIVE CITIES OF MUSIC

UNESCO in 2004 launched UNESCO Creative Cities Network (UCCN). The aim of creating this network was to connect those cities within the world that have identified creativity as one of the strategic factors for sustainable urban development. The cities of UCCN work together by placing creativity and cultural industries at the centre of their development plans at the local level. All these cities cooperate with each other at the international level. The cities are selected under this network if it covers one of the seven creative fields that have been decided by UNESCO. These seven creative fields are Media Arts, Film, Design, Crafts and Folk Arts, Gastronomy, Music and Literature. Those

cities which joins the network commit to share their best practices of innovation and creativity. Within India also six cities have been designated as UNESCO Creative Cities. It also encourages citizen participation in cultural life and assimilate culture as an important element in the urban development plans. UCCN aims at creating cities that are sustainable in nature and are relevant not only today but tomorrow also. Varanasi was the first city to become the part of this prestigious network in 2015. Varanasi have been declared as the Creative City of Music. In the same year Jaipur also became part of this network and was declared as the Creative City in the field of Crafts and Folk Arts. Then in 2017, Chennai was also declared as the Creative City of Music. In 2019, Hyderabad became the fourth city within India to get the status of Creative City. It was given this tag under the creative field of Gastronomy. Within same year Mumbai was also given the tag of Creative City in the field of Films. Srinagar is the latest city which has been declared as the Creative City under this network in the field of Crafts and Folk Arts in 2021.

Varanasi

Varanasi, one of the oldest living cities of the world is known by various names. Some call it Kashi, the city of Mahadev as they believe that Varanasi was found by Lord Shiva. The famous Kashi Vishwanath temple dedicated to Lord Shiva is also situated in Varanasi. Varanasi is also known as Benaras. It is known as the spiritual and cultural capital of India. Varanasi spreads over an area of 1535 sq. km with a population of 3,676,841. Globalisation, cross-culturalism and cultural diversity has necessitated the exchange of cultural forms. It is a land where one finds an amalgamation of art and architecture, crafts, culture, knowledge, music, drama, archaeology, mythology and different religions. Varanasi is connected with spiritualism, mysticism, Sanskrit and yoga. This city has created stage for the world famous artists. Various cultural activities have flourished in this city. Varanasi has given great artists to the world for example internationally renowned Sitar maestro Pandit Ravi Shankar, internationally renowned Shennai maestro Ustad Bismillah Khan and world famous vocalist Pandit Rajan and Sajan Mishra etc. Distinguished novelist Prem Chand and famous saint-poet Tulsi Das (writer of Ram Charit Manas), were born in Varanasi. Mark Twain, an English author and literary was fascinated by the legend and holiness of Benaras and once wrote: "Benaras is older than history, older than tradition, older even than legend and looks twice as old as all of them put together." As a Creative City of Music, Varanasi envisions:

- The protection and promotion of Varanasi's music through Gharanas (the Guru- Shishya Parampara- a teacher-pupil traditional learning method) which is eroding over time. In Varanasi, Banaras Gharana is being followed and the city is committed to keep this tradition of gharanedar style alive through the implementation of several grants schemes and educational training programmes.
- Giving a new instinct to the 350-year-old city's festivals of Gulab

Bari, Budwa Mangal and Ramlila by fostering multidisciplinary methodologies and learning from experiences of other Creative Cities;

- Using music as a driver of intercultural dialogue and mutual understanding through the Jugalbandi Fusion Collaborations, concentrating on jam sessions with musicians from diverse backgrounds; and supporting exchange schemes for music students of Creative Cities of Music to learn Guru-Shishya Parampara and share their own knowledge and experiences.

Chennai

Chennai (population around 6.5 Million) formerly known as Madras is the city which is known as the cultural gateway of southern India. Music tradition of this city is around 6,000 years old. Here, the music is taught under the Gurukulam system which is known as the Guru-Shishya Parampara in the northern India. Chennai government has put strong efforts to promote this culture of the city. It gives support not only to the public industries but also to the private stakeholders. Chennai is known for the Carnatic music which is one of the form of the Indian Classical System. It organises two month music season where around 1500 performances take place. Audiences and artists come across the world to participate in this music season. As a Creative City of Music, Chennai envisages:

- Starting up of joint projects with the public schools so as to promote the culture of music among the young citizens of the city.
- Creating spaces for cultural artists so that they can interact with the urban designers so that culture can be successfully imbibed into urban planning.
- Collaborating with other Creative Cities for national and international events so that they can share their creativeness, innovation, methodologies and experiences.

CONCLUSION

Guru-Shishya Parampara in the north India or Gurukulam system in the south India helps in teaching the students with utmost efficiency. Guru-Shishya Parampara has placed a significant in recognising Creative Cities of Music within India. It has resulted in promoting and preserving our rich culture of music and also helped in transferring the knowledge to the younger generation of our country. One of the important reason of recognising Varanasi and Chennai as Creative Cities of Music within India was that these cities are working towards the preservation of the Guru-Shishya Parampara.

REFERENCES

Administration, D. (2021, July 31). Retrieved from https://varanasi.nic.in/: https://varanasi.nic.in/art-craft-varanasi/

America, U. S. (2009). Cultural Policy - U.S. Department of Arts and Culture. Retrieved from https://usdac.us/cultural-policy.

Baker, A. (2019). The Great Music City: Exploring Music, Space and Identity. Germany: Springer International Publishing.

Correspondent, S. (2017). Chennai is now part of UNESCO's 'creative cities network'. Chennai: The Hindu.

Guru-shishya Parampara: The Master-disciple Tradition in Classical Indian Dance and Music. (1982). United Kingdom: Arts Council of Great Britain.

India, G. o. (2019). Stage set for Pravasi Bhartiya Diwas -2019, being held for the First time in Varanasi. New Delhi: Press Information Bureau.

Kashalkar, S., & Nathibai Damodar . (2013, March-May). Comparitive Study Of Ancient Gurukul System And The New Trends Of Guru-Shishya Parampara. American International Journal of Research in HUmanities, Arts and Social Sciences, 2(1), 81-84.

Ministry of Culture, G. o. (2019). UNESCO has designated Mumbai as a member of UNESCO Creative Cities Network (UCCN) in the field of Film and Hyderabad in the field of Gastronomy. New Delhi: Press Information Bureau. Retrieved from https://pib.gov.in/newsite/PrintRelease.aspx?relid=194177

Pradesh, G. o. (2021, May 9). District Varanasi, Governmnet of Uttar Pradesh | Varanasi the city Eternal | India. Retrieved from https://varanasi.nic.in/.

Prickett, S. (2007). Guru or Teacher? Shishya or Student? Pedagogic Shifts in South Asian Dance Training in India and Britain. South Asia Research.

Raina, M. K. (2002, March). Guru-Shishya Relationship in Indian Culture: The Possibility of a Creative Resilient Framework. Psychology & Developing Societies, 14(1), 167-198.

Saxena, S. (2018, July 27). SMA Article: Guru-Shishya Tradition: Beyond Teacher-Student Relation. Retrieved from https://www.shankarmahadevanacademy.com.

Siddiqi, J. (2020). Guru-Shishya Parampara: Master and Disciple, Knowledge Through Surrender. Retrieved from https://www.darbar.org.

UNESCO. (2004). Mission_Statement_UNESCO_Creative. Retrieved from https://en.unesco.org: https://en.unesco.org/creative-cities/sites/creative-cities/files/Mission_Statement_UNESCO_Creative_Cities_Network_1.pdf

UNESCO. (2015). Varanasi | Creative Cities Network. Retrieved from https://en.unesco.org/.

UNESCO. (2017). Chennai | Creative Cities Network. Retrieved from https://en.unesco.org/.

Vishnoi, A. (2015). Director General UNESCO declares Varanasi, Jaipur under Creative Cities Network. New Delhi: The Economics Times.

संगीत में अभ्यास का महत्व

डॉ. राय बहादुर सिंघ

असिस्टेंट प्रोफेसर, संगीत गायन
राजकीय महिंद्रा कालेज पटियाला।

सारांश

भारतीय संगीत के हजारों वर्षों के इतिहास में अनेकों संगीत साधकों ने अभ्यास, साधना से इस धारा को प्रवाहित किया व् परिष्कृत किया। यही कारण है कि हमें भारतीय संगीत का इतिहास पढ़ते समय अनेकों चमत्कारिक गुणों का उल्लेख भी पढने को मिलता है। संगीत के जिन प्रभावों पर विश्व के अन्य क्षेत्रों में शोध आधुनिक काल में आरंभ हुई, भारतवर्ष में भारतीय संगीत में उनका क्रियान्वयन सदिओं से होता चला आ रहा है। कला तभी श्रोता या दर्शक के मनोभावों को उद्वेलित कर सकती है जब उसमें कला व् भाव (मनोभाव) का उचित साम्य स्थापित हो जाए और यह तभी संभव हो पाता है जब कलाकार दृढ़ता व् लगन के साथ निरन्तर अभ्यास के द्वारा कला पक्ष में सहज हो जाए। अभ्यास के द्वारा इस अवस्था को अर्जित करने के बाद उस कला को जब मनोभावों का पुट दिया जाता है तब वह संगीत कला, ललित कला की श्रेष्ठता को प्राप्त करती है। यही अभ्यास की महिमा है।

बीज शब्द

भारतीय संगीत, साधना, अभ्यास, लगन, दृढ़ता, मार्गदर्शन

प्रकृति की मधुर ध्वनियों ने जब मनुष्य के मन को उद्वेगित किया तो इन ध्वनियों के मनुष्य द्वारा अनुकरण की चेष्टा से संगीत का जन्म हुआ। मानव जीवन के विकास के साथ संगीत का भी विकास होता गया। मानव ने अपने मनोभावों, उदगारों को अभिव्यक्त करने के लिए संगीत को माध्यम बनाया। जैसे-जैसे मनुष्य सामाजिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक क्षेत्रों में उन्नति की ओर अग्रसर होता गया, कला संस्कृति, संगीत भी विकास के पथ पर आगे बढ़ते गए। संगीत जहाँ एक ओर समाज का दर्पण है वहीं समाज का मार्गदर्शक भी है। 'ललित कलाओं में अग्रगण्य होने के कारण संगीत में निहित लालित्य का अर्थ एवं उद्देश्य मानव के मन मस्तिष्क को आकृष्ट करना तथा तदोपरान्त उसी आकर्षण में तल्लीन रसोनुभुति की चरमोत्कृष्ट अवस्था में उसका नैतिक उत्थान करना है।'

भारतीय संगीत, जैसा कि ऐतिहासिक प्रमाणों से स्पष्ट होता है, विश्व का प्राचीनतम संगीत माना जाता है। कई हज़ार वर्षों की भारतीय संगीत की परंपरा आज हमारे समक्ष अपने अत्यन्त परिष्कृत एवं समृद्ध रूप में विद्यमान है। सदियों से चली आ रही इस परम्परा को परिष्कृत करने, आगे बढ़ाने में समय-समय पर अनेक विद्वानों/ कलाकारों/ गुनीजनों ने योगदान दिया। 'एक कलाकार दूसरे कलाकार का मार्गदर्शक होता है। पहला कलावंत कला रुपी डोर को जिस स्थान पर छोड़ता है, दूसरा कलाकार

उसी डोर को पकड़कर प्रगति करता है, अर्थात आगे बढ़ता है।' इन कलाकारों ने न केवल संगीत की इस धारा को आगे बढ़ाते हुए नई पीढ़िओं को हस्तांतरित किया बल्कि साधना के द्वारा कला को मनोरंजन से चमत्कारिकता तक भी पहुँचाया। भारतीय संगीत का इतिहास जहाँ एक ओर द्वीप जलाने, बादल बरसाने, हिरणों को मोहित करने की बात करता है, वहीं आधुनिक युग में मुसोलिनी (इटली का तानाशाह) का अनिद्रा रोग दूर करके एवं क्रोधित शेर का शान्त करते हुए ब्रह्म की प्राप्ति तक पहुंचाता है, और यह वर्णन केवल अंश मात्र है।

भारतीय संगीत के इस समृद्ध स्वरूप, जिसमें इतनी चमत्कारिता की शक्ति विद्यमान है, पर अधिकार प्राप्त करना भी आसान नहीं है। संगीत केवल ध्वनियों का उतराव-चढ़ाव मात्र नहीं बल्कि यह भावों की अभिव्यक्ति है, भावनाओं का मूर्त रूप है, ध्वनि के द्वारा सम्वेगों को प्रत्यक्ष रूप प्रदान करने का एक साधन है। यह केवल रसानुभूति का माध्यम न होकर विभिन्न मानसिक स्थितियों का परिचायक भी है। इससे भी आगे बढें- तो नाद ब्रह्म है, ईश्वर प्राप्ति की सीढ़ी है। ऐसे संगीत पर अधिकार प्राप्त करना कर्मनिष्ठा, लग्न और निरन्तर अभ्यास का कार्य है। संगीत कला के स्वरूप को आत्मसात करने में जो सबसे महत्वपूर्ण पहलु है, वह है सांगीतिक संस्कार जिसके अभाव में संगीत भावपूर्ण न होकर व्याकरणिक उच्चारण मात्र होकर रह जाता है। ईश्वर की कृपा से अगर संस्कार हों तो दूसरा महत्वपूर्ण पहलु है अभ्यास। भारतीय संगीत में अभ्यास शब्द को रियाज़, मेहनत, साधना, तपस्या आदि शब्दों से भी जाना जाता है।

अभ्यास एक अनुशासन है जिसका अनुपालन हमें दृढ़ता पूर्वक करना पड़ता है। अभ्यास के लिए अनुकूल वातावरण, अनुकूल प्रोत्साहन, अनुकूल अवसर, अनुकूल आहार एवं अनुकूल शिक्षा परमावश्यक है। यह अभ्यास की ही आभा है कि हाथी जैसा विशालकाय जानवर 'गज परन' के वशीभूत हो जाता है। भारतीय संगीत की शिक्षण प्रक्रिया केवल स्मरण मात्र नहीं है। केवल स्मरण करके गाया-बजाया संगीत एक व्याकरणिक प्रस्तुती के अतिरिक्त कुछ भी नहीं होता। वास्तव में संगीत में साधना का सफ़र समरण से शुरू होता है व उसके बाद गुरु से प्राप्त ज्ञान की निरंतर साधना के द्वारा जब शिक्षाथ॰ उस ज्ञान को आत्मसात करके उसमे सहज हो जाता है तब उस संगीत में व्याकरणिक उच्चार्ण के साथ भाव भी सम्मिलित हो जाते हैं जो श्रोता के मनोभावों को उद्वेलित कर रस निष्पत्ति करने में सक्षम हो पाते हैं। तभी तो गुणिजनों ने कहा है-

करत-करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात से सिल पर पड़त निसान।।

घराना परम्परा में गुरुजन अक्सर शिष्यों को बंदिश की एक ही पंक्ति देकर उसका निरंतर अभ्यास करवाते हैं। अभ्यास या साधना से भी पूर्व जिज्ञासु में संगीत का संस्कार होना परम आवश्यक है। यह एक ऐसा गुण है जो भगवान के हाथ में है। इसके आभाव में किया गया कोई भी अभ्यास/साधना फलीभूत नहीं हो सकती। संगीत एक ललित कला है और इसमें लालित्य का होना सबसे पहली शर्त है क्योंकि यह लालित्य ही संगीत को ललित कलाओं में सर्वोच्च स्थान प्रदान करता है। अभ्यास अपने उद्देश्य के अनुरूप हो, वान्छित फल की प्राप्ति हो, इसके लिए कुछ बातें महत्वपूर्ण हैं जिनकी चर्चा आगे की गई है।

उचित मार्गदर्शन- अभ्यास का जितना महत्व है, उतना ही महत्वपूर्ण है इसके करने का ढंग। 'प्रतिभाशाली विद्वानों का अनुकरण मानव समाज अनादिकाल से करता चला आ रहा है। इसी प्रकार प्रवीण गायकों का अनुकरण साधारण संगीत प्रेमी बड़े चाव से किया करते हैं। संगीत, जैसा कि सर्वविदित है, सम्पूर्ण गुरूमुखी कला है। इसलिए संगीत के अभ्यासी की यह परमाव्यश्यकता है कि अभ्यास की सही तकनीक, रियाज़ का तरीका किसी योग्य गुरू के मार्ग दर्शन में सीखा जाये। तभी वह फलदायक हो सकता है। मन में लगन हो पर रास्ता मालूम नहीं, जिज्ञासू भटक जाएगा, मन्ज़िल पाने

की बजाय उससे दूर होता चला जाएगा। तभी तो कहा गया है- 'गुरू बिन ज्ञान न पावे।' घराना परम्परा में सबसे पहले कंठ को सुसंकृत करने का अभ्यास कराया जाता है। पंडित एस. एन. रातांजन्कर जी घराना परम्परा के बारे में चर्चा करते हुए बताते हैं- 'प्रथम पाठ था 'सुर भरना'। शागिर्द को अपनी श्वास-क्षमता के अनुसार व् कंठतारता के अनुरूप मन्द्र सपतक के मूल स्वर षड़ज पर रुकना होता था। यह अभ्यास नियमित रूप से प्रतिदिन प्रातः एक अथवा दो घंटे करना पड़ता था-षड़ज की दीर्घता धीरे-धीरे बढाई जाती थी। इस अभ्यास का उद्देश्य टिकाव, स्थिरता, शक्ति तथा आवाज़ की तारता का ज्ञान और शवास नियंत्रण बढ़ाना था।' भारतीय संगीत में गुरू को ब्रह्मा, विष्णु, महेश और साक्षात पारब्रह्म का स्थान दिया गया है। भारतीय दर्शन में गुरु को पारस के समान कहा गया है। जिस प्रकार पारस से छूकर लोहा भी सोना बन जाता है उसी प्रकार गुरु की संगत में रहकर साधारण शिक्षाथ॰ भी असाधारण प्राप्तियां कर सकता है।

लगन और दृढ़ता- भारतीय संगीत एक श्रम साध्य कला है। सही भी है। जो चिरस्थायी है वह आसान नहीं और जो आसान है वह चिरस्थाई नहीं। इस पथ पर चलने के लिए शिक्षार्थी में कर्मनिष्ठा, लगन और दृढ़निश्चय का होना अनिवार्य है। कई बार अभ्यास से मन ऊबता है, भटकता है, निराशा का भाव आता है, फल की प्राप्ति होती दिखाई नहीं देती। भारतीय राग संगीत के भण्डार में मारवा जैसे कुछ ऐसे राग भी हैं जिन पर अधिकार प्राप्त करना आसान कार्य नहीं है। इसके लिए दृढ़ता के साथ लगन का होना परम आवश्यक है।

एकाग्रता- अभ्यास की सफलता जिन महत्वपूर्ण पहलुओं पर निर्भर करती है, उनमें से एक है एकाग्रता, जिसके अभाव में घण्टों भर किया गया अभ्यास भी फलदायी सिद्ध नहीं होता। किसी सरगम, पलटे, अलंकार को बार-बार गाना मात्र ही रियाज़ नहीं कहलाता। प्रत्येक स्वर का उचित लगाव, उसकी सही स्थिति, उचित लय आदि विभिन्न पहलुओं पर ध्यान लगाकर किया अभ्यास ही भाव सृजन को प्राप्त हो पाता है। इस लिए आवश्यक है कि अभ्यास के दौरान किसी भी प्रकार के शोरगुल से मुक्त एवं शांत वातावरण हो। शारीरिक रूप से ही नहीं, मानसिक रूप से तनावमुक्ति भी ध्यान की एकाग्रता के लिए ज़रूरी है। ' किसी ने गले पर या वाद्य पर काबू पाया हो, उत्तम राग ज्ञान प्राप्त किया हो, फिर भी सुनने वालों का दिल कलाकार तब तक नहीं बहला सकेगा जब तक उसके गाने-बजाने में कोई अनुभूति, रस न हो। सुनने वालों को सुख और आनंद देना संगीत का सर्वप्रथम कार्य है।'

नियमितता-संगीत का अभ्यास एक सहज क्रिया है। यहां कोई भी निष्कर्ष अक्समात ही प्राप्त नहीं हो जाता, इस पर अधिकार नियमित अभ्यास के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। यह नहीं कि एक सपताह या एक महीना अभ्यास किया फिर छोड़ दिया। बल्कि गुरूजनों का तो यह कहना है कि एक दिन रियाज़ न करने से साधक कई दिन पीछे चला जाता है। भावार्थ यह कि संगीत का अभ्यास एकाग्रता, लगन के साथ निरंतरता एवं नियमितता की भी मांग करता है।

उचित आहार-सही तरीके से अभ्यास के लिए उचित व पौष्टिक आहार अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विशेषतः गायन के अभ्यास के दौरान आवाज़ का खुला लगाव पूरे बल सहित फेफड़ों से वायु के दवाव की मांग करता है जिसमें पेट से ऊर्जा खर्च होती है। तार सप्तक की ओर स्वरों के दीर्घकालीन उच्चार्ण से इस बात का अहसास संगीत के सभी अभ्यासी लगा सकते हैं। आहार के शक्ति वर्धक होने के साथ अभ्यासी को इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि वह कण्ठ के लिए हानिकारक न हो।

प्राणायाम- कला के अभ्यास व प्रदर्शन के लिए शरीर व् मन का स्वस्थ व् प्रसन्न होना आवश्यक है। संगीत भावनाओं की भाषा है। मनोवृति जैसी होगी उसी का दर्शन कला में होगा। शरीर व मन को स्वस्थ रखने के लिए प्राणायाम एक महत्वपूर्ण साधन है, विषेशत गायन में मुख्य घटक प्राणवायु रहता है। 'स्वर की मधुरता, सुशरीर अर्थात कंठ

ध्वनी का लचीलापन, आयात कंठ, अजस्त्र लयता, सुन्दरता आदि गुणों का सम्बन्ध मूलतः शरीर, कण्ठ व कण्ठ तन्त्रिओं से है। यह गुण जन्मजात भी होते हैं और यम, नियम, प्राणायाम व आसन द्वारा भी सिद्ध किए जा सकते हैं क्योंकि आधारभूत में विद्यमान यह शारीरक गुण उचित साधना से विकसित एवं संवर्धित किए जा सकते हैं।'

उपरोक्त कुछ बातों का ध्यान रियाज़ के दौरान महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है। वास्तव में पदार्थवाद और व्यवसायिकता के आधुनिक युग में इन्सान के पास समय का आभाव होता जा रहा है। अन्य कार्यों के साथ संगीत पर भी इस का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। इस लिए जरूरी है कि अभ्यास के स्वरूप को ऐसी व्यवस्था प्रदान की जाये कि गलतियों की सम्भावना कम से कम हो और संगीत का अभ्यासी समय के साथ कदम से कदम मिलाकर चलते हुए कला में मुहारत हासिल कर सके। क्योंकि संगीत का सफल अभ्यास वही है जो चिताकर्षक स्वर सृष्टि द्वारा जनचेतना को प्रशस्त करते हुए आत्मोन्नति का मार्ग प्रशस्त करे एवं सामाजिक उत्थान में सहयोग देकर विश्व कल्याण का मार्ग प्रश्स्त करे।

संदर्भ-

1. सक्सेना म.(1990) भारतीय संगीत प्रणाली एवं उसका वर्तमान, पृ-17 हरियाणा अकादमी, चदीगढ़।
2. वेदी दि च.(2006), शास्त्रीय संगीत व लोक संगीत निबंधावली, पृ-97 संगीत कार्यालय, हाथरस।
3. वेदी दि च (2006),शास्त्रीय संगीत व् लोक संगीत, संगीत निबंधावली, पृ-95 संगीत कार्यालय, हाथरस
4. रातांजन्कर, एस एन, (जनवरी 1984) संगीत, शिक्षा की प्राचीन परम्परागत प्रणाली और आधुनिक संस्थागत संगीत शिक्षणरू तुलनात्मक अध्ययन, संगीत अभ्यास अंक, पृ-19 संगीत कार्यालय, हाथरस
5. भोले के रॉ (2006), भारत में संगीत की प्रगती, संगीत की प्रगती, संगीत निबंधावली, पृ-26, संगीत हाथरस
6. सक्सेना म (1990), भारतीय संगीत शिक्षण प्रणाली एवं उसका वर्तमान, पृ-27,हरियाणा साहित्य अकादमी, चंदीगढ़।

Effect of Music and Physical Education in Developing Motor Skills

Dr. Manjusha J. Deshmukh

Asstt. Prof. of Physical Education
Post Graduate Institute, Dr. P. D. K. V. Akola

Abstract

Recent studies arrived to the conclusion that, music with physical education helps children to develop their affective and cognitive potentials, and helps to avoid attention deficit disorder and neurological language disorders. Music and physical education share similar skills, hence it is logical to conduct research on integration of music and physical education on cognitive side. The development of steady beats help children to increase body coordination and related physical abilities. the present study was planned with following objectives.

Key Words:-
Physical Education, Music, Run, Jump, Fitness

Child development largely depends on his/her Physical Fitness. Physical Fitness can be achieved through physical education. In schools due care taken to keep child physically active to minimise obesity and high risk diseases. Recent studies arrived to the conclusion that, music with physical education helps children to develop their affective and cognitive potentials, and helps to avoid attention deficit disorder and neurological language disorders. Music and Physical education develop motor and cognitive skills. Sports require children to develop coordination, stamina speed and concentration. All children should have the opportunity to decide whether they desire to become musician or an athletic. Their talent must be developed in the same way other disciplines do. Physical education should develop strong skill base sense and awareness at elementary level.

Music and physical education share similar skills, hence it is logical to conduct research on integration of music and physical education on cognitive side. Music and Physical education develop the brain, music trains the brain for higher

forms of thinking and physical exercise is good for the heart increasing nerve connections facilitating the process of learning.

The people who engage in emotional cognitive and physical education are implicit. Music also helps organise movement coordination. The development of steady beats help children to increase body coordination and related physical abilities.

In view of the above the present study was planned with following objectives.

Objectives.

1) To study the present physical level of children.

2) To study the impact of music on physical level of children,

Hypothesis:

1) Music had significant positive effect on increasing physical level.

Review of Literature:

Jose E. Betan court, Marta Hernandez (2012)

Studied effect of physical and music education in motor skill development amongst 6 to 8 year children. Five 10 loco motor skill walking running skipping, Sliding and jumping were selected. A sample of 28 children's was selected. A sample of 28 children was selected. Divided in two groups as control group and experimental group. Groups moved to rhythm of two minute recording. The post Test Scores Showed differences Favoring experimental group. The results indicated that participant mastering of the skills is an effect of treatment.

Sandra Milanovic and sladjana Tosic (2012)

Music and movement are the elements that are of great importance and role in teaching physical education. These elements are inspirable. The development of psychological and physical abilities of students, The objective was to raise general cultural level. Physical education shows great contribution in the educational work through cultural activities.

Nigam S (2009)

Anxiety on success in competition had significant positive effect of Self-confidence. Players. Who are confident about success in competition were tension Free.

Iyangar Geeta (2010)

Studied the mental status of students with targeted achievement, cooperative attitude, Physical and mental fitness hope positive thinking built mental ability for targeted success.

Methodology :

The study on effect of music and Physical education in developing motor skill was conducted in vidarbha region of Maharashtra state. A sample of 480 students 240 boys and 240 girls in the age group of 13-15 years were selected from 24 schools. Data was recorded by personal interview method various physical tests were performed and time required was measured. The physical fitness Education songs on fitness Fun, Jump rope Queen and Body Jump song were selected from album and recordings were played during retest for all the student's. The data on exercise

performed at two times i.e.. before listening music and exercise with listing music was recorded.

The performance was tested for effect of music. Paired Z-test was used to test the

differences.

Results and Discussion

The study on effect of music on physical education was purposively planned to focus on benefits of music in everyone's fitness. The students were tested for 100 mtr run and time recorded for each student. Each student was asked to perform 50 rope Jumps and time recorded. The third activity was vertical Jump and height was recorded. Each student was given practice for 100 mts run, 50 rope jumps and vertical Jump with music Fitness fun, Jump rope queen walk jog run and time recorded. The average times are presented below the table. The significance between times was tested with the help of Z test.

Table Presents time required for 100 mtr run.

Table-1 Time Taken For 100 mtr. Run

Sr.	Time	Before		After	
no	(Sec)	Frequency	percent	Frequency	percent
1	13	113	23.53	174	36.25
2	14	98	20.42	118	24.58
3	15	105	21.48	123	25.63
4	16	75	15.63	53	11.04
5	17	60	12.50	12	2.50
6	18	29	6.04	-	-
		Mean 14.91	14.18		
		S.D 1.37	0.93		

The figures presented in the table describe that time taken for 100mtr run ranges Run between 13 sec to 18 sec. To study the effect of music on 100 mtr Run Fitness fun music was played and time required for 100 mts Run was recorded. The time ranged between 13 sec to 17 sec. The Mean time for 100 mtr run was 14.91 second. After completing first round students were given training on 100 mtr running with fitness fun music and subsequently the students were asked to appear for 100 mtr run with music. The average time for 100 mtr run was 14.18 sec. the difference was statistically non significant.

Table- 2 Time taken For 50 rope Jumps

Sr.no	Time(Sec)		Before	After	
	Frequency		percent	Frequency	percent
1	40	0.8	1.67	94	19.58
2	50	116	24.16	102	21.25
3	60	105	21.87	112	23.33

4	70	90	18.75	76	15.84
5	80	61	12.72	68	14.17
6	90	71	14.79	28	5.83
7	100	29	6.04	-	-
		480	100.00	480	100.00
	Mean	68.52	60.13 **		
	S.D	2.37	1.42		

The rope Jump activity was performed with music Jump rope queen. The score before and after practing with music are presented in the above table. The time required for 50 rope Jumps before practing with music was 40 sec to 100 sec. After practing with music it reduced by 10 sec. The mean time required for 50 rope Jumps were 68.52 and sec and 60.13 sec. Significant reduction in timing was observed. The reduction in timing was significant at 1 % level of significance.

Table-3 Vertical Jump in c.m.

Sr.no	Jum c.m.	Before		After	
		Frequency	percent	Frequency	percent
1	50	182	37.91	31	6.46
2	60	167	34.79	34	7.08
3	70	59	12.29	179	37.29
4	80	43	8.95	142	29.58
5	90	29	6.04	94	19.59
		Mean 61.04		74.88 **	
		S.D 6.43		4.34	

The above table presents data on height acquired in vertical Jump. The height ranges between 50 cm to 90 cm. After recording this height participant students were given one chance of listing every body Jump song and Jump as trial and with rest of 5 minutes the Jump song recording was played and students were asked to Jump. The Frequencies and percentages for before and after are presented in the table. The average Jump height increased from 61.04 cm to 74.88 cm. the increase in vertical Jump height was significant at 1 % level of significance concluding that body Jump song influenced students, in increasing Jump height from 61.044 cm to 74.88cm.

on the basis of findings from table Hypothesis accepted.

Conclusions :

1) Time taken for 100 mtr run with music was less.
2) Significantly Lower time was required for 50 rope Jumps with music.
3) Vertical Jump height was significantly higher with music.
4) Hypothesis stated accepted.
3) To study the present physical level of children.

4) To study the impact of music on physical level of children,

A sample of 480 students 240 boys and 240 girls in the age group of 13-15 years were selected from 24 schools.

5) Time taken for 100 mtr run with music was less.

6) Significantly Lower time was required for 50 rope Jumps with music.

7) Vertical Jump height was significantly higher with music.

8) Hypothesis stated accepted.

Reference:

1) Iyangar Geeta Yog Ek Vardan(Yogtawa, asane, Pranayam,DhanDarna) Rohan Prakshan, Pune (2010)

2) Jose E. Betancourt Marta Hernandez (2012). The effect of Physical and music Education in the Development of motor Skill in children between six and Eight year olds in an inclusive Environment, NALS Journal Vol-4 Issue1, Article 1.

3) Nigam.P.Pandey A.(2009)

4) Savdra milanovic and Sladjana Tosic (2012) music and motion in Teaching of Physical education APES(2012)1: 127-132-

-

सांस्कृतिक चेतना के संबर्द्धन में संगीत की भूमिका

डॉ भगत सिंह

सहायक प्रोफेसर (संगीत)
मान्यवर कांशीराम राजकीय महाविद्यालय गाजियाबाद

सारांश

वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।
उमड़कर आंखों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान।।

कवि सुमित्रानंदन पंत जी की उक्त पंक्तियाँ हमें बताती हैं कि कविता का जन्म वियोग और आह के बीच हुआ! सांगीतिक ध्वनियाँ मनोभावों की वाहक हैं। संगीत का आश्रय पाकर गीत या कविता आम जन की अभिव्यक्ति बन जाते हैं तथा संस्कृति के प्रचार-प्रसार का माध्यम बन जाते हैं।

आदिकाल से ही संगीत सहज रूप में संस्कृति के प्रचार-प्रसार का माध्यम रहा है। मनुष्य की सहज अभिव्यक्ति मौखिक रूप में ही मुखर होती रही है। यह मौखिक परम्परा पीढ़ी दर पीढ़ी लोकगीतों व लोकसाहित्य के रूप में प्रचारित होती रही है। लोकधुनों के सहारे लोकसाहित्य अमर हो जाता है। संस्कृति पूरे मानव समाज को एक सूत्र में पिरोये रखती है। सूक्ष्म अंग के रूप में संगीत उसका सहचर बनकर कार्य करता है। मानव जीवन के विविध मानसिक व्यापार संस्कृति में समाहित रहते हैं। भारतीय संस्कृति के मूल में वेद हैं और संगीत का स्रोत भी वेद है। इस प्रकार संगीत संस्कृति का अभिन्न अंग है। जीवन के सर्वोच्च संस्कार विचार और चिंतन का समग्र स्वरूप संस्कृति है। मनुष्य अपनी बुद्धि का प्रयोग करके विचार और कर्म क्षेत्र में जो सृजन करता है वह सब संस्कृति में आ जाता है। संगीत के गेय गुण द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी संस्कृति का प्रचार प्रसार होता रहता है। लोकगीत अधिकतर, उत्सव, पर्वो, त्यौहारों और आयोजनों से संबंधित होते हैं। मानव जीवन में सहज प्रसन्नता एक महत्वपूर्ण मूल्य की तरह है। बदलती ऋतुओं और फसलों की बोहनी, कटाई, गहाई आदि के साथ मानवीय जीवन की अन्तरंगता है। मानव मन के समस्त भाव गीत संगीत के साथ व्यक्त होते हैं तथा उसके कर्म को थकान रहित व आनंद पूर्ण बना देते हैं। हमारा श्रम भी एक सृजन बन जाता है।

बीज-शब्द

संगीत, संस्कृति, समाज, लोकगीत, चेतना, सद्भाव

संस्कृति का अर्थ एवं तात्पर्य

जन सामान्य में 'संस्कृति' से तात्पर्य परम्परा में प्राप्त रीति रिवाजों, धार्मिक पर्व एवं संस्कारों से है। वे सभी अच्छी बातें जिनके द्वारा एक श्रेष्ठ समाज का निर्माण होता है, संस्कृति के अन्तर्गत आ जाती हैं। संस्कृति का निर्माण किसी एक व्यक्ति द्वारा न होकर युगों युगों में ज्ञात-अज्ञात असंख्य व्यक्तियों के दीर्घकालीन सद्विचारों एवं हृदय की उल्लास एव आनन्दपूर्ण अनुभूतियों के द्वारा होता

है। संस्कृति के निर्माण में कई घटक होते हैं, जैसे धर्म, दर्शन, कलायें, भौगोलिक परिस्थितियां, प्रथायें एवं वातावरण आदि।

'संस्कृति एक व्यापक शब्द है। इसकी कोई निश्चित परिभाषा नहीं है। समग्र रूप में यह व्यक्ति एवं समाज में समाहित रहती है। संस्कृति, संस्कृत एवं संस्कार आदि शब्दों का उद्भव एक ही अर्थ 'परिष्कार या शुद्धिकरण' की ओर इंगित करता है। संस्कृत भाषा में 'कृश' धातु में 'सम' उपसर्ग तथा 'क्त्न' प्रत्यय लगाने से 'संस्कृति शब्द की उत्पत्ति हुई है। इसका अर्थ है-परिष्कृत कार्य। ''रामचन्द्र वर्मा द्वारा सम्पादित 'संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर' के अनुसार संस्कृति का अर्थ है- शुद्धि, सफाई, संस्कार, मानसिक विकास, सजावट आदि। कालिका प्रसाद, राजवल्लभ सहाय व मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'वृहद हिन्दी कोश' में संस्कृति का अर्थ-पूरा करना, शुद्धि, सुधार, परिष्कार, निर्माण, पवित्रीकरण, सजावट, निश्चय उद्योग, आचरण-गत परम्परा आदि बताया गया है। विभिन्न विद्वानों द्वारा संस्कृति सम्बन्ध परिभाषाओं के द्वारा हम संस्कृति के व्यापक दृष्टिकोण को जान सकते हैं। प्रायः सभी शिक्षाविदों, समाजशास्त्रियों एवं साहित्यकारों ने 'संस्कृति को परिभाषित किया है। कुछ विद्वानों के विचार इस प्रकार हैं''-

प्रसिद्ध मानव शास्त्री ई.वी. टायलर के शब्दों में ''संस्कृति वह जटिल समग्रता है, जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, प्रथा तथा अन्य योग्यतायें और आदतें सम्मिलित होती हैं, जिनको मनुष्य समाज के सदस्य के रूप में प्राप्त करता है। ;ब्नसजनतम पे जींज बवउचसमग ूिवसम ूपबी पदबसनकमे ादवूसमकहमए इमसपमएि ंतजए उवतंसेए बनेजवउ ंदक ंदल वजीमत बंचंइपसपजपमे ंदक ींइपजे ंबुनपतमक इल उंदें उमउइमत वि वबपमजलए म्ण्ठण् ज्लसवत.द्ध

संस्कृति एवं संगीत में सहसम्बन्ध

साहित्य व संगीत समाज का दर्पण होते हैं। किसी भी समाज के वारे में जानना हो तो हमें वहां के संगीत व साहित्य को सुनना और पढ़ना चाहिए। जिस प्रकार भारतीय संस्कृति धर्म प्रधान है उसी प्रकार भारतीय संगीत भी धर्म प्रधान रहा है। भारतीय संस्कृति की समस्त विशेषताएं संगीत में संगीत में परिलक्षित होती हैं। संगीत में प्रचलित राग रागिनीयों का नामकरण भी देवी देवताओं के नाम पर हुआ है।

संगीत की धुनें युगों युगों तक जनमानस को आंदोलित करती रहती हैं। लोककाव्य इन्हीं प्रचलित धुनों के कारण हम तक पहुंचा है। मौखिक परम्परा के द्वारा संगीत पीढ़ी दर पीढ़ी संस्कृति को आगे प्रचारित करता है। जिस प्रकार संस्कृति मौन होकर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचती है उसी तरह संगीत भी मौखिक परम्परा द्वारा आगे वाली पीढ़ी तक पहुंचता है। हमारे देश में संगीत की एक लम्बी मौखिक या गुरु-शिष्य परम्परा रही है जो केवल सुन-सुन कर हम तक पहुंची है। भारतीय संस्कृति की भांति संगीत भी मौखिक रूप में प्रचारित एवं विकसित होता रहा है । भारतीय संगीत वेद-वेदांग की मौखिक परम्परा के समान पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होता रहा है। आज भी संगीत-शिक्षा में गुरु-शिष्य परम्परा का अधिक महत्व है। यह हमारी संस्कृति का एक महान आचरण है तथा यह हमारी महान संस्कृति का द्योतक है। ''इतिहास के लक्षणों को लिपिबद्ध करने की परिपाटी आरम्भ होने के बहुत पहले ही भारतीय सभ्यता कला को अमूर्त शाश्वत प्रदान करने की मौखिक पद्धति का विकास कर चुकी थी। संप्रेषणीयता की यह पद्धति ही सांस्कृतिक धरोहर के रूप में परम्परा समृद्ध होते हुए चली आ रही है।'' (परम्परा और सर्जना, डॉ कनक रेले, चैमासा त्रैमासिक, नवंबर - जून, 1998,99 पृष्ठ 6)। संगीत के द्वारा विभिन्न रूपों में हम संस्कृति की शिक्षा प्राप्त करते हैं, जैसे- 1. लोक गीत, 2. धार्मिक गीत 3.संस्कार गीत, 4. समूह गीत पर्व एवं त्यौहार गीत आदि के द्वारा हम सहज रूप में संस्कृति की शिक्षा प्राप्त करते हैं।

परम्परा-प्राप्त संगीत की यह धरोहर हमारी संस्कृति का अंग है। संगीत के विकास क्रम के साथ

संस्कृति के स्तर को जाना जा सकता है। डॉ. परांजपे के अनुसार, ''संगीत सदा से संस्कृति का अंगी रहा है।

संस्कृति के उद्गम एवं विकास के साथ ही संगीत के उद्गम एवं विकास का क्रम देखा जा सकता है। संगीत का स्तर संस्कृति के स्तर पर निर्भर हुआ करता है। संगीत चाहे भारतीय हो चाहे पाश्चात्य, अपने विकास के लिए साधन या सामग्री जन-जीवन से जुटाता रहा है। किसी भी प्रान्त अथवा क्षेत्र-विशेष का संगीत वहां के जन-जीवन एवं भूमि से जुड़ा होता है। भारतीय राग-परम्परा में तो कई रागों के नाम भी उस भूभाग के नाम पर रखे गये हैं जहां उनका जन्म हुआ अथवा वे वहां प्रचलित रहे हैं। सैन्धवी, मालवी, गौड़ी, सौराष्ट्री, कर्नाटकी, पूव॰ बिहारी जैसे कुछ शास्त्रीय रागों से भी यह संकेत मिलता है कि ये राग मूलतः उन अंचलों और संस्कृति-क्षेत्रों में प्रचलित थे जिनका संकेत इन भौगोलिक नामों से मिलता है। कबीलों एवं जाति विशेष के द्वारा गायन में प्रयुक्त की जाने वाली धुनों को कालान्तर में उस जाति अथवा समाज सूचक राग के नाम से जाना जाने लगा। बृहद्देशी के लेखक मतंग ने शक, वोट्ट, आभीरी, गुर्जरी, कुलिंदी, पुलिंदी और द्राविड़ी गीतियों का उल्लेख किया है, ये सभी नाम भिन्न-भिन्न प्राचीन भारतीय कबीलों के हैं। भारत विविधताओं का देश है। यहां कहावत प्रचलित है - कोस कोस पर पानी बदले चार कोस पर बानी। हर क्षेत्र के लोकगीत एवं धुनें वहां के समाज एवं संस्कृति के ताने वाने में रचे-बसे हैं।

शास्त्रीय संगीत में सांस्कृतिक चेतना के स्वर

वैदिक युग से लेकर आज तक संगीत दो धाराओं में प्रवाहित रहा है - एक माग॰ संगीत तथा दूसरा देसी संगीत। प्राचीन काल में जिसे माग॰ कहा जाता था आज वह शास्त्रीय संगीत है तथा देसी संगीत में अन्य सभी संगीत आ जाता है जो सहज है तथा जो दैनिक जीवन से जुड़ा है लेकिन माग॰ मोक्ष गामी तथा परिष्कृत रहा है। इस संगीत को नादयोग भी कहा जाता है। समस्त सृष्टि का हेतु ओम् है। ओम का नाद योगी के मन में गूंजता है। सही तरीके से मिले हुए तानपूरा का नाद हमारे मन व इंद्रियों को शांत अवस्था में ले जाता है तथा स्व में लीन करता है। यही नादब्रह है। भारतीय संगीत की यह एक निराली विशेषता है जो उसे विश्व के किसी संगीत में नहीं है। वेद में मनुष्य के शरीर को मानुषी वीणा कहा गया है। उपनिषद् के काल में, सगीत में निपुण व्यक्ति को नैसर्गिक आनन्द का उपभोक्ता तथा संगीत को ब्रह्म की प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन माना जाता था। संगीत जो कि वैदिक युग में यज्ञादि अवसरों पर महत्वपूर्ण माना जाता था। उपनिषद काल में व्यक्ति के जीवन की अमरता का प्रतीक बन गया था। याज्ञवल्क्य शिक्षा में कहा गया है;

वीणावादन तत्वज्ञ श्रुतिजाति विशारदः।
तालज्ञश्च प्रयासेन मोक्ष मार्ग नियच्छति।।

(अर्थात वीणा-वादन को जानने और श्रुति, जाति, ताल के ज्ञान से निपुण व्यक्ति मोक्ष मार्ग को प्राप्त कर लेता है।)

भारतीय संगीतज्ञों ने संगीत को साध्य न मानकर साधन के रूप में स्वीकार किया है। डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार ''जीवन-रूपी संगीत ही नाद बृह्म या वाग्देवी की वीणा है, जिसके संपर्क में विश्व के आनन्द की सप्त धाराएँ मूर्त रूप धारण करती हैं। संगीत की सच्ची साधना वही है, जिसके फलस्वरूप मानव का मन उस उच्चतम सूक्ष्म नाद का अनुभव करने के योग्य बन सके।''

भारतीय परम्परा के मूल में अध्यात्म तथा संगीत का गठबन्धन दृढ़ रहा संगीत केवल मनोविनोद का साधन न होकर भक्ति का एक साधन है। नारद, तुम्बरु से लेकर रामानुजाचार्य, माधवाचार्य, बल्लभाचार्य निम्बकाचार्य आदि दर्शनचार्य, चैतन्य महाप्रभु, त्यागराज, हरिदास, संत ज्ञानेश्वर अदि भक्त गायक तथा कबीर, सूर, तुलसी, मीरा,नानक नंददास, विट्ठलदास आदि संतों ने गा गाकर परमतत्व को प्राप्त किया। वर्तमान समय में भी शास्त्रीय संगीत उदात्त भावों की ओर प्रेरित करता है क्योंकि इसकी, विषयवस्तु अच्छे साहित्य से ओतप्रोत है। पं विष्णु दिगम्बर पलुष्कर ने इस दिशा में बृहत कार्य किया था। उन्होंने संतों की रचनाओं को भी शास्त्रीय

संगीत की बंदिशों का आधार बनाया। शास्त्रीय संगीत की ध्वनियां व्यक्ति को शांतिप्रिय व सरल बनाती हैं तथा इस प्रकार एक अच्छे नागरिक के निर्माण में शास्त्रीय संगीत सहायक है। शास्त्रीय संगीत में सूक्ष्म ध्वनियों यानि श्रुतियों का प्रयोग किया जाता है जो मानवीय सूक्ष्म भावों को जाग्रत करने में सक्षम हैं।

लोकगीतों में सांस्कृतिक चेतना

लोकगीत सहज ही हमें शिक्षा प्रदान करते हैं। लोकगीतों में पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन का ताना-बाना बड़े ही सुन्दर ढंग से बुना रहता है । लोकगीत किसी एक व्यक्ति की रचना न होकर एक पूरे समाज की अभिव्यक्ति है। लोकगीत के विषय में विभिन्न विद्वानों के विचार इस प्रकार हैं- ष्। विसा वदह पे दमपजीमत दमू वत वसकए पज पे सपामं वितमेज जतमम्ू पजी पजे तववजे कममचसल इनतपमक पद जीम चेंजए इनज ूीपबी बवदजपदनंससल चनजे वितजी दमू इतंदबीमेए दमू समंअमेए दमू तिनपजे.ष् ;त्ंसचीद्ध टण्ॅपससपंउे

(लोकगीत न तो नया होता है और न पुराना। वह तो जंगल के एक वृक्ष के समान है जिसकी जड़ें भूतकाल से जमीन में गहरी धंसी हुई हैं, परन्तु जिसमें निरन्तर नई-नई डालियां, पल्लव और फल उगते रहते हैं।)

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में- ''वहाँ हम प्रेम और वियोग में तड़पते हुए सच्चे हृदयों का वर्णन पाते हैं। भाई से विच्छिन्न बहन की करुण कथा, सौत से ननद के और सास के अकारण निक्षिप्त वाक्य - वाणों से युक्त बिद्ध बहू की मर्म कहानी, आन पर कुर्बान हो जाने वाले विस्मृत वीरों की वीर गाथा, प्रियतम के मिलन-विरह और मातृप्रेम के अकृतिम भाव इन गीतों में भरे पड़े हैं।'' लोकगीत संपूर्ण जनता के मनोभावों को व्यक्त करते हैं। ''लोकगीत ऐसे संगीत संघटक हैं जो किसी व्यक्ति की सृजन क्षमता की रचना न होकर संपूर्ण जनता की रचनाएं हैं । वे क्रमिक संगीत से एकदम भिन्न गुण रखते हैं। वे फूल मानों अपने ही प्रकाश से धरती से फूट पड़ते हैं और लेखकों और संगीत रचयिताओं के अधिकारों से बेखबर अपनी पूर्ण चमक तक खिल जाते हैं। इसलिए इनमें और विद्वान संगीतज्ञों के तापघर से उत्पादित गीतों मे कोई समानता नहीं होती..जिस प्रकार लिली का फूल पवित्रता के अपने भव्य परिधान में अमूल्य हीरे मोतियों को भी मात दे देता है, उसी तरह लोक संगीत है (ए.ए. ज्दानोव, साहित्य संगीत और दर्शन, पृ0 38)। ''हिंदी क्षेत्र की भाषाएँ लोकगीतों की दृष्टि से अत्यधिक समृद्ध हैं। हरियाणवी, मैथिली, राजस्थानी, ब्रज, अवधी, बुन्देलखंडी, मगही, भोजपुरी, कन्नौजी आदि के लोकगीत मानव-जीवन के विविध संस्कारों से लेकर कृषि, श्रम,सौंदर्य, हास, शोक, राग-विराग, प्रेम-विरह, करुणा आदि असंख्य विषयों तथा भाव क्षेत्रों को अपने परिवृत्त में समेटे हुए हैं। इन लोकगीतों में जहाँ एक ओर वीरता और राष्ट्रीयता का भाव है, वहीं समसामयिक जीवन का यथार्थ भी विद्यमान है। ये गीत सहस्राब्दियों से अपने-अपने क्षेत्र के गायन और वादन की लयों के संस्कारों में ढलते हुए अपनी निजी विशिष्टता और मौलिकता के साथ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित हो रहे हैं।'' भाव एवं वर्ण्य विषय के आधार पर लोकगीतों को इस प्रकार वर्णित किया जा सकता है -

1. संस्कार गीत (जन्म, विवाह, विदाई एवं मृत्यु)
2. ऋतु गीत (सावन, शरद, होली, वर्षा, मल्हार, चैती आदि)
3. भक्ति गीत (देवी - देवताओं के गीत, संत वाणी, ग्राम देवता आदि के गीत)
4. क्रिया गीत (कृषक गीत, बाल गीत, श्रमिक गीत, नृत्य गीत, जाति गीत आदि)

इस प्रकार जीवन का समस्त ताना-बाना लोकगीतों में आ जाता है। उदाहरण स्वरूप कुछ लोकगीत इस प्रकार हैं -

उत्तर प्रदेश के एक लोकगीत में जोकि अमीर खुसरो द्वारा रचित है, सावन के आने पर ससुराल में बेटी उसको लिवा ले जाने को पिता या भाई से आग्रह करके कहती है

अम्मा मेरे बाबा कौ भेजौ री
कि सावन आया सावन आया

अरी बेटी तेरा बाबा तौ बूढ़ा री
कि सावन आया सावन आया
अम्मा मेरे भइया कौ भेजौ री
कि सावन आया सावन आया
अरी बेटी तेरा भइया तौ बाला री

उपरोक्त लोकगीत में मां एवं बेटी के मध्य मधुर संवाद है।

शादी के समय में उत्तर प्रदेश में एक अन्य गीत गाया जाता है।

एक अन्य ग्रामीण गीत है जो शादी के अवसर पर गाया जाता है।

रघुनन्दन फूले न समायं लगुन आई हरे हरे

चाचा सज गये मामा सज गये सज गई सिगरी बरात

रघुनन्दन तौ ऐसे सज गये जैसे सिरी भगवान

लगुन आई हरे हरे लगुन आई मोरे अंगना

इस गीत में परिवार के संबंधों का चित्रण किया गया है।

इसी प्रकार विदाई गीतों में पिता-पुत्री का वियोग आंखों में आंसू ला देता है। रक्षा-बंधन के गीतों में भाई-बहन का पवित्र प्रेम दिखाया जाता है। लोकगीतों में दाम्पत्य संबंधों का भी मधुर चित्रण होता है।

उत्तर प्रदेश का एक लोकगीत जो सावन के महीने में गाया जाता है।

नन्हीं-नन्हीं बुँदियाँ रे
सावन का मेरा झूलना
एक सुख देखा मैंने अम्मा जी के राज में
हाथों में गुड़िया रे, सखियों का मेरा खेलना
नन्हीं-नन्हीं बुँदियाँ रे;
एक सुख देखा मैंने बहना के राज में
हाथों में कसीदा रे फूलों का मेरा काढ़ना
नन्हीं-नन्हीं बुँदियाँ रे;
एक दुःख देखा मैंने सासू जी के राज में
धड़ी- धड़ी गेहूँ रे चक्की का मेरा पीसना
नन्हीं-नन्हीं बुँदियाँ रे;

एक वैराग्य प्रधान लोकगीत जो संत कबीर द्वारा रचित है। इसकी भाषा भोजपुरी है। वैराग्य विषयक लोकगीत हमें संसार की नश्वरता का बोध कराते हैं तथा सादगीपूर्ण जीवन की शिक्षा देते हैं। इस लोकगीत में मनुष्य की अंतिम यात्रा का वैराग्यपूर्ण वर्णन है।

कौन ठगवा नगरिया लूटल हो ।।
चंदन काठ के बनल खटोला
ता पर दुलहिन सूतल हो।
उठो सखी री माँग संवारो
दुलहा मो से रूठल हो।
आये जम राजा पलंग चढ़ि बैठा
नैनन अंसुवा टूटल हो
चार जाने मिल खाट उठाइन
चहुँ दिसि धूं धूं उठल हो
कहत कबीर सुनो भाई साधो
जग से नाता छूटल हो

आजकल डी.जे. संस्कृति के कारण ग्रामीण क्षेत्र के लोग भी अपनी पुरानी पारम्परिक धुनें भूलते जा रहे हैं। उन भावपूर्ण गीतों की जगह अब फिल्मी धुनें सुनाई देती हैं जिनमें सहजता का अभाव है।

संगीत द्वारा धार्मिक सद्भावना का विकास

भारतीय संगीत भारत की संस्कृति और सभ्यता का अपरिहार्य उपादान है, जिसमें समस्त देश का एकात्म रूप प्रकट होता है। धर्मिक अनुष्ठानों के साथ संबद्ध हमारा संगीत रसभाव से परिपूर्ण है। भारत एक लोकतन्त्रात्मक राज्य है। लोकतंत्र में भावात्मक एकता का होना अनिवार्य है भावात्मक एकता का अर्थ है- राष्ट्र के विभिन्न भागों के व्यक्तियों को भावात्मक स्तर पर एक करना। भावात्मक एकता (म्उवजपवदंस.प्दजमहतंजपवद) के विषय में डॉ. पी.डी पाठक का कहना है- ''अपने पूर्ण रूप में भावात्मक एकता समान रूप से सोचने, समझने और कार्य करने, समान जीवन के ढंग को स्वीकार करने, विभिन्न उद्दीपकों ;जपउनसपद्ध के प्रति समान रुचि या अरुचि से प्रतिक्रिया करने, विभिन्न धर्मों में समान आधार खोजने, समान सार्वजनिक परम्पराओं को अपनाने और एकता के चिन्ह के रूप में समान

भाषा को स्वीकार करने की प्रशिक्षित आदत है। सभी धर्मों में संगीत को उपासना का एक माध्यम बनाया गया है। ''भारत में सिक्ख धर्म, ईसाई धर्म, मुस्लिम धर्म, सभी धमों के प्रचार में संगीत का सहारा लिया जाता है। यह निश्चय ही भावात्मक एकता का अद्वितीय उदाहरण है'' (डॉ सत्यवती शर्मा, संगीत द्वारा राष्ट्रीय एकता)। मध्ययुग में राजदरबारों में सभी धर्मों के कलाकार रहते थे। संगीत के प्रचार में धर्म कभी बाधक नहीं बना। संगीत सार्वभौम है। मुसलमानों द्वारा रचित बंदिशें हिन्दू गाते हैं तथा हिन्दुओं द्वारा रचित देवी-देवताओं की बंदिशें मुसलमान गाते हैं। संगीत की शिक्षा-दीक्षा में धर्म कभी बाधक नहीं बना।

हमारे देश में संगीत की शिक्षा में घराना परम्परा प्रचलित रही है जिसमें हिन्दू से मुसलमान और मुसलमान से हिन्दू लेते आए हैं। यह शिक्षा परंपरागत रही है। अकबर के दरबार में दोनों सम्प्रदाय के कलाकार थे।

साम्प्रदायिक कट्टरता को दूर करने में संगीत का बड़ा योगदान रहा है। इस विषय में उमेश जोशी का कहना है- ''मुसलमान हिन्दू दोनों वर्गों को संगीत ने एक स्तर पर मिला दिया था। दरअसल संगीत ने दोनों को मिलाने में बड़ा ही कार्य किया। साम्प्रदायिक भावनाओं को विनष्ट करने में इस काल के संगीत ने बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्य किया। लोगों के संकीर्ण दिमागों को प्रशस्त बनाया, कला के द्वारा लोगों के जीवन सुन्दर और सबल बन चुके थे।

संगीत द्वारा साम्प्रदायिक सद्भाव सभी वर्गों में रहा है। डॉ. सुनील चैबे मथुरा के प्रसिद्ध संगीतज्ञ 'उस्ताद बुलाकी खां साहब' के सम्बन्ध में लिखते हैं- ''पहले जमाने में बृजभाषा क्षेत्र के प्रतिभा सम्पन्न मुसलमान गायक आम जनता के लोकप्रिय गायक बन जाते थे। मंदिरों के महंत भी उनका गाना बार-बार बड़े प्रेम से सुनते थे और उन्हें निमंत्रित करते थे। ये प्रतिभाशाली कलाकार भी राग-रागनियों में बृजभाषा काव्य का अमृत बरसाते थे और सदियों पुरानी कृष्ण और राधा के प्रेम और मिलन की स्मृतियां जगा देते थे।'' पाकिस्तानी गायक सलामत अली जब काशी आये तो उनके अन्तःकरण से एक वाक्य निकला जो साम्प्रदायिक सद्भाव को दर्शाता है। ''मुल्क के अंदर सरहदें डाल देने से दिलों में सरहदें नहीं पड़ जातीं। सियासी दीवारें दिलों के बीच की दीवारें नहीं बन सकतीं। चाहे कहीं की जनता हो, संगीत सुनने और दाद देने की नफासत एक जैसी है। अरे! मालकौंस को भी कोई बांट देगा क्या?'' (डॉ. लावण्या कीर्ति सिंह काव्या)। रेडियो सीलोन से बजने वाले गानों ने भारत तथा पाकिस्तान की जनता में आपसी तनाव को कम किया था। गाने पुरानी स्मृति को ताजा कर देते हैं तथा कट्टरता और अहंकार को कम कर देते हैं। संगीत के स्वर मानव को तनावमुक्त कर देते हैं। सूफियाना क़व्वाली सुनकर हिन्दू, मुस्लिम सभी झूम उठते हैं, आखिर संगीत का मूलभाव अद्वैत की ही प्राप्ति है।

लोकगीतों की मौखिक परंपरा में सामाजिक चित्रण

समाज के रिश्ते नातों की प्रगाढ़ परम्परा हमें लोकगीतों से पीढ़ी दर पीढ़ी मिलती रहती है। क्षेत्रीय भाषाओं में रचे बसे लोकगीत अथवा लोकगाथायें उस समाज के अतीत तथा वर्तमान के बीच एक सेतु का काम करते हैं।

लोकगीतों में लोक जीवन की सामाजिक धरातल की संपूर्ण झांकी का समग्र परिदृश्य अभिव्यक्ति पाता है। घरेलू जीवन की झाँकी का हमें साक्षात् दर्शन होता है। लोकगीतों के अध्ययन से पता चलता है कि इनमें कहीं सास-बहू के खट्टे-मीठे संबंध हैं, तो कहीं भाई-बहन का उत्कृष्ट प्यार, कही माँ का वात्सल्य तो, कहीं ननद-भावज के परिहास के स्वर, कहीं विवाह का उल्लास है, तो कहीं पुत्र जन्म का आह्लाद। रिश्तों की पूरी श्रंखला हमें लोकसाहित्य में मिलती है।

सन्दर्भ सूची

1. दुबे, श्यामाचरण. मानव और संस्कृति. दिल्ली, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 1960

. चतुर्वेदी, माखनलाल. अमीर इरादे गरीब इरादे. कलकत्ता, भारतीय ज्ञानपीठ, 1964.
3. भार्गव, डॉ . सत्या. राष्ट्रीय एकता में संगीत की भूमिका. दरिया गंज दिल्ली, संजय प्रकाशन, 2002
4. अग्रवाल, पृथ्वी कुमार. भारतीय संस्कृति की रूप रेखा. वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2000
5. तिवारी, डॉ. श्रीमती विनोद. लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन. इलाहाबाद, साहित्यवाणी, 1987
6. मुटाटकर, सुमति. 'सांस्कृतिक एकता के सूत्र.' संगीत कला विहार, 1976, 346.
7. शर्मा डॉ. सत्यवती, ''संगीत द्वारा राष्ट्रीय एकता''. संगीत कला विहार, 2002, 28
8. मोहम्मद, प्रो. शरीफ. भारत के लोकनृत्य. भोपाल, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2003.
9. Mutatkar, Sumati. Aspects Of Indian Music. Delhi : Sangeet Natak Academy, 2006.
10. देशपांडे, वासुदेव. समूहगान, वृन्दगान. देहरादून, रागिनी शंकर इंदर रोड, 1981.

AN ALTERNATE NARRATIVE OF ISMAT CHUGTAI'S LIHAAF

Dr. Vivek

Asst. Professor, Department of English
Jai Narain Vyas University, Rajasthan

ABSTRACT

Women's writings open a new field to be explored for occupying a unique socio-political space within the society. Their life writings may offer an insight into the inner world which is often shut out from the public glare due to patriarchal order of the society. In this article, an alternate narrative of Ismat Chugtai's famous story Lihaaf has been created from the perspective of Begam Jaan as the protagonist of the story. It may proffer immense possibility to investigate the life of Begam Jaan which would have been remained shrouded in the mystery if left unexplored.

KEY WORDS

Women writings, inner world, patriarchy, society, narratives

Women literature and life of women have largely been ignored not just because of the lack of good content but due to inferior position accorded to them by the society. With the fast and aggressive strides of feminism; an ideology built exclusive for women and other marginalized section; women writings are now taken seriously in the academic field. With the change in the societies position women as well have emerged as a player and the subject in literature. Ismat Chugtai's famous story Lihaaf brought catalyst changes in the way, women writings are written. In fact, Lihaaf is an important milestone in women literature. Therefore, looking at its importance, efforts have been made to explore the varied opportunities this story may offer to understand feelings of women. Attempts have been made to rewrite the story from her Begam Jaan's point of view of the events in the story.

Rabbu has brought a frock and has kept it before me.

"Bagam Jaan, your darling niece has forgotten her dress while going back to her home. I have found it in your room while cleaning your room. Do you want me to send it back to her place by sending one of our servants?"

I could not utter a word and just kept on looking at it. The beautiful motifs on her small frock brought back the beautiful face of my dear niece before my eyes. Remembrance of her face drove me in the labyrinth of past where time stopped for me. Though, there are so many memories jostling to be at the fore. But the time spent with niece has pained my heart deeply in which I found myself a culprit for the first time.

My life has been the series of misfortunes, and everything was predetermined and pre-decide for me I was never had any say in anything or in any matter of life or may say in any matter of death.

Yes, I was condemned to perpetual death when my poor parents got me married to an old but rich nut I mean, Nawab. I had my dreams but there all got crushed under the cold persona of Nawab. But who listens to the heart of a woman?

My heart broke in million pieces when I saw him for the first time after my marriage with him. He was much older than I imagined him. Though, seeing him was shocking, but I was happy as I had lifted the life of poverty by becoming the Begam of a Nawab. I started hoping for the blissful happy married life with Nawab. But hardly I knew that I was going into another circle of pain and suffering in his huge house.

On our wedding night, I kept wondering about what would happen when Nawab would make love to me. Would this union be painful for a first timer like me as some of my married friends jokingly said? or I would enjoy never tasted pleasures in the comforting arms of Nawab. The four-poster bed was appearing huge to my poor unaccustomed body. But to my surprise, Nawab did not come to the room. I kept on waiting for him on the upcoming days, but he did not turn up even for once. Days after days started passing off, but he did not come. My heart started sinking, thinking about the loneliness spreading everywhere in the absence of the desired love of Nawab.

I tried to spend my days in the imaginary world of books but here too, I was not finding any solaces I was yearning for his love.

My curiosity knew no end when I heard that Nawab kept an open house for students- young, fair, and slender waisted boys whose expenses were being born by him. Servants hinted about Nawab's likeness for boys. But I did not want to believe them. To confirm the news, I was determined to see any relation between these slender waisted boys and Nawab. Once, I watched from the slightly opened drawing room door where many supple waisted boys in their flimsy shell were entertaining Nawab. To my shock, Nawab spent whose night with these boys.

Now, I did not know what to do. Neither study was looking lucrative to me, nor richness of the mansion was appealing to my senses. Now, my heart was over burning ember.

When my beauty, even my desiccate body failed to attract Nawab towards me. I tried to win his heart by kook or crook. I tried my hands even in black magic

along with amulets, talisman etc. But nothing worked. Nothing could bring the love of my straying husband to me. Nawab did not even budge an inch from what he was doing. He was too busy in chasing the gossamer shrilled boys that he hardly had any time to think about me. Visualizing this prolong loneliness, I tried to keep myself refrain from the yearning of love. I know fulfilment of this yearning is so easy for any married women but it was almost impossible for me.

So, I arranged fortnight long reading scripture sessions, but this could not give me comfort. Romantic novel and sentimental verses increased my loneliness double fold. These verses in fact increased my yearning for love in the silent night that was engulfed in cold quilt.

I was craving for love but even the shadow of love was nowhere near me. My lovelorn heart and body were crying over their ruthless destiny. I used to ponder over what was my fault in this. I accepted everything that was decided for me without even questioning anything then why I am now condemned to bear such loveless, lonely days without even any hope for better future.

What do I do with all these luxuries when I had no one to listen my agony? Life had become so much miserable that I did not wish to live anymore.

It's hard to believe but it's true that I was not even allowed to go out from this house. As my going out of the house would supposedly bring shame to this house of Nawab. All other relatives could come for months here and could stay for months if they wanted. They used to enjoy all luxuries this house presented to them. But I had become a piece of furniture fixed at the one place of the house.

One day, Almighty heard my suffering and bestowed his love on me by sending Rabbu in my lonely life. Had Rabbu not been there, I do not know what would have happened to me.

I can hardly recall when I noticed Rabbu's presence amid so many servants of the house. But I remember Rabbu's presence increases in my life after she regularly started massaging my back when I had severe pain there. What others did not know that no doctor no medicine could heal the pain that I was enduring in the silence.

Initially, I was hesitant to get massage by Rabbu but having no other option, I went with the flow. Rabbu sat against my back and massaged my back, my waist and other body parts which were hardly touched by anyone except me.

This regular oil massage started giving me relief in my external as well as internal pain. Gradually, oil massage by Rabbu became most desired aspect of whole day. To keep Rabbu all day with me, I freed her from other household chores. The only thing, she was required to do was to massage my body. Time flew swiftly. Immersed in care of Rabbu, I started falling in love with her. Though I used to fear Almighty for what I was doing with Rabbu. I knew this was not the appropriate way to find love. Where does heart and body listen to anyone?

Gradually, Rabbu too was becoming bold in her massage over my body that she used to rub for hours. I believe, she too started sensing my desire for her.

The oil massage took serious turn when we came really close during my bathing. One day, Rabbu was helping me with oils and pastes for my body. Doors were closed as I was taking bath. In the heat of the moment, we started kissing each other vigorously. She started kissing me more intimately. I shy to admit that not a single part of my body was left unloved. Rabbu kissed me all over. I too started kissing her like a starved person who had not have food in years.

That day, first time I felt the sense of fulfillment in my body and soul. My parched soul was now drenched with the rain of love. All this was happening in my life because of Rabbu. She eventually brought love in my loveless life. Rabbu now started spending day and night with me only.

The things which began with oil massage had now come on to love. Now, oil massage was just a garb to hide our love from the eyes of people in the day light and quilt hid us in the night from these people on the pretext of my need for massage as Rabbu began massaging me even in the night. True to my heart. I was spending best days of life now filled with love. Though, here and there, I come to know my maid servants made numbers of juicy stories about us. But who cares about them now?

One day my sister in distant relation left her daughter in my protection as my sister was going to Agra. I was happy that I would have this little girl with me all the time. She was a naughty pubescent girl who illuminated my otherwise routine days with her innocent presence.

In my room, I arranged a small bed alongside my bed as I could not leave her alone in the other room. Till ten or eleven o' clock at nights, we chatted, played a game called chance. My niece tired from her journey. So, she slept in her bed.

Finding my niece slept, Rabbu who was till then rubbing my back, immediately came into my bed. I got so habituated of Rabbu that I could not think about sleeping without Rabbu. In fact, true to my heart, I was so accustomed of her passionate touch on my body. She could only make me feel happy in my body.

In the darkness of the night, we loved each passionately. our passionate kissing to each other might have caused noise from the eyes of people. In our fervor of love, I do not know when my niece woke up from her sleep and feebly called my name.

"Begam Jaan"

I was somewhere in the middle of love pursuits, so I haughtily asked from my quilt. "What is it? Get back to sleep".

I got really annoyed but Rabbu calmed me with her passionate kisses. I think my niece might have got scared of this new place that was different from the comfort of her own home. Anyways, I had already told her to recite Ayatul Kurai. But again, she insisted on sleeping with me. Poor girl, how could I sleep with her when I was already sleeping with Rabbu. So, I calm down her by saying her that there is nothing to be scared about. Till this time, I was totally annoyed with her insistence. Therefore, I forcefully told her to sleep. I think, she must have sensed my annoyance. Then, she fell asleep without uttering a word.

Following day was normal, whole day Rabbu was near me massaging me intimately. My niece was also sitting near us, I noticed she was furtively watching may opened part of my body during massage. When I saw her, she started looking here and there. In the night my niece went fast asleep. Inside the quilt, we i.e. I and Rabbu were caressing and kissing each other. Suddenly Rabbu dropped a question on me.

"Begam Jaan, can I go to see my son? Presently he is staying at one of my relative's places as he no longer lives even with me after his affair with Nawab".

True to my heart, I was no way prepared to be apart from Rabbu even for a day. She had become my weakness. My world started and ended with her only. I requested Rabbu to not to go. But she kept on insisting on going to see her son. She even cried. I could not see her crying. I finally

had to agree on her insistence. Than to ease the tension, we loved each other, though anxiety of not having Rabbu tomorrow hear was silently disturbing my sleep.

Next day, Rabbu had gone to her relatives to see her son. Here, I was restless in my body. All through the day, I was out of my elements. Nothing was giving me comfort akin to the hands of Rabbu on my aching body. I did not even feel like having food. My unsatiated desires were flaming more in the absence of Rabbu. Therefore, I kept on moping in the bed whole day.

I came into senses when my niece asked "Should I rub your back, Begam Jaan"

I don't know from where a sudden rush came into me. I began to peer at her. Taking my peering as a positive nod, girl began rubbing my back with her soft hands.

Rabbu was due to return the next day, but she did not return. I was growing restless without her. My head was aching. To sooth the ache, I drank cup after cup of tea, but ache was no going away. To calm the ache, hands of Rabbu was required, nothing else.

So, when the girl was again rubbing my back gently. In the sudden rush of emotion, I forgot everything. I sought her hands all over my body. I kept on instructing her by placing her hands where I wanted them the most to ease my itch. In my conscience, I knew, I was wrong in seeking physical relief from my pubescent niece, but I was so helpless before my desires.

So, to lessen my guilty consciousness, I promised her to buy some frock and to get stitched dress material that her mother left with her. But girl denied taking anything at all. In the meantime, I was really enjoying her soft hands one my body. suddenly a crude, lusty desire raised its head in me that made me do, something which I would never ever do, If I would have been into my sense.

I am ashamed to admit that driven by desires I asked my niece to come and lie down with me. Clearly, she was hesitant but, on my request, she lied down with me, I held her tight against my bosom in the circle of my arms to get sexual release to calm down my roaring desires. I think, girl unable to understand anything, got perplexed as she was completely silence. She was neither screaming nor crying.

Finally, I could ease my sexual tension for a while. So, after pampering girl a little, I slept peacefully for sometimes.

To my happiness, Rabbu came in the night. All my anxiety went away with her arrival. I told her about my situation in her absence and about the girl's massage on my body. But it seemed to me that Rabbu did not like the way I tried to seek pleasure from girl. She looked little annoyed or may say jealous too for my liking towards the girl. This fact became clearer when she teased me for my inability to seduce the girl. But how do I tell her that I am so

ashamed of what did to my niece the other day. I felt myself no different from my husband, whose behavior towards young boys was disdained in my eyes.

Next day girl, who used to roam around me, did not even come near me and chose to remain in the company of maids. I told Rabbu about this, but this situation again created tension between us. I did not want to take more tension as I was already drowning in the ocean of guilt for taking advantage of the little girl in the absence of Rabbu. Moreover, the girl's avoidance to be in my presence was adding more guilt in my heart.

In the night, reluctant to come in my room, she was still wandering outdoors in the cold and might catch pneumonia. I called her in and made her sit beside me. Meanwhile, when I was changing my dress. I saw, girl watching me furtively. I don't know why?

In the night, I tried to shower my affection on her with toys, dresses, sweets and even gold necklace. But the girl kept on repeating.

"I want to go home".

I tried to scare her with her brother bashing up at her home. But now girl was not afraid of that too. Despite so much pampering, girl did not give a budge from her insistence of going to home. Nothing was working to ease the guilt. The concoction of sudden loneliness. guilt, ache was driving me crazy. In the angst, I broke gold necklace into pieces. I tore muslin net dupatta, and which so ever came within my reach found their ultimate salvation. Seeing me disheveled, the girl ran out screaming. Rabbu tried to calm me down. But I really lost my sanity.

I regained my sense after many fuss and ministration. I felt at peace when Rabbu started caressing my body for a while. That night, girl quickly snuggled into her quilt and slept.

Finding her sleeping, Rabbu and I went more quickly into the passionate moments of the night fully secured in my quilt. In the quilt, Rabbu pampered me with so much love. I nestled in her arms. I was enjoying passionate caressing on my body. We both were engulfed in the love of ocean. In this very moment, girl screamed.

"Aa Ammi".

With screaming, she switched on the light. Perplexed with the sudden change in the circumstances, Rabbu who was on that time caressing my body, quickly came to lie beside me for the fear of being opened before the girl.

By the grace of Almighty, Though, girl might have heard our sounds of passion but due to quilt, perhaps girl did not see us in our romantic position. Possibly, assuming these noises being made by thief, girl might have turned on the lights. But when she found out no

one inside the room, she peacefully slept. After she slept. we resumed our loving pursuits till we desired.

After being fully immersed in the ocean of love, we were both fully satisfied. My headache had gone away too. But after this incident, we maintained cautiousness in our love pursuits of the night.

Later, my sister came and took the girl with her at home., this was good for girl too. As most of the time, the girl remained silent and in the protection of maids only. She hardly came near me after that incident.

After her departure, we could cheerfully enjoy unrestricted access to each other. Today, everything is almost same between me and Rabbu. The only thing that has changed is my degree of love that has increased for Rabbu. I am not even ashamed to admit to Almighty that I love Rabbu more than anything. I do not find any fault in this love. Perhaps, I was destined to find love this way only.

Though, the frock that has been kept beside me has reminded me again of about the incident that took place on that time between me and my niece. So, I called Rabbu to send it off to her home. To that I may not see it and eventually I may not feel guilty too. I think, sometimes what happens is not in our hands, so I do not want to burden my senses over it anymore..

ANAYSIS OF THE ALTERNATE STORY

In the begin of alternate narrative, Begam Jaan throws light on her inability to choose anything according to her wish since childhood. This narrative reveals a lot about how Begam Jaan perceived herself point to be focused, is that albeit childhood or life of childhood have also been narrated in the many lives writing penned by men. But these are not conspicuous in the sense of gloom, pain as they are in the women's life writings.

It also draws our attention to situation responses and struggles of Begam Jaan within the ambit of kinship marriage by delineating a life inside the big house abundant with servants and luxuries. It provides information about the private family sphere which is often remained unavailable in the other sources.

It also problematizes the personal sphere by emphasizing on the fact that personal is political too which is fully governed on the lines of power relationship akin to public sphere. In the story Begam Jaan on account of being a girl was deprived of her own agency. She was married off to a rich, old Nawab despite her reluctance. But even then, she tried to adjust with sudden new situation fallen on her. This new situation brought more ill fate in her life. when Nawab did not show any interest in her as his interest was laid in the young boys. He was seemingly a

homosexual. So Begam Jaan stood no interest to him. She was taken as a wife just to ward off the unwanted gaze of people from the homosexual activities of Nawabs.

Begam Jaan was not allowed to go out of the house to meet people or to meet her relative, though other people were happily coming, staying, and enjoying the luxuries of the house. But she was fixed in the four walls of domestic life. She herself became a

property of the Nawab just like other expensive articles of the house. Her pain of becoming a non-entity and object of indifference to Nawab would not have much aggravated in her, had her other desired been fulfilled with the love of Nawabs. But it is true, in the cruel world of men, no one pays heed to the desired of women. Silence in the face of subordination and exploitation is all that is expected from her so was the situation of Begam Jaan.

Begam Jaan tried to win back her husband by exploring various means but failed eventually. Her desperation as her husband's indifference towards her is poignant. She yearned for love but that was denied to her due to her husband different sexual orientation.

Devoid of love, her quilt was cold as it lacked the warmth of passion that she was yearning for. The mental agony, she faced and despair, neglect she experienced was due to her position as the wife of Nawab. This only highlights the marginalization of her feelings.

The marginalization of women's feelings is pertinent to study in the society, which takes away agency from the women to decide about their own fate. Society expects acceptance to the fate from women only. No matter, this fate may store gloom, despair, indifference or even exploitation for her but she is supposed to bear all this silently without revolting again it.

Furthermore, it is to be noted that Begam Jaan and her body became the subject if tyranny and dictates of Nawab. In this way, her body becomes a tragic site for Nawab to draw restriction and to play according to his wishes and whims without any negotiation and reconciliation with Begam Jaan.

Eventually, Begam Jaan found a reconciliation with the situation when she found herself completely neglected by her husband. She formed a lesbian relation with her maid named Rabbu. In this relationship, she found a certain fulfillment. This relationship was formed due to the unfulfilled desire for the sexual love from her husband not because of different sexual orientation of Begam Jaan.

The oil massage that Rabbu offered, led to the engagement in the lesbian relationship between Rabbu and Begam Jaan. Whole day Rabbu was busy in massaging Begam Jaan. This is now the presence of Rabbu in the life of Begam Jaan negotiated with the absence of her husband in

her life. The love, Begam Jaan wanted from husband, was eventually found in the embrace of Rabbu.

It is true that a sexual relationship was formed between her and Rabbu. But when in desperation, Begam Jaan started sharing her lonely bed with Rabbu, she became a subject of all forms of idle talk from people. She was aware of the juicy stories being made about them among the servant's circles.

Though she tried to hide her relationship under the guise of oil massage, but nothing served the purpose. In this sense, Begam Jaan fed on the prevalent patriarchal norms of the society. Begam Jaan had proper idea about the prohibition and restriction i.e., what is accepted and what is rejected in the normative society. Therefore, she tried to

negotiate her queer experience with inhibition at various levels, be it physical or psychological level. She tried to hide her queer relationship from public glare by employing oil massage as a way out to conceal her relationship from inquiring eyes of her other maids. On the other level, her quilt was another way to maintain secrecy about her sexual relation with Rabbu from people surrounding them. Within this context, it is pertinent to note that nobody talks about the homosexuality of Nawab. His efforts to woo young boys are well served without any effort of maintaining secrecy. Different experience of Nawab and Begam Jaan in dealing with the issue of homosexuality highlights the double standards of the society. Society's dubious judgment of men and women is clearly visible here as society takes a second to tarnish women's character for asserting her right to have a meaningful life. Whereas in the case of men, this very society conspicuously shut its eyes to any form of their perversion.

Narrative also focuses on the guilt, Begam Jaan felt after inappropriately touching the girl and the frustration, she felt after girl became reluctant to even go near to her. Begam knew what her husband was doing with young boys was perverted behavior. When she found herself doing the same in the absence of Rabbu, she felt herself as culprit.

Begam Jaan's narrative has offered her a boundless world which she exclusively has created for herself. In this imagined space, she is the subject that goes beyond the tradition barriers that society draw for her for being woman. She opens a new space to explore new frontiers to represent her identity which also challenges the presumed and socially given self.

The whole narrative follows a theme that evolves around the quest for self-made identity through a journey. It focuses on the discovery of self, though it is a painful self-confrontation where despite love she receives from Rabbu, she finds herself in misappropriating the behavior towards girl.

Another interesting fact about this narrative is that Begam Jaan focuses more on the redemption, she feels in the love of Rabbu, and the element of guilt towards her niece rather than focusing on Nawab. In this way Begam Jaan mostly writes about her feeling and her experiences with other women in her narrative be it Rabbu or her niece. This narrative has in fact deemphasize the role of men in the Begam Jaan's narrative.

Similarly, Begam Jaan's quilt becomes her inner world which includes Rabbu and her only and is totally filled with love and passion. It becomes he place where only her commands are respected with passion and love unlike the outer place, which is completely governed with patriarchal, double standard norms.

CONCLUSION

Narrative like Begam Jaan opens new areas of discussion and study which may help in raising our awareness about these critical gender issues raised in it. The questions that are raised in this narrative are difficult to be found in the narrative penned by men as due to social differentiation they both deal different

situations in their life and that too in the most unique way. Beam Jaan's narrative is a testimony to oppression, she faces only for being woman, but it also reflects on empowerment Begam found by transforming from non-entity to assertive women. It provides glimpses into the seemingly ordinary but extra ordinary life of Begam Jaan. It has depicted her pain, sorrow compromise and reconciliation with the prevailing situation, guilt and eventually her win over of all odds and fulfillment in life.

Reference -

1. Dasgupta, Sohini. Marginalization in Chugtai's "Lihaaf": A Study in Perspectives, Academia, retrieved on 18 May 2021.
2. Tellis,A. The Corporeal Aesthetic in Ismat Chughtai's Lihaaf, Lesbian Voices Canada and the World: Theory, Literature, Cinema, 2006
3. https://www.manushiindia.org/pdfs_issues/PDF%20file%20110/9.%20Short%20Story%20-

आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य में गुरू-शिष्य परंपरा एवं विश्वविद्यालयीन संगीत शिक्षा

डॉ. अश्विनी कुमार सिंह

आसिस्टेन्ट प्रोफेसर, संगीत विभाग
दि एम.एस.युनिवर्सिटी ऑफ बरोडा, गुजरात

सारांश

भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से विशेषतः गुरु-शिष्य परंपरा ही प्रशिक्षण का मुख्य माध्यम रहा है। आधुनिक काल में भारत के स्वातंत्र्योत्तर समय में शिक्षा पद्धति में आए बदलाव तथा संगीत के बहुतांश रूप से लोकाश्रित होने की परिस्थिति के चलते संगीत तथा अन्य कलाओं की शिक्षा हेतु निजी विद्यालय और विश्व विद्यालयों में व्यवस्था होने लगी है। ऐसे में गुरु-शिष्य परंपरा में भी कुछ बदलव होना स्वाभाविक है। प्रस्तुत लेख में आधुनिक युग में विश्व विद्यालय शिक्षा और गुरु-शिष्य प्रणाली के मिले जुले प्रयत्नों से कलार्थी लाभान्वित हो तथा भारतीय कलाएँ उत्तमोत्तम प्रगति करें इसके विषय में लेखक के विचार प्रदर्शित हैं।

बीज शब्द

भारतीय शास्त्रीय संगीत,गुरु-शिष्य परंपरा, घराना, विश्वविद्यालयीन संगीत, अभ्यासक्रम

भारतीय संस्कृति में 'गुरू-शिष्य परंपरा' का महत्व जीवन के बहुत से आयामों से जुड़ा हुआ है। यह परंपरा प्राचीन वैदिक काल तक विभिन्न क्षेत्रों में किसी न किसी रूप में अस्तित्व बनाये हुए दृष्टिगोचर होती है। इस व्यवस्थ में जिज्ञासु/अन्वेशक/विद्यार्थी किसी ऐसे व्यक्ति के पास जाकर ज्ञान/विद्या/कला ई. की शिक्षा/प्रशिक्षण/अभ्यास ग्रहण करता है और ज्ञान देनेवाली व्यक्ति 'गुरू' तथा पानेवाली व्यक्ति 'शिष्य' कहलाती है। गुरू-शिष्य की यह प्रणाली ज्ञान के किसी भी क्षेत्र में हो सकती है,जैसे अध्यात्म, संगीत, कला, वेदाध्ययन, वास्तु आदि। इसे परंपरा इसलिए भी कहा गया है क्यूंकि जब शिष्य अपने गुरू से ज्ञान पाकर दूसरों को भी वही ज्ञान बाँटता है तो वह उस अगली पीढ़ी के लिए गुरू बन जाता है और इस क्रम से यह परंपरा बनती है। गुरू की विद्वता, मौलिकता और नैतिक बल, शिष्य के प्रति स्नेह भाव और ज्ञान बांटने का निःस्वार्थ भाव ये गुरू के परिचायक लक्षण है। शिष्य के परिचायक लक्षण् है गुरू के प्रति पूर्ण श्रद्धा, गुरू की क्षमता में पूर्ण विश्वास, समर्पण, अनुशासन एवं आज्ञाकारिता।

भारतीय मंच प्रदर्शन कलाओं में प्राचीन काल से आज तक संगीतकला, नृत्यकला और नाट्यकला का समावेश होता है। इन सभी कलाओं की सभी धाराओं में चाहे वे शास्त्रीय हों, लोक हों या साम्प्रत-प्रचलित हों, गुरू-शिष्य परंपरा ही प्रशिक्षण का मुख्य माध्यम रहा है। आधुनिक काल में भारत के स्वातंत्र्योत्तर समय में शिक्षा पद्धति में आए बदलाव तथा संगीत के बहुतांश रूप से लोकाश्रित होने की परिस्थिति के चलते संगीत तथा अन्य कलाओं की शिक्षा हेतु निजी विद्यालय और विश्वविद्यालयों में

व्यवस्था होने लगी है। ऐसे में गुरू-शिष्य प्रणाली के मिले-जुले प्रयत्नो से कलार्थी लाभान्वित हो तथा भारतीय कलाएँ उत्तमोत्तम प्रगति करें इसके विषय में लेखक के विचार प्रदर्शित हैं।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में गुरू-शिष्य परंपरा-घराना :

गुरू-शिष्य परंपरा के अंतर्गत प्राचीन काल में गुरूकुल आश्रम हुआ करते थे। उसमें शिष्य गुरू के निवास स्थान पर रहकर पूरी निष्ठा और परिश्रम से विद्यार्जन करते थे। गुरू भी शिष्यों की प्रगति को अपनी जिम्मेदारी समझकर उनको योग्य मार्गदर्शन देते थे। भारतीय शास्त्रीय संगीत में इस परंपरा ने मध्यकाल में 'घराना' या 'घरानेदारी' का स्वरूप ले लिया। इतिहास में कुछ प्रसिद्ध कलाकार ऐसे हो गए जिन्होंने अपनी प्रतिभा से संगीत की विशिष्ट शैलिओं को जन्म दिया। उनके शिष्यगण और पारिवारिक सदस्यों ने अनुकरण किया और इस प्रकार से 'घरानों' का जन्म हुआ। इन घरानों में गुरू के मुख से प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान मिलता होने से इसे 'गुरू-मुखी' भी कहा जाता है।

गुरू-शिष्य परंपरा के लाभ इस प्रकार है :

1) गुरू के अगाध ज्ञान का लाभ शिष्य को प्रत्यक्ष रूप में मिलने से सभी विशेशताओं और बारीकियों का निरीक्षण,अनुकरण और जतन।

2) परंपरागत शिक्षा में लम्बे समय तक विद्यार्जन करने की वजह से शिष्य एकदम तैयार होकर बाहर आता था।

3) अनुशासन, संयम, परिश्रम, गुरू के प्रति आदर जैसे पारम्परिक मूल्यों का शिष्यों में सिंचन।

4) कला की मूल शैलियों का जतन।

समय के साथ इस शुद्ध परम्परा में भी कुछ दूषण उत्पन्न हुए, जिसकी वजह से कला के विद्यार्थी-शिष्यों का नुकसान होने लगा।

इस पद्धति के कुछ दोष इस प्रकार है :

1) एक घराने के शिष्य को दूसरे घराने की कला को देखने, सुनने, सिखने की अनुमति नहीं थी।

2) शिष्य को पूरी तरह से गुरू के मिजाज़ पर निर्भर रहना पड़ता था। इससे शिक्षा काल में कोई समयमर्यादा नहीं रहती।

3) मध्य काल में कला के शास्त्र पक्ष की उपेक्षा होकर प्रायोगिक पक्ष पर जोर दिया गया।

4) यदि गुरू तेजस्वी शिष्यों से जलन या असुरक्षा, अन्य शिष्य के मुकाबले अपने पारिवारिक सदस्य की उन्नति जैसे दुर्गुणों से ग्रसित हो जाता तो वह शिष्यों से कला के कई पहलु छुपाकर रखता।

5) शिष्यों को बिना किसी प्रश्न किए गुरू की कला का केवल अनुकरण करने की शिक्षा मिलने लगी जिससे नैसर्गिक जिज्ञासु वृत्ति का हनन होने लगा जो कि कलात्मक उन्नति के लिए हानिकारक है।

इसका समाधान यह हो सकता है कि गुरू-शिष्य परंपरा-घरानेदार संगीत में उपरोक्त वर्णित कमियों को दूर करने का प्रयास हो। समयानुकूल आज के शिष्य की जिज्ञासु वृत्ति को पोशित करके उसे सर्जनात्मक संगीत की ओर प्रेरित किया जाय। संगीत के प्रायोगिक पक्ष के साथ-साथ शास्त्र पक्ष से भी शिष्य अवगत हों और उनके सांगीतिक व्यक्तित्व के साथ-साथ व्यवहारिक व्यक्तित्व का भी विकास हो। इसके लिए परंपरागत मूल्यों के साथ कुछ नई विचारधाराओं का स्वीकार तथा स्वागत इस परंपरा के सिद्धहस्त गुरूओं द्वारा होना निश्चित है। आधुनिक युग में भारतीय संगीत के कुछ महान कलाकारों ने अपने जीवनकाल के दौरान निःस्वार्थ भावना से ज्ञान बाँटा, शिष्यों की जिज्ञासु वृत्ति का जतन करते हुए घराने की बारीकियाँ सिखायीं और आधुनिक पद्धतियों और तकनीकों से भी विद्यार्थीयों को अवगत कराया। जिसकी वजह से सुशिक्षित,घरानेदार और सर्जनात्मकता और महत्व समझने वाली शिष्य परंपरा का उदय हुआ। आज शास्त्रीय संगीत में शिष्य की उन्नति होने का एक कारण गुरू-शिष्य परंपरा में समयानुकूल हुए ये बेहतर बदलाव ही है।

विश्वविद्यालयीन संगीत शिक्षा :

आधुनिक काल में विद्यार्थी को शास्त्रीय संगीत सिखाने का एक और मार्ग भी खुला जो था विश्वविद्यालयीन संगीत शिक्षा। अन्य व्यावसायिक अभ्यासक्रमों की तरह संगीत के विशय में भी 'पूर्ण-समय' (फुल-टाइम) अभ्यासक्रम प्राप्त है जिसका अभ्यास योग्य विद्यार्थी योग्य पद्धति से करें तो इस

कला में अच्छी गति प्राप्त हो सकती है। स्नातक, उपस्नातक तथा डॉक्टरेट स्तर के अभ्यासक्रम उपलब्ध है। यहाँ विद्यार्थिओं को अलग-अलग सांगीतिक विधाओं का ज्ञान, संगीत के शास्त्र पक्ष की जानकारी, संगीत के साथ-साथ इतिहास, भाषा, सांस्कृतिक धरोहर, विश्व संगीत, समाजशास्त्र आदि विषयों से तथा बाहरी दुनिया से अवगत होने के अवसर मिलते हैं। जिन विद्यार्थिओं को घरानेदारी में प्रवेश सहज शक्य नहीं है उनके लिए यह एक सुकर माध्यम है। इतना होते हुए भी गुरू-शिष्य परंपरा में कला की जो बारीकियाँ और गुणवत्ता उत्पन्न होती है वह सामान्यतः विश्व विद्यालयीन शिक्षा में देखने को नहीं मिलती।

विश्वविद्यालयीन शिक्षा में गुणवत्ता बढ़ने के लिए गुरू-शिष्य परंपरा के मूल्यों का समावेश होना जरूरी है क्योंकि इसके बिना भारतीय शास्त्रीय संगीत शिक्षा की कल्पना ही नहीं हो सकती। प्रायोगिक पक्ष में ज्यादा से ज्यादा घरानेदार गायनशैली/वादनशैली/प्रस्तुतीकरण का लाभ मिले ऐसे प्रयत्न हों तथा शास्त्र पक्ष और अन्य विषयों के लिए भी निपुण शिक्षकों की व्यवस्था हों जिससे की विद्यार्थिओं के अंदर व्यक्तित्व विकास में सहायता हो। ज्यादातर जगहों पर अभ्यासक्रमों में ऐसी सुविधाएँ होती ही है। विश्व विद्यालयीन शिक्षा पाने वाले संगीतार्थी को चाहिए की वह अपनी क्षमता, प्रगल्भता, झुकाव तथा मिली हुई शिक्षा के आधार पर आगे की संगीत यात्रा के बारे में निर्णय लें। इस शिक्षा के बाद भी शास्त्रीय संगीत में घरानेदार शिक्षा का विकल्प सदैव बनता ही है।

निष्कर्श :

इस प्रकार हम इस निष्कर्श पर आते हैं कि भारतीय शास्त्रीय संगीत में गुरू-शिश्य परंपरा द्वारा जो अमूल्य ज्ञान एक पीढ़ी में संक्रमित होता है उसका कोई विकल्प नहीं है। सिद्धहस्त कलाकारों के निर्माण में घरानेदार कलाकारी का अनन्य साधारण महत्व है। कालक्रम में इस प्रणाली में आए हुए दूषणों को दूर करके उसे नया रूप आधुनिक काल में मिला है। जिससे कलार्थियों की उन्नति में आनेवाली बाधाएँ बहुत अधिक प्रमाण में कम हो गयी हैं। विश्वविद्यालयीन संगीत शिक्षा पाने वाले छात्रों में भी संगीत के विविध पक्षों के प्रति उचित जागृति पाई जाती हैं तथा उन्हें भी विद्यालयीन शिक्षा पद्धति की सीमाओं में रहकर कुछ हद तक गुरू-शिष्य प्रणाली के अंशतःलाभ मिल सकते हैं।

संदर्भ सूची :

1. कुमार, रि. (2009). संगीत शिक्षण के विविध आयाम, न्यू दिल्ली : कनिश्क पब्लिशस.
2. वसंत (1994). संगीत विशारद. सं. 20 हाथरस (उ.प्र.) : संगीत कार्यालय. डॉ0 नुपूरराय का लेख, 2005, पृ0 14

New Innovations and Technology in Music

Dr. Snehal Shembekar

Associate Professor, Department of Music
Sitabai Arts, Commerce & Science College, Akola

Abstract:

Music has a history as old as human civilization. As seen earlier it has become integral part of human life. It has grown in size, all its forms and has transcended the geographical barriers to spread worldwide. Humans expressed their ideas, thoughts, emotions and feelings through verbal and non verbal communication. The verbal communication is done through sound however, the non verbal communication is made through gesticulation, sign language, text and pictures. Because of the need to preserve these expressions over a longer duration, these forms of expression manifested into a physical medium viz. print and non print media like books, serials, drawings, paintings, music scores, LP records, Cassettes, audio-visual tapes, etc. One of the desirable outcomes of technological developments is digitization. Digitization is a process by which the data is converted into digital form (electronic form) which could be handled using electronic devices like computers and data processing machines. From Pythagoras's experiments with hammers and anvils to Bartolomeo Cristofori's pianoforte new and innovative ideas and technologies have consistently provided musicians with inspiration. Show a composer a new musical tool and they're going to put it to use. Technological change has undoubtedly influenced the way in which music is written and created. These developments have brought changes in the way that sounds can be produced and music expressed, such as through the introduction of synthesizers and MIDI control devices in the 1980's. new microphones, and laterally though the development of Virtual Studio Technology (VST) software and digital audio workstations.

Keywords:

Music Creation, Music Production, Musical Creativity, Musical Diversity

Technology has been an important aspect in the development of music, from facilitating new instruments and methods of creating sound, to providing a vehicle by which music can be notated and its sounds recorded. The last quarter of the 19th century brought with it a range of technological innovations and inventions that laid the foundations for modern recording technology that would, for the first time, allow music performance to be captured, transported, and replayed. This revolution was led by innovators of the day such as Thomas Edison, Alexander Graham Bell, and Emile Berliner. By the end of the 1920's the proliferation of gramophones and popularity of analogue radio broadcast. During the 1970's and 1980's the music industry experiences a series of major technological shifts; largely due to the incorporation of analogue and digital electronics into the music creation, recording, and production processes. This digital revolution further transformed the opportunities available to the musician. In a relatively short space of time, the synthesizer and MIDI technologies that had previously afforded new timbral and performance opportunities had been integrated into personal computers, providing anyone with a basic musical knowledge or ability to program their own instruments and to record them, noise free, onto a hard disk.

The introduction of computers and digital information to the music world led to the potential for new ways that music could be studied, written, produced, consumed, distributed, and written. Music can now be distributed online via online music stores such as Apple's iTunes, Google Play, Spotify, and so on. The broad public adoption of the Internet over the 1990's and 2000's, coupled with relatively high ratio audio compression technologies, most notoriously the combination of MP3 and Napster, meant that being able to share and distribute music could be easily achieved. This caused an eruption of copyright and intellectual property law suits against the Napster file-sharing platform, as artists and record companies saw themselves losing out on the income from music purchases. The ability to create and release music was now no longer the privilege of the few. but that of the many. Thus, the digital music revolution has been nothing short of a mass democratization, characterized by Breen in an appropriate technologically influence sound bite as being a "direct access relationship" between the musician and the audience.

New Innovations and Technology in Music Industry:

Music has a history as old as human civilization. As seen earlier it has become integral part of human life. It has grown in size, all its forms and has transcended the geographical barriers to spread worldwide. Humans expressed their ideas, thoughts, emotions and feelings through verbal and non verbal communication. The verbal communication is done through sound however; the non verbal communication is made through gesticulation, sign language, text and pictures. Because of the need to preserve these expressions over a longer duration, these forms of expression manifested into a physical medium viz. print and non print

media like books, serials, drawings, paintings, music scores, LP records, Cassettes, audio-visual tapes, etc. One of the desirable outcomes of technological developments is digitization. Digitization is a process by which the data is converted into digital form (electronic form) which could be handled using electronic devices like computers and data processing machines. In words of Paul Conway 'digitization is the process of translating the object or idea into a numerical code. The baseline of digital technology is a coding system with only two numbers i.c. O's and I's." The process of converting analogue data or print data into binary formats involves various steps viz. which is a part and parcel of our life, has also witnessed changes caused due to technological impact. The invention of gramophone records facilitated the duplication of music in an easy way and also enabled its transcending of the geographical borders. The journey from this point onwards towards digital mode of recording and its duplication made music accessible with relative ease. Compression technologies have enabled storage of large amount and high quality of music storage in less and less - digital space. Access to music also has become truly global. Easy access to music for download from the Internet on to desktops, I pods, mobile phones and other portable devices are a brute testimony to this. Thus, it can be said that as the technologies of duplication and distribution bloomed in the last century, consumerism bloomed too and music rapidly adapted to the culture of copy. Music in the form of sound data has two dimensions especially from the perspectives of the creator i.e. performer and the receiver i.e. the music enthusiast. Definitely there is a difference in music and music delivery."2

Technological change has undoubtedly influenced the way in which music is written and created. These developments have brought changes in the way that sounds can be produced and music expressed, such as through the introduction of synthesizers and MIDI control devices in the 1980's, new microphones, and laterally though the development of Virtual Studio Technology (VST) software and digital audio workstations. Thus, the musician, as an artist analogous to a painter, is constantly being provided. with new colours and textures in their palette, whilst the dimensions and characteristics of their canvas can be changed and reshaped at will. The role of the engineer and in these times of change has arguably become more important than ever and one where engineers and producers have been able to develop their techniques in recording and manipulating sounds to develop their own trademarks and styles." "The paradigm shift from the use of expensive commercial recording studios to recording music 'in the box' presents a demonstrable change in the way in which people interact with music production systems. The need for large-scale studios, with large mixing consoles and racks of outboard effects and processing, has been eliminated in the main'. This is a pattern that could also be related to a wider trend in the music industry where, due to the development of the Internet, high quality

recorded music has become easy to copy and share. Combined with developments in music streaming and distribution services, this means that a wider range of music is available to consumers." The role of musicians has also changed due to the development of the Internet. Whereas the role was once to engage and build audiences through broadcast and printed media, the format and content of which was largely out of their control, many musicians are now combining the role of artist and performer with roles that make use of social media strategies for the purposes of drawing attention to themselves."

The implementation platform is Max/ MSP/Jitter. Max is a modular graphical development environment for music and multimedia creation developed by Cycling 74 which allows the processing of audio and video in real time. Due to its extensible design and graphical interface, it has been increasingly used in the last years by composers, artists and software developers interested in creating interactive programs. Our application is a creative development environment in its own right, but for running Max patches it requires only the free application Max Runtime. For communication between devices and sensors, we use the Open Sound Control (OSC) protocol from UC Berkeley CNMAT (Center for New Music and Audio Technology). OSC is designed to share information in real time over a network enabling the communication between electronic musical instruments, computers and other media devices, such as mobile devices equipped with Wi-Fi or Bluetooth. This protocol, along with applications such as Touch OSC, allows the creation of tactile interfaces in tablets. and smart phones, as well as connecting Kinect to control applications developed in Max." Recent work points to the pedagogical potential of new technologies and new human interfaces. Additionally, the use of tactile mobile devices is a remarkable market tendency. Tactile devices allow direct manipulation of objects and controls by means of multi-tactile interactions with excellent results in electronic musical instrument generation and general educational projects Non-tactile devices include Kinect, developed by Microsoft as an interface for the Xbox-360 console. Kinect uses camera images to estimate position and posture of the human body to serve as an input for videogames. Nowadays, Kinect can be programmed using Open NI, used by Open CV among others, Synapse and an SDK from Microsoft, which give access to the RGB and depth information. One of the authors describes music generation integrating Kinect with Max and OSC."9

Conclusion:

From Pythagoras's experiments with hammers and anvils to Bartolomeo Cristofori's pianoforte new and innovative ideas and technologies have consistently provided musicians with inspiration. Show a composer a new musical tool and they're going to put it to use. In a world dominated by the digital, digital instruments and digital streams, it is time to take a step back and revisit some of the technology that has brought us to this moment in time in music with the hopes to better understand. Music has certainly

not been afraid to embrace technological change and use it to full advantage, especially when it comes to being able to produce more diverse and larger-scale creative works. As such, technology in music has been an enabling platform, as well as affording innovation. In our on-going work, we look forward to not only attempt to produce a computer program that can write an interesting piece of music.

References:

1. Conway, Paul. 'Digital technology made simple' in Preservation of library and archival materials: A Manual, http://www.nedec.org/plam3/1leaf.54htmlAccessed in September 1999.
2. Duncan, Nancy Bogucki and Fox, Mark. 'Computer aided Music Distribution: The Future of Selection, Retrieval and Transmission' accessed on 28 May 2006; Dec 2006
3. Pinch, T. and Bijsterveld, K. 'Sound Studies: New Technologies and Music' Social Studies of Science, pp.635-648, 2004.
4. Ku, R.S.R. The creative destruction of copyright: Napster and the new economics of digital technology. The University of Chicago Law Review,pp.263-324, 2002.
5. Homer, M. 'Beyond the Studio: The Impact of Home Recording Technologies on Music Creation and Consumption' Nebula, 6(3), pp.85 99.2009.
6. Marwick, A.E. Status update: Celebrity, publicity, and branding in the social media age. Yale University Press, 2013.
7. J. Sanchez, A. Salinas, M. Saenz, Mobile game-based methodology for science learning. Human-Computer Interaction HCI Appl and Services, LNCS, 4553, 322-331, 2007.
8. S. Scarani. 3DSynth v.4/Kinect, http://www.tangatamanu.com /sounddesign.

.....

Importance of Fairs and Festivals as a Tourism Product: A Qualitative Study

Ritu Rani

Research Scholar, Dept. of Tourism, Sikkim University, Gangtok

Dr Amit Kumar Singh

Assistant Professor, Department of Tourism, Sikkim University, Gangtok

Abstract

Festivals and sports mark an important place in the tourism industry. The identity of a place is truly defined by its culture, tradition, and practices. Culture plays a key role in developing a destination with its tangible and intangible qualities. These are important economic and marketing tools when seeking a competitive advantage. In the form of festivals, performances, and sports; culture is tangible while on the other hand, it offers an opportunity to encounter customs, local knowledge, folk, and social practices in its intangible form thereby being essential for promoting a destination to become a value proposition. The sports committee is now coming up with a better sustainability concept that encourages to maintain better resource management, fair business practices, and better communication and cooperation. Sport and tourism are complementary to each other and stimulates higher investment in physical infrastructures like airports, roads, hotels, restaurants, and other complexes which will provide employability to the locals and better services to the tourists.

Keywords:

Culture, North East, Tourism, Festival, Sports.

Fair and festivals are the true representation of any culture. They add vibrant color to our lifestyle and also express our social behavior. They showcase our traditional culture and heritage in terms of the rituals that we perform during these festivals. Various types of cuisines are made or the folk music and dances that are being performed in different festivals. These customs and practices bound the people to celebrate together. Festivals are also celebrated for their national importance, seasonal and religious purposes. Celebration of Independence Day, Republic Day, and Gandhi Jayanti in our country are considered national festivals. These festivals bring a sense of pride, nationality, and oneness and also let us remember the sacrifices made by our

freedom fighters during the time of independence. Seasonal festivals are those which mark the beginning of the new season and are also celebrated at the time of harvesting seasonal crops. Apart from the traditional festival, there are some new festivals which are becoming very popular in terms of tourism and attracting people to new places such as Kite festival, mango festival, dance festival, garden festival, etc. Now the government has started promoting tourism festivals which is a rapidly developed cultural phenomenon. The concept behind this is to visit the particular place and also to attend and involve the tourists in various activities. Numerous events, games, and competitions are organized and these cultural activities are unique in their own nature. This phenomenon tries to connect tourists with the traditional culture and heritage of that place. And if the tourist finds the custom and practices fascinating they will surely recommend to others as well which will ultimately help in promoting a destination.

Sports are yet another activity that is known for social gathering and participation. A wide range of events is organized in sports fest. Such sports activities are organized keeping in mind the entertainment, zeal, and enthusiasm of the participants. These events are quite interesting and full of excitement. International Kite festival and Rann Utsav of Gujarat, Nehru Trophy Boat Race of Kerala, and Desert Festival of Jaisalmer is the few important sports festival in our country. Camel polo, camel race, turban tying competition, moustache competition, kite making, and other adventure activities like parachuting, rappelling, paramotoring, archery are some of the exciting games and competitions organized in these festivals. Indian Derby- Horse racing sport is one of the biggest sports events. These festivals are celebrated along with their social and cultural importance. The participants and the spectator both come across the entire country and also from outside India. They spend a good time here by participating in different competitions and also cheering up their favorite team. They showcase their skill and passion in various games and also enjoy the culture and cuisine of the place during their stay. Many colleges are hosting sports fests concerning the physical health and fitness of their student. Such events prove to be a fruitful outcome for the students in enhancing their level of concentration and better academic performances.

Sports tourism is a leisure kind of tourism in which tourists come to join and participate in various events. It is one of the fastest emerging markets in the tourism sector. It creates a great impact on the economy of the host destination. Sports activities turn to be a crowd puller and so the upliftment of economy. A huge number of participants along with their entire team comes to the destination and they spend a lot of money over there whether it could be IPL, Commonwealth games, or the Olympics. There is a wide scope of sports tourism in the North East region. This paper will highlight the potential of the North East region in terms of sports tourism or cultural tourism. The entire region is enriched with flora and fauna being blessed with nature. At the same time, this region lacks the basic

facilities like ignorance in the infrastructural development, lower literacy rate are some of the hurdles for the sportsperson of these areas.

Literature Review

Situated in the Eastern Himalaya, North-Eastern India comprises the 8 states namely Sikkim, Arunachal Pradesh, Assam, Nagaland, Manipur, Mizoram, Tripura and Meghalaya. Around 150 tribal communities are residing in these states. The richest biogeographic region is extremely rich in nature and cultural heritage, major tribal ethnicity along with the blessings of Brahmaputra, great history and archaeology proves to be the suitable environment for tourism. The practices followed by the people of North East is flabbergasting in nature for example Meghalaya is the only state to follow the matrilineal inheritance system of living, also the culture of head hunter tribes of Nagaland will never fail any tourist to amaze them. People of the North East are closely associated with nature and its preservation and this can be reflected in their festival as well. The Lepcha community prays Mountain Kanchenjunga as their guardian deity, river Teesta as their lifeline. So they are promoting the idea of environmental protection, sustainable development, and tourism. People with varied culture celebrate the festival in their own way. Another reason to celebrate these festivals is to accumulate and unite people out of their busy life and celebrate these festivals with seasonal and religious importance (Bose 1971). Festivals are a worthy asset to the tourism industry and they are also treated as a tourism product. Festivals are associated with the people and their culture hence discussed and studied in various streams such as history, sociology, geography, management, and tourism. Festivals are one of the pull factors of tourism. Several festivals and events are also hosted for tourism purposes only hence named tourism festivals. Within the time evolved the concept of festivalization evolved leading to the development of festival events and increasing the importance and influence over the society (De Bres & Davis 2001, Markwell & Waitt 2009, Cudny 2006, 2013). According to Kowalczyk 2008, like-minded tourists having a special and authentic interest in cultural heritage, folklore, street festivals, site of important events, etc. with active participation in contemporary life and indigenous.

Sport is a worldwide language that incorporates competitiveness, conflict, emotion, and frequently fascinating drama. Sports tourism typically brings money, pride, and entertainment to a place. Sports tourism is marking its inclining growth and becoming one of the biggest businesses in the industry. Sports events that have worldwide fans and popularity such as FIFA, Olympics, etc. are getting huge number sponsorships (Parker 2019).

Sports tourism leads to globalized growth. Asia and the Pacific marks an 8 percent hike in international tourist arrival in the year 2016. While Asia is currently benefiting the most, sport-related tourism is increasingly presenting significant prospects for both rising and established destinations (UNWTO 2017).

Sports tourism is defined as watching and participating in physical sports activities outside of the homely

environment as a leisure-based activity (Gibson 1998). Rather sports tourism is more social, cultural, and economic in nature with the culmination of people, place, and activities (Weed and Bull 2009). It has gained popularity in academic concerns such as various degree courses (like B.Sc in Sports Management, Bachelor of Physical education and Sports, etc.), textbooks or Journals (Journal of Sport and Tourism) has been introduced. India's first National Sports University has laid its foundation in Imphal, Manipur under the National Sports University Act, 2018. Online sports festivals are also in trend where various partners such as Prakash Padukone Badminton School, LaLiga Football School, etc. join and provide training sessions to the aspirants. Workshops related to sports and fitness, food nutrition, injury prevention are conducted for the players. These are interactive sessions held by the licensed coaches (Mera events 2020). Quila Raipur Sports Festival has been held in the state of Punjab. This festival is also known as Indian Rural Olympics wherein the events such as Kabaddi, Martial Arts, Wrestling, Tug of War, etc. are organized. It is 3 days sports festival normally organized in the month of February. Many sports enthusiasts including foreigners come and witness this rural Olympic. Millions of spectators arrive and make this event a huge crowd puller. In the evening several cultural performances are organized by the local people. They showcase their culture by performing folk dances and music, stunts with the help of vehicles, fire, or animals. (Iltadmin 2014).

SWOT Analysis of Tourism in North East Region (NER)

Strength

- Entire the region in North East India is enriched with heritage and cultural backgrounds.
- Wide varieties of Flora and Fauna are found here with many rare species.
- Ethnic tribal groups having unique traditions and customs.
- Abundance of bamboo which boosts many industries like incense sticks, handicrafts, etc.
- Air Index Quality is better compared to other industrial states which makes favorable choice of destination.
- Nature based tourism like Majuli- the world's largest River Island, Kangchenjunga- highest the peak of India, etc.

Weakness

- Lack of accessibility and transportation system due to hilly region. Geographical isolation and steep slope make it more difficult.
- Climatic the condition does not support many industries to groom. Natural calamities like floods, landslides, and earthquakes led to destruction in farming causes huge losses to farmers.
- Conflicted image among many tourists due to the intervention of foreign nationals.
- Various types of permits required by the tourists to enter specific areas.
- Land lock region with no access to seaports is the barrier to

development.

- Limited infrastructure like less number of hotel, bars, or restaurants.

Opportunities

- Proper marketing and promotion of North-Eastern state in terms of tourism can result in a greater height.
- Introducing tourism circuits like Tribal circuit, Wildlife circuit, North East circuit, Spiritual circuit, Heritage circuit on a large scale.
- Special Interest Tourism like Nature and Farm based tourism, Eco and Sustainability tourism, Adventure tourism.
- Activities like learning organic farming, local winemaking, plucking tea leaves, weaving traditional tribal clothes can be highlighted in order to boost cultural tourism of the North East.
- Rich in minerals and forest, types of rocks of different ages, and various other flowers, medicinal plant species which are only available here. Broader scope for the researchers, scientists, and the person of special interest.
- Development of North East International border can bring twin benefits of the increase in employability and ease in trade could develop this region.

Threat

- Political disturbances in the region due to international boundaries.
- Non-violence due to conflict among the neighboring countries, if any, may be a huge loss to the tourism industry.
- Loss to infrastructure, flora, and fauna due to natural calamities.
- Staged authenticity and commercialization are the emerging threats to tourism.
- Environment degradation, pollution, and overconsumption/ wastage of resources are downgrading the quality of tourism.
- Unskilled workers may not be able to offer expertise in their services and this may offend the tourists.

Purpose of the study

- To find out the factors that becomes the barrier for the sports enthusiast of the North East region.
- To analyze whether culture supports the tourism of the North East region.
- To find out whether sports and cultural tourism boosts the economy of the North East region.

Methodology

The study's dimensions are largely subjective in nature. As a result, in order to establish the critical dimension of Cultural and Sports Tourism in relation to North-Eastern states, a qualitative approach was required. Data can be gathered from one of two types of sources: primary and secondary. In this study, secondary data collection is preferred in order to meet the research objectives. Several articles and research papers in the fields of cultural tourism, events, and sports tourism were considered, with the conclusions of those studies used as data for the analysis section. Following that, for each sample, a report was created that detailed the process, variables used, and major findings.

Discussion and Suggestions

The northeastern region of India is geographically isolated, culturally rich, politically active, and economically weak. The tourism of the North East is influenced by so many factors. Situated in the Himalayan belt having a pristine beautiful landscape with ample variety of biodiversity it acts as a blessing of nature at the same time the area is isolated from the rest part of India. The poor transportation, mobility, and infrastructure suppress the development of this region. Under the Union Government's scheme 'Bharatmala Project' and 'Regional Connectivity Scheme', The North East Region has given a priority. The North East is the gateway to South Asia so this could be the new engine of India's growth and development. One of the Union Government's visions is the 'Transformation through Transportation' which is totally the need of an hour. The eight states of the North East are unique in its culture and heritage. Practicing sustainability, respecting nature are some of the indigenous traditions followed here. Most of the region of North East shares the border with neighboring countries and so the region faces political gaze in the entire country. The human migration of Bangladeshi is another reason that triggers the political activeness in this region. Due to international policies and foreign relations, this region has been affected a lot in the terms of mobility, tourism, and transport. Thus, political stability becomes very crucial in the growth and development of any state. These factors do not only affect the political stability but also the economic condition of the state and its people. A statutory body North East Council (NEC) came into existence for the social and economic development of this region. Investment by private entities, collaborations such as PPP, or any other business plans by entrepreneurs, etc. is majorly restrained by these geopolitical socioeconomic factors. This led to a lack of basic infrastructures such as road, rail, airport, corporate offices, and mall. Expertise from other states is not willing to work in this region due to such hindrances. So there is a call for creating a balance between such external factors to create peace, harmony in the path of progress. After this employment opportunity will enhance, local people will get better training and institute and become competent enough to work anywhere. This will raise the living standard and promote entrepreneurship in tourism as well.

North East region is having one of the highest capabilities in tourism promotion and marketing. The region has an abundance of natural resources, vibrant culture, and rich history. North East has more than 50 Wildlife sanctuaries and national parks; it gives shelter to more than 200 tribes. North Eastern Handicrafts and Handloom Development Corporation (NEHHDC) was founded under the administration of Development of North Eastern Region (DoNER) for the promotion of the indigenous handicraft and handloom where it provides a platform to the customer as well as the craftsmen. The main aim behind the formation of this corporation is to provide training, financial and technical assistance

to the workers, conduct exhibitions, emporia, and trade fairs also giving customers value-added cultural significant handicrafts. 'National Bamboo Mission' anticipates the growth in the cultivation of bamboo, production of handicrafts, and ease in marketing.

Under the 'Atmanirbhar Bharat' campaign which stretches the attention on 'Vocal for local', the festival 'Destination North East 2020' is an effort to promote the culture, cuisine, and scenic attributes of the North East. These festivals and campaigns are the pull factors towards visiting our own country rather than going abroad. The Ministry of Tourism has launched an exciting campaign for enthusiast travelers, Dekho Apna Desh in the year 2020, under which if a tourist visits at least 15 destinations till 2022 will be awarded exciting prizes. 1000 Bar Dekho North East Dekho is a part of a promotional campaign under the Dekho Apna Desh to showcase the unique tourism product of the North East in the domestic as well as international market. This is again a pushing element towards domestic travel. Also, this can be a great idea for cultural exchange and promote mutual understanding between people of different states which is the vision of another campaign 'Ek Bharat Shrestha Bharat'. The special tour package of festivals such as Hornbill, Ziro, Bihu, Ambubachi Mela should be promoted for the twin benefits of exploring culture and tapping secluded destinations. Under the Swadesh Darshan scheme, 13 thematic circuits are launched for the integrated tourism development. The important circuits considering North Eastern states are the Tribal circuit, North East circuit, Heritage circuit, Wildlife circuit, and Eco-tourism circuit. We can find a notable opportunity here to develop these circuits based on exotic themes to lure special interest tourists.

Sports tourism is observed as one of the fastest-growing sectors in the tourism industry. In India, cricket fans are huge in number. They travel to different places even outside the country to cheer their favorite team or players. Similarly, other sports can be promoted so that spectators from all over the world may come and witness the game. It helps in increasing foreign exchange earnings through the expenditure done by the inbound tourists. ICC Champion Trophy, Cricket World Cup, Commonwealth Games, Pro Kabaddi League, Badminton World Federation is the major sports event that attracts sports enthusiasts and contributes to the economic welfare of the country. Many visitors are fascinated by the ambiance and atmosphere of the opening ceremony of these sports events. India is having the great potential to excel in sports tourism and is set for the upcoming tournaments to host. The campaign like 'Khelo India' boosts the morale of the players and also focuses on the sports infrastructure to be developed. Such campaigns, projects, and collaborations are needed to uplift sports at another level.

Contribution of North Eastern sports players in the Olympic Games cannot be forgotten. Esteemed players like Baichung Bhutia (football player) from Sikkim, Marry Com (Boxer) from Manipur, Saikhom Mira Bai Chanu (Weightlifter) from Manipur, Shiva Thapa (Boxer) from

Assam, Laishram Sarita Devi (Boxer) from Manipur, Jayanta Talukdar (Archer) from Guwahati, Lovelina Borgohain (Boxer) from Assam, Tarundeep Rai (Archer) from Sikkim, Lalremsiami (Hockey player) from Mizoram, Sushila Likmabam (Judo player) from Manipur, Sushila Chanu (Hockey player) from Manipur, Shanglakpam Nilakanta (Hockey player) form Manipur and many more are the sports leaders who set records and stands ideal for thousands of sport seekers. There's a need to take initiatives at a community level to boost our sports industry for example implementing sport as a mandatory subject in schools and colleges, hosting various sports competitions in our society or clubs and providing certificates and prizes to winners as a motivating factor. This will improve the holistic growth and development of the child and youths. At last, North East sets inspiration for other states to perform well in sports activities.

Types of tourism that can be promoted in North Eastern states:

1. Community-Based Tourism: One of the most fundamental characteristics of CBT is boosting the local economy by generating income also preserving culture and the natural environment. It's a collective responsibility within the community by offering activities like a homestay, sustainable cultivation, sharing authentic tradition and culture, etc. North East is the best-suited destination for CBT.

2. Tribal Tourism: Traveling to those destinations where the indigenous tribal population lives. The ancient tradition, cultural practices, ethnic diversity, and lifestyle of North Eastern tribal are purely unique in nature.

3. Eco-Tourism: It has 3 basic principles- traveling to nature-based destinations, empowering the locals, and minimizing the impact on the environment. Every state of Northeast is suitable for eco-tourists.

4. Rural Tourism: Visiting rural areas and indulging in the lifestyle of rural people. The traditional lifestyle, Population with low density, agriculture, and forestry as prime occupations are the basic features of rural tourism.

5. Wildlife Tourism: Observing the wild animals (Fauna) in their natural habitat which may include exploration of marine life, birdwatching, or wildlife safari. North East has plenty of Wildlife Sanctuaries and National Parks where rare species are found such as one-horned rhino, hornbill, red panda, and red giant flying squirrel.

6. Adventure Tourism: Niche tourism entails a small or larger degree of risk that may require physical exertion and some special skills. Adventure activities that can be performed in the Northeast are trekking, mountaineering, biking, rappelling, rafting, camping, paragliding, etc.

7. Special Interest Tourism: It focuses the special needs (unusual hobbies or theme-based activities) of a certain group of travelers such as dark tourism, yoga tourism, spiritual tourism, wine tourism, silk route tourism, etc.

8. Cultural, Ethnic, and Festival Tourism: Ethnic tourism places a strong emphasis on cultural traditional forms, with visitors seeking to participate in local events and festivals. Ethnic pride and togetherness are fostered by the uniqueness and importance of their folk tradition. North East is the ideal place to visit during the festivity.

9. Pilgrim Tourism: Dating back to a thousand years, the Pilgrimage was

the original kind of tourism mobility. Traveling to sacred places rich in mythological stories, worshipping sites, taking a holy dip bath are the activities of pilgrim tourism. Kamakhya temple, Tawang monastery, Paarsuram Kund, Solophok Chardham is one of the famous sites in the Northeast.

10. Sports Tourism: Traveling for the observing or participating purpose in the sports event. North East may emerge as a new destination for golf, football, or other athletics for sports enthusiasts. One can find positive sports culture in the North East which not only helps in eradicating poverty but also acts as the country's pride.

11. Tea Tourism: Traveling to tea plantation garden and learning the cultivation and plucking skills. It is one of the fastest-growing travel segment could be boosted in the Temi tea garden (Sikkim), Monabarie tea estate, Kaziranga Golf resort, etc.

Conclusion: To conclude, it can be said that Sikkim state has numerous untapped potential that may be instrumental in generating employment opportunities for the residents of Sikkim state and fairs and festival may be considered as one among them. The rich cultural diversity of the state acts like a catalyst in boosting tourism in the state. We as a researcher must carry out researches that may be helpful to the policy makers thinking for promoting pro-poor tourism concept and enabling communities to come forward for the betterment of their aboriginals in a sustained manner.

References

1. Cudny, W (2006): "Festiwal Dialogu Czterech Kultur jako przyk³ad strategicznego produktu turystycznego dla £odzi," *Turystyka i Hotelarstwo*, 10, 117-128.
2. Cudny, W (2013): "Festival Tourism- The Concept, Keys Function and Dysfunction in the Content of Tourism Geography Studies," *Geographical Journal*, 65, 105-118.
3. De Bres, K. Davis, J (2001): Celebrating Group and Place Identity: A Case Study of New Regional Festival, *Tourism Geographies*, 3, 326-337.
4. Gibson, H (1998): Active Sport Tourism, Who Participates? Leisures Studies, 17(2), 155-170.
5. Iltadmin (2014): Kila Raipur Sports Festival: India's Bizarre Rural Olympics, https://www.indianluxurytrains.com/blog/kila-raipur-sports-festival-indias/.
6. Koyalczyk, A (2008): Wspó³czesna turystyka kulturowa – miêdzy tradycj¹ a nowoczesnoœci¹, In Kowalczyk, A, ed. Turystyka kulturowa, Spojrzenie geograficzne, Warszawa (Uniwersytet Warszawski, Wydzia³ Geografii i Studiów Regionalnych), 9-58.
7. Markwell, K; Waitt, G (2009): Festivals, Space and Sexuality: Gay Pride in Australia, *Tourism Geographies*, 11, 143-168.
8. Mera events (2020): https://www.meraevents.com/event/india-on-tracks-online-sports-festival.
9. Parker, R (2019): The Remarkable Growth of Sports Tourism, *Human Kinetics*, https://humankinetics.me/2019/04/04/the-remarkable-growth-of-sport-tourism/.
10. UNWTO (2017): Press Release, https://www.unwto.org/archive/global/press-release/2017-01-17/sustained-growth-international-tourism-despite-challenges.
11. Weed, M; Bull, C (2009): *Participants, Policy and Providers*, London: Routledge.

Investigating the Impact of Code Switching in Kannada Language Songs Among Youngsters in Bengaluru City.

Ms Spoorthi A
MA Student
School of Arts, Humanities and Social Sciences
REVA University Bangalore

Dr. C. Chamundeshwari
Associate Professor
School of Arts, Humanities and Social Sciences
REVA University Bangalore

Abstract

Kannada is a language spoken by the Karnataka people in India. Code-switching is a process in which a speaker alternates two or more languages in a specific circumstance. It has become a trend to use the English language in Kannada lyrics. Code-switching songs have an impact on people. Code-switching in songs alternates between two or more languages in one vernacular song by the singer. This research aims to investigate the impact of code-switching of English words in Kannada songs to comprehend the notion of Code-switching in Kannada songs mixed with English words to understand the psychological factor behind choosing these songs. It intends to study how it has emerged as a new culture in the contemporary world. The sample comprised 111 Urban students in Bangalore. A structured questionnaire was framed to collect information using the Survey method and to ensure transparency of results. The findings of the study examined Code-Switched Kannada Songs to minimize stress and maximize mental health psychologically, and to investigate whether the hormones secreted in the brain were the reasons for influencing the structure of class for their emotions and happiness.

Keywords:-

Code-Switching, Cognition, Psychological factor, Vernacular, Kannada Songs

In linguistics, code-switching occurs when a speaker alternates between two or more languages in the context of a single conversation or situation. It is a different aspect of conversation or dialogue in bilingual and multilingual societies. This research aims to investigate the impact of code-switching of English in Kannada songs at various linguistic levels.

Isbell and Stanley (2015) emphasize that Musical Code-Switching has the potential to easily shift within styles, class, and tradition of music sharing the similar conscious and subconscious effort that clear bilinguals possess in shifting back and forth within the language and culture.

Many definitions are provided by totally different researchers for Code-Switching. Gumperz (1982) suggests that Code-Switching is the collocation inside consistent speech where there is the interchange of passages of joy in a speech to two completely unique grammatical systems or subsystems.

The idea of Code-mixing and Code-switching has essentially been studied from the initial studies in an interaction being directed by Gumprez(1982). The study emphasizes the nonliteral shift, wherever the shifts arose within the speakers it's a gratitude to their social relationships. Gumperz (1982) illustrates nonliteral code-switching from three languages (Hindi and English, Slovenian and German, and Spanish and English) altogether to identify speakers' usage of languages to explain information that ventures outside the actual words and specifically to outline social things.

Code-switching in communication is distinct from one that is observed in music. (Bentahila and Davies, 2002; Sarkars & Winer, 2005). This specifies that the admixture of two languages in one specific song lyrics is a continuous process nor it is closer. It isn't limited to a speaker or a group that has close contact with the speaker. Hence, Localization and Globalization enhance the major parts of Code-switching during a conversation. The Code-Switching works to gather rhetorical and aesthetic elements in the lyrics. Code-Switching helps the bilinguals and works as a poetic device. Therefore, Code-Switching in interaction is quite different when compared to it in lyrics. Code-Switching in lyrics is a supreme language variation used by musicians who have assembled the necessary requirements of lyrics prior to the release date of songs.

Review of Literature

The present paper focuses on the empirical scope of studies on mixed languages. In particular, the focus is on the functional roles of code-

mixing, on questions such as: Why do bilinguals' resort to code-mixing? What attitudinal implications, if any, do mixed languages carry?

Muhammad Moneeb Ali. et.al, in their research paper "Effects of code mixing in Indian film songs," focused to find out the factors and consequences of Code-mixing in Indian film music on adolescents. This research was conducted on 100 students of Lahore. It further revealed that all the statements asked were clearly accepted by the subjects to show that factor and consequences in their individual perspectives.

Sapna Bhat and Shyamala Chengappa in their research paper "Code switch in traditional and Aphasic Kannada English Bilinguals" meant to analyze the common and varying factors in code-switching etiquettes of Kannada – English aphasic and neurological people who can speak two languages in a conversation. The analysis of four subjects from the language questionnaire resulted that a combination of two languages being used every day.

Methodology

It is a quantitative study. The methodology chosen for this study is the survey method. The respondent to the study were 111 students aged between 18 and 24 years. Along with this telephone conversation was conducted with an individual. The Geographical boundary in which the study was conducted was Bangalore.

The research study on Code-Switching in Kannada songs mixed with English words. A structured questionnaire was framed to collect information. A survey method was chosen for the research. It focused on a large number of respondents to ensure transparency of results.

The survey was conducted on Undergraduates and Postgraduates of urban areas of Bangalore.

It was measured that a greater number of songs had the combination of English words in Kannada songs. In the next procedure, fifteen statements were asked to find the impact of code-mixing in Kannada songs mixed with English words. The random sample technique was the method used in the research. A telephone interview and 111 students of Undergraduates and Post-graduates from Bangalore along with people familiar with the Kannada language and Kannada songs were chosen. For the further categories of perspectives, quantitative data was employed for well-organized research.

Data Analysis

The telephone interview was conducted on an individual named Navya. M.K aged 22 years. The interviewee responded that she is familiar with many Code-switched

Sr. No	Questionnaire	Strongly Agree %	Agree %	Disagree %	Strongly Disagree %
1	Do you think that the combination of Kannada songs with English words makes the songs pleasurable?	**22.5**	**63.1**	**9.9**	**4.5**
2	You listen to Kannada lyrics mixed with English words as it gives you a positive vibe.	**19.8**	**51.4**	**25.2**	**3.6**
3	You prefer to listen code-switched Kannada song with English words for entertainment.	**13.5**	**59.5**	**26.1**	**0.9**
4	A particular mood may drive you to select a code-switched song. For example, when you listen to Kannada song mixed with English lyrics your mood elevates and gets refreshed after listening.	**18.9**	**50.5**	**26.1**	**4.5**
5	'Chandan Shetty' composed Kannada songs mixed with English words can make you dance for the fast beat.	**37.8**	**54.1**	**7.2**	**0.9**
6	Code -switched song like 'Nodamma Hudugi' from Premaloka movie is more elegant to rejoice and easy to recall for its rhyming pattern.	**38.7**	**58.6**	**2.7**	**0**
7	'We miss all the fun' from the film 'Vishnu Sena' has a pleasing effect on you for its English words in Kannada lyrics.	**34.2**	**53.2**	**11.7**	**0.9**
8	'We miss all the fun' from the film 'Vishnu Sena' has a pleasing effect on you for its English words in Kannada lyrics.	**41.4**	**51.4**	**7.2**	**0**
9	Do you feel code -mixed Kannada songs with English lyrics brings a sense of belonging to elite class and superiority?	**18**	**51.4**	**27**	**3.6**
10	You feel like Kannada song mixed with English lyrics has formed a new culture in the contemporary world.	**21.6**	**66.7**	**10.8**	**0.9**
11	In the contemporary world a greater number of Kannada songs contain one English word or phrase.	**20.7**	**73.9**	**4.5**	**0.9**
12	There are few Kannada songs when mixed with English lyrics that acts as the stress-booster. Listen to the audio by viewing the given link and respond.	**27.9**	**61.3**	**9**	**1.8**
13	When listened to songs of Rap singers like Alok R Babu for the song 'All Ok' and Chandan Shetty composed Kannada songs mixed with English words it equips certain emotion in you.	**31.5**	**56.8**	**9**	**2.7**
14	Songs like 'Come on I Say' from 'Ambari' and 'Car Car Car' song from 'Nanna Preethiya Hudugi' while travelling triggers certain memories.	**27.9**	**64**	**7.2**	**0.9**
15	You listen to Code -switched Kannada song mixed with English word because you like the actor. For example, You listen to 'My name is Raj' from the film 'Havina hede' .	**19.8**	**60.4**	**16.2**	**3.6**

Kannada songs mixed with English words. She states that these Code-switched Kannada songs mixed with English words weren't just in the contemporary period but were also present in the 1970s and 1980s period. She responded that this pattern makes her feel that it is trendy, and part-feel and she also feel like these songs are brings a sense of posh feeling when heard. She mentioned that the complete Kannada song will be in a single format but the mixture of two languages makes her feel that there is uniqueness in the combination of Kannada songs mixed with English words. She illustrates that 'Smile Iruvanthe Sarasari' is a combination of Kannada songs mixed with English words from the film 'Simple Agi Ondh Love-story' during traveling made her feel rhythmic for the tone. She also brings into the picture that a complete Kannada song sometimes isn't clearly understood but when it is mixed with English words it gave her complete meaningfulness for the song.

Findings

- **86% believed that the Combination of Kannada songs with English words makes the songs pleasurable because of the release of dopamine which is a neurotransmitter that increases happiness.**
- 71.2% opined that students listen to Kannada lyrics mixed with English words as a good vibe code-mixed song builds a healthy atmosphere and one can behave in a positive way with good mental health by eradicating frustration, anger, anxiety, and fears.
- 62.3% prefer to listen to code-switched Kannada songs with English words for entertainment because it is widespread in the general life of a multilingual society and attracts the attention of the audience.
- 55% clearly indicates that a particular mood may drive you to select a code-switched song because it activates the brain that inspires to move further.
- 92% state that 'Chandan Shetty' composed Kannada songs mixed with English words has the ability to make you dance because of the non-stop beats and get a party mood irrespective of any place.
- 97.3% had an opinion that that Code-switched song like 'Nodamma Hudugi' from Premaloka movie is

more elegant to rejoice and easy to recall because it becomes easier to sing and gives predictable joy. Also, it is said that repetition of any song, story, and poem improves memory and thinking skills.

- 87.3% thought that 'We miss all the fun from the film 'Vishnu Sena' has a pleasing effect on you for its English words in Kannada lyrics because it increases recollection performance, especially for the songs in a highly pleasant musical context which releases serotonin in the brain which creates happiness.
- Only 54.25% of the students agreed and stated that '3 peg ' Kannada song could be easily memorized by you for its combination of English and Kannada words.
- 54.25% of the students opined that code-mixed Kannada songs with English lyrics bring a sense of belonging to the elite class and superiority. The respondents were of the fact that code-mixed songs are mostly liked by the upper class as it brings them a feeling that they are exclusively educated.
- 69.5% opined that more norepinephrine is released which invokes the feeling of euphoria while listening to code-switching.
- 95% thought It might be because people want to identify themselves in a particular social ranking or position to gain respect. Also, maybe to sound more approachable.
- 64.1% stressed that acts as the stress-booster as it has the ability to put some sunshine in an individual's mood and maintains emotional stability.
- 88.3% agreed that when listening to songs of Rap singers like Alok R Babu for the song 'All Ok' and Chandan Shetty composed Kannada songs mixed with English words it equips certain emotion in you. It is because of vocal dynamics and high perturbation of combination songs that invoke certain feelings like sudden happiness for the high-frequency tone and sadness for the low-frequency tone.
- 92% agreed that songs like 'Come on I Say' from

'Ambari' and 'Car Car Car' song from 'Nanna Preethiya Hudugi' while traveling triggers certain memories as this combination of Kannada songs mixed with English words have the ability to evoke memories and association from the past.

- 80.2% thought that that Code -switched Kannada song mixed with English word love because they liked the actor.

This research was carried out to study how Code-Switched Kannada Songs are a source of great interest in students, how Code-Switched Kannada Songs minimize stress and maximize mental health psychologically, and to investigate whether the hormones secreted in the brain were the reasons for influencing the structure of class for their emotions and happiness when Code-Switched Kannada Songs have listened. The rapidly growing culture in the contemporary world has a lot more to offer regarding the Cognitive aspect of Code-Switching in Kannada songs mixed with English words. Thus, Code-switching has paved the way for a new culture by accessing a greater number of people.

Conclusion

The combination of Kannada songs with English words is a part of a bilingual culture that makes a way for the development is a cognitive state of an individual.

As defined by Isbell and Stanley (2015), Musical code-switching has the ability to fluently switch between styles, genres, and cultures of music with the same level of conscious and subconscious effort that fluently bilingual individuals have in switching back and forth between language and culture. Also understanding a few concepts related to the same, a data analysis that was made helped in the understanding of the 'Cognitive aspects of Code Switching in Kannada Songs mixed with English words. From the reference made it was observed that most of the respondents agreed to all the given fifteen statements.

The results of the study highlight the impact of Code Switching in Kannada Songs mixed with English words' are pleasurable, has positive vibes, has pleasing effect, can be easily memorized, has a sense of belonging to elite class, acts as a stress booster, equips certain emotions and forms a new culture in the contemporary world. According to the respondents code-switched Kannada songs mixed with English word has a positive impact on their mental health in terms of understanding, memorizing and keeps one in a healthy state.

Bibliography

Bentahila and Davies, 2002; Sarkars & Winer, 2005 enhances that Code-switching in communication distinct from one that is observed in music. DOI: https://www.researchgate.net/publication/234765437_Language_Mixing_in_Rai_Music_Localisation_or_Globalisation

Gumperz.,(1982). suggests that Code-Switching is the collocation inside consistent speech where there is interchange of passages of joy in speech to two completely unique grammatical systems or subsystems. DOI: jstor.org/stable/24672251

Isbell and Stanley(2015)., Code-switching musicians: An exploratory study. DOI: https://www.researchgate.net/publication/309100506_Code-switching_musicians_an_exploratory_study

Muhammad Moneeb Ali1, Mazhar Iqbal Ranjha2 and Sartaj Fakhar Jillani3 "Effects of code mixing in Indian film songs." DOI:https://www.academia.edu/31030902/Effects_of_code_mixing in_Indian_film_songs

Patrapee Chairat equips the attitudes and optimistic side of combination of Thai songs with English words ton adolescents and middle aged group. DOI: https://so04.tci-thaijo.org/index.php/NJLC/article/view/46944

Rahmawaty Kadir .,(2021). Aimed on studying four types and functions of Code-Switching. DOI: file:///C:/Users/CSC/Downloads/13314-36850-4-PB%20(2).pdf

Sapna Bhat and Shyamala Chengappa highlights to analyze the common and varying factors in code-switching etiquettes of Kannada – English aphasic and neurological people who can speak two languages in a conversation. DOI: http://www.lingref.com/isb/4/023ISB4.PDF

The essence of Raga Purbi in the Tagore song

Dr. Krishnendu Dutta

H.O.D & Associate Professor, Dept. of Music

Sikkim University

Abstract

The Raga 'Purbi' has a special place in the creations of Rabindra Nath Tagore. The Songs created by Rabindra Nath Tagore known as 'Rabindra sangeet' a rich genre of Indian music. The naming of an entire poem is also 'Purbi'. Rabindranath says about Purabi raag that Purabi is like the lonely widow's evening tears. This paper has been studied with a purpose to explore the thought and emotions beneath the song created by Tagore in Raag purbi. Analysis of the importance and significance of the Raga purbi in Rabindra Sangeet is the main aim of this brief study. Also, a small description of the Tagore songs based on Raag Purbi will be discussed here.

Keywords

Tagore songs, Raga *Purbi*, *Rabindrasangeet*, music.

'

I do not accept the dictators who have tied Hindustani music to the shackles of ritual. Those who say that the new creation of the new age has no place over the great role of Indian music; There is an insurmountable cycle of re-rotation of handcuffed prisoners. The rebels like us have born to fight against this kind of negativity.'[1]

Purbi is an evening raga. In his essay 'Sandhya o pravat', Rabindranath highlights the special form of evening; it's English rendition will be like this- 'Everyone here passed the last ferry in the grey light. They have spread kantha in the courtyard of the hotel. Someone or someone alone or a partner is tired. What is on the way ahead could not be seen in the dark. What was on the way back was whispering in my ear. Speaking is bound to happen; Then it is silent. Then up from the courtyard lo*oking up, the ursa (Saptarshi) has risen in the sky.'*

Sun God, this evening to your left, this morning to your right; You combine them. Let her shadow take her light in her lap and kiss her once, let purbi bless her vibhas and leave. This raga of the last stage of the day was very dear to Rabindranath. Several of his songs are composed in this raag Purbi; Such as *'Ashrundir Sudur Pare', 'Aji a anandasandhya', 'Nivrit Praner Devata',*

'Bina Bajao Hey', *'Toma Lagi Nath'*...etc.[2]

The objectives of the study:

This paper has been studied with some purposes these are-

- To explore the creation of Tagore songs
- To study the importance and significance of raag purbi in Tagore songs.
- To understand the aesthetics and emotions of raag purbi.
- To get an overall idea of modes and uses of the raag purbi in various songs.

Methodology:

The conventional data collection methods for music research have been applied to study this paper. For example- documents and books on *Rabindrasangeet* i.e., Tagore songs were studied, the rare books and documents on Indian Raagas, and created by Tagore were studied and explored regarding this purpose.

The features of Indian Ragas:

1) No raga uses less than five tones. Exception- Malashree. sa ga pa na aa, sa pa ga pa ga sa.

2) The 'ma' and the 'pa' are not excluded at the same time in any raga - because the two tetra chords from Sa to Ma and Pa to higher octave have the connecting bridge i.e., Ma and Pa notes. When these two tones are discarded together, the melody balance is lost.

3) The difference between the *Badi swara* or the *Sambadi swara* is the eight or twelve *Shrutis*.

4) Pt. Ahobala has presented an aesthetic idea about raga-ragini - *'Ashadharan dharma je lakshanatnen kirtitah ||'*.[3]

When it comes to Rabindranath's classical music, the first thing that comes to mind is the Brahma sangeet. Apart from discussing the richness of their language and style, if we discuss the melody and rhythm of the *bhrahma sangeet,* many information can be found about the gems of ancient classical or classical music. Apart from the classical ragas, he has also composed songs with his own words in the conventional melody of bhajan songs. Needless to say, the beauty and charm of his translation. Here are just a few examples.

On raga *Hem-khem* and taal- *chautal*-a classical song has been translated so beautifully that the original song and its translation quoted here could not be restrained.

The original dhrupad song-

"*Saba mili gaaori, mili manglacharo* |
Aaj bhadhao mari piya ghare |
Mangal gao chokh purao,
Manjari bajao dou ghare |"

Rabindrasangeet -

"[*sabe*] *mili gao re,mili manglacharo*|
Daki laho hridaye priyotame |
Mangal gao Ananda mone,
Mangal pracharo vishva-majhe |"[4]

Raga form of Rabindra Sangeet:

1) Although Rabindranath did not learn music traditionally, ragas were established in his heart. The systematic use of Sthayi, antara, sanchari, avog / chartuk in rag-based songs and the difference between antara and avog tuk gives evidence of his deep introspection, vision and

assimilation.

2) 'Shuddha Dha' i.e., natural dha or 'Komal Dha' i.e., flat dha was used in raag Kanara of Betiya gharana. However, there are two types of 'dha' is in use in the Gwalior gharama. In Rabindranath's '*jagate tumi raja*' two dha-s are in use.

3) In the Gwalior and Jaipur gharana, sudhha 'ga' is used in the raga *Gaur-Malhar*. In his dhrupadanga songs, Rabindranath uses the flat or komal 'ga' in raag *Gaur* and the natural or sudhha 'ga' in the raga *Gaur Malhar*.

4) the popular form of raga *Desh* in Bangladesh can be seen in Rabindranath's songs.

5) There are four types of raag *Jhinjhoti* in the Hindustani system:

a) Shudh - jhinjhoti
b) Kasauli- *Jhinjhoti*
c) Nurpuri - Jhinjhoti
d) Pahari - Jhinjhoti

But Rabindranath has accepted only raga *Jhinjhoti*.

6) The ancient raga *Todi* in Bangladesh was similar to that of *Karnataka-Todi*. The Hindustani *Todi* came much later. Rabindranath did not use the Hindustani raag *todi* with kari 'ma' or sharp 'ma'.

7) Rabindranath has composed the song *'Prothom Adi Tab Shakti'* following the song *'Prothom Aad Shiva'* based on raga *Sohini*.

8) It is not appropriate to use the name Deepak Pancham Raga instead of the name Sohini Raga with sudhha 'ma' of Betiya or Kashi gharana.

9) Rabindranath's *Nachari* / *Todi* is close to '*Lachari'* of Jaipur Gharana. *Lachari* has similarities with *Barowa* Raga.

10) Rabindranath's *Vibhas* is a common *Vibhas* in Bengal. Its tune can be heard a lot in folk music.

11) In South Indian music, the note 'Ni' of Bihag sounds between *Kaishik Nishad* and *Kakali Nishad*. Rabindranath's Behag Raga has a use of Komal 'Ni'. Kshetramohan Goswami calls this form of Behag as *Bihag* or *Bihagari* Raga. Examples of Behag, Khambaj Raga are in Rabindra Sangeet.

12) In ancient times, Multani Raga meant Multani Dhanashree Raga.

13) In Bishnupur gharana the conventional form of *Sudhha Malhar* is popular. Exceptional use of *Malhar* with Komal 'Ga' also exists. Rabindranath accepted all kinds of Malhars.

14) sudhha 'dha' was predominant in the ancient raga '*Megh'*. This trend is flowing in Rabindra Sangeet.

15) 'In a four-minute song, he has said a lot, which is to sit quietly and think, to analyse. It's not just a matter of feeling good, feeling bad or complaining. Thoughtfulness is the originator of the song; it needs a thoughtful listener to enjoy the song.[5]

Raga Purbi in Indian music:

A) According to Kalpadrumankur: -

"Purbi Ragah: sakalbiditah: Komalavang Ridhavang.
Madhyastibro Mridurpi Sadaivatra Tibrau Gani Stah:.
Go badyatra prabilasati tatva sahacharye nisadah:.
Sampurnohasau sarasabibudhaih: sayameb pragitah:."[6]

B) According to Chandrikayam: -

"Mridhu Ridhau Madhyamau Dvau Badisamvadini Gani.

Purviragah: Sayamuktah: Purnarohabarohanah..."[7]

C) According to Chandrikasar:

'Komal ri-dha, tidabar g-ni, dou madhyam lag.

Ga-ni vadi-samvadi te banat purbi raag.'[8]

D) 'Purabi-Shankarabharana Jata:

"*Matantare Chari rupe bikyata*||

Kedara Sarang Deepak aar|

Belayal Joge janam tar||

Bidhat Surete Giri Bidhan|

Diba Dui Jaame karibe Gaan||"[9]

E) Rahang Sukantang Priyamanpatra:

"Boling yahatti kuchakumbhayugo.

Durbadalsyamatanuh: sakama

Puratnaih: Sa Purabi Nirukta.

Iti Purbi."[10]

F) The meditative form of the Purbi Raga: -

Nidralashya Gatrakapten Yukta

Kantang smaranti biraha Praparna

Soundarya Labanya kamalaya Takshi

Sa purbi sesdine turiya ||

Nidralashya | Jar deha kapatatamay | Biraha, bidhura sei nari premiker chintay magna ||[11]

G) There is an earlier mention in *Sangeet Parijata*. According to this, the *purbi* raag was in "*Gauri*" *Mela* (i.e. the present *Bhairab Mela*). Currently raag Purbi although there is a separate *mela* in the name, there is still use of flat or komal Madhyam in Purbi and purbi cannot be sung without this Flat or komal Madhyam.

At present the Purbi thhat are Sa, Komal Ri, Tibra Ga, Tibra Ma, Pancham, Komal Dhaibat and Tibra Nishad. Although Komal or flat madhyam is used in the purbi, Komal or flat madhyam is not given in the Purbi. There are some other ragas in the purbi thhat such as *Basanta*, *Paraj* and a kind of Lalit Pancham and another thing is that it is understood that when a raga moves away from the previous *mela* and uses the notes of another *mela*, the nature of the purbi is maintained upto certain limits like- the notes of *Gouri Mela* are being used. This is the rule of progress or evolution. This is why they are now considered to be the *Purbi mela*. The purbi raga has now become distinct and the purbi types raga is now considered in the purbi mela.

Currently the purbi is two types. One kind of flat Dha and another kind of sharp Dha. According to some, the dhaibat that takes place in the purbi is between flat and sharp Dhaibat and there are many differences between the Dhaibat of *Bhairab* and the *Purbi*. This cannot be denied. Anyway, the sharp Dhaibat Purbi raga was popular in Bangladesh.

At present, the flat Dhaibat Purbi raga is in practice. This rage is *Sampurna*, the two Madhyams are used and are sung in the evening. Vadi Gandhar and Samvadi Nishad. Singing is supposed to be done in the last hours of the day but the chances of singing are usually higher in the evening. Sometimes two Dhaibats use are seen.[12]

Arohan- Ni Re Ga >a Pa <u>Da</u> Ni Sa

Aborohan- Sa <u>Ni</u> <u>Da</u> Pa >a Ga <u>Re</u> Sa

Dekho Naki, Hay, Bela Chole Jay,

Sara Hoye Elo Din |

Baje Purabir Chhande Rabir Sesh Raginir Bin | (Leelasangini)

Age	Songs and Lyrics	Raga	Taal	Parjay	Swarabitan and notation	Composition time	Publication	Music Context in song
21	…oi chole gelo	Purbi	Aratheka	Puja and Prathana 11	27/ Brahmasangeet (6th)	April, 1886	Tattvabodhini 1805 saka 1290 jaishtha 25	
23	Je phul jhore sei to	Purbi or Mixed Purbi	Ektal/Qawali	Prem 387	51	May, 1885	Visva Bharati magazine 1375 sraban aswin	
24	Dekh dekh duto pakhi	Purbi or Mixed Purbi	Trital		49/ "Balmiky Pratibha"	March, 1886	Ganer Bahi B. Pr. 265	
25	Toma-lagi, nath (main-Tumi bin raho)	Purbi	Choutal	Puja 429	22/ Brahmasangeet (2nd)	February, 1887	Ganer bahi (Brahma)358	
26	Sranto keno ohe pantho (main-?)	Purbi	Trital/Qawali	Puja 457	4/Brahmasangeet (1st)	February, 1888	Ganer bahi (Brahma)389	Sova gandha Sangit
27	Oi ke amay phire dake	Purbi	Kaharwa/Qawali		48/ "Mayar Khela"	December, 1888	Ganer bahi (Miscellaneous) 172	
28	Ami nisidin tomay valobasi	Purbi,Goun	Trital/Dadra	Prem 143	28/ "Raja o Rani" geetmala	August, 1889	Ganer bahi (Miscellaneous) 95	
34	Bela gelo tomar poth cheye	Purbi	Ektal	Puja 148	10/Geetimala	September, 1895	Rabindra Prativa 268	Khelar Bashi, sankha baje
38	Diner bichar karo	Purbi	Ektal	Anusthanik 20	Nil, it is assumed as not his composition	1899	Tattvabodhini magazine 1821 saka, p. 181	
38	Vanga deuler debata	Purbi	Ektal		Nil, 'Kalpana'	May, 1900		
39	Ghate bose achi anmona	Purbi	Ektal	Puja 178	4/ Brahmasangeet (1st) 'Naibedya'	July, 1901	Tattvabodhini magazine 1824 falgun	
43	Tumi je amare chao	Yaman, Purbi/ Bhupali	Trital/ Qawali	Puja 298	60	1311, 23 ashar, Friday	Visva bharati magazine	
44	Amar godhulilagan	Purbi (Da)	Dadra	Puja 141	33 "Kheya"	January, 1906		Purabir sure bashi baje ki mantre gane sab gan sere
46	Bina bajao he (main-bin bajai re)	Purbi	Dhamar	Puja 409	25/Brahmasangeet (5th)	February, 1908		Bina bajao anandito taan sunao
47	Aji e anandasandhya (main-bahur bajao banshi)	Purbi	Teora	Puja 320	25/Brahmasangeet	February, 1909	Tattvabodhini 1829 saka	Kiransangite Sudha barashe
48	Nibhrita praner debata	Purbi	Ektal	Puja 300	38/Geetlapi	January, 1910	Tattvabodhini 1830 saka	
52	Tumi jano ogo antarjami	Yaman, Purbi	Dadra	Puja 244	39/ Gitimalya	26 February, 1914		
53	Mora cholbo na (baulanga)	Purbi/ Yaman	Dadra		7/Falguni	7 March, 1915		
53	Sondhya holo go, uma	Yaman, Purbi	Ektal	Puja 160	40/Gitimalya	20 May, 1914	Tattvabodhini	
54	Emni korei jay jodi	Purbi	Teora	Bichitra 59	16	13th April, 1916	Prabasi, 1322 sraban	

The sad picture of the end of the day in the poem 'Sesh Basanta' has been revealed-

Bela Kobe Giache Brithay
Ato Kale Bhule Chhinu tai |
Hotat Tomar Chokhe Dekhiachi Sondhyaloke
Amar Somoy Aar Nai |

The feeling of the turbulent waves of the river is found in the poem 'Khela'. So, the question arises in his mind-

Sandhyebelay e kon khelay korle nimontran?
Ogo khelar sath?

Farewell to the poet is not just sad. In the poems of 'Purabi', images of farewell, twilight and evening have appeared again and again and expression of Purbi raga is been captured.

Khanto hou, dhire kao kotha | ore mon,
Noto karo sir | diba holo somapon,
Sandhya aase santimoyee | timirer teere
Asonkhya Pradip jala a biswamandire
Elo arati bela | aii suna baje
Nishabda Gambhir jantra ananter majhe
Sankhya ghanta dhwani | dheere namaiya aano
Bidroher ushna kantha purabir mlan-manda sware |

(Calm down, talk slowly. Oh mind
Bow down the day is over,
The evening comes peacefully. Of the edge of the dark
The innumerable lamps are lit in the world temple
The prayer time is now. Hey listen
Silent serious instrument in the middle of eternity Conch bell sounds.

Slow down the warm voice of rebellion is in the faint-evil tone of the purbi.)

At the time of parting, the pain of not finding of poet is deep. In fact, the poet's own dominance can be seen in purbi poetry, his farewell imagination is involved in the recollection of the poet's life. Purbi raga is a mixed phase raga of day and night. Reminds of its farewell tune-

Jagat ta kebol 'pabo' 'pabo' bolche na | sange sange
Bolche 'chharbo' 'chharbo' | sristir godhuli logne 'pabo'r sange 'chharbo'r
Bie hoye geche-re – tader mil vangley sob venge jabe | (Falguni)

(The world is not just saying 'owing' 'owing'. also saying with this 'leave' 'leave'. At the twilight of creations 'owing' got married with 'leave' - they broke up all will be broken.) (Falguni)

Here is a brief description of Tagore's work on Raag Purbi is given below as table-

A

Conclusion:

There are differences of opinion about the Purbi. Some use Sudhha or natural Dha, some use Komal or flat Dha. Again, some uses both Dha. According to Seniagharana Veenkars, Purabi was with *'Chari Komal'* (D'). Later it was gradually *sudhha Dha* in Bangladesh and in the West, it was Flat or komal Dha. (Pandit Ravi Shankar 'Desh' 16-1-93). Rabindranath was influenced by Bengali or Bishnupuri Purbi. In the Bishnupur gharana, Purabi is with

Natural or sudhha Dha. Vadi-Samvadi = Ga-Ni. Evening raga. Arohan/Aborahan= S R G > P D N/ ` N D P > G R S. In the descent, the Sudhha or natural Madhyam is used crookedly – Like the *Yamankalyan*. The use of sudhha Dha is mentionable in the songs like *'Toma Lagi Nath'*, *'Ghate Bose Aachi'*, *'Shranta Keno Ohe Pantho'*, *'Bela Galo Tomar Path'*, *'Emni Korei Jai Jadi'*, *'Veena Bajao'*, *'Aji A Anandasandhya'*, etc. He has mixed Yaman raga with Purbi in many songs. Such as '*Anek diner moner manus'*, '*Sandhya holo go'* etc. Somewhere in such mixed songs he has imported a little Flat Dha such as '*Ashrunodir sudur pare'*, or '*phool bole dhonnyo ami*'. The main song of the song *'Ki Dhwani Baaje'* is based on Purbi raga. However, in the broken song no use of Sudhha Madhyam can be considered as *Puria Kalyan* or *Purbi Kalyan*. However, as per the note combination the song is based in the purbi raga. Though Tagore has used raag Purbi for his creations but he has assimilated the essence of raag Purbi in his heart then it reflected through his work. He has an oeuvre of songs that he created in different phases in his life in different situation. It can not be discussed in details in such limited span but all we can realize is the only greatness, love, aesthetical appeal and emotions beneath the songs while listening or singing.

References:

1.Rabindranath Tagore, 'Sur O Sangeet'; Sangeetchinta, Visva-Bharati, Calcutta, 1392, p. 130

2.Bhupendranath Shil, 'Rabindrabhabnay Raga Purabi', Rabindrabharati Society Sahitya Patra; 25th Baishakh, 1397 (1990), p.51

3." Touratric; Rabindra Sangeete uchhangasangeet – Sri Barid Debbarman; 1368 Kartik. 38: 7. P. 97-98.

4.Arun Bhattacharya. 'Rabindra Sangeete ragmishraner itihaas'; Rabindra Sangeetayan; 1389/1395 (1988); Page 109

5.Bimal Roy, 'Rabindranath O Ragaragini', West Bengal State Music Academy, 2nd issue,1404, p. 45.

6.Vishnunarayana Bhatkhande; *Hindustani Sangeet Paddhati*, 2nd volume, Dipayan; Kolkata; P. 120

7.Ibid,

8.Ibid,

9.Radhamohan Sendas, *Sangeet-Tarang*; Research Institute on Indian Musicology; Kolkata; Karthik 1398(B), p. 114

10. Swami Pragyanananda; *Raag o Rup*; Sri Ramakrishna Vedanta Math; 181/1987; P. 154.

11. Bhupendranath Shil, 'Rabindrabhabanay Purabi'; Rabindra Bharati Society Sahitya Patra; 25th Baishakh, 1397; Page 51.

12. Rabindralal Roy; *Raag Nirnay*; D.M. Library; Kolkata; 1381; P.118

पुरातात्विक अवशेषों में संगीत कला का अनुशीलन

डॉ संध्यारानी

रीडर, बी. रा. अ. लो संगीत विभाग,
रा.महिला महाविद्यालय, बरेली

नीमा कलौनी

शोधकर्ती, संगीत विभाग
मा0ज्यो0फु0 रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

सारांश

पुरातात्विक अवशेषों में संगीत कला का अनुशीलन के अध्ययन का उद्देश्य यह है कि भारतीय संगीत की सर्वोपरि विशेषता उसकी मौलिक सृजन की क्षमता में है, परम्परा अथवा सम्प्रदाय को अक्षुण्ण रखने हुए गान तथा वादन में मौलिकता की अभिव्यक्ति भारतीय संगीत का वैशिष्टय है, पुराविदों के अनुसार संगीतकला और शास्त्र का उद्भव स्वयं भू- परमेश्वर से हुआ है, भारतीय परम्परा के अनुसार नटराज शिव नृत्यकला के आदि स्त्रोत है, और भगवती सरस्वती गीत तथा वाद्य कला की प्रवर्तिका है, दत्तिल के अनुसार गान्धर्व के आदि प्रवचनकार स्वयंभू ब्रहमा हैं। नाटयशास्त्र के अनुसार गान्धर्व के तत्वों को समाहित करने वाला नाट्य वेद स्वयं ब्रहमा की रचना है। नृत्यकला का ताण्डव व लास्प-रूप भगवान शिव तथा पार्वती की देन माना जाता है, संगीत का उद्गम पशु पक्षियों की ध्वनियों से हुआ प्रकृति से उत्पन्न होने वाले सहज संगीत का वर्णन कालिदास आदि की कृतियों में यन्त्र-तत्र पाया जाता है, भारत में संगीत कलाराधना प्रागैतिहासिक काल से आज तक चली आ रही है। इसका चक्षुवैसत्यम् प्रमाण प्राचीन शिल्पकृतियों से उपलब्ध होता है। पुरातात्विक अवशेष न केवल उस सभ्यता की भौतिक समृद्धि के पुरातात्विक अवशेष न केवल उस सभ्यता की भौतिक समृद्धि के परिचालक है, अपितु उसके चतुर्विक विस्तार का स्पष्ट संकेत करते हैं।

उपलब्ध पुरातात्विक अवशेषों में ही संगीत विषय में पर्याप्त प्रमाण, एवं विद्यमान है आज आवश्यकता हैं। नए अत्खननों से प्राप्त सांगीतिक जानकारियों को खोजने एवं प्रकाश में लाने की इससे अनजाने काल में अज्ञान की परतों में दबे कितने ही अमूल्य रत्नों एवं उनके मूल्यवान ज्ञान वैभव के भंडारों की प्राप्ति होगी और भारतीय इतिहास के कितने ही धुँधले व श्री विहिन पृष्ठ आलोकित हो उ ेंगे इसमें सन्देह नहीं हैं।

बीज शब्द

दत्तिल, कालीदास, नाद जगत, चक्षुवै, भरहुत

भारतीय संगीत और सर्वोपरि विशेषता उसकी मौलिक सृजन की क्षमता में है। परम्परा अथवा सम्प्रदाय को अक्षुण्य रखते हुए गान तथा वादन में मौलिकता की अभिव्यक्ति भारतीय संगीत का वैशिष्टय है। (1) पुराविदों के अनुसार संगीतकला और शास्त्र का उद्भव स्वयं भू परमेश्वर से हुआ है। भारतीय परम्परा के अनुसार नटराज शिव नृत्यकला के आदि-स्त्रोत हैं और भगवती सरस्वती गीत तथा वाद्य-कला की प्रवर्तिका है। दत्तिल के अनुसार गान्धर्व के आदि प्रवचनकार स्वयंभू ब्रहमा है। नाट्यशास्त्र के

अनुसार गान्धर्व के तत्वों को समाहित करने वाला नाट्यवेद स्वयं ब्रहमा की रचना है। नृत्यकला का ताण्डव व लास्य-रूप भगवान शिव तथा पार्वती की देन माना जाता है। अन्य परम्परा के अनुसार संगीत का उद्गम पशु-पक्षियों की ध्वनियों से हुआ है। (2) प्रकृति से उत्पन्न होने वाले सहज संगीत का वर्णन कालिदास आदि की कृतियों में यत्र-तत्र पाया जाता है। संगीत चाहे भारतीय हो अथवा पाशचात्य आदिम काल से ही जन जीवन के साथ सम्बद्ध रहा है। आदिम मानव की संगीत प्रियता इसकी स्वाभाविक कला-प्रियता का अभिन्न अंग है। स्वयं भारत में संगीत कलाराधना प्रागैतिहासिक काल से आज तक चली आ रही है। इसका चक्षुवै सत्यम प्रमाण प्राचीन शिल्पकृतियों से उपलब्ध होता है पुरातात्विक अवशेष न केवल उस सभ्यता की भौतिक समृद्धि के परिचालक है। अपितु उसके चतुर्दिक विस्तार का स्पष्ट संकेत करते हैं। भारती की आदिवासी जातियों की संस्कृति की चक्षुवै सत्यम् साक्षात्कार कराने के कारण तत्कालीन संगीतकला विषयक परिस्थिति का सम्यक् दिग्दर्शन इसमें संभाव्य है। इसमें संदेह लेश भी नहीं। (3)

पुरातात्विक अवशेषों की दृष्टि से जो काल सबसे पहले हमारे समक्ष आता है। वह है प्रागैतिहासिक काल ऐसी ही विशाल प्रार्गतिहासिक सम्पदा का निदर्शन सिन्धु तथा हड़प्पा जैसे स्थानों में उपलब्ध है। इन सभ्यताओं का जन्म भारत में हुआ अथवा भारत से बाहर हुआ इस सम्बन्ध में पुरातत्वज्ञों में तीव्र मतभेद है। तथापि उत्खननों में उपलब्ध उनका भव्य स्वरूप इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण है। कि सभ्यता की चरम उन्नति भारतवर्ष में हुई। इसका प्रभाव भारत के अन्यान्य प्रदेशों पर पड़ा हो यह नितान्त स्वाभाविक है। दक्षिण भारतीय जनता आज भी अपने आपको इसकी परम्परा का उत्तराधिकारी मानती है। यह तथ्य उल्लेखनीय है विद्वानों के मत में भारत में उपलब्ध लिंग-पूजा तथा शक्तिपूजा के बीच इस युग में निहत है। (4)

विद्वानों के अुनसार शिवलिगों से साम्य रखने वाली आकृतियों से स्पष्ट है कि भारत में प्रचलित शैव परम्परा का प्रर्वतन इसी काल में हो चुका था। मोहनजोदड़ो में एक ध्यान मग्न योगी की मूर्ति उपलब्ध है। जिसमें योगी की दृष्टि नासाग्र पर केन्द्रित है। मृतिका की एक अन्य मुद्रा में एक देवता की मूर्ति योगासन करती हुई अंकित है। जिसमें दोनों ओर सर्पो को अंजलि-मुद्रा में स्तवन करते हुए बताया गया है। एक अन्य मूर्ति में तीन मुख तथा तीन नेत्रों का अंकन हुआ है।(5) विचारकों के मत से यह पशुपति शिव का प्राथमिक स्वरूप है। उक्त प्राप्त मूर्तियों में आसन मुद्रा और ध्यान का उल्लेख है। ध्यान आसन की मुद्राएँ योग की शाखाएँ है। नाद-जगत ;डनेपबंस वतकद्ध में भी प्राणायाम में भी अभिन्न स्थान है। ब्रहमस्थानक (सिद्वासान सिंहमुख/ अपान-मुद्रा आदि) अनेक ऐसी मुद्राएं है। जो योग और नृत्य दोनों में पायी जाती है। (6) हड़प्पा के उत्खननों में नृत्यरत पुरूष की खंडित मूर्ति उपलब्ध हुई। (7) नृत्य कला के मर्मज्ञ इस मूर्ति को नटराज शिव का स्वरूप मानते हैं। कॉसे की दो नर्तकियों की मूर्तियॉ मोहनजोदड़ों में मिली हैं। अहमदाबाद जिले में जो लोथल में खुदाई हुई है उसमें भी नृत्य मुद्रा में कॉसे की एक मूर्ति मिली है। इस कलात्मक आकृतियों से यह प्रमाणित होता है कि तत्कालीन जीवन में संगीत का पर्याप्त प्रचलन था तथा धार्मिक एवं लौकिक समारोहों में गीत वाद्य और नृत्य के द्वारा लोगों का मनोरंजन किया जाता था। गीत तथा वाद्यों के साथ ढोल, दुन्दुभि जैसे वाद्यों से संगीत की जाती थी। हड़प्पा में उपलब्ध एक चित्र में एक पुरूष को व्याघ्र के समक्ष ढोल बजाते हुए अंकित किया गया है। (8) यहॉ उपलब्ध अन्य दो मुद्राओं पर दीर्घाकार ढोलके अंकित हैं। जिनके दोनों मुख चर्म से आबद्व है। एक अन्य स्थान पर ढोलक की आकृति का वाद्य एक मृण्मयी मूर्ति की ग्रीवा से लटकता दिखाया गया है। (9) झांझ तथा करताल के समान वाद्य भी यहॉ उपलब्ध हैं। सिन्धु सभ्यता के अन्तर्गत पक्षियों की कुछ ऐसी

मूर्तियॉ उपलब्ध हैं। (10) जिनकी पूँछ का आकार सीटी के समान दिखाई देता हैं। (11)

मैके के अनुसार तत्कालीन लिपि में वीणा के समान ही चिन्ह अवश्य दृष्टिगोचर होते हैं गैल्पिन ने बताया हे कि उन आदि सभ्यताओं में धनुषाकार वीणा एवं अन्य वंशी जैसे वाद्य उपलब्ध थे तथा पाश्चात्य ऐशिया में इन वाद्यों का प्रचलन प्राचीन काल से था। (12) कुछ नृत्य के संकेत तो बीजों पर प्राप्त हुए हैं। इन पर मृदंग वीणा इत्यादि उत्कीर्ण हैं। (13)

प्रथम शती के एक शिलालेख में दत्तिल (जो कि संगीत-शास्त्र की विभूति थे) का एक उद्वरण मिलता है। दक्षिण भारत के पुदुकोट्टइ में कुडुमियामालाई नामक स्थान पर जो शिलालेख मिलता है। उसमें भी यही सात प्रकार के स्वर समूह उत्कीर्ण है इन सभी स्वर-समूहों में वही नाम है जो नारदीय शिक्षा में मिलते हैं जो शब्द उत्कीर्ण हैं उनमें प्रकार शब्द से ऐसा जान पड़ता है जो नारदीय शिक्षा में मिलते है जो शब्द उत्कीर्ण हैं उनमें प्रकार शब्द से ऐसा जान पड़ता है कि इनका वीणा पर प्रयोग बतलाया गया है कुषाण-काल के एक शिलालेख में नट के लिए शैलात्मक शब्द प्रयुक्त किया गया है। (14)

कृषाण काल की मूर्तियों में एक पुरूष तम्बूरे जैसे वाद्य पर गायन करता हुआ दिखाया गया है। और एक स्त्री दो तारों का मैण्डोलिन जैसे वाद्य बजा रही हैं। (15) शुंग काल के बाद कृषाण युग में मधुरा और गान्धार की कला-शैलियों का जन्म हुआ मथुरा की खुदाई में बाल-गणेश की नृत्य करती हुई मूर्ति प्राप्त हुई है। वेदिका स्तम्भों पर उत्कीर्ण दृश्यों में हाथ में वंशी और प्रमदा नृत्य प्रदर्शित है। (16)

भरहुत-स्तूप के शिलाखण्ड पर सम्मद का दृश्य अंकित है। जिसमें गायक वादक तथा नृत्यकर्त्रियों का चित्र अंकित है। भारत के राजा भरहुत अमरावती आदि शिल्पों तथा जावा जैसे बहुत भारत के प्रदेशों में धनुषाकृति वीणा के चित्र उपलब्ध होते हैं। इनमें तन्त्री स्थान पर तन्तुओं का प्रयोग किया जाता था तथा वादन कोण नामक काष्ठखण्ड से किया जाता था।(17)

मथुरा की इन्द्रशैल गुफा में बुद्ध का दक्षिण ओर हाथ में वीणा धारण किए हुए पंचशिख गन्धर्व रूप अंकित है। जिनका अनुशरण छह अप्सराओं के द्वारा किया जा रहा है। यही प्रसंग तख्तइबहि के उत्खनन में प्राप्त शिलाखण्ड पर अंकित है। जिसमें पंचशिख गन्धर्व का वीणा वादन स्पष्टतः अंकित है। (18) अमरावती ई0पू0 200 तथा नागार्जुन कोण्डा के स्तूपों पर उड्डीयन करने वाली आकृतियां पाई जाती हैं, जो गन्धर्वो की बताई गई हैं। अजन्ता की एक चित्राकृति में गन्धर्व का परिवार अंकित हैं। जिसमें गन्धर्व तथा अप्सराएँ नृत्यरत बतलाई गई हैं। अनुचर के हाथ में तुम्बीयुक्त वीणा स्पष्ट परिलक्षित होती है। अप्सराओं के हाथ में कास्यताल तथा तिर्यक वंशी अंकित हैं। एक अन्य अप्सरा के स्कध में आधुनिक डग्गे जैसा अवनद्व वाद्य लटकता हुआ अंकित है। (9)

मंदिरों एवं देवालयों में भारतीय संगीत की कल्पना के अन्तर्गत गन्धवों, किन्नरों, अप्सराओं और यक्षों का दर्शन होता है। बौद्धों के अनुसार गन्धर्व तथा यक्षों का अन्तर्भव भुम्मदेव के अन्तर्गत है। इसका कार्य बुद्ध तथा बोधिसत्व की परिचर्या कराना है। गन्धर्वो के संगीत विद्यापा'न होने की बात हाथीगुफा-शिलालेख से प्रमाणित होती है। इस शिलालेख में कलिंगराज खारवेल को गन्धर्ववेद बुध तथा नृत्य संगीत वादित्र में निपुण बताया गया है। बौद्धधर्म ग्रन्थों में पंचशिख गन्धर्व तथा धृतराष्ट्र यज्ञ का प्रचुर उल्लेख है। (यह भरहुत के चित्रों से स्पष्ट है।) (20)

भरहुत के अतिरिक्त बुद्धगया और रांची की कलाएँ शुंगकालीन है। इसकी मूर्तियों में वीणा (सप्तंत्री) के अतिरिक्त ढोल, डमरू, शम्प, शंख तुरही आदि वाद्य दिखाई देते हैं। नृत्य के साथ हाथ

से ताल देने की परम्परा तब भी थी। जिसे पणितल-सद्द कहा जाता है। अप्सराओं के दृश्य के साथ अभिलेख का उल्लेख देवी संगीत के सन्दर्भ में किया गया है। (21)

संची तथा भरहुत शिल्प में किन्नरों के इसी रूप का अंकन पाया जाता है। जावा, स्याम और लंका के प्राप्त शिल्पों में तथा अजंता के भित्ति चित्रों में किन्नरियों की ही ऐसी की अर्थ मानुषा अर्धविहंग आकृतियों के दर्शन होते हैं। मौर्य काल के संगीत पर दृष्टि डाले तो प्राचीन लेखों में हमें किसी न किसी प्रकार के संगीत का उल्लेख मिलता है पूर्व में उल्लिखित भरहुत-स्तम्भ और अमरावती की कला में ऐसा की प्रदर्शन है। (22)

संगीत की दृष्टि से कलिंग की गुफाओं में रानी गुफा सबसे अधिक महत्व की है। (ये दुमंजिली गुफाएँ है। जिसका उद्देश्य नाट्यशालाओं का प्रबन्ध करता था।) इसमें उदयन व वासवदत्ता और दुष्यन्त व शकुन्तला की कथा को उत्कीर्ण किया गया है। एक दृश्य में अवत्ति नरेश प्रद्योत के मस्त हाथी नलगिरी को उदयन द्वारा मधुर संगीत से वश में लाने का दृश्य बहुत सुन्दर है। (23)

गुप्त काल की संगीत विषयक जानकारी जो प्राप्त होती है उसमें सिक्के पर अंकित वीणा वादन करते हुए राजा समुद्रगुप्त का चित्र महत्वपूर्ण है। (24) अन्य गुप्त राजाओं की संगीत प्रियता का आभास उस युग की स्थापत्य कला, मूर्तिकला और चित्रकला के अनेकानेक उद्ववरणों से मिलता है। (25) भूमरा के शिव के गण भेरी झाल आदि बजाते देते हैं। (26) सारनाथ में प्राप्त एक बड़े पत्थर के टुकड़े पर नाचती हुई एक स्त्री की मूर्ति बनी हुई है। इसमें एक नर्तकी के चारों अनेक स्त्रियॉ मेरी मृदंग बॉसुरी आदि बजाती हुई दिखाई हुई है। (27)

बाद्य की गुफाओं में भी एक चित्र में नृत्य करने वाली दो मण्डलियॉ दिखाई देती हैं। वाद्य की गुफाएँ ग्वालियर राज्य के अझमेरा जिले में स्थित हैं। ये चित्र ईसा की छ'ी, सांतवी, शताब्दी के अनुमान किए जा सकते है। ये चित्र पल्लव शासक महेन्द्र वर्मा के समय में बनाए गए हैं। इस मन्दिर में अर्धनारीश्वर तथा अप्सराओं के भी चित्र हैं। (28)

ग्वालियर के दक्षिण-पश्चिम की ओर लगभगम 40 मील की दूरी पर पॅवाया में गुप्तकालीन बिष्णु-मंदिर के तारण पत्थर (जो अब गुजरी-महल के पुरातत्व संग्रहालय में लाकर रख दिया है।) के कोने में दो फीट लम्बा और दो फुट चैड़ा नृत्य का दृश्य अंकित है। इस दृश्य के मध्य में एक स्त्री अत्यन्त मनोहारी भावभंगी में नृत्य कर रही है। इस स्त्री के चारों ओर नौ स्त्रियॉ विविध वाद्य बजाती हुई दिखायी दे रही हैं ये वादिकाएँ गद्दियों पर बै'ी हैं वाद्यों में वाद्य तारों के हैं जिनमें एक वाद्य वाइलिन की बनावट का है एक स्त्री ढपली जैसा वाद्य लिए हुए है एक स्त्री मंजीरा व एक मृदंग बजा रही है। (30)

संगीत और नृत्य के विकास के लिए चन्देल शासकों ने भरपूर आश्रय प्रदान किया चन्दलों ने अनेक मंदिर बनवाए थे। बुन्देलखंड की वर्तमान छतरपुर रियासत में खजराहो में 900-1100 ई0 के बीस से अधिक मंदिर अब तक मौजूद हैं। ऐलीफैंटा (मुम्बई) की गुफा में नटराज शिव की एक टूटी हुई मूर्ति है। इसमें शिव को नृत्य की मुद्रा में दिखाया गया है। (31)

कलचुरी वंश व राजपूत काल के पुरातात्विक अवशेषों में संगीत कला के दर्शन होते हैं। जाजल्लदेव द्वारा जहॉगीर नगर में दो मंदिर बनवाए गए थे। इन मंदिरों में पत्थर पर खुदाई करायी गयी थी, इनमें से एक देवालय की बाहरी दीवार पर बिष्णु के अवतारों वराह, नरसिंह आदि तथा वादक नर्तकी, अप्सराओं आदि की सुन्दर मूर्तियों की दो कतारे हैं। (32)

राजपूतानें के अनेक राजाओं के यहॉ बहुत से चित्रकारों को भी आश्रय मिला हुआ है। यहॉ बहुत पहले ही अजंता के अतिरिक्त जम्बू, कॉगड़ा और राजपूताना शैलियों का जन्म हो चुका था। इन चित्रों का आधार रामायण महाभारत के अतिरिक्त कृष्ण

और गोपियॉ भी थी परंतु अब इनके अतिरिक्त राग-रागिनियों के चित्र भी बनाए गये अनेक चित्र मौसम के अनुसार भी बनाए गए। इस प्रकार राग-रागनियों के चित्रों के संकलन का नाम रागमाला हुआ। राग ध्यानों का सोलहवीं शती के अन्त में अंकन प्रारम्भ हुआ तो पीढ़ी दर पीढ़ी होता चला आया इसके उदाहरण मालव बूंदी मेवाड़ जोधपुर वीकानेर आदि शैलियों के चित्रों में मिलते हैं। 16 शदी के अन्त तक आते आते रागमाला चित्रकला और अनेकानेक केन्द्रों, स्थानीय शैलियों उपशैलियों से सके उदाहरण प्राप्त होने लगते हैं। गंगा यमुना के मैदानी प्रदेशों तथा उत्तर में पहाड़ी क्षेत्रों में रागमाला चित्र खूब बने हैं। रागमाला चित्रों का विस्तार राजधानी मालवा, दक्षिणी मुगल, कॉगड़ा, गुजराती, बीजापुर गोलकुंडा बुन्देलखण्ड आदि चित्र शैलियों में उपलब्ध होता है। 16वीं शताब्दी के मध्य प्रमुखतः राजधानी चित्रकला में मेवाड़ बूंदी, किशनगढ़ जयपुर बीकानेर जोधपुर अलवर, सिरोही आदि चित्र शैलियों मे इसके उदाहरण देखने को मिलते हैं। पहाड़ी चित्रकला में बसोहली, कांगड़ा, गढ़वाल, कश्मीर आदि में विभिन्न राग-रागनियों को चित्रांकन दृष्टिगोचर होता है। (33)

इस प्रकार हमें पुरातात्विक अवशेषों में संगीत कला के अनुशीलन हेतु उत्खननों से प्राप्त पुरातात्विक धरोहरों पर निर्भर रहना पड़ता है।

उपलब्ध पुरातात्विक अवशेषों में ही संगीत विषय में पर्याप्त प्रमाण एवं सामग्री विद्यमान है। आज आवश्यकता है नए अत्खननों से प्राप्त सांगीतिक जानकारियों को खोजने एवं प्रकाश में लाने की इससे अनजाने काल के अज्ञान की परतों में दबे कितने ही अमूल्य रत्नों एवं उनके मूल्यवान ज्ञान-वैभव के भंडारों की प्राप्ति होगी और भारतीय इतिहास के कितने ही धुँधले व श्रीविहिन पृष्ठ आलोकित हो उॅगे इसमें सन्देह नहीं है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय संगीत का इतिहास डॉ शरच्चन्द्र श्रीधर परांजये पृष्ठ 12
2. भारतीय संगीत का इतिहास डॉ शरच्चन्द्र श्रीधर परांजये पृष्ठ 6,7 (पाद टिप्पणी से)
3. भारतीय संगीत का इतिहास डॉ शरच्चन्द्र श्रीधर परांजये पृष्ठ 12
4. भारतीय संगीत का इतिहास डॉ शरच्चन्द्र श्रीधर परांजये पृष्ठ 4
5. हिन्दु सभ्यता (भारतीय संगीत का इतिहास पृष्ठ - 15)
6. 2008 राष्ट्रीय सेमीनार (संगीत) बी0एच0पू0 सोविनियर के शोधपत्र से ।
7. प्रबन्ध के अन्त में आकृति 8, 9 इण्डियन कल्चर खण्ड 4, संख्या 2 के पृष्ठ 1, 5, 3 पर ऋग्वेद एण्ड मोहनजोदड़ो शीर्षक लेख तथा द0मैके पृष्ठ 7,2-7,3।
10. प्रिहिस्टोरिक सिविलाइजेशन ऑफ दी इण्डस वैली काशीनाथ दीक्षित पृष्ठ 30
11. मैके अर्लिइण्डस सिविलाइजेशन पृष्ठ 136 फलक 20आ0 2 व 3।
12. वहीं पृष्ठ 141 तथा मैके कृत प्रिहिस्टोरिक इण्डिया पृष्ठ 270-271।
13. प्रिहिस्टोकि सिविलाइजेशन ऑफ छी इण्डस वैली काशीनाथ दीक्षित पृष्ठ - 30।
14. डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधर परांजये 'भारतीय संगीत का इतिहास कुषाण काल में
    शिलालेख पर नट के लिए ऐपिग्राफिका इण्डिया भाग - 1 पृष्ठ 390-18 और पंतजलि 4, 2, 66 पृष्ठ (शैलालिको नट),
15. इंडिया अण्डर कुशन्स वी एन0 पुरी पृष्ठ 96
16. ब्रज का इतिहास कृष्ण दत्त बाजपेयी संवत् 2018 पृष्ठ 85
17. भरहुत डॉ रामनाथ मिश्र पृष्ठ 62
18. ब्रज का इतिहास कृष्ण दत्त बाजपेयी संवत् 2018 पृष्ठ 85
19. इंडियाः ए शार्ट कल्चरल का सांस्कृतिक अध्ययन राम प्रकाश ओझा सन 1973 पृष्ठ 55।
20. उत्तर भारतीय अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन राम

प्रकाश ओझा सन् 1913 ।
21. भारतीय संगीत का इतिहास भगवतशरण शर्मा पृष्ठ 26।
22. उत्तर भारतीय अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन राम प्रकाश ओझा सन् 1913
23. प्राचीन भारत का राजनीतिक व सांस्कृतिक इतिहास हरिदत्त-वेदालंकार पृष्ठ 473
24. इंडियाःए शॉर्ट कल्चरल हिस्ट्री एच0जी0 रौलिन्सन पृष्ठ 107
25. गुप्त साम्राज्य का इतिहास वासुदेव उपाध्याय सन् 1939 पृष्ठ 57
26. मेड इन इंडिया, कौरनीलिया स्पेन्सर पृष्ठ 173
27. गुप्तकालीन भारत भूपेशचन्द्र सक्सेना एवं कु0 सविता दत्त पृष्ठ 34
28. पाटलिपुत्र की कथा सत्यकेतु विद्यालंकार पृष्ठ 525
29. त्रिपुरी हरिहर निवास द्विवेदी पृष्ठ 34
30. त्रिपुरी हरिहर निवास द्विवेदी पृष्ठ 61
31 चन्देल ओर उनका राजस्य काल केशवचन्द्र मिश्र संवत् 2011 पृष्ठ 254 व 255
32. कलचुरी- नरेश और काल वासुदेव विष्णु मिराशी सन् 1955 पृष्ठ 182
33. 2008 राष्ट्रीय सेमिनार (संगीत) बी0एच0यू0 सेविनियर शोध से।

भारतीय लोक जीवन और संस्कृति में लोकविश्वासों का महत्वः एक आकलन

डॉ. गजेन्द्र भारद्वाज

सहायक प्राचार्य हिंदी,
चंद्रमुखी भोला महाविद्यालय डेवढ़ घोघरडीहा मधुबनी बिहार

सारांश

सामान्य शब्दों में लोकविश्वास का तात्पर्य जनता की उस आस्था से लिया जाता है जिसे मानकर वह अपने धार्मिक मान्यताओं एवं लोकाचारों का पालन करती है। इस आस्था के प्रति जन की इस मान्यता को ठेठ विज्ञानजीवी मूढ़ाग्रह या अंधविश्वास की संज्ञा तो दे ही देते हैं; साथ ही इनकी सीमा में उन समस्त अंधविश्वासों को भी परिगणित कर लिया जाता है, जिनकी असत्यता स्वयं विज्ञान भी प्रमाणित करने में समर्थ नहीं हो पाई है। यह कहना भी असत्य होगा कि जन कहलाने वाला 'लोक' इन लोक विश्वासों को बिना सत्य स्थिति की परख किये, विचार किए अंधाधुंध रूप से उनपर विश्वास करता चला आ रहा है। पाश्चात्य जगत में प्रचलित 'फोकलोर' में भी लोकविश्वास का अर्थ ऐसे विश्वास से लिया जाता है जिसके पीछे निश्चित तर्क या विचार पद्धति नहीं होती। इसी आधार पर पश्चिम विद्वान डॉ. सोफिया बर्न ने लोकविश्वास को अंधविश्वास भी माना है। जिसे उन्होंने प्रकृति के चेतन तथा जड़ जगत्, मानव स्वभाव तथा मनुष्यकृत पदार्थों, भूत प्रेतों की दुनिया, जादू-टोना, सम्मोहन, वशीकरण, ताबीज, भाग्य, शकुन-अपशकुन तथा रोग और मृत्यु आदि से सम्बद्ध बताया है, परंतु भारतीय लोक-संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में अधिकांश भारतीय विद्वानों का मानना है कि प्रत्येक लोक समुदाय अपने लोकविश्वासों पर स्वाभाविक भरोसा करता है। प्रस्तुत शोधपत्र का अभीष्ट भारतीय लोकजीवन और लोक-संस्कृति में ऐसे ही लोकविश्वासों के महत्व का एक आकलन प्रस्तुत करना है।

बीज शब्द

लोक आस्था, कमान्यता, रूढ़ियों, लोकाचार, अंधविश्वास।

यह एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है कि जब कोई विश्वास व्यष्टिगत रूप से विस्तार पाकर समष्टिगत आकार को ग्रहण कर लेता है तब वह लोकविश्वास की श्रेणी में सम्मिलित हो जाता है। ये लोकविश्वास शुभ और अशुभ दोनों ही प्रकृति के माने जाते हैं। जिन्हें समाज ने शकुन या अपशकुन की मान्यता दी है। इन दोनों से ही भारतीय समाज प्रभावित हुए बिना अपना जीवन यापन कर ही नहीं सकता ऐसा मानने में कोई

अतिश्याक्ति नहीं होगी। भौतिक एवं धार्मिक चेतना के मूल स्त्रोत से जन्मने के कारण इन लोकविश्वासों की रचना प्रक्रिया अत्यंत धीमे-धीमे संस्कृति की मुख्य धारा और लोक जीवन में घर करती है परंतु ये एक समय ये इतने महत्वपूर्ण हो जाते हैं कि आगे चलकर परंपरा और फिर मिथक का रूप भी ले लेते हैं, और ये ही मिथक लोक विश्वास को धर्म का अभिन्न अंग बना दते हैं। धर्म, मनुष्य के सबसे बड़े समुदाय को प्रभावित करता है। इस प्रकार यह माना जा सकता है कि धर्म के निर्माण के पीछे पीछे लोकविश्वास की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है।

इन लोकविश्वासों का विस्तार इतना अधिक होता है कि क्या साक्षर, क्या निरक्षर, क्या शहरी क्या ग्रामीण, क्या गुरु क्या चेले सभी इसकी मान्यता की परिधि मे किसी न किसी रूप में आ ही जाते हैं। लोक-संस्कृति के विभिन्न अंग जैसे लोकदेवता, लोकगीत, लोकाचार, लोककथाएँ आदि सभी लोक विश्वास के महत्वपूर्ण आश्रय हैं। ''लोकविश्वासों के अंतर्गत परंपरा से प्राप्त शकुन-अपशकुनों, दिशा-शूल, स्वप्न विषयक विचारों, प्राकृतिक उत्पातों की पूर्व सूचना एवं अनुमानों आदि से संबंधित लोकविश्वासों का स्थान आता है। छठी के दिन भाग्य लेखन तथा पूर्व जन्म की स्मृति, भूत-प्रेतों से संबंधित विश्वास और ज्योतिषपरक विश्वास, कहीं जाने से पहले-शकुन विचारणीय हैं। आँगन में कौआ बोलने से मेहमान का आगमन, हथेली खुजाने पर धन प्राप्ति, पुरुष की बाँयी आँख और स्त्री की दाहिनी आँख फड़कने पर अशुभ की पूर्व सूचना, मंत्रों द्वारा झाड़-फूँक, टोना-टोटका, गाय का दान करना, कुदृष्टि लग जाने पर राई, नमक उतारना आदि को समाविष्ट किया जाता है।''[1] लोक अध्येता और प्रसिद्ध ललित-निबंधकार आचार्य विद्यानिवास मिश्र अपने स्वयं के जीवन के प्रसंगों का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि ''मैं अपने गाँव से जब लौटने को होता हूँ तो दध्यक्षत का तिलक लगाकर ज्यों ही देहरी के बाहर पैर रखता हूँ, त्यों ही बूढ़ी दादी अंचल का एक सिरा माथे पर लगाये आगे-आगे दौड़ती जाती है, घड़ा भर के ठीक दायें रखा है कि नहीं, कहीं छूँछी गागर तो मुँह बाये नहीं है? अगर पड़ी है तो उसे तुरंत औंधा कर देगी।''[2]

आचार्य विद्यानिवास मिश्र अपने ललित-निबंध 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' में एक लोक विश्वास का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि ''हरदौल की आहुति के गीत बुंदेलखंड में गाँव-गाँव घर-घर जाने जाते हैं और बिना उनके गीत के कोई भी कार्य पूर्ण नहीं होता, ऐसी प्रबल मान्यता लोकविश्वास में बस गयी है।.....वे आगे इस लोक विश्वास की उत्पत्ति की कथा बताते हुए कहते हैं.....कथा यों है कि महाराज जुझार सिंह और हरदेव सिंह (हरदौल) सगे भाई थे और दोनों के बीच प्रगाढ़ प्रेम-संबंध था, पर अनदेखना दुगलखोरी से यह बात सही नहीं गयी और उन्होंने जुझार सिंह के पास जो कि प्रायः दिल्ली रहा करते थे, एक गुप्त संदेश भेजा कि अपनी रानी का हरदौल से अनुचित संबंध है। जुझार सिंह के मन में ईर्ष्या की आग दहक उठी। वे तुरंत औरछा के लिए प्रस्थित हुए। औरछा आते ही उन्होंने अपनी रानी से कहा कि यदि तुम्हारा सतीत्व अखण्ड और विशुद्ध है तो उसकी परीक्षा यही है कि तुम अपने हाथ से हरदौल को विष दे दो। दुरन्त और दुस्साह अंतर्द्वंद्व के अनंतर रानी ने अंत में पूरी गाथा अपने दुलारे देवर को सुना दी और हर जैसे निर्विकार हरदौल ने हँसते-हँसते विष ले लिया तथा विंध्यभूमि और विंध्यभूमि की रानी की जय बोलते हुए प्राण विसर्जित कर दिये। इतने में ही जुझार सिंह को भूल मालूम हुई, पर पंछी उड़ चुका था। उस कारण बलिदान में दंपति का हृदय एकाकार होगया और न केवल औरछे में हरदौल की समाधि बनी बल्कि गाँव-गाँव हरदौल का चबूतरा बना और कोई भी मांगलिक कृत्य हो, हरदौल का गीत उसका एक अनिवार्य अंग बन गया।''3 इस प्रकार जिन मान्यताओं को सभ्य समाज बिना पड़ताल अंधविश्वास की श्रेणी में रख देता है यदि उनकी सत्यता की पड़ताल की जाए तो उनमें से अधिकांश का मूल निश्चित रूप से किसी न किसी ऐसे वैज्ञानिक तथ्य से जुड़ा मिलेगा जो समय के बहाव में बहता हुआ किसी कारण-अकारण से अंधविश्वास में बदल गया हो।

निमाड़ी लोक-संस्कृति के अध्येता डॉ. श्रीराम परिहार आचार्य विद्यानिवास मिश्र के साहित्य में परिलक्षित लोक विश्वास जैसे तत्वों का विश्लेषण करते हुए लिखते हैं कि ''लोक अवधारणाएँ और लोकविश्वास काल की अनन्त महायात्रा करते हुए आज इस ठौर पर पहुँचे हैं, तो उनकी यात्रा का यह नैरंतर्य नहीं है। उनकी पूँजी की उपादेयता को डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने जाँचा परखा है। उनकी तह में छिपी चमक को ग्रहण किया है। यह पकड़ डॉ. विद्यानिवास मिश्र के पास लोक से आयी है। डॉ. विद्यानिवास मिश्र वेद और लोक को जोड़कर उसमें डूब जाने वाले ललित-निबंधकार हैं।''[4] स्वयं डॉ. श्रीराम परिहार ने कृषक जीवन संबंधी अनेक लोक विश्वासों का उल्लेख किया है।

लोक साहित्य और संस्कृति की विदूषी डॉ. मालती शर्मा ने भी अपने साहित्य में अनेक लोक विश्वासों का उल्लेख किया है। लक्ष्मी पूजा से जुड़े हुए ऐसे ही एक लोक विश्वास का उल्लेख करते हुए वे लिखती हैं कि ''दीपावली पर सूप पीटने और फेंकने की आखिरकार क्या सार्थकता है? सूप तो सद्-असद् विवके का ही रूप है। गृहिणी उसी से सार-असार गहती है। अपने घर की श्री सम्पन्नता के लिये उपयुक्त वस्तुएँ बीन पछोर कर सँजोती है, थोथा निस्सार फेंकती है। पर, साध्य हो या साधन जो जीर्ण-शीर्ण हो टूट-फूट गया वही दरिद्र है। उससे कैसे चलेगा? उसकी जगह घर में तभी है। जब वह नया रूप पाकर आये। लक्ष्मी की उस पर निगाह पड़े। दीपावली पर गृहिणी इसी दरिद्र को सूप के रूप में घर के कोने-कोने से खदेड़कर घूरे पर फेंक आती है। खाद बनाने के लिए। और प्रतिपदा को नया सूप लाकर नया वर्ष शुरु करती है।''[5]

समाज में नवदुर्गा उत्सवों पर या अन्य किसी धार्मिक अनुष्ठान आदि के समय कुछ महिलाओं या पुरुषों के द्वारा अचानक कुछ ऐसा व्यवहार किया जाने लगता है जिसे लोक भाषा में 'देवी आना' या 'देवी खेलना' कहते हैं। इस घटना से जुड़ी लोकमान्यता को लेकर डॉ. मालती शर्मा करती हैं कि ''रात जगाते वक्त पुरखों, दई देवताओं की आत्मा और शक्ति का किसी भक्त या परिवार के व्यक्ति में प्रवेश पर भी उसका विश्वास है इसे 'दई देवता सिर आना' या 'खेलना' कहा जाता है। अतः पूर्वज पूजा, पुनर्जन्म, आत्मा की अमरता, 'छठी के आखर' ये सारे विश्वास ही लोक जीवन के रतजगों की रहस्यमयता की पृष्ठभूमि हैं। इनमें विचित्र लोकचारिक क्रियाओं से गीत नृत्य वाद्यों से पूर्वजों की आत्माओं का आह्वान किया जाता है और किसी भक्त में उनके प्रवेश पर उनसे समाधान प्रश्नोत्तर होते हैं। 'सिर आये, दई देवता, मृतात्माएँ प्रश्नकर्ता के संशय शंकाओं का समाधान कर पूरे वातावरण को आस्थामय बना देते हैं। ब्रज में जाहरपीर और देवी की जात को जाने के पूर्व का रतजगा इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। महाराष्ट्र में खंडोबा का जागरण जो पुत्र के विवाह के बाद होता हे ऐसा ही है इसमें बाध्या मुरली का नृत्यगान सारी रात चलता है। दीपक में तेल पूरने की भी इसकी खास रीति विधि है।''[6]

विदा होती कन्या के हाथ की मेंहदी का रंग, किसी स्त्री के आँचल में रुई की पौनी का रखना, विवाह में धूरा पूजते वक्त धूरे पर रखकर पूजी खीकरी, परिवार में से यदि कोई व्यक्ति घर छोड़ चला जाय तो उल्टा चर्खा चलाना, नजर, भूत-प्रेत, चुड़ैल, रोग-शोक, अलाइ-बलाइ से रक्षा के लिए इन्हें दूर रखने-भगाने की तरह-तरह डोरे, गंडे हाथ, बाँह, कमर, गले इत्यादि में बाँधना, बच्चे के हाथ में नजरियाँ, कमर में करधनी और गले में बघनियाँ पहनाना, स्वप्न में किसी को चरखा कातते देखना, स्वप्न में किसी को मृत या विवाह देखना आदि लोक विश्वासों का उल्लेख डॉ. मालती शर्मा के द्वारा अपने साहित्य में किया गया है। स्वप्न संबंधी एक लोक विश्वास का उल्लेख करते हुए डॉ. मालती शर्मा लिखती हैं कि ''यदि स्वप्न में मिट्टी भरा गधा कुम्हार को घर लाते देखे तो लड़का होगा ऐसा विश्वास है।.....अगर साँप देखे और वह हथेली में काट ले तो लड़का होगा। बैंगन, कद्दू, लौकी, दीया और केला देखे तो लड़का। मूली, तोरई, गूंजे, लड्डू देखे तो लड़की होगी। यदि गर्भिणी की

एड़ियाँ लाल और मुख मलीन हो तो लड़का। मुखवर्ण यदि दीप्ति युक्त पिलायी लिये हो तो लड़की। गर्भिणी का पेट प्रसव पीड़ा के वक्त अगर कुछ ठंडा रहे तो लड़का। यदि उष्ण हो तो लड़की। सबसे सरल पहचान है, लड़की वाली गर्भिणी की कमर भारी होती है और लड़के वाली का पेट।''[7]

देवी-देवताओं को लेकर भी लोक जीवन में अनेक लोक विश्वास प्रचलित हैं। बिहार में एक लोक विश्वास है कि लोगो की दृष्टि से अदृश्य पार्वती अपनी सातों बहनों के रथ के साथ आकाश से उतरती हैं और नीम की डाल पर पार्वती की सात बहनें एकांत में झूला झूलती हैं। नीम को लोक विश्वास में 'देवतरु' की संज्ञा प्राप्त है। भोजपुरी लोकगीतों में प्रचलित कई लोक विश्वासों का उल्लेख कई विद्वानों द्वारा किया गया है। ऐसे ही एक लोक विश्वास का उल्लेख डॉ. भुवनेश्वर प्रसाद गुरमैता के साहित्य में कचनार के पुष्प और विद्या की देवी वीणा पाणी को लेकर मिलता है वे स्वीकार करते हैं कि कचनार भी अनेक लोकविश्वासों और कथानक रूढ़ियों को अपने में समाविष्ट करता है तथा लोक-काव्य भी इन लोक विश्वासों के कारण विभिन्न प्रकारों से महिमामंडित होता है। डॉ. गुरमैता बिहार के मिथिलांचल में प्रचलित एक लोक विश्वास तथा उस पर वर्तमान विज्ञान के ऊष्णयुग के प्रभाव का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि ''मिथिला में यह लोकविश्वास है कि आँगन में या द्वार पर इसे(हरसिंगार) को लगाने से सुख-शांति छायी रहती है। लेकिन आप चाहे उसे युग का अभिशाप कह लें कि आज शांति उसकी छाया तले से भी मानो रूठ गयी है। सुख आँख मिचौली खेल रहा है। अस्तु।''[8]

नीम को लेकर एक लोकविश्वास यह भी है कि यदि नीम की डाल पर बैठा कौआ काँव-काँव की ध्वनि करने लगता है तो इसका अर्थ लगाया जाता है कि घर में कोई न कोई मेहमान आने वाला है। और पूरा घर इस भावी मेहमान की तैयारी में जुट जाता है। 'काँव-काँव' की धुन विरही के लिए आश्वासन का गीत है। प्रियतम की बाट जोहती प्रिया कौए से निवेदन करती है-

''पैजनी गढ़ाई चोंच सोने में मढ़ाई रैहों
कर परलाई पर रूचि सुधिरहौं
कहे कवि तोष छिन अटकन लैहों कतौ
कंचन कटोरे अटा खीर भरि धरिहौं
ए रे काग तेरे सगुन संजोग आजु
मेरे पति आवैं तो वचन न टरिहौं
करती करार तीन पहिले करौंगी सब
अपने पिया को फिरि पाछे अंक भरिहौं।''[9]

संख्याओं को लेकर भी लोक में कई लोक विश्वास प्रचलित हैं। कहीं तीन को अशुभ माना जाता है तो सात को शुभ का सूचक। दान देना हो तो इक्यावन, एक सौ एक, पाँच सौ एक, एक हजार एक या ऐसी ही किसी संख्या की इकाई में एक को महत्व दिया जाता है, पर वही एक यदि प्रतिपदा या पड़मा के साथ लग जाए तो निषेधात्मक माना जाता है। इसी तरह तीन, तेरह, नौ, अठारह को अधिक शुभ नहीं माना जाता। ''पाँच और सात संख्या को शुभ माना जाता है। आँगन में सात डलियाँ और माटी निकालने हेतु कुदाली को पटे पर विराजित किया जाता है। आरती-अक्षत, कुम-कुम, फूल, दूब, घृत, शक्कर, दीपक और जल, कलष से संयोजित है।''[10]

लोक विश्वास को जब किसी अनिष्ट या बीमारी आदि से बचाने के लिए सामाजिक या सांस्कृतिक मान्यता मिली होती है तब हमारे लोक जीवन में कई स्थलों पर विज्ञान मूक होकर वहाँ उस लोक विश्वास का समर्थन करता देखा गया है पर जब महामारी या बीमारियों को लोक विश्वास के कारण फैलने का अवसर मिलता है तो वही विज्ञान उस लोक विश्वास का विरोध करने लगता है। जैसे कई बार मौसम में बदलाव के कारण बच्चों को एक त्वचा रोग हो जाता है जिसमें बच्चों के शरीर पर लाल-दाने निकल आते हैं। ये दानें आकार-प्रकार तथा रंग-रूप में कई प्रकार के होते हैं। इनके आकार-प्रकार के आधार पर इन रोगों को लोक भाषा में छोटी माता, मोटी माता, मसानी माता, शीतला माता आदि कई नामों से जाना जाता है। इस स्थिति में कुछ लोग देवी से प्रार्थना करते हैं कि वह बच्चों को

कष्ट न पहुँचाए। माताएँ अपने बच्चों के लिए ईश-विनय करती हैं कि वे बाजरे के दाने की तरह निकलें और 'पील' के फूल की तरह आराम से 'पाल्ले' की तरहे झड़ जाए ताकि बच्चे की त्वचा पर निशान न रहें। इस संबंध में एक लोकगीत भी प्रसिद्ध है जिसके बोल हैं-

'माता निकलती, न्यूं निकल
ज्यूं बाजरे की हुनियार,
माता ढलती, माता न्यूं ढल,
जानूँ पाल्ला सा झड़ जाए।'[11]

हमारे समाज में कई स्थानों पर आज भी चेचक, खसरा, मोतीझरा जैसे रोगों को आज भी लोग दैवीय शक्ति का प्रकोप माना जाता है। यहाँ विज्ञान ऐसी मान्यताओं का विरोध करता है पर जब इस लोक विश्वास के कारण घर के दरवाजे या मुण्डेर पर नीम की टहनी या पत्तियों का गुच्छा लगा दिया जाता है तथा मरीज को नीम की पत्तियों के उबले पानी से गीला कपड़ा करके स्पर्श-स्नान कराया जाता है तब विज्ञान पुनः अपना मूक समर्थन देता है क्योंकि नीम कई ऐसी त्वचा संबंधी बीमारियों के निदान में फायदेमंद है। इन लोक विश्वासों में गाहे-ब-गाहे कुछ अंधविश्वास भी शामिल होते जाते हैं जो लोक विश्वासों की विश्वसनीयता को भी प्रभावित करते हैं जैसे यदि लोहार मुँह अंधेरे लोहे की असली प्रेत सिद्ध अँगूठी लाकर किसी व्यक्ति को पहना देता तो उसे धारण करने से प्रेत बाधा नहीं होती। इस प्रकार के अंधविश्वास भी कभी-कभार लोक में प्रचलित हो जाते हैं।

विवाह लोक जीवन का एक अनिवार्य संस्कार माना जाता है। विवाह से जुड़े भी कई लोक विश्वास हमारे समाज में प्रचलित हैं। कुण्डली मिलान, भात या खिचड़ी खिलाना आदि सब इसी संस्कार में प्रचलित लोक विश्वास हैं। विवाह से जुड़ा एक ऐसा ही लोक विश्वास मिथिला, अवध और तिरहुत के गाँवों में प्रचलित है जिसके अनुसार अगहन माह में लड़की की शादी नहीं की जाती। इस लोक विश्वास के पीछे का कारण यह माना जाता है कि राम और सीता का विवाह अगहन मास में ही हुआ था, जिके कारण सीता का वैवाहिक जीवन सुखमय नहीं रहा। तभी से यहाँ यह मान्यता बन गई कि अगहन मास में विवाह वर्जित हो गया। इस लोक विश्वास को लेकर इस क्षेत्र में लोकगीत भी प्रचलित हैं। एक ऐसे ही लोकगीत की पंक्तियाँ हैं-

'सीता लकड़ी के कदली अँजोर संतति मुख देखेली!''[12]

विवाह के साथ दूसरा महत्वपूर्ण संस्कर पितरों का श्राद्ध कर्म माना गया है जो हमारी लोक-संस्कृति में इस प्रकार रचा बसा है कि यह एक लोकाचार के रूप में स्थापित हो गया है। दुर्भाग्यपूर्ण यह है कि इस लोकविश्वास की आड़ में लोक मानस की आस्था का फायदा उठाकर पवित्र नदियों के घाट या मंदिर की बेदियों पर बैठे हुए कुछ पंडा आदि पितरों के नाम पर ठगी करते हुए भी मिल जाते हैं। ''लोगों को यह कहकर उल्लू बनाया जाता है कि 'सरसुती जी' जो पाताल में अमृत-लोक में नीचे-नीचे बह रही है और 'प्रयागराज' में एक कूप के भीतर अपना दर्शन करा देती है। गंगा-यमुना से मिलित होने के पूर्व। परंतु असलियत तो यह है कि वैदिक सरस्वती का प्रदेश हरयाना-पंजाब। परंतु प्रयाग में गंगा-यमुना-सरस्वती का संगम है यह भी एक वैज्ञानिक सत्य है।''[13] गंगा को लोक माता के रूप में स्थापित करके उसमें डुबकी लगाकर अपने पाप धोता आया है। गंगा को लेकर भी कई लोक विश्वास हमारे लोक जीवन में व्याप्त हैं। इनमें एक ''लोक विश्वास है कि गंगा-दर्शन, गंगा-स्पर्श और गंगोदक का आचमन तथा गंगा-स्नान हमें मोक्ष-मार्ग पर बड़ी दूर तक ले जाता है।''[14]

उपसंहार- लोक मानस ने लोक जीवन तथा लोक-संस्कृति से जुड़े अनेक दोहे लोकोक्तियाँ, कहावतें मुहावरे, उक्तियाँ आदि प्रदान किए हैं जो मौखिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी लोक का मार्गदर्शन करते आ रहे हैं। ये लोक विश्वास व्यक्ति को जन्म से मृत्यु, शादी से वैराग्य, पनघट से कृषि, वीरता से भक्ति, पर्व से त्योहार तक प्रभावित करते हैं। हालाँकि लोक विश्वास के साथ कुछ अंधविश्वास भी समय के साथ आ मिले हैं पर फिर भी लोक-संस्कृति का आइना

कहलाने वाले इन लोक विश्वासों में समाज की ध्वनि सुनाई देती हैं। इनमें व्यक्ति की बात को जन की बात के रूप में अभिव्यक्ति मिलती है तथा गीतों में व्यष्टि के स्थान पर समष्टि को जगह दी जाती है। ये लोकविश्वास ही लोक में व्याप्त विभिन्न समुदायों की रीतियों, प्रथाओं, रिवाजों, रूढ़ियों, परंपराओं, मान्यताओं और प्रचलनों के सामाजिक, धार्मिक, नैतिक और पारंपरिक मूल्यों का बोध कराते हैं जिसके कारण लोक-संस्कृति और जीवन में लोकविश्वासों एवं मान्यताओं को बहुत महत्व दिया गया है।

संदर्भ-

1. लोक-संस्कृति, वसन्त निरगुणे, चतुर्थ संस्करण-2005, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पृ.-67
2. निबंधकार विद्यानिवास मिश्र, डॉ. ज्ञान सिंह चंदेल, प्रथम संस्करण-2008, सुरभि पब्लिकेशन्स, आर्णद, पृ.-188
3. तमाल के झरोखे से, विद्यानिवास मिश्र, संस्करण-1989, प्रकाशन- राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, पृ.-26-27
4. ललित-निबंधः स्वरूप एवं परंपरा, श्रीराम परिहार, संस्करण- 2014, किताबघर प्रकाशन दिल्ली, पृ.-132
5. सो...फिर, भादों गरजी....., डॉ. मालती शर्मा, प्रथम संस्करण- 1989, प्रकाशक- नीरज प्रकाशन पूना, पृ.-56
6. सो...फिर, भादों गरजी....., डॉ. मालती शर्मा, प्रथम संस्करण- 1989, प्रकाशक- नीरज प्रकाशन पूना, पृ.-70-71
7. संस्कृति से सरोकार, डॉ. मालती शर्मा, प्रथम संस्करण-1981, भारतीय लोक कला मण्डल उदयपुर, पृ.-77
8. चंपक उदास क्यों, भुवनैश्वर प्रसाद गुरमैता, प्रथम संस्करण- 2005, प्रकाशक- समीक्षा प्रकाशन दिल्ली, पृ.-84
9. दोपहर में गाँव, जय प्रकाश मानस, प्रकाशक- शताक्षी प्रकाशन, रायपुर, पृ.-55
10. खनमट्टीः जीवन का राग, पत्रिका- चौमासा, अंक-मई-जून-2008, प्रकाशक- आदिवासी लोक कला परिषद, भोपाल, मध्यप्रदेश, पृ.-76
11. लोक आलोक, संतराम देशवाल, प्रथम संस्करण-2005, गोयल इन्टरप्राइज़ेज दिल्ली, पृ.-80
12. आँगन का पंछी और बनजारा मन, आवृत्ति- 2012, वाणी प्रकाशन दिल्ली, पृ.-18-19
13. दृष्टि अभिसार, कुबेरनाथ राय, संस्करण- 1984, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, पृ.-21
14. उत्तरकुरू, कुबेरनाथ राय, द्वितीय संस्करण-1996, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृ.-47

This document was created with the Win2PDF “Print to PDF” printer available at

https://www.win2pdf.com

This version of Win2PDF 10 is for evaluation and non-commercial use only.
Visit https://www.win2pdf.com/trial/ for a 30 day trial license.

This page will not be added after purchasing Win2PDF.

https://www.win2pdf.com/purchase/